

इस
शल साग
दार्थोका
सणादि
तो थे

माधवनिदानम् ।

माधवकरप्रणीतं रुग्विनिश्चयापरनामकम् ।

पाठकज्ञातीयमाथुरश्रीकृष्णलालात्मजदत्तरामेण

कृतया भाषाटीकया समलंकृतम् ।

तच्च

श्रीकृष्णदासात्मज-

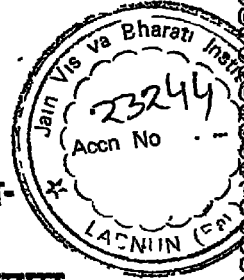
गंगाविष्णुखेमराजाभ्याम्

सुव्याम्

‘ निर्णयसागर ’ मुद्रायन्त्रालयेकित्वा प्रसिद्धिं नीतम् ।

संवत् १९४९ शके १८११.

अस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणाद्यधिकारः १८६७ तमान्दिकराजनियमाहसारेण प्रकाशकाधीनः ।



(Registered according to Act XXV. of 1867.)

(All rights reserved by the Publisher)

चर्याचन्द्रोय भाषाटीकासहित.

इसग्रन्थमें दिनचर्या खाद्य लङ्घ जलेबी पेडा वरफी घैवर पूष अपूप पूरी कचौरी भात दाल साग कढी शिखरणी आदि सम्पूर्ण पदार्थोंके बनानेकी विधि, तथा भोजनविधि सर्वे-पदार्थोंका गुणदोष इंद्रियोपक्रमणीयाध्याय रात्रिचर्या शय्यालक्षण शयनविधि स्त्रीपुरुषल-क्षणादि अनेक विषयहै यह ग्रन्थ सम्पूर्ण सद्रहस्योंके रखनेलायक है प्रशंसा जो कीजाय सो थोड़ीहै देखनेसे इच्छा पूर्ण होगी मूल्य २ रु०

बृहन्निघंटुरत्नाकर प्रथमभाग और द्वितीय भाग ६ ॥

अष्टांगहृदय (वाग्भट) भाषाटीका छपता है *

वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादि कर्मविपाक चिकित्सा नवीनटाईपमें }

अतिउ०	१॥ १०
नाडीदर्पण	१॥ ६
बालबोधपाकावली	६॥ १॥
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली	२॥ १॥
कूटमुद्राराख्यसटीक	६॥ १॥
चर्याचन्द्रोदयभाषाटीका	२ १०
चिकित्साधातुसार भाषा	१॥ ६
योगतरंगिणी	२ १०
माधवनिदान भाषाटीका	२॥ १॥
लोलिबराज संस्कृतटीका और भाषाटीका	१॥ १०

श्रीमद्भागवतभाषाटीका छपताहै तयार है स्कंध १-२।३।४।५।६।७।१०

छपके तयार है और बाकी छपता है सो संवत् १९४६ माद्रपदमा- १९ २
समें तैयार होयगा.

चिकित्साक्रमकल्पवल्ली.

यह वैद्यकका अपूर्व ग्रन्थहै जिसके श्लोकोंकी लालित्यको देखके काव्यके श्लोक मन्द मालूम होते हैं चिकित्सामें यथानामा तथागुणा अजमायशकोहुई दवाई इसमें है देखनेमे इच्छा पूर्ण होगी. मूल्य २॥ रु०.

योगतरंगिणी.

यह वैद्यकका ग्रन्थ श्रीत्रिमल्लभट्टविरचित टिपणीसहित छपके तैयार हुआ भाई पाठक इसकी इच्छा बहोत कालसे करतेथे सो अलभ्य ग्रन्थ तयार हुआ इसकी चिकित्साकी प्रशंसा बहोत विद्वज्जनोंके मुखसे सुनी है इस लिये जादा लिखना व्यर्थ है किं० २.

नाडीदर्पण.

नाडीपरीक्षाके बहोत पुस्तक अनेकजगे छपेहैं परन्तु इसकी उत्तमता हे पाठकगण देखनेहीसे विदित होगी भाषाटीका सहित छपके तैयार है इसमें अंगरेजीमतसेभी परीक्षा मली विधिकही है मूल्य केवल डाकव्ययसहित ७ आणे मात्र है.

प्रस्तावना.



भरतखंडमे वैद्यशास्त्रमें रोगके निदान; वैद्य, रोगी, औषध इत्यादिकोंका वर्णन आचार गुणागुण जिसमें वर्णन किये ऐसे सूत्रस्थान, चिकित्सा शारीरक इत्यादिकोंका विस्तारसे अच्छेतरहका विचार जिसमें किया ऐसे बहोत ग्रंथ एकएक विषयकरके प्रसिद्ध हैं तैसे निदानमे ओ रुग्निनिश्चय जिसकू माधवनिदान कहते हैं वोही प्रसिद्ध है. जैसे—

निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।

शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ।

अर्थ.—सब निदानग्रंथमे माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थानमे वाग्भट अच्छा, शारीर-स्थानमे सुश्रुत उत्तम और चिकित्सा नाम औषधविचारमे चरक बहोत अच्छा । इस ग्रंथका कर्ता ग्रंथनामसेही माधव मालूम पड़ता है. पंडितमाधवके सब शास्त्रोंमें ग्रंथ है. इसको भाषा काशीआदि नगरमे भई है, परंतु ऐसी कहांबी नहीं. इस टीकामे सब शब्द प्रसिद्ध बालकोंकेबी समझमे जलदी आजाय ऐसे हैं और इस्मे मधुकोश आतंकदर्पण इत्यादि टीकाके आशयकेबी पंक्तीकी भाषा बनाई और शंकासमाधान लिखा है और बहुतसे निदान जो आजतक किसी टीकाकारोंने नहीं लिखे सो प्रसंगवशसे इस्मे लिखदीने हैं जैसे चरकके मतसे छीबका निदान इत्यादि, और अंग्रेजी मतसे हकीमके मतसे जो निदान है ओबी लिखे हैं और परिशिष्टमेबी शुक्र आर्तव गर्भ स्नायु इत्यादि निदानका अन्य ग्रंथोंसे प्रमाणलेके इस्की भाषा बनाई है.

इस भाषाके बनानेवाले प्रसिद्ध आयुर्वेदोद्धारक माधुरपंडित दत्तारामजी हैं. इनोंने भाषाकरके दोबार दिछीमे और मथुरामे छपायीथी तो इनसे कृपासे सब हक्क लेके यहा उक्त पंडितसेही शुद्ध कराके और बढ़ाके हमने छापी. सो इस ग्रंथकूं इस मतीसे और दिछी और मथुरामे छपे पुस्तकसेबी कोई छापने नहीं पावे. इति प्रार्थना.

श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णु खेमराज.

श्रीवैकटेश्वर छापाखाना बंबई ।

॥ श्रीः ॥

माधवनिदानस्थविषयाणामनुक्रमणिका.



विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
मंगलम्	१	वातज्वरके लक्षण	१६
ग्रंथकर्तुः प्रतिज्ञा	॥	पित्तज्वरके लक्षण	॥
अन्यनिदानग्रंथोंसे इसकी उत्तमता	२	कफज्वरके लक्षण	१६
रोगजाननेके पांच उपाय	३	वातपित्तज्वरके लक्षण	॥
निदानके पर्यायवाचक शब्द	४	वातकफज्वरके लक्षण	१७
व्याधिके प्राशूपका लक्षण . .	॥	पित्तकफज्वरके लक्षण	॥
व्याधिके रूपके पर्यायशब्द	५	सन्निपातज्वरके लक्षण	॥
उपशयके लक्षण	॥	सन्निपातोंके भेद	१९
हेतुविपरीतादिकोंका उदाहरण	६	मतांतरसे सन्निपातके त्रयोदश भेद	२१
अनुपशयके लक्षण	८	कुंभीपाकादि त्रयोदश सन्निपातोंके	
संप्राप्तिके लक्षण	॥	क्रमसे लक्षण	॥
संप्राप्तिके भेद	॥	सन्निपातके विस्फारकादि षोडश भेद	२३
संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण .	॥	सन्निपातोंकी उत्पत्ति और संप्राप्ति अं-	
विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण . .	॥	थांतरसे	॥
प्राधान्यरूपसंप्राप्तिके लक्षण	९	संधिकादि तेरह सन्निपातोंके नाम	॥
बलरूपसंप्राप्तिके लक्षण	॥	तेरह सन्निपातोंकी मर्यादा	२४
कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण	॥	उक्तसन्निपातोंमें साध्यासाध्य विचार	॥
निदानपंचकका उपसंहार	१०	असाध्यरुच्छ्रसाध्यके लक्षण	॥
निदानपंचकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप सि-		संधिकादि त्रयोदश सन्निपातोंके प्रथक्	
द्धिके ज्ञानार्थ उपदेश	११	प्रथक् लक्षण	२५
ज्वरनिदानम्	१२	सन्निपातोपद्रव	२८
ज्वरकी उत्पत्ति	॥	त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा	॥
ज्वरकी संप्राप्ति	१३	धातुपाक लक्षण	२९
ज्वरके लक्षण	१४	मलपाक लक्षण	॥
ज्वरका पूर्वरूप	॥	आगंतुक ज्वर	॥
		विषजन्यआगंतुक ज्वर	३०

औषधगंधजनित ज्वर	३०	असाध्यज्वरके लक्षण	४०
कामज्वरके लक्षण	३१	गंभीरज्वरके लक्षण	४१
मय शोक-और कोपज्वर	३१	दूसरे असाध्य ज्वरके लक्षण	४१
अभिचार और अभिघातज्वर	३१	ज्वरमुक्तीके पूर्वरूप	४२
भूताभिषंगज्वरके लक्षण	३१	ज्वरमुक्तीके लक्षण	४२
विषमज्वरकी संप्राप्ति	३१			
धातुगतज्वरके नाम	३१	इंग्रजीमतानुसार ज्वरनिदान.		
संततज्वरके लक्षण	३२	सरदी	४१
संततकादिकोंके लक्षण	३२	मंदवायु	४१
उत्कृष्ट दोषभेदकरके तृतीय चतुर्थ-			गरिष्ठभोजन	४४
कोंके दूसरे लक्षण	३३	अनेक प्रकारके ज्वरोंके लक्षण	४४
विषमज्वरके भेद	३४	कुमकुमज्वरके लक्षण	४४
वातबलासकज्वर	३४	यकृतवा कलेजाज्वरके लक्षण	४४
प्रलेपकज्वर	३४	प्रसंगवशात्ज्वरमुक्त लक्षण	४४
विषमज्वर विशेषभेद	३५			
इन्होका विपरीतज्वर	३५	अतिसारनिदानम्		४५
शीतपूर्वज्वरके लक्षण	३५	अतिसारकी संप्राप्ति	४६
दाहपूर्वज्वरके लक्षण	३५	अतिसारके पूर्वरूप	४६
सप्तधातुगतज्वरोंके लक्षण	३५	वातातिसारके लक्षण	४६
रसगतज्वरके लक्षण	३६	पित्तातिसारके लक्षण	४६
रक्तगतज्वरके लक्षण	३६	कफातिसारके लक्षण	४७
मांसगतज्वरके लक्षण	३६	संनिपातातिसारके लक्षण	४७
मेदोगतज्वरके लक्षण	३७	शोकातिसारके लक्षण	४७
अस्थिगतज्वरके लक्षण	३७	शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यत्वलक्षण	४७
मज्जागतज्वरके लक्षण	३७	आमातिसारके लक्षण	४८
शुक्रगतज्वरके लक्षण	३७	आमके लक्षण	४८
प्राकृत और वैकृतके लक्षण	३७	पक्कलक्षण	४८
प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त-			असाध्यलक्षण	४८
उत्पत्तिक्रम	३८	दूसरे असाध्य लक्षण	४९
ज्वरके दश उपद्रव	३९	अतिसारके उपद्रव	४९
पच्यमानज्वरके लक्षण	४०	असाध्यलक्षण	४९
पक्क किंवा निरामज्वरके लक्षण	४०	रक्तातिसारलक्षण	५०
जीर्णज्वरके लक्षण	४०	प्रवाहिकाके लक्षण	४९
साध्यज्वरके लक्षण	४०	प्रवाहिकाके वातादिभेदकरिके लक्षण	४९

अतिसार चलागया होय इसका लक्षण ११	याप्य लक्षण ६१
अथ ग्रहणीनिदानम्	(असंगवशतै रोगी, वैद्य, औषध और सेवकके लक्षण)... ..
ग्रहणीकी संप्राप्ति ११	वैद्य लक्षण... .. ६२
ग्रहणीरोगकी संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण ११	निषिद्ध वैद्यके लक्षण ११
ग्रहणीके पूर्वरूप १२	रोगीके लक्षण ११
वातजग्रहणीका निदान . . . ११	उत्तम औषधके लक्षण ११
वातजग्रहणीका पूर्वरूप ... ११	दुष्ट औषधके लक्षण ६३
पित्तग्रहणीके लक्षण ... १३	दूतके लक्षण ११
कफसंग्रहणीकी उत्पत्ति ११	चर्मकीलकी संप्राप्ति ६४
त्रिदोषकी संग्रहणीके लक्षण .. १४	वातादिभेदकरके उसके लक्षण ११
डाक्टरीमतके अनुसार परीक्षा कारण ११	मंदाग्निरोगनिदानम् ..
अर्शरोगनिदानम् ..	अजीर्णरोग (विपमाग्नि किसी रोगका उत्पन्न करै) ६५
संख्यारूप संप्राप्ति .. ११	सामान्यादिकोंके लक्षण ११
संप्राप्तिपूर्वक अर्शकारूप १५	अजीर्णनिदानम् ६६
वातकी ववासीरके कारण ... ११	अजीर्णके प्रकार ११
पित्तकी ववासीरके कारण ११	अजीर्णके कारण ६७
कफकी ववासीरके कारण १६	आमादि अजीर्णोंके लक्षण ११
द्वंद्वजववासीरके कारण . . ११	विदग्धाजीर्णके लक्षण ११
त्रिदोषकी ववासीरके कारण ११	विष्टब्धाजीर्णके लक्षण ११
वातकी ववासीरके लक्षण ... ११	रसशेषजजीर्णके लक्षण .. ६८
पित्तकी ववासीरके लक्षण ... १७	अजीर्णके उपद्रव ११
कफकी ववासीरके लक्षण १८	बहुतभोजन अजीर्णका हेतु है .. ११
सन्निपात और सहज ववासीरके रक्तांशके लक्षण १९	विषूचिकाकी निरुक्ति ६९
रक्तांशनिदानके वातादिभेदकरके कफसंबंधके लक्षण ११	विषूचिकाके लक्षण ११
ववासीरका पूर्वरूप ६०	अलसके लक्षण ११
मुखसाध्य लक्षण ६१	विलांबिकाके लक्षण ७०
कृच्छ्रसाध्यके लक्षण ... ११	अजीर्णजन्यआमके दूसरे कार्यांतर.. ११
असाध्यके लक्षण ११	विषूचिका और अलसके असाध्य लक्षण.... ११
	अजीर्ण जातारहा इसके लक्षण ७१

कृमिरोगनिदानम्	७१	ऊर्ध्वगादि रक्तपित्तोंका साध्यासाध्य-	
कृमिरोगके प्रकार	७१	विचार....	८१
वाहककृमीके नाम ...	७१	साध्यहोनेके कारण	८२
कृमिरोगका कारण....	७२	दोषभेदसे साध्यासाध्यलक्षण	७२
कौनकारणसे कौनसी कृमि प्रगट होती	७२	रक्तपित्तके उपद्रव....	७२
पेटमें कृमि पडगई हो उसको लक्षण	७२	असाध्यलक्षण	८३
कफकी कृमीके लक्षण	७३		
रुधिरके कृमीके लक्षण	७३	राजयक्ष्मनिदानम्	८४
विछासे प्रगट कृमीके लक्षण	७३	राजयक्ष्माकी विशिष्टसंप्राप्ति ..	७३
		राजयक्ष्माके पूर्वरूप	८५
पांडुरोगनिदानम्	७४	त्रिरूपक्षयके लक्षण	८६
पांडुरोगके प्रकार	७४	एकादशरूप, पडूप और त्रिरूप-	
पांडुरोगके कारण और संप्राप्ति ..	७४	क्षयके लक्षण	७४
पांडुरोगके पूर्वरूप....	७४	साध्यासाध्यविचार	८७
वातजपांडुरोगके लक्षण	७५	असाध्यलक्षण	७५
पित्तज पांडुरोगके लक्षण	७५	कौनसे रोगीको औषध देना योग्यसो	७५
कफज पांडुरोगके लक्षण	७५	असाध्यलक्षण	८८
सन्निपातयुक्त पांडुरोगके लक्षण	७५	व्यवायशोषके लक्षण	७५
मट्टीखानेसे प्रगट पांडुके लक्षण	७६	शोकशोषीके लक्षण	७५
पांडुके विशेष लक्षण	७६	जराशोषीके लक्षण	८९
असाध्य पांडुके लक्षण	७६	अध्वप्रशोषीके लक्षण	७५
कामलाके लक्षण	७८	व्यायामशोषीके लक्षण ..	७५
कुंभकामलाके लक्षण	७८	तीनकारणसे ब्रणशोष होयहै सो....	९०
असाध्यकामलाके लक्षण	७८	उरःक्षतरोगकथनम्	७५
कुंभककामलाके असाध्यके लक्षण	७९	पूर्वरूप	९१
हलीमकरोगकथन ...	७९	क्षतशीणके असाध्यलक्षण	७५
पानकीरोगके लक्षण	७९	साध्यलक्षण	७५
रक्तपित्तनिदानम्	८०	अथ कासनिदानम्	९२
रक्तपित्तकापूर्वरूप	८०	कारण संप्राप्ति और निरुक्ति	७५
कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण ..	८०	पूर्वरूप	७५
वातिक रक्तपित्तके लक्षण	८०	वातकी खांसीके लक्षण	९३
पित्तजरक्तपित्तके लक्षण	८०	पित्तकी खांसीके लक्षण	७५
द्विदोषजादि रक्तपित्तके लक्षण	८१	कफकी खांसीके लक्षण	७५

क्षतकासका लक्षण	९३	क्षयजन्य स्वरभेदके लक्षण	१०४
क्षयखासीके लक्षण	९४	भेदके स्वरभेदके लक्षण	१०५
साध्यासाध्य विचार	११	असाध्य लक्षण	११

हिक्कानिदानम्

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति	११
हिक्काके भेद और संप्राप्ति	१६
पूर्वरूप	११
अन्नजाके लक्षण	११
यमलाके लक्षण	११
क्षुब्धाके लक्षण	११
गंभीराके लक्षण ..	१७
महतीहिचकीके लक्षण	११
असाध्यलक्षण	११
यमिकाके असाध्यलक्षण	११
यमिकाके साध्य लक्षण	१८

अथ श्वासनिदानम्

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण	११
श्वासरोगकी संप्राप्ति	११
महाश्वासके लक्षण	१२
ऊर्ध्वश्वासके लक्षण	११
छिन्नश्वासके लक्षण	१००
तमक श्वासके लक्षण	१००
प्रतमक श्वासलक्षण	१०१
प्रतमकके दूसरे लक्षण	११
क्षुब्ध श्वासके लक्षण. .	१०२
साध्यासाध्य विचार	११

स्वरभेदनिदानम्

वातजस्वरभेदके लक्षण ...	१०३
पित्तजस्वरभेदके लक्षण ..	११
कफजस्वरभेदके लक्षण ..	११
सन्निपात स्वरभेदके लक्षण....	११

अथारोचकनिदानम्

पित्तजादि अरुचियोंके लक्षण	१०५
शोकादि अरुचिके लक्षण....	११
वातजादि भेदकरके अन्यविकृति	११

छर्दिनिदानम्

छर्दिके कारण और निरुक्ति	१०६
छर्दिके पूर्वरूप	११
वातजछर्दिके लक्षण	१०७
पित्तज छर्दिके लक्षण	११
कफज छर्दिके लक्षण	११
त्रिदोष छर्दिके लक्षण	११
असाध्य छर्दिके लक्षण	१०८
आगंतुक छर्दिके लक्षण ..	११
कमिकी छर्दिके लक्षण	११
साध्यासाध्य लक्षण	१०९
उपद्रव	११

तृष्णानिदानम्

तृष्णाकी संप्राप्ति	११
अन्नजादि तृष्णाकी संप्राप्ति ..	११
वातज तृष्णाके लक्षण ..	११०
पित्तज तृष्णाके लक्षण	११
कफकी तृष्णाके लक्षण	११
क्षतज तृष्णाके लक्षण	१११
क्षयज तृष्णाके लक्षण ..	११
आमज तृष्णाके लक्षण	११
अन्नज तृष्णाके लक्षण	११२
उपसर्गज तृष्णाके लक्षण	११
असाध्य तृष्णाके लक्षण	११

मूर्छा निदानम्	११३	असाध्य लक्षण	१२३
निदान और संप्राप्ति	”	उपद्रव	१२४
मूर्छाका पुरुरूप	११४		
वातकी मूर्छाके लक्षण ..	”	दाह निदानम्	”
पित्तज मूर्छाके लक्षण	”	रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण....	”
कफज मूर्छाके लक्षण	”	प्यास रोकनेके दाहके लक्षण	१२५
सन्निपातके मूर्छाके लक्षण	११५	शस्त्रघातजदाहके निदान	”
रक्तकी मूर्छाके लक्षण	”	धातुक्षयजन्यदाहके लक्षण..	”
विषज और मद्यज मूर्छाके लक्षण	११६	क्षतजदाहके लक्षण	१२६
रक्तजादि तीनमूर्छाके लक्षण .	”	मर्मघातजदाहके लक्षण	”
मूर्छा, भ्रम, तंद्रा और निद्राइन-			
के भेद	११७	उन्माद निदानम्	१२६
तंद्राके लक्षण	”	उन्मादके सामान्यकारण और संप्राप्ति	१२७
संन्यासके भेद	”	उन्मादका स्वरूप . .	”
संन्यासके लक्षण	”	विशेषलक्षण	”
		पित्तजउन्मादके कारण और लक्षण	१२८
मदात्ययानदनिम्	११८	कफजउन्मादके कारण और लक्षण	”
विधिसे मद्य पीनेका फल ..	१८९	सन्निपातके उन्मादके कारण	”
विधिसे मद्य पीनेके दुसरे गुण	१२०	शोकजउन्मादके लक्षण	१२९
पूर्वमदके लक्षण	”	विषयजउन्मादके लक्षण	”
द्वितीयमदके लक्षण	”	असाध्य लक्षण	”
तृतीयमदके लक्षण	”	भूतजउन्मादके लक्षण	१३०
चतुर्थमदके लक्षण	१२१	देवग्रहजके लक्षण....	”
विधिहीनमद्यपानका परिणाम	”	अशुभपीडितके लक्षण ..	”
अन्नके साथ मद्य सेवन कराभयाभी कुब्ध-		गंधर्वग्रहजके लक्षण ...	१३१
त्वादिकारणोंसे जो विकार कर्ता है सो-		यक्षग्रहजके लक्षण	”
सर्वविकार	”	पितृग्रहजके लक्षण	”
वातमदात्ययके लक्षण	१२२	सर्पग्रहयुक्तके लक्षण	”
पित्तमदात्ययके लक्षण	”	राक्षसग्रहपीडितके लक्षण....	१३२
कफमदात्ययके लक्षण ..	”	पिशाचजुष्टके लक्षण	”
सन्निपातमदात्ययके लक्षण	१२३	भूतोन्मादके लक्षण	”
परमदके लक्षण . .	”	देवादीनामावेशसमय: ..	१३३
पानाजीर्णके लक्षण ...	”		
पानविभ्रमके लक्षण ..	”	अपस्मार निदानम्	१३४
		अपस्मारस्य निदानपूर्विका संप्राप्ति....	१३५

वाग्भटके मतसे निदान	१३५	पूर्वोक्त आक्षेपकका पित्तकफका अनु-	
अपस्मारके सामान्य लक्षण	१३६	बंधहोय सो	१४५
अपस्मारके पूर्वरूप	१३७	असाध्यत्व	१४६
वातजअपस्मारके लक्षण	१३७	पक्षाघातके लक्षण	१४७
पित्तकी मिरगीके लक्षण	१३७	सर्वांगरोगके लक्षण	१४७
कफकी मिरगीके लक्षण	१३७	अर्दितरोगके लक्षण	१४७
सन्निपातके मिरगीके लक्षण	१३७	अर्दितरोगके असाध्य लक्षण	१४८
मिरगीके असाध्य लक्षण	१३७	आक्षेपकलेकर अर्दितपर्यंतरोगोंका वेग	१४८
मिरगीरोगकी पाली	१३७	हनुग्रहके लक्षण	१४८
		मन्यास्तंभके लक्षण	१४८
वातव्याधिनिदानम् १३८		जिह्वास्तंभके लक्षण	१४८
वातव्याधीके पूर्वरूप	१३८	शिराग्रहके लक्षण	१४८
कोष्ठाश्रितवायूके कार्य	१३८	गृध्रसीके लक्षण	१४८
सर्वांगकुपितवायूके कार्य	१३८	विश्वाचीके लक्षण	१४८
गुदामे स्थितवायूके कार्य	१३८	क्रोष्टृशीर्षके लक्षण	१४८
आमाशयस्थितवायूके कार्य	१३८	खंज औ पांगुरेके लक्षण	१४८
पक्वाशयस्थितवायूके कार्य	१३८	कलायखंजके लक्षण	१४८
इन्द्रिमें स्थितवायूके कार्य	१३८	वातकटकके लक्षण	१४८
रसधातुगतवायूके कार्य	१३८	पादहर्षके लक्षण	१४८
रक्तगतवायूके कार्य	१३८	अंसशोष और अपवाहुकके लक्षण	१४८
मांसमेदोगतवायूके लक्षण	१३८	मूकादिकनरोगोंके लक्षण	१४८
मज्जास्थितवायूके लक्षण	१३८	तूनीरोगके लक्षण	१४८
शुक्रगतवायूके लक्षण	१३८	प्रतूनीके लक्षण	१४८
शिरागतवायूके लक्षण	१३८	आध्मानरोगके लक्षण	१४८
स्नायुगत और संधिगतवायूके लक्षण	१३८	प्रत्याध्मानके लक्षण	१४८
पित्त और कफ इनसे आवृत हुई		वातछीलाके लक्षण	१४८
प्राणादिकवायूके लक्षण	१३८	प्रत्यछीलाके लक्षण	१४८
आक्षेपकके सामान्य लक्षण	१३८	मूत्रावरोधके लक्षण	१४८
आक्षेपकके दो भेद	१३८	कंपवायूके लक्षण	१४८
दंढापतानके लक्षण	१३८	खल्लीके लक्षण	१४८
अंतरायाम और बहिरायाम इनके		ऊर्ध्ववातके लक्षण	१४८
साधारण रूप	१३८	प्रलापके लक्षण	१४८
अंतरायामके लक्षण	१३८	रसज्ञानके लक्षण	१४८
वाह्यायामके लक्षण	१३८	अनुक्तवातरोग संग्रहः	१४८

साध्यासाध्य विचार १५५	अंथांतरोक्तशूलके स्थान १६५
वातव्याधिके उपद्रव १५५	शूलके उपद्रव १६६
असाध्य लक्षण १५५	परिणामशूलनिदान १६७
वातरक्तनिदानम् १५६	वातिकपरिणामशूलनिदान १६७
वातरक्तकी संप्राप्ति १५६	पैत्तिकपरिणामशूलके लक्षण .. १६७
वातरक्तका पूर्वरूप १५६	श्लैष्मिकपरिणामशूलके लक्षण ... १६७
वातरक्तको अन्य दोषोंका संसर्ग- हेनेसे उसके न्यारे न्यारे लक्षण १५७	द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण १६७
रक्ताधिकके लक्षण १५७	अन्नके उपद्रवसे प्रगटशूलके लक्षण १६७
पित्ताधिकके लक्षण १५७	उदावर्तनिदानम् १६७
कफाधिकके लक्षण १५७	उदावर्तके कारण १६८
अनेकदोषोंके लक्षण १५७	तेरह उदावर्तोंके क्रमसे लक्षण १६८
असाध्य लक्षण १५८	अधोवायुकी अप्रवृत्ति १६९
उपद्रव १५८	आनाहरोगनिदानम् १७०
साध्यासाध्य विचार .. १५८	असाध्यलक्षण १७१
ऊरुस्तंभनिदानम् १५९	गुल्मनिदानम् १७१
ऊरुस्तंभका पूर्वरूप १६०	गुल्मके सामान्यरूप १७१
ऊरुस्तंभके लक्षण १६०	संप्राप्ति १७२
असाध्य लक्षण १६०	पूर्वरूप १७२
आमवातनिदानम् १६१	गुल्मके साधारण लक्षण १७२
आमवातके सामान्य लक्षण १६१	वातगुल्मके कारण और लक्षण १७३
आमवात अत्यंत वदगया उत्को ल० १६१	पित्तगुल्मके कारण और लक्षण १७३
विशेष लक्षण १६१	कफके और सन्निपातके गुल्मका कारण और लक्षण ... १७४
साध्यासाध्य विचार १६१	द्वंद्वजगुल्मके लक्षण १७४
शूलनिदानम् १६२	सन्निपातगुल्मके लक्षण १७४
वातशूलके कारण और लक्षण ... १६२	रक्तगुल्मके लक्षण १७५
पित्तशूलके कारण और लक्षण १६२	असाध्य लक्षण १७५
कफशूलके कारण और लक्षण ... १६२	हृद्रोगनिदानम् १७५
आमशूलके लक्षण १६२	संप्राप्ति और सामान्य लक्षण १७५
द्वंद्वजशूलके लक्षण १६२	वातजहृद्रोगके लक्षण १७५

पित्तजहृद्दोगके लक्षण	१७७
कफजहृद्दोगके लक्षण	१७८
त्रिदोषजहृद्दोगके लक्षण	”
रुमिजहृद्दोगके लक्षण	”
सर्वोके उपद्रव	”

मूत्रकुच्छन्निदानम् १७९

संप्राप्ति	”
पैत्तिकमूत्रकुच्छन्निदानके लक्षण	”
वातिकमूत्रकुच्छन्निदानके लक्षण	”
कफजमूत्रकुच्छन्निदानके लक्षण	१८०
सन्निपातजके लक्षण	”
शल्यजमूत्रकुच्छन्निदानके लक्षण	”
मलजमूत्रकुच्छन्निदानके लक्षण	”
अश्मरीजन्यके लक्षण	”
शुक्रजके लक्षण	”
अश्मरी और शर्करा इनके साम्य और अवांतर भेद	१८१

मूत्राघातनिदानम् १८१

वातकुंडलिकोके लक्षण	”
अष्टीलाके लक्षण	१८२
वातवस्तीके लक्षण	”
मूत्रातीतके लक्षण	”
मूत्रजठरके लक्षण	”
मूत्रोत्सर्गके लक्षण	१८३
मूत्रक्षयके लक्षण	”
मूत्रग्रंथिके लक्षण	”
मूत्रशुक्रके लक्षण	”
उष्णवातका लक्षण	१८४
मूत्रसादके लक्षण	”
विद्विधातके लक्षण	”
वस्तिकुंडलरोगके लक्षण	”
साध्यासाध्य लक्षण	१८५

कुंडलीभूतके लक्षण	१८५
-------------------	------	------	-----

अश्मरीरोगनिदानम् १८६

अश्मरीकी संप्राप्ति	”
पूर्वरूप	”
पथरीके सामान्य लक्षण	”
वातकी पथरीके लक्षण	१८७
पित्तकी पथरीके लक्षण	”
कफकपथरीके लक्षण	”
शुक्राश्मरीके लक्षण	१८८
पथरीशर्कराके उपद्रव	”
असाध्य लक्षण	”

माधवनिदानका उत्तर भाग.

प्रमेहनिदानम् १८९

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसे संप्राप्ति	”
प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह १९०
प्रमेहका पूर्वरूप ”
सामान्य लक्षण ”
प्रमेहका कारण ”
कफकी १० प्रमेहके लक्षण १९१
पित्तकी ६ प्रमेहके लक्षण ”
वातकी ४ प्रमेहकी लक्षण १९२
कफ प्रमेहके उपद्रव ”
पित्त प्रमेहके उपद्रव ”
वात प्रमेहके उपद्रव १९३
प्रमेहके असाध्य लक्षण ”
दूसरे असाध्य लक्षण ”
कुलपरंपरागतअन्यविकारोंको असाध्यत्व	”
मधुमेहोत्पत्ति ”
आवर्णिके लक्षण १९४
मधुमेहशब्दकी प्रवृत्तिविषयनिमित्त	.. ”

प्रमेहपिटिकानिदानम्	१९४	साध्यासाध्य विचार	२०५
सबके लक्षण	जातोदकके लक्षण चरकमेसे	२०६
पिटिकाकी उत्पत्ति	असाध्य लक्षण	”
असाध्यपिटिका लक्षण				

मेदोनिदानम्

मेदका कारण और संप्राप्ति	”
मेदस्त्रीपुरुषके लक्षण	१९७
मेदस्त्री अवस्थाविशेष	”
अत्यंतमेदबढनेका परिणाम	”
स्थूललक्षण	१९८

कार्श्यनिदानम्

कृशमनुष्यके लक्षण	१९८
अतिकृशको वर्जनीयवस्तु	१९९
अतिकृशको जे रोग होते हे सो	”
कस्यचित् स्थूलस्यापि तादृग्वलं न दृ-		
श्यते तत्र हेतु	”
असाध्य कार्श्य	२००

उदररोगनिदानम्

उदरकी संप्राप्ति	”
उदरके सामान्यरूप	२०१
उदररोग संख्या	”
वातोदरके लक्षण	”
पित्तोदरके लक्षण	२०२
कफोदरके लक्षण	”
सन्निपातोदरके लक्षण	”
डीहोदरके लक्षण	२०३
यकृद्वात्युदरके लक्षण	”
इसमेंदोषोंका संबंध	२०४
बद्धगुदोदरके लक्षण	”
क्षतोदरके लक्षण	”
जलोदरके उत्पत्तिसह लक्षण	२०५

शोथरोगनिदानम्

शोथकी संप्राप्ति	”
शोथकापूर्वरूप	२०८
सामान्य लक्षण	”
वातज शोथके लक्षण	”
पित्तज शोथके लक्षण	”
कफज शोथके लक्षण	२०९
द्वंद्वज और सन्निपातज शोथके ल०	”
अभिघातज शोथके लक्षण	”
विषज शोथके लक्षण	”
जिसजिसठिकाने दोष सूजन उत्पन्न		
करे सो	२१०
सूजनके कृच्छ्रादिभेद	”
असाध्य लक्षण	”
शोथके उपद्रव	२११

अंडवृद्धिनिदानम्

अंडवृद्धिकी संप्राप्ति	”
वातपित्तकफ और मेद इन्से प्रगट		
भईके लक्षण	२१२
पित्तकी अंडवृद्धिके लक्षण	”
कफकी अंडवृद्धिके लक्षण	”
मूत्रवृद्धिके लक्षण	”
अंत्रवृद्धिके लक्षण	२१३
इसकी औपध न करनेका परिणाम	”
असाध्य लक्षण	”

वर्ध्मरोगनिदानम्

गलगंड निदानम्	”
गलगंडकी संप्राप्ति	”

वातजगलगंडके लक्षण	२१५
कफजगलगंडके लक्षण	२१५
मेदजगलगंडके लक्षण	२१५
असाध्यलक्षण	२१६

गंडमालानिदानम्

अपचीके लक्षण	२१५
असाध्य और साध्यलक्षण	२१५

ग्रंथिनिदानम्

वातजग्रंथिके लक्षण	२१७
पित्तजग्रंथिके लक्षण	२१७
कफजग्रंथिके लक्षण	२१८
मेदजग्रंथिके लक्षण	२१८
शिराजग्रंथिके लक्षण	२१८
साध्यासाध्य लक्षण	२१८

अर्बुदनिदानम्

अर्बुदकी संप्राप्ति	२१९
रक्तार्बुदके लक्षण	२१९
मांसजार्बुदकी संप्राप्ति	२१९
साध्यमे असाध्यप्रकार	२२०
अध्यर्बुदके लक्षण	२२०
द्विर्बुदके लक्षण	२२०
अर्बुदपकनेका कारण	२२०

श्लीपदनिदानम्

श्लीपदकी संप्राप्ति	२२१
वातजश्लीपद	२२१
श्लैष्मिक श्लीपद	२२१
असाध्य लक्षण	२२१
श्लीपदमें कफको प्राधान्य	२२१
श्लीपदकौन्सेदेशमें उत्पन्न होय सो	२२२
असाध्य लक्षण	२२२

विद्रधिनिदानम्

वातजविद्रधिके लक्षण	२२२
पित्तजविद्रधिके लक्षण	२२३
कफजविद्रधिके लक्षण	२२३
पकनेके अनंतर उन्कास्त्राव	२२४
सन्निपातका विद्रधिके लक्षण	२२४
आगंतुजविद्रधीकी संप्राप्ति	२२४
रक्तजविद्रधिके लक्षण	२२४
अंतर्विद्रधिके लक्षण	२२४
विद्रधिका स्थान	२२५
स्त्रावनिर्गम	२२५
विद्रधिमें साध्यासाध्य	२२६
असाध्य लक्षण	२२६

व्रणनिदानम्

व्रणपाक	२२७
कच्चेफोडेके लक्षण	२२७
पच्यमानव्रणके लक्षण	२२८
पक्कव्रणके लक्षण	२२८
पकनेके समय तीनौ दोषका संबंध	२२८
रोग न निकालनेसे परिणाम	२२९
आमादिलक्षण ज्ञानसे वैद्यके गुणदोष	२२९
अपक्वका छेदन और पकेकी उपेक्षा	२२९
करनेमें दोष	२२९

व्रणनिदानम्

वातिक व्रण	२३१
पित्तव्रणके लक्षण	२३१
कफव्रणके लक्षण	२३१
रक्तज और द्रवजव्रणके लक्षण	२३१
सुखव्रणके लक्षण	२३१
रुच्छसाध्य और असाध्यके लक्षण	२३१
दुष्टव्रणके लक्षण	२३१
शुद्धव्रणके लक्षण	२३१

भरनेवाले व्रणके लक्षण	२३१	संधिभग्नके लक्षण....	२३८
व्रण भरगयो उसके लक्षण	”	संधिभंगके सामान्य लक्षण....	”
व्याधिविशेष करके व्रण छच्छसाध्यत्व ..	”	कांडभग्नकथनम्	२३९
साध्यासाध्यलक्षण	”	कांडभग्नके सामान्य लक्षण	२४०
असाध्यव्रणके लक्षण	२३२	कष्टसाध्यके लक्षण	”
व्रणरोगमें अपथ्य	”	असाध्य लक्षण	”
		असावधानतासे असाध्यता	२४१
		अस्थिविशेषकके भग्नविशेष	”

आगंतुकव्रणनिदानम् २३३

व्रणकी संख्या और संप्राप्ति	”
छिन्नके लक्षण ...	”
भिन्नके लक्षण ...	”
कोष्ठके लक्षण	”
कोष्ठके भेदोंके लक्षण	२३४
आमाशयस्थितरक्तके लक्षण	”
पक्काशयस्थके लक्षण	”
विद्धव्रणके लक्षण	”
क्षतके लक्षण	२३५
पिच्छितके लक्षण	”
घृष्टके लक्षण	”
शल्यव्रणके लक्षण ..	”
कोष्ठभेदलक्षण	”
असाध्य कोष्ठभेद	२३६
मांस, शिरा, स्नायु और अस्थि इनो- में चोट लगनेके सामान्य लक्षण ..	”
मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण	”
स्नायुविद्धके लक्षण	”
संधिविद्धके लक्षण	२३७
अस्थिविद्धके लक्षण	”
मांसविद्धके लक्षण	”
सर्वव्रणके उपद्रव	”

भग्ननिदानम् २३८

भग्नके दो प्रकार	”
-----------------------	---

नाडीव्रणनिदानम् २४१

संख्यारूप संप्राप्ति	२४२
वातनाडीव्रणके लक्षण	”
पित्तनाडीव्रणके लक्षण....	”
कफज नाडीव्रणके लक्षण....	”
सन्निपातज नाडीव्रणके लक्षण	”
शल्यज नाडीव्रणके लक्षण	२४३
साध्यासाध्य लक्षण	”

भगंदरनिदानम् २४३

भगंदरका पूर्वरूप....	”
शतपोनकके लक्षण	२४४
उष्ट्रशिरोधरके लक्षण	”
परिखावी भगंदरके लक्षण ...	”
शंभूकावर्तके लक्षण	”
उन्मार्गि भगंदरके लक्षण....	२४५
साध्यासाध्य लक्षण	”
असाध्यके लक्षण....	”

उपदंशनिदानम् २४५

उपदंशके कारण	”
वातोपदंशके लक्षण	२४६
पित्तोपदंश और रक्तोपदंशके ल० ..	”
कफोपदंशके लक्षण	”
सन्निपातोपदंशके लक्षण	”
असाध्य लक्षण	”

लिंगवर्तिके लक्षण २४७	और्दुवरकुष्ठके लक्षण २९४
फिरंगशब्दकी निरुक्ति २४७	मंडलकुष्ठके लक्षण २९५
विमलकुष्ठनिदानम् २४८	ऋष्यानिहकुष्ठके लक्षण २९५
रूपमाह २४८	पुंलरीकुष्ठके लक्षण २९५
फिरंगरोगके उपद्रव २४८	सिध्मकुष्ठके लक्षण २९५
साध्यासाध्य कष्टसाध्यत्व २४८	काकणकुष्ठके लक्षण २९५
शूकदोष निदानम् २४९	ग्यारै शुद्धकुष्ठोंके लक्षण २९६
सर्षपिकाके लक्षण २४९	किटिमकुष्ठके लक्षण २९६
अष्टीलाके लक्षण २४९	वैपादिकके लक्षण २९६
अंधितके लक्षण २४९	अलसकके लक्षण २९६
कुम्भिकाके लक्षण २५०	दृढमंडलके लक्षण २९६
अलनीके लक्षण २५०	चर्मदलके लक्षण २९६
शुदितके लक्षण २५०	पामाकुष्ठके लक्षण २९७
संमूढपिट्टिकाके लक्षण २५०	कच्छुके लक्षण २९७
अवर्मयके लक्षण २५०	विस्फोटकके लक्षण २९७
पुष्करिकाके लक्षण २५०	शतारुके लक्षण २९७
शैहानिके लक्षण २५१	विचारिकाके लक्षण २९७
त्तमाके लक्षण २५१	वातनादिकुष्ठोंके लक्षण २९८
तपोनकके लक्षण २५१	दंड्रजकुष्ठोंके लक्षण २९८
वक्ष्पाकके लक्षण २५१	रसादि सप्तधातुगतकुष्ठोंके लक्षण २९८
शोणितार्जुदके लक्षण २५१	रक्तगतके लक्षण २९८
मांसार्जुदके लक्षण २५१	मांसगतके लक्षण २९८
मांसपाकके लक्षण २५२	मेदोगतके लक्षण २९८
सिद्धधिके लक्षण २५२	अस्थिमज्जागतके लक्षण २९९
तिलकाकके लक्षण २५२	शुक्रार्तवगतकुष्ठके लक्षण २९९
असाध्य शूकदोषके लक्षण २५२	साध्यादिभेद २९९
कुष्ठनिदानम् २५२	कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण २९९
कुष्ठके भेदा २५३	किलासनिदान २९९
कुष्ठके पूर्वरूप २५३	वातादिभेदसे उनके लक्षण २९९
सप्तमहाकुष्ठोंके लक्षण २५३	खिन्नके साध्यासाध्य लक्षण २९९
	किलासके असाध्य लक्षण २९९
	सांसर्गिकरोग २९९

शीतपित्तनिदानम्	२६२	विस्फोटकनिदानम्	२७०
संप्राप्ति	॥	विसर्पका लक्षण	॥
पूर्वरूप	॥	विस्फोटक स्वरूप	॥
उदरके लक्षण	॥	वातविस्फोटकके लक्षण	॥
उदरका दूसरा धर्म	॥	पित्तविस्फोटकके निदान	२७१
कोष्ठके लक्षण	२६३	कफविस्फोटकके लक्षण	॥
<hr/>		कफपित्तात्मकके लक्षण	॥
आम्लपित्तनिदानम्	२६३	वातपित्तात्मकके लक्षण	॥
निदानपूर्वक स्वरूप	॥	कफवातात्मकके लक्षण	॥
आम्लपित्तके लक्षण	॥	सन्निपातके लक्षण	॥
अधोगतके लक्षण	२६४	रक्तजविस्फोटकके लक्षण	२७२
ऊर्ध्वगतके लक्षण	॥	साध्यासाध्यविचार	॥
कफपित्तजन्यके लक्षण	॥	विस्फोटकके उपद्रव	॥
साध्यासाध्यविचार	॥	<hr/>	
आम्लपित्तमें केवल वायुका और		मसूरिकानिदानम्	२७२
वातकफका संसर्ग होयसो	२६५	कारण और संप्राप्ति	॥
वायुयुक्त आम्लपित्तके लक्षण	॥	मसूरिकाके पूर्वरूप	२७३
कफयुक्तके आम्लपित्तके लक्षण . .	॥	वातकी मसूरिकाके लक्षण	॥
वातकफयुक्तके लक्षण	॥	पित्तजमसूरिकाके लक्षण	॥
कफपित्तयुक्तके लक्षण	॥	रक्तजमसूरिकाके लक्षण	२७४
<hr/>		कफजमसूरिकाके लक्षण	॥
विसर्पनिदानम्	२६६	त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण	॥
विसर्पका कारण	॥	चर्मपिटिकाके लक्षण	॥
वातविसर्पके लक्षण	॥	रोमांतिकके लक्षण	२७५
पित्तविसर्पके लक्षण	॥	रसादिसप्तधातुगतके लक्षण	॥
कफविसर्पके लक्षण	२६७	रक्तगतमसूरिकाके लक्षण	॥
सन्निपातज विसर्पके लक्षण	॥	मांसगतके लक्षण ...	॥
अग्निविसर्पके लक्षण	॥	मेदोगतके लक्षण	॥
ग्रंथिविसर्पके लक्षण	२६८	अस्थिमज्जागतके लक्षण	२७६
कर्दमविसर्पके लक्षण	॥	शुक्रगतके लक्षण	॥
क्षतजविसर्पके लक्षण	२६९	सप्तधातुगतमसूरिकाके दोषके	
विसर्पके उपद्रव	॥	संबंधसे लक्षण	॥
साध्यासाध्य लक्षण	॥	धातुगत और दोषजमसूरिकामें कौन	
<hr/>		कौन साध्य सो	२७७

कष्टसाध्य	२७७	मुखदूषिकाके लक्षण	२८१
असाध्यके लक्षण	”	पद्मिनी कंठकके लक्षण	”
सर्व मसूरिकाके अवस्थाविशेष कर्के	”	जंतुमणि (लहसन)के लक्षण	”
लक्षण	”	माष (मस्ता)के लक्षण	”
मसूरिकाके उपद्रव....	२७८	तिलकालक (तिल)के लक्षण	२८६

क्षुद्ररोगनिदानम्

अजगल्लिकाके लक्षण	”	नीलिकाके लक्षण....	२८७
यवमल्याके लक्षण....	”	परिवर्तिकाके लक्षण	”
अंधालजीके लक्षण....	”	अवपाटिकाके लक्षण ..	”
विद्युतापिडिकाके लक्षण	२७९	निरुद्धप्रकाशके लक्षण	२८८
कच्छपिकाके लक्षण	”	सन्निरुद्धगुदके लक्षण	”
वल्मीकपिडिकाके लक्षण	”	अहिपूतनाके लक्षण	२८९
इंद्रदुब्धके लक्षण	”	वृषणकच्छूके लक्षण ..	”
गर्दभिकाके लक्षण	२८०	गुदभ्रंशके लक्षण....	२९०
पाषाणगर्दभ लक्षण....	”	सूकरके दंष्ट्रके लक्षण	”
पनासिकाके लक्षण	”		
जालगर्दभके लक्षण ...	”		

मुखरोगनिदानम् २९०

इरिवेष्टिकाके लक्षण	२८१	मुखरोगके संख्या	”
कक्षा (कखलाईके) लक्षण ..	”	होठरोगके संप्राप्ति	”
गंधनाम्नीके लक्षण	”	वातिक ओष्ठरोगके लक्षण	२९१
अग्निरोहिणीके लक्षण	”	पैत्तिकके लक्षण	”
चिप्यके लक्षण	”	श्लेष्मिकके लक्षण....	”
अनुषके लक्षण	२८२	सन्निपातिकके लक्षण	”
विदारिकाके लक्षण....	”	रक्तजके लक्षण	”
शर्कराके लक्षण	”	मांसजके लक्षण	”
शर्करागुदके लक्षण....	”	मेदोजके लक्षण	२९२
पाददारीके लक्षण	२८३	अभिधातजके लक्षण ..	”
कदरके लक्षण	”		

दंतमूलगन्तरोग २९२

अलसके लक्षण	”	शीतादके लक्षण	”
इंद्रलुप्तके लक्षण	”	दंतपुष्पुटके लक्षण	२९३
दारुणके लक्षण	२८४	दंतवैष्टके लक्षण	”
अरुणिकेके लक्षण....	”	सौमिरके लक्षण	”
पलित (सफेदवाल)के लक्षण	२८५		

कर्णगुथके लक्षण	३०६	वातिकप्रतिश्यायके लक्षण	३१३
कर्णप्रतिनाहके लक्षण	"	पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण	"
कृमिकर्णके लक्षण	"	शैष्मिकप्रतिश्यायके लक्षण	"
कानमें पतंगादि कीड़ा घसनेके लक्षण ..	"	सन्निपातके लक्षण	३१४
द्विविधकर्णविद्वधिके लक्षण	"	दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण	"
कर्णपाकके लक्षण	३०७	रक्तप्रतिश्यायके लक्षण	"
पूतिकर्णके लक्षण	"	असाध्यलक्षण	"
कर्णशोथ, कर्णाबुद, कर्णार्शिका लक्षण ..	"	नेत्ररोगनिदानम् ३१९	
वातजके लक्षण	"	कारण	"
पित्तजके लक्षण	"	अभिष्यंद (नेत्रआना) का लक्षण ३१६	
कफजके लक्षण	३०८	वाताभिष्यंदके लक्षण	३१७
सन्निपातजके लक्षण	"	पित्ताभिष्यंदके लक्षण	"
कर्णपालिके रोग		कफजाभिष्यंदके लक्षण	"
कर्णशोथके लक्षण	"	रक्तजाभिष्यंदके लक्षण	"
परिपोटके लक्षण	"	अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति	३१८
उत्पातके लक्षण	"	दूसरे सामान्य लक्षण	"
उन्मंथकके लक्षण	३०९	दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण	"
दुःखवर्धनके लक्षण	"	नेत्ररोगके सामान्य लक्षण	"
परिलेहीके लक्षण	"	निरामके लक्षण	३१९
नासारोगनिदानम्		शोथसहितनेत्रपाकके लक्षण	"
पीनसके लक्षण	"	हताधिमंथके लक्षण	"
पूतिनस्यके लक्षण	३१०	वातपर्ययके लक्षण	३२०
नासापाकके लक्षण	"	शुष्काभिषाकके लक्षण	"
पूयरक्तके लक्षण	"	अन्यतोवातके लक्षण	"
क्षवधु (छींक) के लक्षण	"	आम्लाध्युपितके लक्षण	"
आगंतुजक्षवधुके लक्षण ..	"	शिरोत्पातके लक्षण	३२१
अंशधुके लक्षण	३११	शिराहर्षके लक्षण	"
दीप्तके लक्षण	"	अथ नेत्रोंके कालेरंगमे रोग	
प्रतिनाहके लक्षण	"	सम्रण शुक्रलक्षण	"
नासास्त्रावके लक्षण	"	सम्रण शुक्रके असाध्य लक्षण	"
नासापरिशोथके लक्षण	"	अम्रण शुक्रके लक्षण ..	३२२
चिकित्साभेदार्थ पीनसके आमपक्वके ल० ..	"	अम्रण अवस्था विशेषकरके साध्य ल० ..	"
प्रतिश्यायकी संप्राप्ति	३१२	अम्रण अवस्थाभेदके असाध्य लक्षण ..	"
चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान	"	दूसरे असाध्य लक्षण	"
पूर्वरूपके लक्षण	"	अशिषाकात्ययके लक्षण	२२३

अजकाजातके लक्षण २२३	कृमिग्रंथीके लक्षण.... २३३
दृष्टिरोग	वर्त्मरोग (मर्मस्थानके)
पहले पटलमे दोष जाननेसे उसके ल० ,, उत्संगपिडिकाके लक्षण ३३४	कुंमिकाके लक्षण ,,
द्वितीयपटलस्थितदोषके लक्षण ३२४	पोथकी लक्षण ,,
तृतीयपटलगतदोषके लक्षण ,,	वर्त्मशर्कराके लक्षण ३३५
चतुर्थपटलगततिमिरके लक्षण ३२५	अशोवर्त्मके लक्षण.... ,,
तृतीयपटलाश्रितकाचदोषकी दूसरी सं० ३२६	शुष्कार्शिके लक्षण ,,
दोष विशेषकरके रूपका दिखाना ,,	अजनाके लक्षण ,,
पित्तसे दूसरे परिम्लायसंज्ञकतिमिर ल० ३२७	बहलवर्त्मके लक्षण.... ,,
रागमेदसे लिंगनाशको षड्विधत्व ,,	वर्त्मबंधके लक्षण ३३६
वातिकरागके विशेष लक्षण.... ,,	छिद्यवर्त्मके लक्षण ,,
दृष्टिमंडलगतरागके लक्षण.... ३२८	वर्त्मकर्मके लक्षण ,,
सर्वदृष्टिरोगकी संख्या ,,	स्थायवर्त्मके लक्षण.... ,,
पित्तविदग्धके लक्षण ,,	अच्छिन्नवर्त्मके लक्षण ३३७
दिवांधके लक्षण ,,	वातहतवर्त्मके लक्षण ,,
कफविदग्धदृष्टीके लक्षण ३२९	अर्बुदके लक्षण ,,
नक्तान्ध (रतौघ)के लक्षण ,,	निमेषके लक्षण ,,
धूमदर्शिके लक्षण ,,	शोणितार्शिके लक्षण ३३८
ह्रस्वदृष्टीके लक्षण ,,	लगणके लक्षण ,,
नकुलांध्यके लक्षण ,,	विसवर्त्मके लक्षण ,,
गंभीरदृष्टीके लक्षण ३३०	कुंचनके लक्षण ,,
आगंतुर्जालिंगनाशके लक्षण.... ,,	पक्ष्मकोपके लक्षण ,,
अनिमित्तके लक्षण.... ,,	पक्ष्मशातके लक्षण.... ३३९
अर्मरोग (९) प्रकारका है ,,	नेत्ररोगोंकी संख्या.... ,,
शुक्तिरोगके लक्षण.... ३३१	शिरोरोगनिदानम् ३३९
अर्जुनके लक्षण ,,	वातजके लक्षण ३४०
पिष्टकके लक्षण ,,	पैत्तिकके लक्षण .. ,,
जालके लक्षण ,,	श्लैष्मिकके लक्षण ,,
शिराजपिटिकाके लक्षण ३३२	सन्निपातके लक्षण ,,
बलासके लक्षण ,,	रक्तजके लक्षण ... ,,
नेत्रके संधिके रोग	क्षयजके लक्षण .. ३४१
पूयालसके लक्षण ,,	कृमिजके लक्षण ,,
उपनाहके लक्षण ३३३	सूर्यावर्त्तके लक्षण ,,
स्त्राव अथवा नेत्र नाडीके लक्षण ,,	अनंतवातके लक्षण.... ,,
पर्वणी व अलर्जीके लक्षण.... ३३३	

अर्धावमेद (आधासीसी)के लक्षण...	३४२	तालुकंटकके लक्षण	३५५
शंखकके लक्षण	३४३	महापद्मविसर्पके लक्षण	३५५
प्रदररोगनिदानम्	३४३	और विकार जो बालकोंके होते है सो कहते है	३५६
प्रदररोगके सामान्यरूप ...	३४३	सामान्यग्रहजुष्टके लक्षण	३५७
उपद्रवके लक्षण	३४४	स्कन्दग्रहगृहीतबालकके लक्षण	३५७
श्लेष्मिकके लक्षण	३४४	स्कन्दपस्मारके लक्षण	३५७
पैत्तिकके लक्षण	३४४	शकुनिग्रहके लक्षण	३५७
वातिकके लक्षण	३४४	रेवतीग्रहका लक्षण	३५७
त्रिदोषजके लक्षण	३४४	पूतनाग्रहके लक्षण	३५८
विशुद्धातर्वके लक्षण	३४५	अंधपूतनाग्रहके लक्षण	३५८
योनिव्यापत्तिनिदानम्	३४५	शीतपूतनाग्रहके लक्षण	३५८
योनीके बीस रोगका लक्षण	३४६	मुखमंडिकाग्रहके लक्षण	३५८
स्त्राव और पातके लक्षण ...	३४७	नैगमेयग्रहके लक्षण	३५८
गर्भ अकालमे कैसे गिरे इसका निदानपू०	३४८	विषरोगनिदानम्	३५९
प्रसूत होतेसमय मूद गर्भ होनेका का०	३४८	विषस्य स्थानम्	३६०
मूद गर्भकी आठ प्रकारकी गती	३४९	जंगमविषके सामान्य लक्षण	३६१
असाध्य मूद गर्भ और गर्भिणीके लक्षण	३४९	स्थायरविषके सामान्य लक्षण	३६१
मृतगर्भके लक्षण	३४९	विष देनेवालेके दूढ़नेके नि-	
गर्भमरणहेतु	३४९	मित्त कुछ लक्षण	३६२
गर्भिणीके दूसरे असाध्य लक्षण	३४९	मूलादिविषोंके लक्षण	३६२
सूतिकारोगनिदानम्	३५०	विषलिप्तशस्त्रहतके लक्षण	३६२
प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति	३५०	सर्पविष ये आति तीक्ष्ण है इ-	
प्रसूतिरोगलक्षण	३५०	सीसे प्रथम सर्पोंकी जाति	३६२
स्तनरोगनिदानम्	३५१	भोगिसर्पके काटनेपर वातादिकोंके ल०	३६५
स्तन्य (दूध) रोग	३५१	विशिष्टदेशमें तथा विशिष्ट नक्षत्रमें	
वातादिकके दूषित दूधके लक्षण	३५१	काटनेके असाध्य लक्षण	३६५
शुद्धदूधके लक्षण	३५१	गर्मी होनेसे विषका जोरका लक्षण	३६५
बालरोगनिदानम्	३५३	सर्पके काटेमे असाध्य लक्षण	३६६
वातदूषित दूधके लक्षण	३५३	दूसरे असाध्य लक्षण	३६६
पित्तदूषित दूधके लक्षण	३५३	तथा असाध्य लक्षण	३६६
कफदूषित दूधके लक्षण	३५३	दूषितविषके लक्षण	३६७
बालकोंकी अंतर्गत पीडा जाननेका उपाय	३५४	दूषिविषके लक्षण	३६७
दंडन और सन्निपातज दूषित दुग्धके ल०	३५४	स्थानभेदकारके उसके विशिष्ट लक्षण	३६८
कुक्कणकके लक्षण	३५५	दूषिविषकी निरुक्तिके लक्षण	३६८
पारिगर्भिकके लक्षण	३५५		

इन दोनोविषाँको लक्षण	३६८	नारीखण्ड नपुंसकके लक्षण	३७९
दूषीविषके असाध्यादि लक्षण	३६९	उक्तश्लोकोंका संग्रह	३८०
लूताविषकी उत्पत्तिके लक्षण	”	जरासंभव नपुंसकके लक्षण	”
उनके काटनेके सामान्य लक्षण	”	जरासंभव (२) रे नपुंसकके लक्षण	३८१
दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण	”	क्षयजल्लीवके लक्षण	”
प्राणहरलूताके लक्षण	३७०	असाध्य नपुंसकलक्षण	३८२
दूषीविषआखु लक्षण	”	शुक्रार्तवदोषनिदानम् ३८२	
प्राणहरमूषकविष लक्षण	”	दूषित शुक्रके मेद	३८३
ककलास (नोला) के काटनेके लक्षण	”	वातदूषित शुक्रके लक्षण	”
वृश्चिकविष लक्षण	३७१	पित्तदूषित शुक्रके लक्षण	३८४
वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण	”	कफदूषित शुक्रके लक्षण	”
कणभदट्टके लक्षण	”	शुद्ध शुक्रके लक्षण	”
उच्चिटिगर (झिगर) विषके लक्षण ३७२		शुक्रदोषनिदानम्	
मंडूक (मेंढक) विषके लक्षण	”	सुश्रुतसे	”
विषैलमत्स्य (मछली) के विषके लक्षण	”	आर्तवदोषके लक्षण	३८५
सविषजलौक (जौक) के विषके लक्षण	”	विष्टमग्नके लक्षण	”
गृहगोघिका (छिपकली) के विषके ल० ३७३		उपविष्टमग्नके लक्षण	३८६
शतपदि (खानखजूरा) के विषके ल०	”	मंथरज्वरके लक्षण	”
मशक (मच्छरबाडाँस) के विषके ल०	”	कुत्ताके विष निदान	”
असाध्यमशकशतके लक्षण	”	कुत्ताके विषके लक्षण	३८७
अविष मसिका (मक्खी) विषके लक्षण	”	सविषनिर्विष दंशके लक्षण	”
चतुष्पादादि विषके साधारण लक्षण ३७४		असाध्यके लक्षण	”
विष उतारगयाहो उसके लक्षण	”	जलसंत्रासनामाके लक्षण	”
		गोघेरकदंशके लक्षण	३८८
परिशिष्ट (अंशशेष)		सर्पिकादंशके लक्षण	३८९
क्षैब्यके सामान्य लक्षण	३७५	विश्वंभराके लक्षण	”
बीजोपघात श्लीवके लक्षण	”	आहिडुकाके लक्षण	”
ध्वजभंगश्लीवकी उत्पत्ति	३७६	कंडूकादट्टके लक्षण	”
ध्वजभंगके लक्षण	३७७	गूकृब्धतादिदट्टके लक्षण	”
असेक्य नपुंसकके लक्षण	३७८	पिपीलिकादंशके लक्षण	”
सौगंधिक नपुंसकके लक्षण	”	त्नायुके निदान	३९०
कुंभिक नपुंसकके लक्षण	”	ध्वजभंगके संगृहीत श्लोक	३९०
इर्ष्य नपुंसकके लक्षण	३७९	रोगानुक्रमणिका	३९१
महाखण्ड नपुंसकके लक्षण	”	टीकाकर्ताकी वंशावली	”

ॐ

श्रीशम्बन्दे

श्रीनिकुंजविहारिणे नमः

अथ माधवनिदानप्रारम्भः ।



नरवरवपुधारीगोकुलानन्दकारी ।

ब्रजयुवतिविहारीरासलीलाप्रचारी ।

प्रणवहुवनवारीकंसकोमानमारी ।

सकलविघनटारीलीजियेसुधिहमारी ॥ १ ॥

तथाच

कर्त्ताभर्तातथाहर्ताभोगमोक्षैकदायिनम् ।

वन्दे श्रीगिरजाकान्तंशङ्करंलोकशंकरम् ॥ २ ॥

अथ परमकारुणिक श्रीसदाशिवचरणचंचरीक श्रीमाधवाचार्य निःशेषवि-
घ्नविघातार्थ और ग्रन्थकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके निमित्त ग्रन्थके आदिमें मंगला-
चरण करतेहैं ।

युग्मम्

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् । स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं

त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥ नानामुनीनां वचनैरिदानीं

समासतः सद्भिषजां नियोगात् । सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो

निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २ ॥

मया अयं रोगविनिश्चयो ग्रन्थः इदानीं समासतः निबध्यते, किं कृत्वा शिवं प्रणम्य, क-
थंभूतं शिवं जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं, पुनः कथंभूतं शिवं, स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं पुनः त्रैलो-
क्यशरणं, किंविशिष्टो ग्रन्थः सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गः कैः नानामुनीनां वचनैः कस्मात्
सद्भिषजां नियोगादित्यन्वयः ॥-१ ॥ २ ॥

अर्थ-जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख)

अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणाम-
कर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आ-
ज्ञासँ अब मैं संक्षेपसँ रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना कर्त्ता हूँ । जिसमें उपद्रव,
अरिष्ट, निदान, और चिन्ह इनका लक्षण अच्छीरीतिसँ किया गया है ॥१॥२॥

*शिष्य—यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्य है उनके वाक्यो-
का निरादरकर मनुष्यकृत तुझारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसी प्रवृत्ति होगी ? इसकारण माधवा-
चार्यने “नानामुनीनां वचनैः” इस पदको धरा, अर्थात् अनेकमुनीश्वरोंके वचनोंका आशयले
मैंने यह ग्रन्थ निर्माण किया है, किंतु मेरे मनकी उक्तिसँ कल्पित नहीं हैं । *शंका—*प-
हलेहीं बहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थित हैं फिर तुझारे इस ग्रन्थको कौन पढ़ेगा ? इसकारण
माधवाचार्यने “इदानीम्” पद मूलमें धरा, इसपदका यह आशय है—कि हमहीं अनेक मुनी-
श्वरोंके वचनोंसँ अब ऐसा अलौकिक ग्रंथ रचते हैं कि, पहिले किसी आचार्यने अद्यापि नहीं
निर्माणकरा । कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढ़ातो आपका
ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होयगा, इसकारण माधवाचार्यने “सद्रिपज्ञां नियोगान्” यह पद धरा
इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकर्त्ता जैसे बुद्धि-
मान् वैद्योंके कहनेसँ इसग्रन्थकी रचना करी है *शंका—*श्रीमहादेवजीके हर मृद रत्न गा-
म्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामको क्यों प्रणामकरा ? *उत्तर—* इसरोगविनिश्चय-
ग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक
शिवनाम विचार इसीको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने प्रणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।

सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

अयमेव आतंकं अल्पमेधसां भिषजां सुखं विज्ञातुं भविष्यति—किंविशिष्टानां भिषजां
नानातंत्रविहीनानामित्यन्वयः ॥ ३ ॥

अर्थ—अन्यनिदान ग्रन्थोंसँ इसकी उत्तमता दिखाते हैं । अनेक ग्रंथोंके विचार
करनेमें असमर्थ जैसे मन्दबुद्धिवाले वैद्योंको सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यही ग्रन्थ
कारण होवेगा, क्यों कि रोगोंका जाननाही मुख्य है सो ग्रन्थान्तरोमें लिखावी है ।

१ उपद्रवो—रोगागमकदोषप्रकोपजन्यो विकारः । २ नियमरणलयापक्वलिङ्गमरिष्ठम् । ३ निदानगे-
मोत्पादकोद्देहः । ४ लिङ्ग—रोगव्यापकोद्देहः । तेन लिङ्गमेजायते व्याधिः अनेनेति व्युत्पत्त्या पूर्वदृश्य—रूपो—प्रत्यय
संग्राहयो विज्ञायते । ५ रोगमादौ परीक्षेत ततो नन्तर मां पथं ॥ नन्—कर्मभिषक् पृथक् पृथक् नानुपक्रममाचरेत् ॥ १ ॥
रोगज्ञानार्थमेवाद्यतलः कायां भिषग्वरैः ॥ सति तस्मिन् क्रियागन्धः, पुण्याय वशमेति श्रियं ॥ २ ॥ प्रसंगवश
रोगज्ञानकी विधि कहते हैं जैसे रोग चार प्रकारमें जाना जाना है प्रत्यक्ष—अनुमान—उपमान—आग अन्वर्त्त नष्टा
चित्रकृष्णादि व्याधि प्रत्यक्ष देखनेमें प्रतीत होती है जबगदि त्वकडन्तीमें ज्ञाने जाते हैं ।

रोग जाननेके पाँच उपाय उन्को कहतेहैं

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ १ ॥

रोगाणां विज्ञान पञ्चधा स्मृतम् इत्यन्वयः ॥

अर्थ—निदान पूर्वरूप रूप उपशय और संप्राप्ति ए पाँच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहैं। इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पाँच प्रकारका कहाहै ।

*इसश्लोकमे (उपशयस्तथा) यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जानाजायहै उसीप्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसेभी रोग जानाजाताहै (सम्प्राप्तिश्चेति) इसपदमे च और इतिके धरनेसँ यह प्रयोजनहै कि रोगजाननेके इन पाँचोंसे विशेष और उपाय नहींहैं अब कहतेहैं कि रोगोका निदान संनिऋष्ट (समीप) और विप्रऋष्ट (दूर) इन भेदोसे दो प्रकारकाहै * संनिऋष्ट उसे कहतेहैं कि जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोको प्रगटकरेहैं * और विप्रऋष्ट उसे कहतेहैं जैसे हेमंतऋतुमें संचितहुआ कफ वसंतऋतुमे कुपित होताहै * (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसे ज्वरमे आलस्यादिधर्म * (रूप) उसे कहतेहैं जैसे १८ के श्लोकमें लिखाहै * स्वेदावरोधइति * अर्थात् पसीनोका अवरोध होना इत्यादिक * (उपशय) उसे कहतेहैं जैसे वातरोग तैलआदिके लगानेसे शान्ति होयहै सम्प्राप्ति उसे कहतेहैं जैसे १० के श्लोकमें लिखाहै यथादुष्टेनदोषेण इत्यादि—शंका—क्यौजी ए पाँच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय होसकेहै फिर माधवाचार्यने पाचप्रकार व्यर्थ क्यौ लिखे ? क्योंकि पाँचोंका प्रयोजन केवल रोगका जाननाहै—उत्तर—तुमने कहा सो ठीकहै परंतु इन पाँचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजनहै जैसे निदान से यह प्रयोजनहै कि जिसवस्तुके खानेसे या लगानेसे रोग प्रगटहो उसका त्याग कानेसे रोग नहीं बढे किंतु उलटा शांतिही होताहै और * पूर्वरूप के जाननेसे यह प्रयोजनहै जैसे मुश्रुत मे लिखाहै कि, वातज्वरके पूर्वरूपमे घृतपानकरानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय * रूप के जाननेसे यह प्रयोजनहै कि व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै जैसे जिसरोगका अल्परूप होवे वह सुखसाध्यहै और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्णरूप असाध्य जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा

१ अर्थात् नाडी नेत्र जिह्वामूत्र मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोका ज्ञान यथार्थ नहीं हो । २ वातिकज्वर-पूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यासाध्यत्वमपिज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं—यथानिमित्तपूर्वरूपाणिरूपाणामध्यमेवलेइति । ४ गूढालिगव्याधिमुपशयाऽनुपशयाभ्यामुक्तेइति ।

सुखसाध्यकी औपधिकरणी उचितहै * उपशयके जाननेसँ यह प्रयोजनहै कि सुपरीक्षितव्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसँ व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे सो चरक मे लिखाहै कि जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे उसीप्रकार * मुश्रुत मे लिखाहै जैसे उबटना तेल लगाना स्वेदनविधि इत्यादिक कर्म करनेसँ वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और संप्राप्ति के जाननेसँ यह प्रयोजनहै कि संप्राप्तिके विना जाने पूर्वरूपादिकोंकरके जानोभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभीहै परंतु अंशांश विकल्प बल, काल आदिको जबतक नहींजाने तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं होसके इसीसँ अतएव वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करे ।

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः

अर्थ—अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहैहैं निमित्त हेतु आयतन प्रत्यय उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहैं कारण इनके कहनेका यहहै कि व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इनछहों शब्दोंमेंसँ कोईशब्द आवे उसको निदान वाचकहीजाने ।

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।

लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

येन उत्पित्सुःआमयः लक्ष्यते ज्ञायते तत्प्राग्रूपम्—किभूतः आमयः दोषविशेषेणानधिष्ठितः अत एव ज्वरादिव्याधीनां अल्पत्वात् अव्यक्तं लिङ्गं तत् यथायथं आत्मीयमात्मीयमूर्हं इत्यन्वयः ।

अर्थ—जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् पूर्वरूप कहतेहैं फिर वो व्याधि दोष (वात पित्त कफ) सँ बहुधा अप्रगट होवे । * शंका—यदि वातादिक दोषोंसँ अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै क्याकि कारण तो वातादिक दोषहैं जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट होसकेहै । * उत्तर—इसपदका यह अर्थहै कि दोष वातपित्त कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसँ अप्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना. अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहैं अब कहतेहैं कि पूर्वरूप दोषकारका है एक सामान्य दूसरा वि-

शिष्ट सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) सैं दूषित धातु उसके विगड़नेसैं प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिन्ह न मालूमहों*जैसे “अमोरतिर्विवर्णत्वमिति” अर्थात् ज्वरमें श्रमही। मनका न लगना, देहका विवर्ण, इत्यादि लक्षण * और जिसमें हीनहार रोगारम्भक दोष उन्हींके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहैं जैसे “जृम्भात्यर्थ समीरणात्” अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसैंहीहै। इसमें हीनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसैं औरभी जानने चाहिये। इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये। क्योंकि यह तौ केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं। दृष्टान्त। जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसैं धूम (धूआं) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसैं ही शान्ति करसकतेहैं, परन्तु जब अग्नि एकसाथ जोरसैं प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसकै ऐसैंही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसैं चिकित्सा करनेसैं शान्ति कर सक्ते है, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहींहोसके हैं इसीसैं पूर्वरूप और रूपमें भेद है * अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरक अर्थात् शरीरसैं सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसैं सम्बन्ध रखते हैं शारीरक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना देह भारी नेत्रसैं जल गिरना इत्यादिक*और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसैं शान्ति न होना तथा खट्टे चरपरे पदार्थपर मन चलना इत्यादि।

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिन्हमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ-जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसैं कहतेहैं। और संस्थान व्यञ्जन लिङ्ग लक्षण चिन्ह और आकृति यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचकहैं ॥

उपशयके लक्षण

हेतुव्याधिपिपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

औषधान्नविहारणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः ।

व्याधेः सुखावहं उपयोगं उपशयं विद्यात् स हि सात्म्यं इति स्मृतः—केषां औषधान्न-
विहाराणां किंभूतानां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् । इत्यन्वयः ।

अर्थ—उपयोगः सुखावहस्तमुपशयं विद्यात् जानीयात् । उपयुज्यतइति उपयोगः से-
वनं सुखमावहतिसम्यगनुबन्धेन सुखमुत्पादयतीति सुखावहः केषामुपयोगः औषधा-
न्नविहाराणां । औषधंचान्नंच विहारश्च औषधान्नविहारास्तेषां औषधं हरीतक्यादि अन्नं
रक्तशाल्यादि, विहारो देहमनोनिवर्तितचेष्टाविशेषः, व्यायामोजागरणाध्ययनादिरू-
पः । किंभूतानां औषधान्नविहाराणां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणां हेतुश्च
व्याधिश्च हेतुव्याधीतयोर्व्यस्तसमस्तयोः विपर्यस्ताव्याधिनिदानयोर्विपरीताः तथा
विपर्यस्तानां अर्थो विपर्यस्तार्थः तयोर्व्यस्तसमस्तयोरेव विपरीतमर्थं कुर्वतीति विपर्यस्ता-
र्थकारिणः हेतुव्याधिविपर्यस्ताश्च विपर्यस्तार्थकारिणश्चेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्ता-
र्थकारिणः तेषां केषां विपर्यस्तानां अर्थं कुर्वतीति भ्रूतत्वात् हेतुव्याधिविपर्यस्तानां ।
तदायमर्थः । निदानरोगयोर्व्यस्तसमस्तयोर्विपरीता अपिकारणरूपा इव भासमानाः
व्याधिरूपा इव भासमानाः हेतुव्याधिविपरीतानां अर्थव्याध्युपशमलक्षणं कुर्वन्तीति य-
था हेतुविपरीतैः औषधान्नविहारैः व्याध्युपशमः क्रियते प्रतिपक्षत्वात् एवं विपर्यस्ता-
र्थविपर्यस्तार्थकारिभिरपीत्यर्थः । तथाच हेतुविपरीतानां व्याधिविपरीतानां हेतुव्या-
धिविपरीतानां हेतुविपरीतार्थकारिणां व्याधिविपरीतार्थकारिणां हेतुव्याधिविपरी-
तार्थकारिणां औषधान्नविहाराणां यः सुखावह उपयोगः स उपशय इति पिडार्थः अथै-
पांक्रमेणोदाहरणानि भाषायां वेदितव्यानि—

अर्थ—अव उपशयके लक्षणको कहते हैं हेतुविपरीत व्याधिविपरीत हेतुव्याधि-
विपरीत हेतुविपर्यस्तार्थकारी व्याधिविपर्यस्तार्थकारी हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी
ऐसैं जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना
उसको व्याधिका उपशय कहते हैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगका हेतु
इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरण रूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं
और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है सुखकारकके क-
हनेसैं यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना
व्याधिका वदनेवाला है यासैं शीतलजल सुखकर्त्ता न भया अतएव शीतलजलको
उपशय न समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना
जायगा क्योंकि सुखकारक है ।

आगे अव क्रमसैं उदाहरण लिखते हैं

हेतुविपरीत औषध—जैसे शीत कफ ज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना

चाहिये कि यहां हेतु कौन है कि वात (सर्दी) उस वातका शीतल धर्म है-तो अब शीत कफ यह कब शान्ति होय कि जब सर्दी और कफके विपरीत औषध मिले, ऐसी औषध कौन कि शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति करे है तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई ॥ * ॥ ऐसीही हेतुविपरीत अन्न जैसे श्रम और सरदीसैं प्रगट ज्वरमें मांसको रस और चावल इसमें हेतु कौनकि श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होय कि श्रम और सर्दी हरणकर्त्ता पथ्य मिले ऐसी पथ्य कौनकि मांसरस और चावलका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीतहैं अर्थात् नाशकहैं ॥ * ॥ ऐसीही हेतुविपरीतविहार कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसैं प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन भयाकि दिनका सोना, उससैं प्रगट दोष कौनकि कफ, यह कफ कब शान्ति होयकी जिस हेतुसैं प्रगटभया उस हेतुसैं विपरीत आचरण कराजाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया ॥ इसीप्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके आगे लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धि-वान् मनुष्य समझ लेंगे ।

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और सर्दीसैं प्रगटरोगपर मांसको रस और भात	दिनके सोनेसैं प्रगट कफरोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधिविपरीत	अतिसारमें दस्त बंदकरनेवाली औषधि पाठाआदि	दस्तोंमें दस्तके बंदकारक पथ्य मसूर	उदावर्त्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मन्त्रऔषधधारण देवगुरुकी सेवा करनी
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें द-शमूलका काढा वात और सूजनदोनोंको दूरकरनेवालाहै	कफकी सग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और सग्रहणीनाशक	श्लिष जो दिनके सोनेसैं उत्पन्नतद्रातिसमें रुद्धतद्रासैं विपरीत और श्लिषतानाशक रात्रिमें जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान-प्रणसूजनमें पित्तकारक उष्णपिंडीका वाचना	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना	जैसे वातसैं पैदा उन्मादमें नासका देना
व्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल-आदि	अतिसाररोगमें दस्तकारक दुरव देना	छर्दिरोगमें हाथका अगुठा गलेमें करवा कमलनालआदिसैं उलटीका लगाना
हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे अमिललेपर गरम अगरआदिलेपर अथवा विपर विष	जैसे मद्यपानके कारणसे प्रगट महास्थ-रोगमें मदकारक फेर मद्य पीना	दंढकसरतसैं प्रगट वातमें जलका नैर्गन्ध रूपव्यायामका करना

अनुपशयके लक्षण

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसाम्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो उपशयके लक्षण कहें उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधीका * असात्म्य अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुविसर्पता ।

निवृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्रातिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ—दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके जैसे कुपितदोष अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचरनेसे जो रोग प्रगट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनो पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं * तात्पर्यार्थ ये हैं कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्णदोष बढ़कर जैसे रोगको प्रगटकरें तैसेही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं * उदाहरण—जैसे कुपितदोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसे और उसस्थानमें इत-स्ततो गमन करनेसे तथा रसकी वहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकनेसे और पक्षाशयमें रहनेवाली अश्लिषो बाहिर निकालनेसे तथा उसी जठर अश्लिषों सर्व देहके तप्तहोनेसे ये ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाय है उसीको संप्राप्ति कहते हैं । जैसेही अतिसारादि रोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ—अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांचप्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल इति ॥

संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौज्वरा इति ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर पांच प्रकारकी खांसी अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ।

विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽज्ञाशकल्पना ।

अर्थ—मिलेहुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूपसम्प्राप्ति कहतेहैं * जैसे धुंएके निकलनेसे ये पर्वत अग्नियानहै अैसेही ये रोगीके देहमें वातका अंश विशेषहै काहेसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्परूपसंप्राप्ति कहतेहैं * उदाहरण—जैसे रूखी शीतल हलकी और फैलनेवाली इसादि गुणयुक्त जो पवन उसका रौक्षादि गुणयुक्त कषेलारस वातको सर्वांशकरके बढ़ानेवालाहै * जैसेही कटुरस सर्वभावकरके पित्तका बढ़ानेवालाहै अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्वकरके हींग पित्त को बढ़ानेवालीहै * तैसेही मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफ बढ़ानेवालाहै इत्यादि इसमें दोषाणां जो बहुवचनहै सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और समवेतानाम् ये पद जो है सो द्वंद्व और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धराहै ।

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिकेलक्षण

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

व्याधेः स्वातंत्र्येण च पुनः पारतंत्र्येण प्राधान्यं आदिशेत् अप्राधान्यं चेति शेषः इत्यन्वयः ।

अर्थ—व्याधिके स्वतंत्र और परतंत्रकरके प्राधान्यता कहीहै * जैसे स्वतंत्रज्वरको प्रधानताहै और ज्वराधीन श्वास आदिरोगोंको अप्रधानताहै ॥

बलरूपसंप्राप्तिकेलक्षण

हेत्वादिकात्स्नव्यवैर्बलाबलविशेषणम् ।

अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्तते । हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपरूपाणां कात्स्न्येन साकल्येन अवयवैर्बलाबलयोर्विशेषणं विशेषावबोधः ।

अर्थ—हेतु आदिशब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना, और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्वल जानना. जैसे रोगके प्रति जो निदान कहाहै वो निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवालाहै कि एकदेश * ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त अवयवोंकरके व्याधिका प्रकाशितहै या एकदेशसे इत्यादि ।

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण

नक्तंदिनर्तुभुक्ताद्यैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) श्रुक्त (आहार) इनका

अंश कहिये एकदेश उस कोयथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेबढ़नेके हेतुका समय जाने*उदाहरण दिखातेहैं जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम मध्य और अंत तौ रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अंतभाग वातकाहै ऐसैहीं दिनके वी तीन भाग करे तो पूर्वाण्ह कफका, मध्यान्ह पित्तका, अपरान्ह वातका, ऐसैहीं ऋतु जैसे वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त, और वर्षामें वात कुपित होतीहै ऐसैहीं भोजनका जैसे भोजनकरनेके समय कफका काल, और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भलेप्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसके जाननेसें यह प्रयोजनहै कि जिम दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहाहै उसका उसी २ कालमें जानलेना कठिन मालूम नहींहोता ।

निदानपंचकका उपसंहार

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—इति कहिये यह संक्षेपप्रकारसें जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रति रोगके निदान पूर्वरूपादिकरके कहतेहैं ।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—अब पूर्व चतुर्थश्लोकको व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट तिसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रोगोंका कारणहै सो कहतेहैं सर्वेषामिति । कुपितभये जो मल (वात पित्त कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होतेहैं और उन् वात पित्त कफ दोषोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका जो अपथ्यसेवन करना सो हैं ।

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।

तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥

रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।

झीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥

अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।

प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते श्वयः ॥ १८ ॥

क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ।

अर्थ—कोई प्रश्नकरे कि जो पूर्वकहाए हैं येही निदान है अथवा इसके व्यति-
रिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोगभी निदान होता है अर्थात् जो निदानसें
कार्य होता है वोही रोगसें भी होता है इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं तद्यथेति जैसें
ज्वर संतापसें रक्तपित्त प्रकट होता है और रक्तपित्तसें ज्वर, और रक्तपित्त-
ज्वरसें श्वास प्रगट होता है और ग्रीहके बढनेसें जैसें उदररोग और उदररोगसें
सूजन, और बवासीरसें जैसें उदररोग और गुल्म (गोळा) रोग और पीनसरो-
गसें खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है और ये क्षयरोग
राजयक्ष्मा जो सम्पूर्णरोगोंमें राजा है उसको प्रगट करे है ।

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्वैत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ—वे रोग प्रथम स्वतंत्रये और जब बल मिलगया तौ वेही हेत्वर्थकारी अ-
र्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसें ज्वरसें रक्तपित्त होता है ।

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ।

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

अर्थ—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं जैसे
कोईएक दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप शांत होजा-
ता है जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी उत्पन्न होती है । और
कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का तैसा बना रहता है जैसे बवासीर
नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंके
घोरक्लेशदायक मिलेहुए रोग दिखाते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध होनेसें
ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ।

तस्माद्यत्नेन सदैवैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

अर्थ—अब कहेमये निदानादिपंचकद्वारा रोग निवृत्तिरूप सिद्धीको इच्छा
करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं तस्मादिति । इसीकारण उत्तम सिद्धी
हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सदैव्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादिरोगोंका निदान
जो आगे कहते हैं वो यत्रसें जानना चाहिये ।

इति श्रीमाधवमाधार्थदीपिकायां माधुरीटीकायां सर्वरोगनिदानादिपंचककथनं समाप्तम् ॥१॥

ज्वरनिदान

अब सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसँ, बली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसँ जन्म मरणका कारण होनेसँ स्थावर जंगम प्राणीनमें स्थिति होनेसँ सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक सुश्रुतादि आचार्योंनि ज्वर राजा कहाहै ।

तदुक्तं चरके

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ।

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

अर्थ—देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसँ रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसँ बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानताहै ।

ज्वरकी उत्पत्ति

दक्षापमानसंकुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।

ज्वरोऽपृथा पृथग्द्वंद्वसंघातांगंतुजः स्मृतः ॥ २ ॥

अर्थ—दक्षप्रजापतिकृत तिरस्कारसँ क्रोधित श्रीरुद्रभगवान्के श्वाससँ उत्पन्न जो ज्वर सो आठप्रकारका है वात पित्त कफ इनसँ ३ द्वंद्वज ३ सन्निपात १ और आंगंतुज १ ऐसँ मिलकर संक्षेपसँ ज्वर आठप्रकारका है ॥ * ॥

इसश्लोकमें [निश्वाससम्भवः] ये जो पद धराहै सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहाहै किंतु ज्वरकी श्वाससँ उत्पत्ति नहींहै क्योंकि जैसै सुश्रुतमें लिखाहै यथा “ रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः ” इति अर्थात् क्रोधित रुद्रने ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्शकर आग्नेयवाण निर्माण किया तथा च चरके “ स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः । वाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ” इत्यादिक वाक्योंसँ ज्वरमात्रकी पित्तमकृति जाननी प्रयोजन यहहै कि सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे सो वाग्भटने कहाहै यथा—“ उष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि सजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ” इति । अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहींहोवै इसीसँ ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करे

१ अकाले चातिमात्रं च असाध्यं यच्च भोजनम् । विषमाग्नं च यदुक्तं मिथ्याहारः म उच्यते ॥ १ ॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाईहै ।

और पित्तज्वरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्य है ॥ अन्य आचारी कहते हैं कि श्रीरुद्रसैं उत्पत्ति होनेसैं ज्वर देवता हैं इसलिये ज्वरका पूजन करनेसैं शांत होता है जैसे विदेहका वाक्य है “ ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति ” और ज्वरका स्वरूपभी हरिवंशमें लिखा है यथा “ ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशि-
राः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ ” इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह भुजा नवनेत्र भस्मयुक्त देह रौद्रकालकाभी काल यमराजके समान है ।

ज्वरसंप्राप्ति

मिथ्याहारविहाराम्ब्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्थू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदिसैं विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) * मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थसैं विशेष कामका करना) इन कारनोसैं दुष्ट हुये जो दोष (वात पित्त कफ) सो नाभिस्तनके बीच अमाशयमें प्राप्त हो रसको बिगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होते हैं ॥ * ॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकी है आगंतुजकी नहीं है क्योंकि आगंतू रोगोंका तो व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसैं प्रयोजन है जैसे सुश्रुतमें लिखा है श्रम और चोटके लगनेसैं देहधारीयोंके देहमें क्षुपित हुई वात सबदेहकों परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करती है * और चरक में भी लिखा है कि चोटके लगनेसैं प्र-
गट वात रुधिरको बिगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करती है * शंका—क्योंजी आगंतुभी शारीर रोगही है क्योंकि आगंतुज्वरमेंभी गरमी रहती है क्योंकि * “उष्मा पित्तादृते नास्ति” * इसादि वाक्य प्रमाण होनेसैं * उत्तर—ये जो तुमने कहा सो ठीक है * परंतु इस आगंतुरोगोंमें पि-
त्तकी पूर्वकालसैं ही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है यासैं आगंतुरोगोंको शारीरत्व नहीं है ॥ * ॥ इसश्लोकमें (कोष्ठाग्नि) यह जो पद धरा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आयजावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेबिना ज्वर शांति नहीं होवेगा इसलिये इसका अर्थ

१ अशक्तः कुरुते कर्म शक्तिमान् करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विवर्जयेत् ॥

२ नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति सूतः ॥

ऐसा न करना चाहिये (वह्निर्निरस्य कोष्ठाग्निम्) कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

ज्वरके लक्षण

स्वेदावरोधस्सन्तापः सर्वांगग्रहणं तथा ।

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस रोगमें पसीना न आवे देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समयें हो उसको ज्वर ऐसा कहतेहैं ॥ * शंका—क्योंजी पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहैं तो इस श्लोकमें विरुद्धता आतीहै * इसपर जेजटादिक उत्तर लिखतेहैं कि स्वेदावरोध कहिये “ स्विद्यते अनेनेति स्वेदः ” इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिसका अवरोध कहिये दोपकी व्याप्ति ऐमा अर्थ करनेमें श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पडता ।

ज्वरका पूर्वरूप

श्रमोरतिविवर्णत्वं वैरस्यं नयनश्लवः ।

इच्छा द्वेपो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥

जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्सति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ—कारण बिनाहीं श्रम कर्मकरनेमें उत्साह नहो अथवा खेलनेमें अरुची देहमें मलीनता मुखमें बिरसता नेत्र अश्रुपात युक्त सर्दी गर्मी पवन इनकी बार-बार इच्छा होना और बार-बार द्वेप हो इसमें जो आदि शब्दहैं उसमें जल और अग्निका ग्रहणहै अर्थात् इनकी बार २ इच्छा और द्वेप ये चरक का मतहै तदुक्तं चरके—“ ज्वलनातपवाय्वंशुभक्तद्वेपाभिलाषिता ” इति । अन्ये तु शैत्याप्यसाधर्म्याज्जलाऽनलौ गृह्णति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यन्ते * और अन्य आचारी सर्दी गरमीके साधर्म्यमें जल अग्निको कहतेहैं और वे आदिशब्दोंमें शयन आदिमानतेहैं * जंभाई अंगोंका दृटना देहभारी रोमांचोंका खडा होना अक्षमें अरुचि अंधेरका आना आनंदकी निवृत्ति सरदीका लगना * शंका—क्योंजी पूर्व कहिआये कि सरदी गरमीका बार-बार इच्छा और बार-बार द्वेप फेर पुनः उक्त पद क्यों धरा ? * उत्तर—इस पदके धरनेमें सरदीकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् सरदी विशेष लगें ये लक्षण ज्वरके पूर्व होतेहैं ॥

ये माधवाचार्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण सुश्रुतोंक्त लिखेहैं विशिष्टपूर्वरूपके
लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसँ लिखतेहैं ।

सामान्यतो विशेषानु जुंभात्यर्थ समीरणात् ।

पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिवन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-विशेषकरके वातज्वरमें जंभाइ बहुत आतीहैं पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो
और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होतीहै ये श्लोक क्षेपकहै परंतु बहुत पुस्तकोंमें सू-
लके साथ लिखाहै ॥

वातज्वरके लक्षण

वेपथुर्विषमो वेगः कंठोष्ठमुखशोषणम् ।

निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥

शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कृता ।

शूलाध्माने जुंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

अर्थ-कंपहोना ज्वरका विषमवेग कंठ, श्रोत, मुख, इनका सूखना, निद्राका
नाश छींकका नआना देहकारुखापना चकारसँ नेत्र, विष्टा, मूत्र, इनका काला
होना और आचारी “ रौक्ष्यमेव च ” इसजगे “ श्यावांगमलमूत्रता ” ऐसा
पाठ करतेहैं और मस्तक हृदय गात्र इनमें पीडा कोई शंका करे कि गात्र प-
दके धरनेसँही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फेर मस्तक और हृदय पद
क्यों धरा ? उत्तर-ये दोनों पदके धरनेसँ इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात्
मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखका विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा,
जम्माई ये लक्षण वातज्वरके होतेहैं ।

पित्तज्वरके लक्षण

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः ।

कंठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १० ॥

प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।

पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

अर्थ-ज्वरका तीक्ष्णवेग हो अतिसार (यानी पित्तके वेगसँ दस्तका पतला
होना न कि अतिसार रोगहो) थोड़ी निद्रा आवै पित्तको कफके स्थानमें पहुंच-

नेसैं वमनका होना, कंठ, होठ, मुख, नाक, इनका पकना और पसीनोंका आना बढबढाना मुखमें कटुआट, मूच्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्टा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होतेहैं * शंका—क्योंजी भ्रमको वातविकारमें लिखाहै यासैं ये तो वातका धर्महै फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों धरा ? * उत्तर—तुमने कहासो ठीकहै परंतु रोग एकही दोषसैंही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसैं होयहै सो लिखाहै “नरोगोप्येकदोषजः इति” और “पैत्तिके भ्रम एव च” इस श्लोकमें च कार जो पडाहै इस्से इस श्लोकमें जो नहीं कहै कोन तीव्रगरमी लालचकते शीतकी इच्छा दाह अरुचि इत्यादि जानने ।

कफज्वरके लक्षण

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।

शुक्लमूत्रपुरीषत्वक्स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥

गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।

प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ १३ ॥

अर्थ—स्तैमित्य (गीले कपड़ेसैं देहको आच्छादित करदेनेसैं जैसा हो ऐसा मालूमहो) ज्वरका मंदवेग आलस्य मुख मीठा मलमूत्र सफेद देहका जकडना तृप्त-सरीखा अन्नमें अरुचि देहभारी शीतलगे ओकारी आवे * अन्य आचार्य कहतेहैं कि कफका थूकना, रोमांचका होना, अतिनिद्रा, रसके वहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना मुखमें, नोनकासा सवादहो, देहका थोडा गरमहोना, रदका होना लारका गिरना मुखपाक तथा मुखनाकमें कफका पडना, अरुचि खांसी नेत्र श्वेतहों ये लक्षण कफज्वरमें होतेहैं “स्तम्भस्तृप्तिरथापि च” इस पदमें जो चकारहै उस्से देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंत्रिकरोग, हृदयव्हिंसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ।

वातपित्तज्वरके लक्षण

तृष्णा मूच्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।

कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ १४ ॥

पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ—प्यास, मूच्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ, मुखका सू-

खना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ।

वातकफज्वरके लक्षण

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च ॥ १५ ॥

शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनं ।

संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—स्तैमित्य नाम (गीले कपड़ेसँ देहको ढकनेसँ जैसा हो ऐसा मालुमहो) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसँ पानी गिरे, खांसी, पसीनाका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यमवेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ।

पित्तकफज्वरके लक्षण

लिप्ततिकास्थता तंद्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

अर्थ—मुखकफसँ लिप्तहो तथा पित्तके जोरसँ मुखमें कड़ुआट, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास वारंवार दाहहो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षणहैं. स्तंभ (देहका जकडना) पसीना, कफ, पित्तका गिरना ये सुश्रुतोक्त लक्षण औरभी जानने चाहिये ।

सन्निपातज्वरके लक्षण

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा । सस्त्रावे कल्लुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ

कंठः शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १९ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ।

ह्रींवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ २० ॥

शिरसो लोढनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ २१ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनं ।

कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनं ॥ २२ ॥ भूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

अर्थ—अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड, संधि, मस्तक इनमें शूल, अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावे (अथवा टेढ़े नेत्र हों ये जेज्जटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडाहो कंठमें कटि पडजाय; तंद्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले; खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गोजीभके समान तथा सिथिल (लठर) हो पित्त और रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा बहुत लगे, निद्राका नाशहो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र मल इनका बहुतकालमें थोडा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना, कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले लाल कोढ़ और चकत्तोंका होना, शब्द बहुत मन्द निकले, कान, नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात पित्त कफ इनका देरमें पाकहो (उदरस्थ च) इस पदमें जो चकारहैं यासें वाग्भटने जो लिखेहैं कोन; शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्यरात्रिमें जागना, अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना बहुत आवै और नहीं आवै, कभी गान करे, कभी नांचे, हंसे, रोवै, और चेष्टा पलटजाय इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने ।

१ कोढके लक्षण भालुकिने कहेहे यथा—“ वरटीदंशसंकाशः कंडूमान् लोहितोऽस्त्रकफपित्तवान् क्षणिकोत्पत्तिविनाशः कोढ इत्यभिधीयते सद्भिः इति ।

* शंका * क्योजी वातादिक दोषोके परस्पर विरुद्ध गुण हैं फेर उनको एकत्रमिलकर एकही कार्यका करना नही घट सकेहै क्योकि परस्पर विरुद्ध गुण होनेसे * जैसे * अग्नि और जलके विरुद्ध गुण होनेसे एकही कार्य नही होसके ऐसेही वात पित्त कफके विरुद्ध गुणहैं फेर ये मिलकर कैसे सन्निपात रूपी विकारको प्रगट करतेहै * उत्तर * इसका समाधान दृढवैल आचार्यने इस प्रकार कराहै कि गुण विरुद्धभी वात पित्त कफ दोषहै तथापि एक संग उत्पन्न होनेसे तथा परस्पर समान गुण होनेसे एक दूसरे दोषको शांति नहीं कर सकेहै जैसे सर्पका विष सर्पको बाधक नहीं * गदाधर] आचार्य इसमें और हेतु कहेहैं जैसे दैवकी इच्छासे और दोषोंके स्वभावसे तथा विरुद्ध गुण होनेसे सन्निपातमें एक दोष दूसरे दोषका नाशक नहींहै * शंका * क्योजी वात पित्त कफका अलग अलग कालमें संचय होताहै और अलग अलग कालमें कोप होताहै इनका एकही कालमें प्रगट होना असंभव है तो कहिये फिर ये तीनों दोष मिलकर कैसे सन्निपात ज्वरको प्रगट करतेहैं * उत्तर * ये त्रिदोष प्रकट कारक कारण औषध अन्नविहारके बलकरके एकही कालमें इनतीनों दोषोंका प्रकोप होताहै ये सिद्धांत है ॥

१ विरुद्धरपिनस्तेवेतुर्गुणैर्निति परस्पर । दोषास्तज्जसाम्यत्वादिर्पथोरमहीनिव २ दैवाद्य दोषस्वभावाद्वादोषाणां सन्निपातिके । विरुद्धैश्च गुणैस्तेष्वनोपघातः परस्परम् ॥

सन्निपातोंके भेद

सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है परंतु और आचारीनके मतसे उल्वणादि भेद करके ५२ प्रकारका है यथा ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरुक् । वातपित्तोल्बणेवि-
द्याल्लिङ्गमन्दकफेज्वरे ॥ १ ॥ शैत्यंकासोऽरुचिस्तन्द्रापिपा-
सादाहहृद्वयाः । वातश्लेष्मोल्बणेव्याधौलिङ्गपित्तानुगेवि-
दुः ॥ २ ॥ छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोस्थिवेदना । मन्द-
वातेव्यवस्यन्तिलिङ्गपित्तकफोल्बणे ॥ ३ ॥ सन्ध्यस्थिशि-
रसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः । वातोल्बणेस्याहानुगेतृष्णाक-
ण्ठास्यशुष्कता ॥ ४ ॥ रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदतृष्णाबल-
क्षयः । मूर्छाचेतित्रिदोषेस्याल्लिङ्गपित्तेगरीयसि ॥ ५ ॥ आ-
लस्यारुचिहृत्तासादाहवम्यरतिभ्रमैः । कफोल्बणंसन्निपातं
तन्द्राकासेनचादिशोत् ॥ ६ ॥ प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारु-
च्यग्रिमार्दवम् । हीनवातेपित्तमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेमतम् ॥
७ ॥ हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः । हीनवाते-
मध्यकफेलिङ्गपित्ताधिकेमतम् ॥ ८ ॥ शिरोरुग्देपथुःश्वास-
प्रलापच्छर्दरोचकाः । हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमत-
म् ॥ ९ ॥ शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोस्थिशिरोऽतिरुक् । ही-
नपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेविदुः ॥ १० ॥ वर्चोभेदोग्रि-
दौर्बल्यंतृष्णादाहोरुचिर्भ्रमः । कफहीनेवातमध्येलिङ्गपि-
त्ताधिकेविदुः ॥ ११ ॥ श्वासःकासप्रतिश्यायोमुखशोषोति-
पार्श्वरुक् । कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ १२ ॥

ये उल्वणादि भेद चरकके मतसे कहे हैं परंतु भालुकी आचारीने अपने ग्रंथमें उल्वणादिलक्षण और ही प्रकारसे कहे हैं यथा ।

वातपित्ताधिकोयस्यसन्निपातःप्रकुप्यति । तस्यज्वरोऽहमर्द-

स्तृत्तालुशोषप्रमीलकाः ॥ १३ ॥ आध्मानतन्द्रावरुचि-
 श्वासकासभ्रमश्रमाः । पित्तश्लेष्माधिकोयस्यसन्निपातःप्र-
 कुप्यति ॥ १४ ॥ अन्तर्दाहोबहिःशीतस्तस्यतन्द्राविवर्द्धते ।
 तुद्यतेदक्षिणपार्श्वमुरःशीर्षगलग्रहाः ॥ १५ ॥ निष्ठीवेत्क-
 फपित्तञ्चतृष्णाकण्ठश्चदूयते । विड्भेदश्वासहिक्काश्चबाध्य-
 न्तेसप्रमीलकाः ॥ १६ ॥ (विधुफल्गू) चतौनाम्नासन्नि-
 पाताबुदाहृतौ । श्लेष्मानिलाधिकोयस्यसन्निपातःप्रकुप्यति
 ॥ १७ ॥ तस्यशीतज्वरोनिद्राक्षुत्तृष्णापार्श्वसंग्रहः । शिरो-
 गौरवमालस्यमन्यास्तम्भप्रमीलकाः ॥ १८ ॥ उदरन्तुद्यते
 चास्यकटीबस्तिश्चदूयते । सन्निपातःसविज्ञेयो (मकरीति)
 सुदारुणः ॥ १९ ॥ वातोल्बणःसन्निपातोयस्यजन्तोःप्रकु-
 प्यति । तस्यतृष्णाज्वरग्लानिपार्श्वरुग्दृष्टिसंक्षयाः ॥ २० ॥
 पिण्डिकोद्वेष्टनंदाहउरुसादोबलक्षयः । सरक्तश्चास्यविण्मूत्रं
 शूलंनिद्राविपर्ययः ॥ २१ ॥ निर्भिद्यतेगुदश्चास्यबस्तिश्च-
 परिकृष्यति । आयम्यतेभिद्यतेचहिकतेविलपत्यपि ॥ २२ ॥
 मूर्च्छतिस्फार्यतेरौतिनाम्ना (विस्फुरकः) स्मृतः । पित्तो-
 ल्बणःसन्निपातोयस्यजन्तोःप्रकुप्यति ॥ २३ ॥ तस्यदाह-
 ज्वरोघोरोबहिरन्तश्चवर्द्धते । शीतंचसेवमानस्यकुप्यतःकफ-
 मारुतौ ॥ २४ ॥ ततश्चैनंप्रधावन्तेहिक्काश्वासप्रमीलकाः ।
 विषूचिकापर्वभेदःप्रलापोगौरवंक्लमः ॥ २५ ॥ नाभिपार्श्व-
 रुजातस्यस्विन्नस्याशुविवर्द्धते । स्विद्यमानस्यरक्तञ्चस्रोतो-
 भ्यःसंप्रपद्यते ॥ २६ ॥ शूलेनपीड्यमानस्यतृष्णादाहश्चव-
 र्द्धते । असाध्यसन्निपातोयं (शीघ्रकारीति) कथ्यते ॥ २७ ॥
 नहिजीवत्यहोरात्रमेतेनाविष्टविग्रहः । कफोल्बणःसन्निपा-

तोयस्यजन्तोःप्रकुप्यति ॥ २८ ॥ तस्यशीतज्वरस्वप्नगौर-
वालस्यतन्द्रिकाः । छर्दिमूर्च्छातृषादाहतृष्णारोचकहृद्ग्रहाः ।
॥ २९ ॥ स्त्रीवनंमुखमाधुर्य्यंश्रोत्रवाग्दृष्टिनिग्रहः ।

मतान्तरभेद

कुम्भीपाकः पौर्णनावः प्रलापीह्यंतर्दाहोदंडपातौऽतकश्च ।
एणीदाहश्चाथहारिद्रसंज्ञोभेदाएते सन्निपातज्वरस्य ॥ १ ॥

अजघोषभूतहासौ यंत्रापीडश्च संन्यासः ।

संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदश च ॥ २ ॥

अर्थ-१ कुम्भीपाक २ पौर्णनाव ३ प्रलापी ४ अंतर्दाह ५ दण्डपात ६ अ-
न्तक ७ एणीदाह ८ हारिद्रसंज्ञक ९ अजघोष १० भूतहास ११ यंत्रापीड १२
संन्यास १३ संशोषी ए तेरह प्रकारके सन्निपात हैं ।

इन तेरहके क्रमसँ लक्षण लिखै हैं

कुम्भीपाक

घोणाविवरगलद्बहुशोणासितलोहितं सार्ति ।

विलुठन्मस्तकमभितः कुंभीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ १ ॥

पौर्णनाव

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितांतमुद्धसति ।

तं पौर्णनावञ्छुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ २ ॥

प्रलापी

स्वेदभ्रमांगमर्दाः कंपो दवथुर्वमी व्यथा कण्ठे ।

गात्रं च गुर्वतीदं प्रलापिञ्छुष्टस्य जायते लिंगं ॥ ३ ॥

अन्तर्दाह

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिश्च यस्यातिसंततः श्वासः ।

अंगमिव दग्धकल्पं सौतर्दाहार्दितः कथितः ॥ ४ ॥

दण्डपात

नक्तं दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ।

उत्थाय दण्डपाते भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५ ॥

अन्तक

संपूर्ण्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ।

श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यांतकार्तस्य ॥ ६ ॥

एणीदाह

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजगपतंगहरिणगणः ।

वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्तस्य ॥ ७ ॥

हारिद्र

यस्यातिपीतमंगं नयने सुतरां मलं ततोप्यधिकम् ।

दाहोतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ८ ॥

अजघोष

छगलकशरीरगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरंघ्रः ।

अजघोषसन्निपातादाताभ्राक्षः पुमान्भवति ॥ ९ ॥

भूतहास

शब्दादीनधिगच्छति नस्वान्विषयान् यदिद्वियग्रामः ।

हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ १० ॥

यंत्रापीड

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यंत्रेणैवावपीड्यते गात्रं ।

रक्तं पीतं च वमेद्यंत्रापीडः सविज्ञेयः ॥ ११ ॥

संन्यास

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति ।

संन्याससन्निपाते प्रलपति भुग्राक्षिमण्डलो भवति ॥ १२ ॥

संशोषी

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोऽबलोत्सर्गात् ।

संशोषिणिसितपिटकामण्डलयुक्तोज्वरो भवति ॥ १३ ॥

इति कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानां लक्षणानि

सन्निपातके विस्फारकादि १६ भेदोंको कहतेहैं

१ विस्फारक २ शीघ्रकारी ३ कम्पन ४ वन्धु ५ विद्धाख्य ६ शर्कराख्य ७ भ-
ङ्ग ८ कूटपालक ९ संमोहक १० पाकल ११ याम्य १२ संग्राम १३ क्रकच १४
ककोटक १५ दारिक १६ व्यालाकृति ॥ इन १६ सन्निपातोंके लक्षण ग्रन्थवद-
नेके भयसैं हमने नहीं लिखे अब प्रसंग वस सम्पूर्ण सन्निपातोंकी उत्पत्ति और
सम्भाप्ति ग्रन्थान्तरोंसैं लिखतेहैं ।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैःकटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः

कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिडिताहारनीहारशीतैः ।

शोकव्यायामचिन्ताग्रहगणवनितात्यंतसंगप्रसङ्गैः

प्रायःकुप्यन्तिपुंसांमधुसमयशरद्वर्षणेतसन्निपाताः ॥ १ ॥

अर्थ—खट्वा चिकना गरम तीखा कटुआ मीठा मधु सूर्यकी धामसे आदिले
तापका सेवन कमेला काम क्रोध रूख भारी मांस आदि पदार्थका सेवन नीहा-
रकौल शीत शोक दंडकसरत आदिश्रम चिन्ता भूतपिशाचकी बाधा अत्यंत स्त्री-
संग इनकारणसैं और चैत्र वैशाख आश्विन कार्तिक श्रावण भाद्रपद इनमहीनोंमें
मनुष्योंके प्राय सन्निपातोंका कोप होयहै ।

आमोह्याहारदोषात्प्रथममुपचितोहंतिवन्हिंशरीरे ।

श्लेष्मत्वंयातिभुक्तंसकलमपिततोऽसौकफोवायुदृष्टः ।

श्रोतास्यापूर्य्यरुध्यादनिलमथमरुत्कोपयेत्पित्तमंतः ।

संमूर्छर्याऽन्योन्यमेतेप्रबलमिति नृणांकुर्वतेसन्निपातम् ॥ २ ॥

अर्थ—आहारके दोषसैं प्रथम संगृहीत जो आम सो देहकी अधिको शान्ति करे
और मनुष्य जो कुछ खाय सो सब कफ होजाय और फेर इस कफको वायु दू-
षित करै तब ये पवनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्तहो उन्को रोकदे तब
पवनपित्तको कुपित करै एसैं तीनों दोष अन्योन्य कुपित हो मनुष्योंके प्रबल स-
न्निपात रोग प्रगट करेहैं ।

अब संधिकादि तेरह सन्निपातोंके लक्षण पृथक् पृथक् लिखतेहैं

संधिकश्चांतकश्चैवरुदाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्तन्द्रिकःप्रो-

क्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः ॥ ३ ॥ विरल्यातोभुग्नेत्रश्चरक्तष्ठीवीप्र-

लापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्तन्निपातास्त्रयोदश ॥ ४ ॥

अर्थ—१ संधिक २ अंतक ३ रुग्दाह ४ चित्तविभ्रम ५ शीतांग ६ तंद्रिक ७ कंठकुब्ज ८ कर्णक ९ भुगनेत्र १० रक्तष्टीवी ११ प्रलापक १२ जिह्वक १३ अभिन्यास ये तेरह सन्निपात कहेहैं ।

अथ तेरहसन्निपातोंकी मर्यादा

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः । रुग्दाहेविंशतिर्ज्ञेया
बन्ध्याष्टौचित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकंतुशीतगितन्द्रिकेपंचविंश-
तिः । विज्ञेयावासराश्चैवकंठकुब्जेत्रयोदश ॥ ६ ॥ कर्णकेचत्रयो-
मासाभुगनेत्रेदिनाष्टकं । रक्तष्टीवीदशाहानिचतुर्दशप्रलापके
॥ ७ ॥ जिह्वकेषोडशाहानिकलाभिन्यासलक्षणे । परमायुरिदं-
प्रोक्तंत्रियतेतत्क्षणादपि ॥ ८ ॥

अर्थ—संधिककी ७ अन्तककी १० रुग्दाहकी २० चित्तविभ्रमकी २४ शीतांगकी १६ तंद्रिककी २५ कंठकुब्जकी १३ कर्णककीतीन महीना (९० दिन) भुगनेत्र ८ रक्तष्टीवीकी १० प्रलापकी १४ जिह्वककी १६ अभिन्यासकी १६ दिनकीये सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहेहैं । परंतु रोगी शीघ्रवी मरजाताहै ।

उक्तसन्निपातोंमें साध्याऽसाध्य विचार

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः ।

जिह्वकश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्याःसप्तमारकाः ॥ ९ ॥

अर्थ—संधिक १ तंद्रिक २ कर्णक ३ कण्ठकुब्ज ४ जिह्वक ५ चित्तविभ्रंश ६ येछह साध्यहैं बाकी बचे सातसौ मारक हैं ।

असाध्यकुच्छ्रसाध्यके लक्षण

दोषेविवृद्धेनष्टेग्रौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।

सन्निपातज्वरोसाध्यःकुच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहों और अग्नि शांति होगई हो वो सन्निपातज्वर असाध्यहै और इसमें विपरीत अर्थात् दोष बढे नहीं अल्प लक्षण हों अग्नि थोड़ी दीप्त हो वो सन्निपात ज्वर कुच्छ्रसाध्य है ।

(जैजटने) दोषग्रन्थका मूल अर्थ कराहै अर्थात् पुरीपादिक बढेसंते इत्यादि इस श्लोकका तात्पर्ययह है कि असाध्य और कुच्छ्रसाध्य भयेपर सुखसाध्य नहीं होताहै इसीसैं (भालुकी) आचारिने लिखाहै ।

मृत्युनासहयोद्धव्यसन्निपातंचिकित्सता ।

यस्तुतत्रभवेजेतासजेताऽऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

अर्थ—जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करेहै वो मौतके साथ संग्राम करेहै जो इस सन्निपातको जीते अर्थात् शांत करे वो सर्व रोगके गणोंका जीतनेवालाहै ।

तथाच

सन्निपातार्णवेमग्रयोभ्युद्धरतिमानवम् ।

कस्तेननकृतोधर्मःकांचपूजानसोर्हति ॥ १२ ॥

अर्थ—जो वैद्य सन्निपातरूपी सागरमें डूबे मनुष्यको निकालताहै उसने कौनसा धर्म न करा अर्थात् सब धर्मकर चुका और वो कौन पूजाके योग्य नहींहैं अर्थात् वो सब पूजाओंके योग्यहै ।

संधिक

पूर्वरूपकृतशूलसम्भवंशोषवातबहुवेदनान्वितं ।

श्लेष्मतापबलहानिजागरंसन्निपातमितिसन्धिकंवदेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जिसके पूर्वरूपमें शूल शोष वातसैं बहुत पीड़ा कफका गिरना सन्ताप बलहानि रात्रिमें जागरण ये लक्षण होय तिसको (सन्धिक) सन्निपात कहतेहैं ?

अन्तक

दाहंकरोतिपरितापनमातनोति मोहंददातिविदधा-

तिशिरःप्रकंपं । हिक्कांकरोतिकसनंचसमाञ्छुहोतिजा-

नीहितंविबुधवर्जितमंतकारव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—दाहकरे संतापको बढ़ावै मोहको देवे शिर कंपावै हिचकी करे और खांसीको बढ़ावे ऐसा पंडितोंकरके खान्ज (अन्तक) सन्निपात जानना ॥

रुग्दाह

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांघ्रश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्य-

थितकण्ठमन्याहनुः ॥ निरंतरतृषाकरःश्वसनकासहिक्काकु-

लः सकष्टतरसाधनोभवतिहन्तरुग्दाहकः ॥ ३ ॥

अर्थ—अनर्थभाषण सन्ताप अतिमोह मंदता अनायासश्रम और पीड़ा कंठ मन्यानादी और ठोड़ी इनमें व्यथा निरंतर प्यास लगे श्वास खांसी और हिचकी इनलक्षणकरके युक्त ऐसा ये (रुग्दाहनामक) सन्निपात कष्टसाध्यहै ॥ ३ ॥

चित्तभ्रम

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडा । भ्रममदपरितापोमोह-
वैकल्यभावः ॥ विकलनयनहासोगीतनृत्यप्रलापी । ह्यभिद-
धतिअसाध्यैकेपिचित्तभ्रमाख्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसके कोई प्रकार करके पीड़ा होय तथा भ्रम (धतूरा खाये सरीसृी अवस्था हो) सन्ताप मोह विकलता नेत्रोंमें वेकली हंसना गाना नाचना बकना ये लक्षण होंय उसको कोई असाध्य (चित्तभ्रम) सन्निपात ऐसैं कहतेहैं ॥ ४ ॥

शीतांग

हिमसदृशशरीरोवेपथुश्वासहिका शिथिलितसकलांगःखि-
न्ननादोग्रतापः ॥ क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्तस्त्वरितम-
रणहेतुःशीतगात्रप्रभावात् ॥ ५ ॥

अर्थ—शरीर वर्षके समान शीतल होय कम्प श्वास हिचकी सर्व अङ्ग सिथिल हो मन्द शब्द देहेकेभीतर उग्र सन्ताप अनायासभ्रम मनका संताप खांसी छर्दि अतीसार ये लक्षणयुक्त सन्निपातको (शीताङ्ग) कहतेहैं ये प्राणोंका शीघ्र नाश-कर्त्ताहै ।

तंद्रिक

प्रभूतातंद्रार्त्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छयामाजिह्वाप-
थुलकठिनाकंटकवृता ॥ अतीसारःश्वासःक्लमथुपरितापःश्रु-
तिरुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे ॥ ६ ॥

अर्थ—तंद्रा बहुत होय शूल ज्वर कफ तृपासैं रोगी बहुत पीडित हो जीभ कालेरंगकी मोटी कठोर और कांटेयुक्त हो और अतीसार श्वास ग्लानि संताप कर्णशूल कंठमें जड़ता और रातदिन निद्रा ये लक्षण तंद्रिक संनिपातमें होतेहैं यह असाध्यहै ।

कंठकुञ्ज

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरारक्तसमीरणार्तिः । हनुग्रह-
स्तापविलापमूर्च्छाःस्यात्कण्ठकुञ्जःखलुकष्टसाध्यः ॥ ७ ॥

अर्थ—शिरमें पीड़ा कण्ठमें पीड़ा दाह वेहोशी कंप ज्वर वातरक्तसम्बन्धी पीडा

हनुग्रह संताप बकना और मूर्च्छा ये लक्षण युक्त सन्निपातको (कण्ठकुब्ज) कहते हैं यह कष्टसाध्य है ।

कर्णक

प्रलापश्रुतिहासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावं ।

ज्वरंतापकर्णीतयोर्गल्लपीडा बुधाःकर्णकंकष्टसाध्यंवदन्ति ॥ ८ ॥

अर्थ—अनर्थभाषणकरे वहरा होजावे कंठमें दर्द होय अंगोंमें पीडा श्वास कास पसीना लारका गिरना ज्वर सन्ताप कर्ण और गाल इनमें पीडा जिसमें ये लक्षण हों उसको पण्डित कष्टसाध्य (कर्णक) सन्निपात कहते हैं ।

श्रुग्नेत्र

ज्वरबलापचयःस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।

प्रलपनभ्रमकंपनशोफवांस्त्यजतिजीवितमाशुसभुग्नदृक् ॥ ९ ॥

अर्थ—ज्वर बलका नाश स्मृतिनाश श्वास टेढ़ी दृष्टी बेहोसी अनर्थभाषण भ्रम कंप और झुनन ये लक्षण (श्रुग्नेत्र) सन्निपातके हैं ये रोगी जल्दी मरता है ।

रक्तष्ठीवी

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारा हिक्काध्मानभ्रम-
णदबधुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः ॥ श्यामारक्ताधिकतररसनामंडलो-
त्थानरूपा रक्तष्ठीवीनिगदितइहप्राणहंताप्रसिद्धः ॥ १० ॥

अर्थ—रक्तकी उलटीकरे ज्वर वमन तृषा मूर्च्छा शूल अतिसार हिचकी अफरा भौरका आना संताप श्वास संज्ञानाश काली और लाल जीभ देहमें रुधिरके विकारसे चकत्ता जिसमें ये लक्षणहों उसको (रक्तष्ठीवी) सन्निपात कहते हैं ये प्राणनाशक प्रसिद्ध है ।

प्रलापक

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडा प्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्य-
चिन्ता ॥ प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रंप्रयातिपितृ-
पालपदंप्रलापी ॥ ११ ॥

अर्थ—कंप बड़बड़ाना संताप शिरमें पीडा इनका विशेष जोर हो पवित्रतामें आशक्त दूसरेकी चिन्ता करे बुद्धिका नाश हो विकल और बहुत बकवाद करे ऐ-सा ये प्रलापक सन्निपातवाला रोगी यमराजके पुरको पधारे ।

जिह्वक

श्वसनकासपरितापविह्वलः कठिनकंटकपरीतजिह्वकः ।

बधिरमूकबलहानिलक्षणो भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्वास खांसी संताप विह्वल कठोर और कटिनसे व्याप्त ऐसी जीभ बहरा गूंगा और बलकी हानि इन लक्षणोंसे संयुक्त ऐसा ये (जिह्वक) सन्निपात कष्टसाध्य है ।

अभिन्यास

दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रा वैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी ॥ ब-

लप्रणाशः श्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यासउत्तोननुमृत्युकल्पः ॥ १३ ॥

अर्थ—त्रिदोषोंके कोपके समान मुखपर चिकनापना निद्रा बेकली चेष्टाहीनहो कष्टसे बोलै बलनाश श्वासादिकोंका रुकना ये लक्षण (अभिन्यास) सन्निपातमें होतेहैं ये महाअसाध्य मृत्युके तुल्यहैं ।

सन्निपातोपद्रव

सन्निपातज्वरस्यातेकर्णमूले सुदारुणः ।

शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

ज्वरस्य पूर्वज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः ।

क्रमादसाध्यः खलुकष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १५ ॥

अर्थ—सन्निपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जड़में दारुण सूजन पैदा होतीहै उस सूजनसे कोई रोगी बचेहै प्रायये मारही डालेहै ॥ १ ॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तौ असाध्यहै ज्वरके मध्यमें होय तौ कष्टसाध्यहै और ज्वरके अंतमें होय तौ सुखसाध्य है । ऐसैं मुनीश्वरोंने कहाहै । *

सद्यस्त्रिपंचसप्ताहदशाहाद्वादशादपि ।

एकविंशदिनैः शुद्धः सन्निपाती सुजीवति ॥ १६ ॥

अर्थ—सन्निपात हुएपर तत्काल तीन पांच सात दश और बारह दिनसैं इकीस दिवसतक सन्निपातवाला रोगी शुद्धहोकर जीवैहै ।

त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा

सप्तमीद्विगुणायामन्नवम्येकादशीतथा ।

१ सप्तमेदिवसे प्राप्ते दशमेद्वादशेषिवा ॥ पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमयति हं निवा इति ॥

एषात्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥ १७ ॥

पित्तकफानिलवृद्धादशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् ।

इतिविमुंचतिपुरुषंत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥ १८ ॥

अर्थ—जबसे त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोषज्वरोंकी मर्यादाहै इस अवधिमें ज्वर जातारहै अथवा मृत्युहोय ॥ १ ॥ सात नौ और ग्यारह दिनमें मर्यादा वाताधिक पित्ताधिक और कफाधिक सन्निपातोंकी क्रमसे जाननी पित्त कफ और वात इनकी वृद्धी क्रमकरके दशदिनकी चारहदिनकी और सातदिनकी है इसमें त्रिदोषज्वर धातुपाक होनेसे मार डाले और मलपाक होनेसे रोगी रोगमुक्त होजाय ।

धातुपाकलक्षण

निद्राबलौजोरुचिवीर्यनाशो हृद्वेदनागौरवताल्पचेष्टा ।

विष्टंभतायस्यकिलारतिःस्यात्सधातुपाकीमुनिभिःप्रदिष्टः ॥१९॥

अर्थ—निद्रा बल तेज रुचि वीर्य इन्का नाश हृदयमें पीडा देह भारी हीनचेष्टा अफरा मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहाहै धातुपाक कहिये उचरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होयकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे धातुपाक कहतेहैं ।

मलपाकलक्षण

दोषप्रकृतिवैकृत्यंलघुताज्वरदेहयोः ।

इन्द्रियाणाञ्चवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥ २० ॥

अर्थ—दोषोंका स्वभाव पलटजाय ज्वरका हलका होना देह हलकी हो इन्द्रियोंका निर्मल होना ये (मलपाक) के लक्षण जानने धातुपाक और मलपाक होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहींहै ।

आगंतुकज्वर

अभिधाताभिचाराभ्यामभिषंगाभिज्ञापतः ।

आगंतुर्जायतेदोषैर्यथास्वंतंविभावयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—तलवार छुरा मुक्का लकड़ी इत्यादि शस्त्रआदिके लगनेसे प्रगट ज्वरको अभिधातज कहतेहैं और विपरीतमंत्रके जपनेसे लोहके श्रुचासे मारणार्थ सर्पपा-

दिक होम अथवा कृत्वाका प्रयोग करनेसे उत्पन्न ज्वरको अभिचारज कहते हैं काम शोक भय क्रोध भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न ज्वरको अभिषंगज कहते हैं ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्ध इनके शाप देनेसे प्रगट ज्वरको अभिशापज कहते हैं ये चार प्रकारसे आगंतु ज्वर उत्पन्न होय है इस ज्वरके आरंभसे पूर्व कोई दोषका प्रकाश नहीं हो पीछे जैसे दोष कुपितहों वे तिनको उन्हीं उन्हीं दोषोंके लक्षण करके जाने जैसे (कामशोकभयाद्वायुः) अर्थात् काम शोक भयसे वात कुपित होती है ।

विषजन्य आगंतुकज्वर

इयावास्यताविषकृतेदाहोतीसारएवच ।

भक्तारुचिःपिपासाचतोदश्चसहमूर्च्छया ॥ २२ ॥

अर्थ—अब आगंतुज्वरोंके हेतु भेदकरके लक्षण कहते हैं. स्थावर जंगम विष भक्षण करनेसे जो ज्वर होय उससे मुख इयामवर्ण और दाह तथा दस्तोंका होना अन्नमें अरुचि प्यास सुई चुमनेकीसी पीडा और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ।

औषधगंधजनितज्वर

औषधीगन्धजेमूर्च्छाशिरोरुग्मथुःक्षवः ।

अर्थ—तीक्ष्ण औषधके संपर्कसे जो ज्वर होय उसमें मूर्च्छा शिरमें पीडा वमन छींक ये लक्षण होते हैं ।

कामज्वरके लक्षण

कामजेचित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनं ॥ २३ ॥

हृदयेवेदनाचास्य गात्रंचपरिशुष्यति ।

अर्थ—सुन्दर स्त्रीके देखनेसे मनुष्यके मनमें घोर कामकी बाधा उत्पत्तिहो उससे प्रगट ज्वरके ये लक्षण हैं । चित्तकी अस्थिरता तन्द्रा आलस्य भोजनमें अरुचि हृदयमें पीडा और शरीर सूखजावे ।

अथ भयशोक और कोपज्वर

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २४ ॥

अर्थ—भयसे और शोकसे उत्पन्न ज्वरमें अनर्थ वक्ते, कोपसे प्रगट ज्वरमें कंप होय ।

अभिचार और अभिघातज्वरके लक्षण

अभिचाराभिघाताभ्यामोहस्तृष्णाचजायते ।

अर्थ—अभिचार और अभिघातसे प्रगटज्वरमें मोह और तृष्णा होवे ।

भूताभिषंगज्वरके लक्षण

भूताभिषंगादुद्वेगोहास्यरोदनकंपनम् ॥ २५ ॥

अर्थ—भूतबाधासँ उत्पन्नज्वरमें चित्तमें उद्वेग हसँ रोवे और कम्प ये लक्षण होतेहैं ।

कामशोकभयाद्वायुःक्रोधात्पित्तत्रयोमलाः ।

भूताभिषंगात्कुप्यंतिभूतसामान्यलक्षणाः ॥ २६ ॥

अर्थ—काम शोक और भय इनसँ वात कुपित होताहै क्रोधसँ पित्तकुपित होताहै और भूताभिषंगसँ तीनोंदोष कुपित होतेहैं इसमें औरभी लक्षण होतेहैं अर्थात् उन्माद निदानमें जिसजिस देवग्रहोंके लक्षण (हास्यरोदनकंपादिक) कहेंहैं वो लक्षण होतेहैं ।

विषमज्वरकी संप्राप्ति

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतोऽज्वरोत्सृष्टस्यवापुनः ।

धातुमन्यतमंप्राप्यकरोतिविषमज्वरम् ॥ २७ ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके ज्वर, औषधादिक सेवन करनेसँ शांति होनेके पश्चात् और आरंभसँ इक्कीसादिन बीतनेपर तथा जीर्ण अवस्था होनेपर अपथ्यकरनेसँ वातपित्तादि दोष पुनः थोड़े प्रकुपितहो रसरक्तादिधातुओंमेंसँ किसीधातुमें प्रा-
प्तहो और उनको दूषितकर विषमज्वर कहिये तृतीय चतुर्थादिक ज्वर उत्पन्नकरें *
वाशब्दकरके प्रथमसँही विषमज्वर होयहै ये सूचनाकरी * यथा * “ आरम्भा-
द्विषमोयस्तु ” इति * अल्पशब्दसँ ये दिखाया कि वह दोष बलहीन होनेसँ का-
लांतरमें बलवान् होकर ज्वरकरे और जो दोष बलवान् है वो निरज्वर करेहै *
विषमज्वरके लक्षण * भालुकीने कहेंहैं सो ऐसँ * अनियतकालमें शीत
उष्णकरके विषमवेगज्वर होय उसज्वरको विषमज्वर ऐसँ कहतेहैं दूसरे लक्षण ऐ-
सँ कि “ सुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वं ” * अर्थात् जो ज्वर छोडदे और फेर
आजावे उसको विषमज्वर ऐसँ कहतेहैं ।

धातुगतज्वरके नाम

संततःसततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थको । सततरसरक्तस्थःसो-

ऽन्येद्युःपिशिताश्रितः ॥ मेदोगतस्तृतीयेह्निअस्थिमज्जागतः

पुनः । कुर्ज्याच्चातुर्थिकंधोरमंतकरोगशंकरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—संतत सतत अन्येद्यु (व्याहिक) तृतीयक (व्याहिक जिसको तिजारी

कहतेहैं) और चतुर्थक जिसको चौथिया कहतेहैं ऐसे पांचप्रकारके विषमज्वर हैं संतत शब्दकरके सतत और संतत ये दोनों जानने अर्थात् रसस्थदोष संततज्वर करेहैं और रक्तस्थदोष सतत ज्वर करेहैं इसमें संतत और सतत ये दोनों शब्द केवल संज्ञावाचकहैं सातत्यवाचक नहींहैं ऐसे जाने वेही दोष मांसगत अन्येद्युष्क अर्थात् ब्याहिक (एकतरा) को करेहैं और मेदगतदोष तृतीयक (तिजारी) ज्वर करेहैं और वेहीदोष अस्थिमज्जामें प्राप्तभये दुःसह मृत्युकारक अनेक रोगोंमें व्याप्त ऐसा चातुर्थिक ज्वर प्रगट करेहैं ।

संततज्वरके लक्षण

सप्ताहंवाद्दशाहंवाद्वादशाहमथापि वा ।

संतत्यायोविसर्गीस्यात्संततःसनिगद्यते ॥ २९ ॥

अर्थ—सात दिनपर्यंत किंवा दशदिनपर्यंत किंवा बारहदिनपर्यंत एकसा जो ज्वर रहै और उतरे नहीं तिसको संततज्वर कहते हैं. * सात दश बारह ये जो कहे सो अनुक्रमकरके वात पित कफ इनके उल्वणसें कहें ये संततज्वर त्रिदोषज है कारण इसका बारह पदार्थोंका साथ होना है ऐसैं वातादिदोषधातुके प्रमाण मूत्र और मल इनको एकही समयमें ग्रसकर संततज्वर उत्पन्न करेहैं बारह पदार्थ ये हैं वातादिदोष ३ सप्तधातु ७ मूत्र १ और मल १ मिलकर बारह हुये ॥

संततकादिकोंके लक्षण

अहोरात्रेसंततकोद्वौकालावनुवर्त्तते । अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालंप्रवर्त्तते ॥ ३० ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽन्हिचतुर्थेऽन्हिचतुर्थकः । केचिद्भूताभिषंगोत्थंवदंतिविषमज्वरम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—काल छः हैं १ पूर्वान्ह २ मध्यान्ह ३ अपरान्ह ४ प्रदोष ५ अर्द्धरात्रि ६ प्रत्युष पूर्वान्ह प्रदोष ये कफके काल हैं मध्यान्ह और अर्द्धरात्रि ये पित्तके काल हैं अपरान्ह और प्रत्युष ये वातके काल हैं संततज्वर दिनरातमें दो समय आता है * ईशानदेव कहते हैं कि दिनके दो बेला अथवा रात्रिके दो बेला अथवा दिनके एक बेला और रात्रिके एक बेला एकके दो बेला अमुक बेलामें आवेगा जैसे ज्वरके आवनेका समय नहीं कहा है (अन्येद्युष्कज्वर) अहोरात्रिमें एकबेलामें आता है * (तृतीयकज्वर) जिस दिन आता है उससे तीसरे दिन फेर आता है और (चातुर्थक) चौथे दिन आता है * और कोई आचारी इस विषमज्वरको भूताभिषंगोत्थ कहते हैं ये मत सुश्रुताचार्यहीका मान्य है अर्थात्

उसने विषमज्वरपर बलि होमादिकश्रुतोचित और कषायपानादिक दोषोचित ऐसी चिकित्सा कही है और विषमज्वर ये प्रायशः आगंतुका सम्बन्धी है ये चरकने कहा है ॥

उत्कृष्टदोष भेदकरके तृतीयक चतुर्थकोंके दूसरे लक्षण.

कफपित्तात्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मनः । वातपित्ताच्छिरो-

ग्राहीत्रिविधःस्यात्तृतीयकः ॥ ३२ ॥ चातुर्थिकोद्देश्यतिप्रभावं

द्विविधज्वरः ॥ जंघाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वशिरसोऽनिलसंभवः ॥ ३३ ॥

अर्थ—तृतीयक ज्वर कफ पित्तके जोरसँ त्रिकस्थान (तीन हड्डी) में पीडा करे हैं वातकफके जोरसँ पीठमें पीडा करे वातपित्तके जोरसे मस्तकमें पीडा करे है जैसे (तृतीयक ज्वर) तीन प्रकारका है त्रिकग्राही जो कहा इसका तात्पर्य ये है कि त्रिकवातका स्थान है उसके स्थानमें कफ पित्त दूसरेके स्थानमें पहुंचनेसँ निर्वल हो जाते हैं यासँ तीसरे दिन ज्वर करते हैं * यदि कफ पित्त स्वस्थान-पर स्थित होय तौ संततज्वरको करते हैं ये जैज्जटका मत है जैसेही मस्तक कफका स्थान है और पीठ पित्तका स्थान है इनमें दूसरें दोषोंके पहुंचनेसँ दुर्बल होय करके (तृतीयक ज्वर) करते हैं * शंका * यदि त्रिकवातका स्थान है तौ फेर आप पित्तकफका उस स्थानमें गमन कैसे कहते हो * उत्तर * ये स्थानका नियम प्रकृति स्थिति दोषोंका कहा है कुपित दोषोंका नहीं कहा है क्योंकि कुपित दोषोंका सर्वत्र गमन होता है ये (सुश्रुत) का मत है * ऐसेही दोषोंको अन्यस्थानगतत्व होनेसँ तथा दोषोंको निर्वलत्व होनेसँ चातुर्थिक ज्वरमेंभी जानना * (चातुर्थिक ज्वर) दो प्रकारकी शक्ति दिखाता है—सो ऐसे कफाधिक जिसमें होवे वो प्रथम जंघाओंमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व देहमें व्याप्त होय और वाताधिक्य जिसमें होवे वो पहिले म-स्तकमें व्याप्त होकर पीछे सर्व देहमें व्याप्त होता है ये पांच प्रकारके विषमज्वर प्रायशः सन्निपातसँ प्रगट होते है ये (चरकका मत है) हारीतकृषि कहते हैं कि (चातुर्थिक) ज्वरमें पित्त प्रधान है इन विषमज्वरोंकी उत्पत्तिक्रम (वृद्धसुश्रुतमें) इसप्रकार लिखी है कफके पांच स्थान हैं उनमें जिस जिस स्थानमें दोष प्राप्त होते हैं वहां उसी उसी विषमज्वरको प्रगट कर्ते हैं * उन पांच स्थानोंके नाम आमाशय १ हृदय २ कंठ ३ शिर ४ और संधि तहां आमाशयमें दोष पहुंचनेसँ संततक ज्वर दो समय आता है हृदयस्थितिदोष आमाशयमें आनेसँ एकतरा

१ त्रिक कहिये कमर और जंघाके मध्यकी तीन हड्डी.

२ सुश्रुते—कुपितानाहिदोषाणांशरीरेपरिधावता । यत्रसंगःस्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥ १ ॥

एक समय आता है * कंठमें स्थितदोष एकदिनमें हृदयमें आताहै दूसरेदिन आमाशयमें प्राप्त हो ज्वर प्रगट करे उसे तृतीयक (तिजारी) कहते हैं शिरमें स्थित जो दोष सो क्रमसँ कंठ हृदय और आमाशयमें तीन दिनमें प्राप्त हो चतुर्थ दिवस (चातुर्थक) ज्वर प्रगट करते हैं और उन दोषोंका उलट कर पुनः स्वस्थानमें पहुंचना उसी दिन होता है क्योंकि दोष वेगवान होते हैं और दोष संधिस्थित होते हैं तब * (प्रलेपक ज्वर) प्रगट करते हैं ये विषमज्वरके समान ज्वर है कारण इसका ये है कि संधि आमाशयमें स्थित है और (सुंश्रुतने) कहाहै कि* प्रलेपक यह विषमज्वर है ये धातुशोष रोगीन्को क्लेशका देनेवाला है ।

विषमज्वरके भेद

विषमज्वरएवान्यश्चातुर्थिकविपर्ययः ।

समध्येज्वरयत्यन्हीआद्यतेचविमुंचति ॥ ३४ ॥

अर्थ—चातुर्थक ज्वरका उलटा ये दूसरा विषमज्वर है ये प्रथम और अंतका दिन छोडकर बीचके दोदिन आता है जैसे ये चातुर्थिकका विपर्यय है तैसेही तृतीयक आदिकाभी विपर्यय होता है उनको कहते हैं जैसे बीचके एकदिन ज्वर आवै और आदि अन्तके दिन नहीं आवै ये तृतीयकका विपरीत और जो एक काल छोडकर सब दिनरात्री ज्वर रहै वो अन्येदुष्क (इक तरेका) विपरीत जानना—इनके विषयमें ग्रन्थकारोंके भिन्नभिन्न मत हैं विस्तारके भयसँ इस जगे नहीं लिखें हैं ।

वातबलासकज्वर

नित्यमन्दज्वरोरूक्षःशूनकस्तेनसीदति ।

स्तब्धांगःश्लेष्मभूयिष्ठोनरोवातबलासकी ॥ ३५ ॥

अर्थ—वातबलासक नामक ज्वर जिस मनुष्यके हो वो उसज्वरकरके सोध-युक्त अर्थात् सूजन हो और मन्दज्वर सदैव बनारहै देह रूखी हो अंग जिकड़-जावै कंफ विशेष होय ये ज्वर वात और कफसँ होता है इसको वातबलासक ज्वर कहते हैं ।

प्रलेपकज्वर

प्रलिपन्निवगात्राणिघर्मेणगौरवेणच ।

१ प्रलेपकस्त्वविषमःप्रायःक्लेशायशोपिणां । अन्येरात्रिज्वरादयोऽपि विषमज्वरानोद्भव्याः (य-थोक्तं) समीवातकफौयस्यक्षीणपित्तस्यदेहिनः । रात्रौप्रायोज्वरस्तस्यदिवाहीनकफस्यतु ॥ १ ॥

मन्दज्वरविलेपीचसशीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिस ज्वरमें पसीनासैं तथा सूर्यकी घामसे अथवा देहके गौरवसैं मा-
नों देहको लिप्त कर दियासा मालूम हो इसी हेतुसैं मन्द ज्वर हो शीत लगे ये ज्वर
कफ पित्तसैं प्रगट होता है । और राजयक्ष्मारोगमें ये होता हैं कोई इसको त्रिदो-
षजनित कहते हैं इसको (प्रलेपक ज्वर) कहते हैं ।

विषमज्वरविशेषभेद

विदग्धेऽन्नरसेदेहेऽश्लेष्मपित्तेव्यवस्थिते ।

तेनार्धशीतलं देहमर्धमुष्णं प्रजायते ॥ ३७ ॥

अर्थ—अन्नका रस दुष्ट होनेसैं और देहमें कफ पित्त दुष्ट होकर स्थित होनेसैं
(अर्ध नारीश्वररूप * अथवा नरसिंहरूप) अर्धाग ज्वर प्रगट करे है * अर्थात्
अर्धदेह कफसैं शीतल और अर्धदेह पित्तसैं गरम होता है ।

कायेदुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ।

तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त दुष्ट होय और कफ हाथपैरमें दुष्ट होकर
स्थित होवे तिसकरके सब देह उष्ण रहै और हाथ पग शीतल रहैं ।

इन्हांका विपरीत द्वितीय ज्वर

कायेऽश्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चातिव्यवस्थितम् ।

शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिस समय कोठेमें कफ दुष्ट हो और पित्त हाथपैरमें दुष्ट होकर रहै
तब शरीर शीतल हो और हाथपैर उष्ण होय ।

शीतपूर्वज्वरके लक्षण

त्वक्स्थौऽश्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरं ।

तयोः प्रज्ञांतयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ४० ॥

अर्थ—कफ और वात ये दुष्ट होकर त्वचामें प्राप्त हो अर्थात् रसधातूका आ-
श्रय कर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करते हैं और जब इनका वेग शांत होता है तब
पिछाडी पित्त दाह करे है ।

दाहपूर्वज्वरके लक्षण

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च । तस्मिन् प्रशान्ते त्वि-

तरौकुरुतः शीतमंततः ॥४१॥ द्वावेतौदाहशीतादीज्वरौसंस-
र्गजौस्मृतौ । दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥४२॥

अर्थ—उसीप्रकार पहिले पित्तरसगत होयकर असंत दाह करै हैं पीछे उसका वेग शांति भयेपर वात कफ ये शीत करते हैं ॥ दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोंके संबंधसें होतेहैं ऐसे ऋषियोंने कहाहै उनमें दाहपूर्वक ज्वर दुःखप्रद और कृच्छ्रसाध्य है और शीतपूर्व ज्वर सुखसाध्य है ।

सप्तधातुगत ज्वरोंके लक्षणं रसगत ज्वरके लक्षण

गुरुताहृदयोत्क्लेशः सदनंछर्द्यरोचकौ ।

रसस्थेतुज्वरेलिंगदैर्न्यंचास्योपजायते ॥ ४३ ॥

अर्थ—रसधातुमें स्थितज्वर होय तौ देह भारी दोषोंको हृदयमें स्थित होनेसँ उपस्थित वमनसी मालूम हो ग्लानि ओकारी अन्नमें अरुचि और दैन्य कहिये मनमें खेद ये चिन्ह होते हैं ।

रक्तगतज्वरके लक्षण

रक्तनिष्ठीवनंदाहोमोहश्छर्दनविभ्रमौ ।

प्रलापः पिडकातृष्णारक्तप्राप्तेज्वरेनृणाम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—रुधिरका गिरना दाह मोह वमन भ्रम अनर्थ बोले देहमें फुंसी प्यास ये लक्षण रक्तगतज्वरके होनेसँ होते हैं ।

मांसगतज्वरके लक्षण

पिंडिकोद्वेष्टनंतृष्णासृष्टमूत्रपुरीषता ।

उष्मांतर्दाहविक्षेपौग्लानिः स्यान्मांसगेज्वरे ॥ ४५ ॥

अर्थ—जानुके नीचे मांसका पिंड हो तथा दंढ आदिके लगने कीसी पीड़ा प्यास मलमूत्रका निकलना गरमी अंतर्दाह हाथ पैरका इधरउधर पटकना और ग्लानि ये लक्षण जब मांसमें ज्वर पहुंच जाय है तब होते हैं ।

मेदोगतज्वरके लक्षण

भृशंस्वेदस्तृपामूर्च्छाप्रलापश्छर्दिरेवच ।

दौर्गन्ध्यारोचकौग्लानिर्मेदःस्थेचासहिष्णुता ॥ ४६ ॥

अर्थ—असंत पसीनेका आवना प्यास मूर्च्छा प्रलाप वमन देहमें दुर्गंध अन्नमें अरुचि ग्लानि औ वेदना न सही जाय यह लक्षण मेदगत ज्वरमें होते हैं ।

अस्थिगत ज्वरके लक्षण

भेदोऽस्त्रांकूजनंश्वासोविरेकदछर्दिरेवच ।

विक्षेपणचगात्राणामेतदस्थिगतेज्वरे ॥ ४७ ॥

अर्थ—हृद फूटनी तथा हाडोंका गूजना श्वास दस्तका होना वमन हाथ पैरका चलना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं ।

मज्जागत ज्वरके लक्षण

तमःप्रवेशनंहिकाकासःशैत्यं वमिस्तथा ।

अन्तर्दाहोमहाश्वासोमर्मच्छेदश्चमज्जगे ॥ ४८ ॥

अर्थ—अंधेरा आना हिचकी खांसी शीतलगे वमन अंतर्दाह महाश्वास अर्थात् जो श्वासके निदानमें कहेंगे औरमर्मरमें पीडा ये मर्म शब्द इस जगह हृदयवाचक है अर्थात् हृदयमें पीडा हो ये मज्जागत ज्वरके लक्षण हैं ।

शुक्रगत ज्वरके लक्षण

मरणंप्राप्नुयात्तत्रशुक्रस्थानगतेज्वरे ।

शोफसःस्तब्धतामोक्षःशुक्रस्यचविशेषतः ॥ ४९ ॥

अर्थ—रसादि धातुगत ज्वर शुक्रस्थानमें ज्वर पहुंचनेसे रोगीका मरण होय इस ज्वरमें लिंगका जकड़ जाना और शुक्रका विशेष स्राव होना और (मुश्रुता)-दिक आचार्य कहते हैं कि रक्तादि पदार्थका थोड़ा थोड़ा स्राव हो ।

प्राकृत और वैकृत ज्वरके लक्षण

वर्षाशरद्वसंतेषुवाताद्यैःप्राकृतःक्रमात् ।

वैकृतोऽन्यःसुदुःसाध्यःप्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ५० ॥

अर्थ—वर्षाऋतु शरदऋतु और वसंतऋतु इनके मध्यमें वातादिकके क्रमसे जो ज्वर होय वो (प्राकृत) ज्वर कहाता है जैसे वर्षाकालमें वातज्वर शरत्कालमें पित्तज्वर और वसंतकालमें कफज्वर इससे विपरीत जो ज्वर होय उससे (वैकृतज्वर) कहते हैं जैसे वर्षाकालमें पित्तिक शरदऋतुमें श्लैष्मिक और वसंतऋतुमें वातिक ये वैकृत ज्वर दुःसाध्य है अर्थात् प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है और वातजन्य प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य है और रोगोंमें प्राकृततल दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव करके सुखसाध्यतल कहा है ।

? (यदुक्तं) प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसंतशरदुद्भवः ।

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहते .
 वर्षासुमारुतोदुष्टःपित्तश्लेष्मान्वितोज्वरम् । कुर्याच्चपित्तंश-
 रदितस्यचानुबलःकफः ॥५१॥ तत्प्रकृत्याविसर्गाच्चतत्रनान-
 शनाद्भयम् । कफोवसन्तेतमपिवातपित्तंभवेदनु ॥ ५२ ॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतुमें संचित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित हो पित्तकफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करे है उसीप्रकार वर्षाकालमें संचित हुआ पित्त शरदऋतुमें दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करे है उसको कफका अनुबंध होता है * उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभाव करके और विसर्ग * काल करके लंघन करनेसे भय नहीं होय * तैसही हेमंतकालमें संचित भया कफ वसंतकालमें ज्वर उत्पन्न करे है तिसके पि-
 छाही वातपित्त सहायक होते हैं ।

कालेयथास्वंसर्वेपांप्रवृत्तिर्वृद्धिरेववा ।

निदानोक्तानुपशयोविपरीतोपशायिता ॥ ५३ ॥

अर्थ—वातादिकोंका आप अपने कालमें उत्पत्ति और वृद्धि होवे है * जैसे काल ये दोष विशेष जाननेका लक्षण है * उसीप्रकार उपशय और अनुपशयभी रोग जाननेके कारण हैं । सो इसप्रकार जानना निदानत्व करके जे आहार वि-
 हार कहे हैं उनके सेवन करनेको अनुपशय कहिये दुःख उत्पत्ति होती है और दोषोंके विपरीत जे आहार विहार उन्हींसे उपशायिता कहिये मुखकी उत्पत्ति होय है ।

अंतर्दाहोऽधिकातृष्णाप्रलापःश्वसनंभ्रमः । संध्यस्थिगूलम-
 स्वेदोदोषवर्चोविनिग्रहः ॥५४॥ अंतर्वेगस्यलिंगानिज्वरस्यै-
 तानिलक्षयेत् । संतापोऽभ्यधिकोवाह्यतृष्णादीनांचमार्दव-
 म् ॥ ५५ ॥ बहिर्वेगस्यलिंगानिसुखसाध्यत्वमुच्यते ।

१ अनुबल्यथा * स्वतंत्रस्यकस्यचिद्वाजो गजरयतुगपुरुषादिवल्वतो वैरिभिः सहयुध्यमानस्य पश्चादन्यबलं तच्छक्तेरनुबलोपवृंहणार्थमागच्छति एवं स्वतंत्रस्य पित्तस्य ज्वरं कुर्वतो बलोपवृंहण शरदि कफः करोति तयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रकृत्यास्वभावेन तत्कृतयोर्ज्वरयोरनशानाहंघनाद्वयं न भवतीति ॥ * वर्षा शरद और हेमंत ये विसर्गकाल हैं इसमें चन्द्रमाका बल रहै है इसमें प्रा-
 णोंका बल बटे है * और वसंत और शिशिर ग्रीष्म ये (आदान) काल हैं इसमें मूर्धका बल अधिक होता है इसीसे प्राणोंका बल क्षीण होता है ।

अर्थ—पिछाडी जो ज्वर कोहें हैं उन्हींमें सम्प्राप्तिके भेदसैं कोई एक ज्वर अंतर्वेग होय है और कोई बहिर्वेग होय है तिन दोनोंके लक्षण कहते हैं * अंतर्दाह अतितृषा बहबडना श्वास भ्रम संधि और हाड इनमें पीडा पसीना न आवै वायु और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेग ज्वरके लक्षण जानने ।

शरीरके बाहर संताप अधिक होवे तृष्णादिक लक्षण थोड़े होवे ये बहिर्वेगज्वरके लक्षण यह ज्वर मुखसाध्य है इस ज्वरके मुखसाध्य कहनेसैं अंतर्वेगज्वर कृ-
मसाध्य और असाध्य है यह सूचना करी ।

लालाप्रसेकहृत्लासहृदयाशुद्धरोचकाः । तंद्रालस्याविपाका-
स्यवैरस्यंगुरुगात्रता ॥ ५६ ॥ क्षुब्धाशोबहुमूत्रत्वंसब्धताब-
लवान्ज्वरः । आमज्वरस्यलिंगानिनदद्यात्तत्रभेषजम् ॥ ५७ ॥
भेषजंह्यामदोषस्यभूयोजनयतिज्वरम् । शोधनंशमनीयश्च
करोतिविषमज्वरम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—चिकित्सा करनेके निमित्त आम पच्यमान और निराम ज्वरके लक्षण कहते हैं लारका गिरना खाली ओकारीका आना हृदयमें जडत्व अरुचि तन्द्रा आलस अन्नका परिपाक न होना मुखका स्वाद जाना रहै देह भारी भूखका नाश बारंवार मूतना देहका जकडना देहमें बलवान् ज्वर हो ये अपक्व ज्वरके लक्षण जानने इस ज्वरमें औषधि वैद्य न देय अपक्व ज्वरमें औषधि देनेसैं ज्वरकी वृद्धि होय है * और शोधन तथा शमन औषध देनेसैं विषमज्वरको करे है ।

ज्वरके दश उपद्रव

श्वासोमूर्च्छाऽरुचिस्तृष्णाल्छर्यतीसारविड्ग्रहाः ।

हिकाकासोऽगदाहश्चज्वरस्योपद्रवादश ॥ ५९ ॥

अर्थ—(भावप्रकाश) के मतसे ज्वरके दश उपद्रवोंको कहतेहैं श्वास मूर्च्छा अरुचि प्यास वमन अतिसार मलका रुकना हिचकी खांसी देहमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रवहैं ।

पच्यमानज्वरके लक्षण

ज्वरवेगोऽधिकातृष्णाप्रलापःश्वसनंभ्रमः ।

मलप्रवृत्तिरुत्क्रेशःपच्यमानस्यलक्षणम् ॥ ६० ॥

अर्थ—ज्वरका वेग अधिक प्यास प्रलाप श्वास भ्रम मलकी प्रवृत्ति उपस्थित वमनसी मालूम होय ये पच्यमानज्वरके लक्षण है ।

पक्वज्वर किंवा निरामज्वरके लक्षण

क्षुत्क्षामतालघुत्वंचगात्राणांज्वरमार्दवम् ।

दोषप्रवृत्तिरुत्साहोनिरामज्वरलक्षणम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—भूखका लगना देहका कृश होना अंगोंका हलकापना मन्दज्वरका आना अधोवायुकी प्रवृत्ति होना मनमें उत्साहका होना ये निरामज्वरके लक्षण जानने ।

ग्रन्थान्तरसैं जीर्णज्वरके लक्षण

त्रिसप्ताहेव्यतीतेषुज्वरोयस्तनुतांगतः ।

स्त्रीहाग्निसादंकुरुतेसजीर्णज्वरउच्यते ॥ ६२ ॥

अर्थ—२१ दिवस व्यतीत होनेपर जो ज्वर बारीकहो देहमें रहै जिस्से प्लीह अर्थात् तापतिल्ली रोग और मंदाग्नि होवे उसको जीर्णज्वर कहतेहै ।

साध्यज्वरके लक्षण

बलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ।

अर्थ—बलवान् पुरुषके थोड़े दोषयुक्त और श्वास आदि उपद्रव करके रहित जो ज्वर हो वो साध्य जानना ।

असाध्यज्वरके लक्षण

हेतुभिर्बहुभिर्जातोबलिभिर्बहुलक्षणः ।

ज्वरःप्राणान्तकद्यश्चक्षीघ्राभिर्द्रियनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ—जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसैं उत्पन्न भयाहो और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलतेहैं वो ज्वर प्राणोंका हरण करनेवाला जानना और जो ज्वर प्रगट होते ही चिकित्सा करते २ इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट करदे (अर्थात् अंधा बहिरा इत्यादि) वोभी ज्वर असाध्य जानना ।

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगंभीरोदैर्घ्यरात्रिकः ।

असाध्योबलवान्यश्चक्षेक्षसीमंतकज्वरः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो पुरुष ज्वरसैं क्षीण पडगयाहो अथवा सूजन जिसके देहमें आयर्गई हो वो ज्वर अमाध्यहै । और जिसके ज्वर धातुके भीतरहो अथवा अंतर्वेगज्वर

अथवा जिसमें वातादिदोषोंका निश्चय न होसके और बहुत दिनतक रहनेवाला ज्वर असाध्य होयहै और जो ज्वर बलवानहो तथा जिसमें रोगी अपने हाथसैं केस (वालों)की सीमंत आदि रचना करे वो ज्वर असाध्यहै ।

गंभीरज्वरके लक्षण

गंभीरस्तुज्वरोज्ञेयोहंतर्दाहेनतृष्णया ।

आनद्धत्वेनचात्यर्थश्वासकासोद्गमेनच ॥ ६५ ॥

अर्थ—अंतर्दाह प्यास दोष अर्थात् विरुद्ध दोषके बढनेसैं (मल)के रुकनेसैं तथा श्वास खांसीके उत्पन्न होनेसैं (गंभीर) ज्वर जानना ।

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण

आरंभाद्विषमोयस्ययस्यवादैर्ध्यात्रिकः । क्षीणस्यचातिरू-

क्षस्यगंभीरोहंतिमानवं ॥६६॥ विसंज्ञस्ताम्यतेयस्तुशेतेनि-

पतितोपिवा । शीतादिर्तोंऽतरुष्णश्चज्वरेणत्रियतेनरः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जो ज्वर प्रगट होतेही विषम पडजाय और जो ज्वर बहुत दिनसैं आयाकरे और क्षीण तथा अतिरूक्ष देहवाले पुरुषके जो गम्भीर ज्वर होय वो मृत्युकारक होताहै और जो वेहोस होकर मोहको प्राप्तहो तथा गिरकर जिस्से उठा न जाय पडाही रहे अथवा बाहरी शीत लगे और देहके भीतर दाह हो ऐसे ज्वरवाला पुरुष मरजावे ।

और असाध्यलक्षण

योहृष्टरोमारक्ताक्षोहृदिसंघातशूलवान् । वक्त्रेणचैवोच्छ्वसति

तंज्वरोहंतिमानवम् ॥ ६८ ॥ हिक्काश्वासतृषायुक्तंमूढंविभ्रान्-

तलोचनम् । संततोच्छ्वासिनंक्षीणंनरंक्षपयतिज्वरः ॥ ६९ ॥

हतप्रभेन्द्रियंक्षाममरोचकंनिपीडितम् । गंभीरतीक्ष्णवेगार्ति

ज्वरितंपरिवर्जयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ—जिसके देहमें रोमांच खडे रहैं लाल नेत्र हों हृदयमें गांठ होनेसैं जैसी पीडाहो तैसा हो और संघात इस पदका यह अर्थ करतेहैं कि नानाप्रकारका शूलहो मुखके द्वारा श्वास ले वो ज्वररोगी मनुष्यको मारडाले ।

हिचकी श्वास प्यास इनकरके व्याप्तहो मोहयुक्तहो चलायमान नेत्रहों निरंतर श्वासलेय ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मारडालताहै ।

इन्द्रियोंकी शक्ति नष्टहोनेसेँ और शरीरकी कांति निस्तेजहोनेसेँ अथवा इन्द्री (नाक कान नेत्र) ये नष्टहोजावे कृशदेह होजावे अरुचिसेँ अत्यंत पीडितहो (अरोचकनिपीडितं) इसजगह (जेज्जट) ने दो पाठ लिखेहैं एकतौ (दुरात्मानमुपहृतं) इस्का अर्थ ये है कि दुष्ट अंतःकरण होवे और उपद्रवयुक्त होवे । दूसरा पाठान्तर ये है कि (दुरात्मभिरुपहृतं) अर्थात् राक्षसादिकरके युक्तहो तथा अतिघोर अंतर्वेगकरके परिपीडितहो ऐसेँ ज्वरवान् पुरुषको वैद्य छोडदेवे । इसी जगह कोई टीकाकारोंने जो असाध्य लक्षण लिखेहैं सो (आतंकदर्पण) तथा (मधुकोश) टीकासेँ लिखेहैं वो सब (वाग्भट) और (हारीत) के कालज्ञान देखनेसेँ निश्चय होजायगे सो देखलेवे इस जगह हम ग्रंथ बढनेके भयसेँ नहीं लिखते ।

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप

दाहःस्वेदोभ्रमस्तृष्णाकंपोविड्भिदसंज्ञिता ।

कूजनंचातिवैगंध्यमाकृतिज्वरमोक्षणे ॥ ७१ ॥

अर्थ—दाह पसीना भ्रम प्यास कंप मलका पतला होना संज्ञाका नाश होना गुंजे देहमें अत्यंत दुर्गंध आवे ये लक्षण ज्वर छोडताहै तब होतेहैं * शंका—क्योंजी दोष (वात पित्त कफ) नाशके विना रोगकी निवृत्ति होय नहीं और जब दोष क्षीण होगये तो उक्त दाहादिलक्षण कैसे कर्ते हैं ? उत्तर—इस्का कारण ये है कि कोई एक वस्तुका ऐसा स्वभाव है कि क्षीण होनेके समयमें अपनी शक्तिको दिखाती है जैसे दीपकमें तेल नहीं रहै और बुझनेको होय है तब एक संग पहिली अपेक्षा असंत बलने लगे है और थोडी देर बलकर शांत हो जाताहै ऐसैही जब दोष शांत होनेको होते हैं तब अपनी शक्ति दाहादिकोंको दिखाते हैं * अथवा * दूसरा उत्तर ये है कि जैसे बंदर वृक्षकी डालीको हिलायकर दूसरे स्थानपर चला जाताहै परंतु वो वृक्षकी डाली बहुत देरपर्यंत हिला करती है इसी प्रकार ज्वर गयेपरभी उसके असरसेँ दाहादिक रहतेहै ये दाहसेँ आदिले लक्षण त्रिदोष ज्वरके शांति होनेके समय होतेहैं और सब ज्वरोंमें नहीं होते और ज्वरमें केवल पसीनाही आतेहैं ये (भास्कर) आचारीका मतहै ।

त्रिदोषजेज्वरेह्येतदन्तर्वेगेचधातुजे ।

लक्षणंमोक्षकालेस्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनं ॥ ७२ ॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण

स्वेदोलघुत्वं शिरसः कंठः पाको मुखस्य च ।

क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ८० ॥

अर्थ—पसीना आवै देह हलका हो मस्तकमें खुजली चले मुखका पाक अर्थात् होठोंमें पपड़ी परिजाय छींक आवै भोजन करनेकी इच्छा होय ये लक्षण ज्वर-मुक्तके हैं ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्यदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां

ज्वरनिदानं समाप्तम् ।

इंग्रेजी मतानुसार ज्वरनिदान ।

ज्वरको इङ्ग्रेजीमें (Fever) फीवर कहतेहैं उसकी उत्पत्ति ।

१ सरदी

सरदी पड़नेसें मनुष्यके सब देह रोमांच बढ़ होजावे तब पसीनेका निकलना रुक जाय इस हेतुसें देहका जो औद्युन सो देहके बाहर नहीं निकले इसीसे देह हलका नहीं होय और वोही देहका अवशुन ज्वर रोगको प्रगट करताहै इस ज्वरको सामान्य ज्वर कहतेहैं । अथवा देह अति गरमीसें पीड़ित होय उस समय किसी कारणसें शीतल करे तो सरदी होती है अथवा किसी अतिपरिश्रम करनेसें मनुष्यके देहसें पसीने निकलें उस समय हवामें बैठें अथवा हवामें शयन करनेसें सरदी होती है अथवा रातमें मैदानमें सोनेसें अथवा रातमें शीतल पवनके लगनेसें पसीना नहीं निकलें इस हेतुसें सरदी होय अथवा गीला कपड़ा ओढ़कर बैठनेसें वा सोनेसें सरदी होय है इन कारणोंसें सरदी होय वो सरदी अनेकप्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करे है ।

२ मन्दवायु

जिस समय पृथ्वीमें वर्षाका अथवा और प्रकार जल सूखे उसमें घास पत्ता सबजावे तब इनसें मन्द वायु अथवा वाष्प उत्पन्न होय तिसके द्वारा अनेकप्रकारके ज्वर प्रगट होय विशेषकरके आमज्वरकी अधिक उत्पत्ति होय इसीसे जलाशयस्थान तलाव आदि और झील खाल इनस्थानोंमें मन्दवायु अधिक होय है इसे नानाप्रकारके ज्वर प्रगट होय ये हवा सोताके जलसें उत्पन्न नाहिं होयहै किंतु जिस जगह थोड़ा जल होय जैसे तलैया आदि उसमें घास लगनेसें जल

पक्क होकर मन्दवायुको अधिक उत्पन्न करे हैं यह वायु दिनमें सूर्यकी किरणसे बहुत हलकी होकर ऊपरको उठे इसीसे यह बड़ा जुकसान करनेवाली होतीहै और संध्या तथा रात्रिमें यह वायु शीतल होनेसे नीचे उतर सर्व साधारण मनुष्योंको जुकसान करनेवाली होतीहै और हवाओंसे यह हवा अधिक भारी होतीहै घरके किवाड़ लगानेसे यह हवा घरके भीतर कम जातीहै इसीसे घरके किवाड़ देकर (मसैरी) जिसको पूरवके लोग बहुधा रखते हैं यह कपड़ेकी बनीहुई होतीहै इसमें सोना चाहिए ।

गरिष्ठभोजन

जो मनुष्य भारी द्रव्य भोजन करै तब उसके वो पचे नहीं और पेटमें पीडा करे उस पीडाके होनेसे ज्वर उत्पन्न होय विशेषकरके यह ज्वर बालकोंके होय है ।

अनेकप्रकारके ज्वरोंके लक्षण

नाड़ी और श्वास जलदी चलें मस्तकमें पीडा होय त्वचा शुष्क और गरम होय प्रलाप होय अथवा न होय पेसाव लाल उतरे जीभ मलीन होय शरीरमें सदा ज्वर रहा करे कभी कम होजाय कभी ज्यादा होजाय ।

कुमकुमज्वरके लक्षण

श्वास लेते समय मंदमंद पीडा होय खांसी होय कफकुछ नीले रंगका गिरे ज्वर अल्प होय वक्षस्थलमें पीडा होय खांसते समय श्वास जलदी चलै नाड़ी कुछ कुछ थोड़ी ओर शीघ्र चले त्वचा सदैव थोड़ी गरम रहै जिस समय रोगकी वृद्धि होय श्वासके चलनेसे पीडा होय उससे अधिक पीडा होय इस रोगके आरम्भमें कफ नहीं निकले किंतु दो तीन दिनके बाद कफ स्वेत निकल पड़े उस रोगीका हलदीके समान पीला वर्ण होय कभी कभी जलके सदृश वर्ण होय इस रोगकी विशेषता होनेसे कफ पतला होजाय । यह रोग अत्यंत बढ़कर पचनेको होय तब कफका शाकके समान रंगहो अथवा काले रंगका और दुर्गन्धयुक्त होय बहुत सरदी पड़नेसे इसकी उत्पत्ति होतीहै ।

यकृत वा कलेजाज्वरके लक्षण

दहने पांमूमें पीडा होय जीभ शरीरमें थोडा ज्वर होय तथा आहारमें अरुचि होय जीभ मलिन नेत्र पीले होय मल मूट्टीके रंगका अथवा सपेद तथा काला होय और कठिन पेशाबलाल ।

प्रसंगवशाज्वरमुक्तलक्षणं ग्रन्थांतरं

देहोलघुर्व्यपगतक्लममोहतापःपाकोमुखेकरणसौष्ठवमव्यथ-

त्वम् ॥ स्वेदःक्षवःप्रकृतियोगिमनोन्नऽलिप्साकंदूश्चमूर्ध्नि
विगतज्वरलक्षणानि ॥ १ ॥

इति ज्वरनिदानम्

अथ अतिसारनिदानम् ।

भाषा—पित्तज्वरमें अतिसार होताहै तथा ज्वरको और अतिसारको अ-
न्योन्य उपद्रव होनेसें ज्वरके अनन्तर अतिसाररोगको कहते हैं ।

गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यश-
नाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्चमि-
थ्यायुक्तैर्विषमैर्भयैः । शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्त्व्यर्तुपर्ययैः
॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः । नृणां भवत्य-
तीसारोलक्षणंतस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रमाणसें अधिक भोजन करे अथवा स्वभावतैं जड़ पदार्थ (जैसे उड़द-
आदि)के खानेसें अति चिकनी अति तीखी अति गरम असंत पतली और अ-
त्यंत स्थूल (अर्थात् जिसके अवयव कठिन हो जैसे लहड़ू, घेवर, गूंझा इत्यादि)
असंत शीतल (स्पर्शसें तथा वीर्यसें) विरुद्ध (जैसे क्षीर, मत्स्य इत्यादिक) अ-
ध्यैसन कहिये (पूर्वदिनका भोजन परिपाक नहीं होय और उसपर भोजन क-
रना) विना पका अन्न जिस भोजनके समयको त्याग कर और समय थोड़ा वा
बहुत भोजन करनेसें स्नेह स्वेद आदि पंचकर्मके अत्यंत योगके करनेसें (वा)
थोड़े योग करनेसें स्थावरादिक दूषी विषके खानेसें, भयसें, सोच करनेसें, अति
दुष्ट जलके पीनेसें, तथा अति मद्यके पीनेसें, सात्त्व्य और ऋतुके पलटनेसें, ज-
लमें अति क्रीडा करनेसें, मल, मूत्र, आदि वेगोंके रोकनेसें, कृमिरोगके उपद्रवसें
अथवा कृमिजनित वातादिकके कोपसें, अतिसाररोग होताहै, इन लक्षणोंसें यह
निदान वातादि दोषोंका यथासम्भव जानना, आगे अतिसारके लक्षण कहे हैं ।

१ वातबलासलक्षणं ग्रन्थान्तरे । बलासोवायुनायुक्तः शीतादिषडहेज्वर ॥ जनयेन्नयनश्रावं हृत्पी-
डां मधुरास्यतां ॥ १ ॥

२ (तदुक्तचरके) मुक्तपूर्वाह्ने वेतुपुनरप्यग्रनमतम् ॥

अतिसाररोगकी सम्प्राप्ति

संशम्यापांधातुरग्निप्रवृद्धोवर्चोमिश्रोवायुनाधःप्रणुन्नः । सा-
येंतातीवातिसारंतमाहुर्व्याधिघोरंषड्विधंतंवदन्ति ॥ ४ ॥ ए-
कैकशःसर्वशश्चापिदोषैःशोकेनान्यःषष्ठआमेनचोक्तः ।

अर्थ—पूर्वोक्त कहे कुपथ्यसैं अत्यंत दुष्ट भये शरीरमें रस, जल, मूत्र, स्वेद, मेदा, कफ, पित्त, रुधिर इत्यादि जलरूप धातु सो अशिको मन्द कर और वही जल मलमिश्रित हो पवनका प्रेरित गुदाके मार्गसैं वारंवार नीचेको बहुत उतरे तिसको अतिसार कहते हैं । यह भयंकर अतिसाररोग ६ प्रकारका है १ वातका २ पित्तका ३ कफका ४ सन्निपातका ५ शोकका ६ और आमातिसार ऐसे छः प्रकारका अतिसार है । द्वंद्वज अतिसार व्याधिसंभावकरके नहीं होते (सुश्रुत) ने आमातिसार नहीं कहा । भय और शोकसैं दो कहाकर संख्या पूरी करी है और आमातिसारको सन्निपातातिसारके अन्तर्गत कहा है । यहां माधवाचार्यने भया-
तिसारकी बातज अतिसारमें गणना करी है ।

अतिसारके पूर्वरूप

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः । वि-
ट्संगआध्मानमथाविपाकोभविष्यतस्तस्यपुरःसराणि ॥ ५ ॥

अर्थ—हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कूख इनमें पीडा हो शरीरमें फूटनी हो गु-
दाका पवन रुकजाय मलका अवरोध हो अफरा हो और अब पचे नहीं ये लक्ष-
ण अतिसाररोगके पूर्व होते हैं ।

वातातिसारके लक्षण

अरुणंफेनिलंरूक्षमल्पमल्पंमुहुर्मुहुः ।

श्लुदामंसरुक्षब्दंमारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—कुछ ललाईको लिये झाग मिला तथा रूखा थोडा थोडा वारंवार आम
मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरतेसमय शब्द होवे तौ वा-
तातिसार जानना ।

पित्तातिसारके लक्षण

पित्तात्पीतंनीलमालोहितंवातृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।

अर्थ—पित्तसैं, पीला, काला, धूसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा,
दाह, गुदा पकजाय यह लक्षण पित्तातिसारके हैं ।

कफातिसारके लक्षण

शुक्लंसांद्रसकफंश्लेष्मयुक्तंविस्त्रंशीतंहृष्टरोमामनुष्यः ॥ ७ ॥

अर्थ—कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गन्धयुक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खड़े होय यह लक्षण कफातिसारके जानने ।

सन्निपातके अतिसारके लक्षण

वाराहस्नेहमांसांबुसदृशंसर्वरूपिणम् ।

कृच्छ्रसाध्यमतीसारंविद्यादोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥

अर्थ—शूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोयेहुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो ऐसा ये त्रिदोषजनित अतिसार कष्टसाध्य जानना ।

शोकातिसारके लक्षण

तैस्तैर्भावैःशोचतोऽल्पाशनस्यबाष्पोष्मावैवहिमाविश्यजं-
तोः ॥ ९ ॥ कोष्ठंत्वाक्षोभयेत्तस्यरक्तंतच्चाधस्तात्काकणं-
तीप्रकाशं । निर्गच्छेद्वैविद्धिभिश्चानिर्गंधवागंधवद्वा-
तिसारः ॥ १० ॥

अर्थ—जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वो उसी उसी वस्तुका शोच करे इसीसँ क्षुधा मन्द होनेसँ (धातुक्षय होय) ऐसँ प्राणीके वाष्प (नेत्र, नासा, गले, आदिसँ जो शोकद्वारा जल गिरे) सो और उष्मा कहिये शोकजन्य देह तेज ये दोनों वाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मन्द कर रुधिरको कृपित करे तब ये रुधिर चिरमिठीके रंगसदृश शुद्धाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गंधयुक्त अथवा गंधरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं इसीप्रकार भयातिसारभी जानलेना ।

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यलक्षण

शोकोत्पन्नोबुभ्रिकित्स्योऽतिमात्ररोगोवैद्यैःकष्टएवःप्रदिष्टः ।

अर्थ—शोकसँ उत्पन्न भया जो अतिसार सो चिकित्सा करनेमें बहुत कठिन है । कारण शोकशांति भयेबिना केवल औषधसँ शांति नहीं होवे यासँ वैद्योंने ये कष्टसाध्य कहा है ।

आमातिसारके लक्षण

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताःक्षोभयन्तःकोष्ठदोषाधातुसंघान्मलांश्च ।

नानावर्णनैकशःसारयन्तिगूलोपेतं पृष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

अर्थ—अन्नके न पचनेसेँ दोष (वात पित्त कफ) स्वमार्गङ्गु छोड़कर कोठेमें प्राप्तहो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको धारंवार गुदाके मार्गसेँ बाहर निकाले और इस्का रंग अनेकप्रकारका होय तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इस्को छटा आमातिसार वैद्यक कहतेहैं *शंका—प्रथम कहि आये कि अतिसार रोग छः प्रकारका होताहै पुनः (पृष्ठमेनं वदन्ति) ये पद क्यों धरा ? उत्तर—ये पद नियमके अर्थ माधवाचार्यने धराहै अर्थात् भय स्नेह अजीर्ण विशूचिका ववासीर आदि निमित्तकरके और अतिसार नहीं हैं क्योंकि भयादि अतिसारोंका वात पित्त कफ अतिसारोंके अंतर्गतत्वहै ।

आमके लक्षण

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तुन्यस्तमप्स्ववसीदति ।

पुरीषभृशदुर्गंधिपिच्छिलंचामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पूर्वकहे जो वातादिक अतिसारोंके मिलेहुए लक्षणसंयुक्त जो मल सो जलमें गेरनेसेँ डुब जायहै क्योंकि आम जड़है और उसमें बहुत दुर्गंध आवै तथा अत्यंत गाढीहो उसकी आमसंज्ञाहै ।

अथ पक्कलक्षण

एतान्येवतुलिंगानिविपरीतानियस्यवै ।

लाघवंचविशेषेणतस्यपक्वंविनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—और ऊपरके श्लोकसेँ विपरीत लक्षण होय अर्थात् शरीर हलका होय तथा मल जलमें डूबे नहीं और दुर्गंधिरहित हो बबूला रहित होय उस रोगीका मलपक्क भया जाने ।

असाध्य लक्षण

पक्वंजाववसंकाशयकृत्पिण्डनिभंतनु । घृततैलवसामज्जावे-
सवारपयोदधि ॥ १४ ॥ मांसधावनतोयाभंरुष्णीलारुण-
प्रभम् । मेचकंकर्तुरंस्निग्धंचन्द्राकोपगतंघनम् ॥ १५ ॥ कु-
णपंमातुलुंगाभंदुर्गंधकृथितंवहु । तृष्णादाहाऽरुचिश्वासहि-

कापाश्वस्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥ संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं प-
क्वलीगुदं । प्रलापयुक्तं च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥

अर्थ—पके जामबके रंगसदृश काला और चिकना मेचक तथा काला और लो-
हित रंग पतला घृत तेल चरबी मज्जा बेसवार दूध दही और मांसके धोनेसे जैसा जल
निकलेहै ऐसा रंग होय काजलके रंगसमान अथवा नीलमिश्रित अरुण रंग अर्थात्
पपैया पक्षीके पंखके रंगसमान अथवा खंजन पक्षीके वर्णसदृश तथा अनेक रंगका
चिकना मोरकी चंद्रिकाके सदृश रंग दृढ मुरदाकीसी दुर्गंधयुक्त मस्तककी मज्जाके
समान गंधयुक्त बुरी दुर्गंधके समान प्यास दाह अरुचि श्वास हिचकी पसवांझोंके
हाड़ोंमें पीड़ा मनको मोह और इन्द्रियोंको मोह अरति ये लक्षण होय तथा गुदाके
आठेनका पकना अनर्थ भाषण करे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य छोड़देवे ।

दूसरें असाध्य लक्षण

असंततगुदं क्षीणं दुराध्मानमुपद्रुतम् ।

गुदेपक्वेगतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—जिसकी गुदाको दस्तके पिछाड़ी संकोचन होवे क्षीण पुरुष अत्यंत अ-
फरायुक्त अथवा (दुरात्मानं) ऐसाभी पाठान्तर है अर्थात् जिसकी इन्द्री वस न
होवे । तथा अतिसारके शोथादिक उपद्रवकरके युक्त और गुदाके स्थानमें पाक-
कर्ता अर्थात् पकानेवाला पित्त विद्यमान होते और जिसकी देहमें गरमीसी नहीं
दीखे अर्थात् देह शीतल हो अथवा जिसकी अग्नि नष्ट होजावे ऐसे अतिसारी
रोगीको वैद्य त्याग देवे ।

अतिसारके उपद्रव

शोथं गूलं ज्वरं तृष्णां श्वासकासमरोचकम् ।

छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वा तिसारिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—सोजन, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, हि-
चकी ऐसे लक्षण जिस रोगीमें होय उसको वैद्य छोड़देवे ।

असाध्य लक्षण

श्वासगूलपिपासा र्त्तक्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।

१ मेचक काला लाल पीला मिला जैसा रंग होय ऐसा मेचकरंग होयहै ।

२ बेसवार नाम मांसमेंसे हड्डी निकाल और कूटकर दही दूध काली मिरच डालकर
जो पदार्थ बनातेहै तत्सदृश रंग होय ।

विशेषेणनरंवृद्धमतिसारोविनाशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ—श्वास, शूल, प्यास इनसँ पीडित क्षीण ज्वरसँ पीडित और वृद्ध मनुष्यके ये लक्षण होय तौ यह अतिसाररोग मनुष्यको विनाश करे ।

रक्तातिसारलक्षण

पित्तकृन्तियदात्यर्थद्रव्याण्यभ्रातिपैत्तिके ।

तदोपजायतेऽभीक्ष्णंरक्तातीसारउल्बणः ॥ २१ ॥

अर्थ—पित्तातिसारवाला पुरुष अथवा पित्तातिसार होनेवाला पुरुष जब अत्यंत पित्त करनेवाली वस्तु भोजन करे तब भयंकर रक्तातिसार प्रगट होताहै इसके लाल, काले, पीले आदि रंग वातादि दोषोंके दूषित होनेसँ होते हैं येभी पित्तातिसारके भेद हैं ।

प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति

वायुःप्रवृद्धोनिचितंबलासंनुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।

प्रवाहतोल्पंबहुशोमलाक्तंप्रवाहिकांतांप्रवदंतितज्ज्ञाः ॥ २२ ॥

अर्थ—अपथ्य सेवन करनेवाले पुरुषके कुपित हुई जो वात सो संचित हुये कफको मलसंयुक्त करके वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और मरोढाके साथ थोड़ा थोड़ा मल निकले इसको प्रवाहिका कहते हैं । प्रवाहिका और अतिसार इन दोनोंका एकसाधर्म है इसीसँ अतिसाररोगमें प्रवाहिका कही है । परंतु अतिसारमें अनेक प्रकारके द्रवधातु निकले हैं और प्रवाहिकामें केवल कफ निकले है । इतना भेद है इसमें (निचितंबलासं) ये जो पद कहा अर्थात् कफसँ मिलकर सोये केवल कफका तो उपलक्षण है अर्थात् कफके कहनेसँ पित्त और रुधिरभी जानना । भोजने इस रोगका नाम विवसी कहा है पराशरऋषीने इसको अन्तरग्रंथी कहा है हारीतऋषीने निश्चारक कहा है कोई आचारी निर्वाहिका कहते हैं ।

प्रवाहिकाके वातादि भदकरके लक्षण

प्रवाहिकावातकृतासशूलापित्तात्सदाहासकफाकफाच्च । स-
शोणिताशोणितसंभवाचताःस्नेहरूक्षप्रभवामतास्तु । तासा-
मतीसारवदादिशेच्चलिंगंक्रमंचामविपक्तांच ॥ २३ ॥

अर्थ—वातकी प्रवाहिकामें शूल होताहै पित्तकी दाहयुक्त कफकी कफयुक्त

और रक्तसे रक्तयुक्त होती है यह चिकने और पचै अर्थात् भोजन करनेसे होय है अर्थात् चिकने पदार्थसे कफकी रुखे पदार्थसे वातकी तुल्यशब्दकरके तीक्ष्ण और खड़े पदार्थसे क्रमसे पित्तकी और रुधिरकी होती है ऐसे जानना । या प्रवाहिकाके लक्षण क्रम आम और पक्कावस्था ये अतिसार निदानके सदृश जानना ।

अतिसार चला गया होय उसके लक्षण

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।

दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मूत्र करते समय दस्त न होय और अपानवायु जिसकी शुद्ध निकले और अग्नि देदीप्यमान होवे कोठो हलका होवे उस मनुष्यको अतिसार गयो जानिये ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधुरीमाधवार्यदीपिकामाधुरीभाषाटीकायां अतिसार-रोगः समाप्तः ॥

अथ ग्रहणीनिदानं ।

ग्रहणीकी सम्प्राप्ति

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताग्निः ।

भूयःसंदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

अर्थ—पहले मनुष्यके अतिसाररोग होकर जातारहा होय फिर उस मनुष्यके कुपथ्य करनेसे मन्द हुई जो अग्नि सो पुरुषके उदरमें रहनेवाली जो पित्तधरानामक छठी कला जिसको ग्रहणी कहते हैं उसको बिगाड़ अपिशब्द करके अतिसार न भया होय तोभी अपने कारणकरके पूर्वोक्त ग्रहणीको बिगाड़कर संग्रहणीरोगको प्रगट करे यह सूचना करी । कोई आचार्य ऐसे कहते हैं कि अतिसार न गया होय बीचमेंही ग्रहणीरोग होता है (मन्दाग्नेः) इसपद करके ये सूचना करी कि जिस पुरुषकी अग्नि तीक्ष्ण है वो कुपथ्यभी करे तथापि कुछ औशुन नहीं होय अन्नको ग्रहण करे है इसीसे इसको ग्रहणी कहें इसीसे ग्रहणीके विगड़नेसे अन्नका परिपाक अच्छे प्रकार नहीं होय अर्थात् बारंबार आममिश्रित मल गुदाके मार्गसे गिरता है ।

ग्रहणीरोगकी सम्प्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्छितैः । सादृष्टा बहुशो भुक्तमा-

ममेवविमुंचति ॥ इति पक्कंवाससजंपूतिमुहुर्वद्वंदमुहुर्ववम् ।

ग्रहणीरोगमाहुस्तसायुर्वेदविदोजनाः ॥ ३ ॥

अर्थ—असंत कुपित हुए पृथक् पृथक् दोष (वात पित्त कफ) और सर्व दोष मिलकर ग्रहणीको दुष्ट करें सो ग्रहणी दुष्ट होकर कच्चे अथवा पके अन्नको गुदाके मार्ग होकर निकाले और पीडा होय तथा उस मलमें दुर्गंधि आवै वादीसे पतला मल और पित्तसैं गाढा दस्त वारंवार होवे और कभी कफसैं पानीसरिखा अधो-वायुयुक्त निकले इसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य संग्रहणीरोग कहतेहैं ।

पूर्वरूप

पूर्वरूपंतुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः ।

विदाहोन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—प्यास, आलस्य, बलनाश, अन्नका दाह, (पाकके समय अग्निसी जले) और अन्नको पाक देरमें होय, देह भारी होय, यह ग्रहणीरोगको पूर्वरूपहै ।

वातज ग्रहणीका निदान

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्व-
वेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ५ ॥ मारुतःकुपितोवह्निसंछाद्यकुरुते
गदान् ।

अर्थ—कड़ुआ, तीपा, कसैला, अतिरूपा और संयोगविरुद्ध ऐसे भोजनतैं तथा थोड़े भोजनसैं, उपवाससैं, बहुत चलनेसैं, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसैं, अत्यंत मैथुनसैं कुपित भई जो वात सो अग्निको दूषित कर रोगोंको प्रगट करेहै ।

वातज संग्रहणीका रूप

तस्यान्नपच्यतेदुःखंशुक्तपाकंस्वरांगता ॥ ६ ॥ कंठास्यशोषः
क्षुत्तृष्णातिमिरंकर्णयोःस्वनः । पार्श्वोरुवंक्षणीवारुगभीक्ष्णं
विपूचिका ॥ ७ ॥ हृत्पीडाकाश्रयदौर्वैल्यवैरस्यंपरिकर्त्तिका ।
गृद्धिःसर्वरसानांचमनसःस्यंदनंतथा ॥ ८ ॥ जीर्णेजीर्यतिचा-
ध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशंकी
चमानवः ॥ ९ ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कतन्वामंशब्दफेनवत् ।
पुनःपुनःसृजेद्वर्चःकासश्वासादितोऽनिलात् ॥ १० ॥

अर्थ-उस वातग्रः सम्प्राप्ति दुःखसें पचै अन्नका पाक खट्टा होय अंगमें कर्कशता (यह वायु आसमेदासिंसंभूपन शोखनेसे होताहै) कंठ, मुखका सुखना; शूल, प्यास लगे मन्त्रानुपानादौकुर्वत्यः शब्द हो पसवाडे जांघ पेड़ और कंधामें पीडा होवे विशूचिकः शरीर द्वारसें कच्चे अन्नकी मृत्ति होवे) हृदय दूखे देह दुबला होजाय लचा मांस न जातारहै गुदामें कतरनी कीसी पीडा हो मीठेसें आदि ले सर्व रसकी खानेकी इच्छा मनमें ग्लानि अन्न पचनेउपरांत पेटका फूलना भोजन करनेसें स्वस्थता पेटमें गोला हृद्रोग तापतिछीकीसी शंका वातके योगसें खांसी आससें पीडित बहुत देरमें बड़े कष्टसें कभी पतला कभी गाढ़ा थोड़ा शब्द और क्षागमिला बारंवार दस्त जाय ।

पित्तग्रहणीके लक्षण

कटुजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैःपित्तमुल्बणं । आप्लावयद्व्यंत्य-
नलंजलंतप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥ सोऽजीर्णनीलपीताभंपी-
ताभस्सार्यतेद्रवं । सधूमोद्गारहृत्कंठदाहारुचितृडर्दितः १२

अर्थ-जो पुरुष कटु अजीर्ण मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश-करील-की-कोपल) आदि खट्टी खारी (ओगा आदिका खार) आदिशब्दसें नोनका गरम पदार्थ इनकारणसें कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझायदे जैसे तत्ताजल अग्निको शांति करदे और कच्चाही नीले पीले रंगको पतले मलको निकाले तथा धूमयुक्त ढकार आवे हिये और कंठमें दाह होवे अरुचि और प्यासकरके पी-
डित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं ।

कफसंग्रहणीकी उत्पत्ति

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्यच
स्वप्नाद्व्यन्त्रिकुपितःकफः ॥ १३ ॥ तस्थान्नपच्यतेदुःखंह-
ृत्तासच्छर्दरोचकाः । आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः
॥ १४ ॥ हृदयेमन्यतेस्त्यानमुदरंस्तिमितंगुरु । दुष्टोमधु-
रउद्गारःसदनंस्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्ट-
गुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । अकृशस्थापिदौर्वल्यमालस्यंचकफात्मके १६

अर्थ-भारी अत्यंत चिकना शीतल आदि पदार्थके खानेसें अति भोजनसें तथा भोजन करके सोनेसें इनकारणसें कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करै

तब इसके खाया अन्न कष्टों पचे हृदयमें पीड़ा जंपूतिमुहुर्वरुचि मुखको कफसे लियासा तथा मुखका मीठा रहना खांसी भरासदृश होय पेट भारी और जड़ हो तनाः ॥ ३ ॥ और आवैं अग्निशांति हो स्त्रीरमणमें अरुचि पतला आम कटिप (वात पित्त को) ऐसा मल निकले बल विना शरीर पुष्ट दीखै आलस्य बहुत और संग्रहणीके लक्षण हैं।

त्रिदोषकी संग्रहणीके लक्षण

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ।

त्रिदोषलक्षयेदेवंतेपांवक्ष्यामिभेषजम् ॥ १७ ॥

अर्थ—वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कहआयेहैं वे सब जिसमें मिलते होय उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये (तेषांवक्ष्यामिभेषजम्) ये पद केवल पादपूरणार्थ लिखे हैं।

डाक्टरीमतके अनुसारपरीक्षा

आमसे मिला मल उत्तरे दस्तहोतेसमय गुदा शब्द करे ऐसे एक महीना अथवा अधिक दिवस पर्यंत पीड़ा होय ।

कारण

भारी द्रव्यके खानेसे अथवा देहके दुर्बल होनेसे मनुष्यके संग्रहणी रोग होय है।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधुरीमाधवार्थदीपिकाभाषाटीकायां ग्रहणीरोगः

समाप्तः ॥

अतिसार ग्रहणी और अर्श इनका परस्परसम्बन्ध-
है यासैं ग्रहणीरोगके पीछे अर्शरोग कहते हैं।

संख्यारूपसम्प्राप्ति

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ।

अर्शासिपट्प्रकाराणि विद्याद्बुदबलित्रये ॥ १ ॥

अर्थ—पृथक् पृथक् दोषसैं ३ समस्तदोष मिलकर १ रुधिरसैं १ और सहज १ तेषैं छः प्रकारकी अर्श (बवासीर) रोगहैं यह रोग गुदाकी तीन बलीके भीतर होयहैं गुदामें अप्रवाहिनी सर्जनी ग्राहिणी यह तीन बली (आंठें)

१ मनुष्यकी गुदामें तीन आंठें हैं एक ऊपर एक नीचे एक बीचमें ऊपरके आंठका नाम

सम्प्राप्तिपूर्वक अर्शका रूप

दोषास्त्रब्धांसमेदांसिसंदूष्यविविधाकृतीन् ।

मांसांकुरानपानादौकुर्वत्यर्शांसिताञ्जगुः ॥ २ ॥

अर्थ—वातादि दोष तच्चा मांस और मेदा इनको और उस ठिकानेके रुधिरको दूषित कर अपान (गुदा) में अनेकप्रकारकी आकृतिके मांसके अंकुर उत्पन्न करे अर्थात् मस्से प्रगट करे उनको बवासीर कहते हैं। आदिशब्दसे नाक, नेत्र, नाभिमेंभी जानना ये मत (सुश्रुत) का है कायचिकित्सक तो गुदामें जो होयहै उसीको बवासीर कहते हैं जो नासिकाआदिमें होय उसको अधिमांस कहते हैं क्योंकि नासिकाआदिमें जो बवासीर होताहै उसमें पूर्वरूपके लक्षण नहीं मिलते हैं।

वातकी बवासीरके कारण

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच । प्रमिताल्पाशनन्ती-
क्षणमद्यमैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनदेशकालौचशीतौव्या-
यामकर्मच । शोकोवातातपस्पर्शोहेतुर्वातार्शिसामतः ॥ ४ ॥

अर्थ—कषेला, कडुवा, तीखा, रूखा, शीतल और अतिलघु ऐसे पदार्थके खानेसे तथा अति थोडा खानेसे भोजनकालके उलंघन करनेसे तीव्र मद्यके पान करनेसे अत्यंत मैथुन (स्त्रीसंग) करनेसे उपवास शीतदेश और शीतकाल (हेमन्तादि ऋतु) दंडकसरतसे शोकसे हवा घाममें डोलनेसे ये वातकी बवासीर होनेके कारण हैं।

पित्तका बवासीरके कारण

कटुम्ललवणोष्णानिव्यायामाग्न्यातपश्रमाः । देशकालावशि-
शिरौक्रोधोमद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥ विदाहितीक्ष्णसुष्मांचसर्वपा-
नान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानांविज्ञेयःप्रकोपेहेतुरर्शिसाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—कडुवा, खट्टा, लवणका, गरम ऐसे पदार्थसे दंडकसरतके अग्निके समीप तथा घाममें रहनेसे श्रम, गरम देश, (मारवाड आदि देश) और उष्णकाल प्रवाहिनी है सो मल पवन आदिको बाहर काढे नीचेका आंटा मलपवनको बाहर पटकदे इस्का नाम सर्जनी है तीसरा नीचेका आंटा मलपवन निकले पीछे ज्योंकात्यो गुदाको करदे तिसको नाम ग्राहिणी है।

तब इसी ग्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, परद्रव्य देखकर जलना, दाहकारक, तीखी, गरम वस्तुका पीना, अन्नका और गरम औषधिका सेवन यह सब पित्ताधिक ववासीरके कारण हैं ।

कफकी ववासीरका कारण

मधुरस्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरूणिच । अव्यायामदिवा-
स्वप्नशय्यासनसुखेरतिः ॥ ७ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौचदेश-
कालावर्चितनम् । श्लेष्मोल्बणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शिसाम् ८

अर्थ—मीठा, चिकना, शीतल, खारी, खट्टा, भारी ऐसे भोजनसे व्यायामके न करनेसे, दिनमें सोनेसे, सेज, गद्दी इनके सेवन करनेसे, पूरवकी हवा खानेसे शीतल देश, शीतकाल, चितारहित होनेसे ये कफकी ववासीर होनेके हेतु हैं ।

द्वंद्वज ववासीरके कारण

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वंद्वोल्बणानिच ।

अर्थ—दो दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलें तो द्वंद्वज ववासीर भई है ऐसे जाने ।

त्रिदोषकी ववासीरके कारण

सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणालक्षणंसहजैःसमम् ॥ ९ ॥

अर्थ—पृथक् वातादि ववासीरके जो कारण कहे हैं वो सर्व त्रिदोषकी ववासीरके कारण हैं और जो सहज अर्शके अर्थात् सहज ववासीरके लक्षण सोवी इसके लक्षण जानने ।

वातकी ववासीरके लक्षण

गुदांकुरावह्ननिलाःशुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाःश्या-
वारुणाःस्तब्धाविशदाःपरुषाःखराः ॥ १० ॥ मिथोविसद्व-
शावक्रास्तीक्ष्णाविस्फुरिताननाः । बिंबीकर्कधुखर्जूरकार्पा-
सीफलसन्निभाः ॥ ११ ॥ केचित्कदंबपुष्पाभाःकेचित्सिद्धा-
र्थकोपमाः । शिरःपार्श्वीसकटचूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः १२
क्षवधूद्वारविष्टंभट्टद्वहरोचकप्रदाः । कासश्वासाग्निवैपम्यक-
र्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥ तैरातीग्रथितंस्तोकंसशब्दंसप्रवा-

हिकम् । रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ १४ ॥ कृ-
ष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवल्कश्च जायते । गुल्मघ्नीहोदराघ्नी-
लासंभवस्ततएव च ॥ १५ ॥

अर्थ—वाताधिक्यसें गुदाके अंकुर सूखे (स्रावरहित) चिमचिम पीड़ायुक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढ़े, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न होई, वांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, वेर, खजूर, कपासके फलसदृश होय कोई कंदर्बके फूलसमान हों कोई सरसोंके सदृश हों शिर, पसवाडे कन्धा, कमर, जांघ, पेड़, इ-
नमें अधिक पीड़ा हो छोक, डकार, दस्तका न होना हृदय पकडासा मालूम हो
अरुचि, खांसी, आस, अधिका विषम होना, अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं
पचे कानोंमें शब्द होय भ्रम होय उस ववासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके
समान थोड़ा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल झाग चि-
कटा इन लक्षणसंयुक्त हौलै हौलै दस्त होय उस मनुष्यकी तचाका रंग
तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख, ये काले होय, गोला, तापतिल्ली, (उदररोग)
अघ्नीला (वातकी गांठ) यह रोगोंके उपद्रव इस वातकी ववासीरमें होतेहैं ।

पित्तकी ववासीरके लक्षण

पिचोत्तरानीलमुखारक्तपीतासितप्रभाः । तन्वस्त्रस्त्राविणो
विस्त्रास्तनवोमृदवःश्लथाः ॥ १६ ॥ शुक्लजिह्वायकृत्वंडजलौ-
कावक्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः
॥ १७ ॥ सोष्माणोद्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यव-
मध्याहरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥

अर्थ—मस्सोका मुख नीला, लाल, पीला, और सुपेदाई लिये होवै उन म-
स्सोंमेंसे महीनधारसें रुधिर बुचाय और रुधिरकी वास आवै महीन और कोमल
तथा सिथिल हो और उनका आकार तो ताकी जीभ कलेजा और जोकके मु-
खके समान हो और देहमें दाह हो गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा,
अरुचि और मोह ये होवे और हातके स्पर्श करनेसें गरम मालूम होवै और जि-
सके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय जबके समान वी-
चमें मोटे हो और जिसके तचा, नख, नेत्रादिक हरे पीले हरतालके समान और
हलदीके समान होवे ये लक्षण पित्ताधिक ववासीरके हैं ।

कफकी ववासीरके लक्षण

श्लेष्मोल्बणामहामूलाघनामन्दरुजःसिताः । उत्सन्नोपचि-
ताःस्निग्धाःस्तब्धावृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥ पिच्छिलास्ति-
मिताःश्लक्षणाःकंडूढघाःस्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्या-
भास्तथागोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥ वंक्षणानाहिनःपायुब-
स्तिनाभिविकर्षिणः । सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीन-
साः ॥ २१ ॥ मेहकृच्छ्रशिशिरोजाज्वशिशिरज्वरकारिणः ।
क्लैव्याग्निमार्दवच्छर्दिशामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥ वसाभाः
सकफप्रायपुरीषाःसप्रवाहिकाः । नस्त्रवंतिनभिद्यन्तेपाण्डु-
स्निग्धत्वगादयः ॥ २३ ॥

अर्थ—कफकी ववासीरके लक्षण ये हैं जैसे की गुदाके मस्से महामूल (दूर धातुके प्रति जाननेवाले) कठिन मंद पीडाके करनेवाले सपेद, लंबे, मोटे, चिकने, कड़े, गोल, भारी, स्थिर, गाढ़े, कफसें लिपटे मणीके समान स्वच्छ खुजली बहुत होय और प्यारी लगे करील कटहर इनके कांटेके समान होय गायके थनकेस सदृश होय पेहूमें अफरा करनेवाले गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले श्वास, खांसी, खाली, ओकी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करने-वाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अशिका मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणीआदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफ मिला दस्त होवे प्रवाहिका उत्पन्न करने-वाले और मस्तोंमेंसें रुधिर न निकले गाढा मल होनेसेंभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना होय ये कफकी ववासीरके लक्षण हैं ।

सन्निपात और सहज ववासीरके लक्षण

सर्वैःसर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैःसहजानिच ।

अर्थ—जो पूर्ववातादिक तीनों दोषोंकी ववासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलतेहों उसको सन्निपातकी ववासीर जानना और येही लक्षण सहज ववा-सीरके हैं ।

१ सामान्यतोववासीररीहीग्वनीद्विधाभवेत् । खुनीअपिचवातस्यविनाकोपनसंभवेत् ॥ १ ॥
इति यवनशास्त्रे ।

रक्तार्शके लक्षण

रक्तोल्बणागुदेकीलाःपित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥ वटप्र-
रोहसदृशागुंजाविद्रुमसन्निभाः । तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं गच्छादवि-
ट्प्रपीडिताः ॥ २५ ॥ स्रवंतिसहस्रारक्तं तस्य चातिप्रवृत्ति-
तः । भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥ २६ ॥ ही-
नवर्णबलोत्साहोहतौजाः कलुषेन्द्रियः । विद्रव्यावंकठिनं
रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ॥ २७ ॥

अर्थ—गुदाके मस्तोंका रंग चिरमिठीके रंगके समान न होवे अथवा वटके अंकुरसँ हों और पित्तकी ववासीरके लक्षण जिसमे मिलतेहों । मुँगाके सदृशहों और दस्त कठिन उत्तरनेसँ मस्ते दवे तब उन मस्तोंमेंसँ दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पढनेसँ वर्षाकृतके मैडकाके समान पीला रंग होजाय रुधिरके निकलनेसँ (जो प्रगट लचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना, और खट्टीवस्तु, तथा शीतकी इच्छा इसादि दुःख तिनसँ पीडित होय) हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं, यह लक्षण रुधिरकी ववासीरके जानने चाहिये ।

अब इसी रक्तार्शनिदानके वातादिभेदकरके लक्षण

तनुचारुणवर्णचफेनिलंचासृगर्शसाम् । कटयूरुगुदशूलंचदौ-
र्बल्यं यदिचाधिकम् । तत्रानुबंधोवातस्य हेतुर्यदिचरूक्षणम् ॥ २८

अर्थ—ववासीरमेंसँ रुधिर थोडा, अरुणवर्ण और झागसंयुक्त निकले, और कमर, जांघ और गुदा इनमें दर्द होवे । यदि दुर्बलता विशेष होजावे और उसमें कोई रूक्षहेतु पडुंचाहोवे तौ इस रक्तार्शको वातको सम्बन्ध है ऐसँ जानना ।

कफसंबंधके लक्षण

शिथिलं श्वेतपीतंच विदक्लिग्धं गुरुशीतलं । यद्यर्शसांधनंचा-
सृक्तंतुमत्पांडुपिच्छिलम् ॥ २९ ॥ गुदंसपिच्छंस्तिमितंगुरु-
क्लिग्धंचकारणम् । श्लेष्मानुबंधोविज्ञेयस्तत्र रक्तार्शानुधैः ॥ ३०

अर्थ—जिसमेंसँ शिथिल, सफैद, पीला, चिकना, भारी और शीतल ऐसा दस्त होवे और जिसका रुधिर गाढा, तंतुयुक्त, पीला तथा बंधूलेयुक्त निकले

और गुदा बंबूलेयुक्त गीली होवे और भारी चिकनी ऐसों कोई कारण होवे तौ उस रक्ताशका कफका सम्बन्ध जानना ॥ ३० ॥ * शंका-क्योंजी पित्तके अनुबन्धकी ववासीर क्यों नहीं कही * उत्तर-रक्तके और पित्तके प्रायकरके समान लक्षण होनेसें नहीं कहे, क्योंकि पहले २४ के श्लोकमें कहिआयेहैं कि (पिचाकृतिसमन्विता) इति ।

ववासीरका पूर्वरूप

विष्टंभोऽन्नस्यदौर्वल्यंकुक्षेराटोपएवच । कार्यमुद्गारबाहुल्यं
सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ३१ ॥ ग्रहणीदोपपांडुर्तेराशंका
चोदरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ३२ ॥

अर्थ-अन्नका परिपाक अच्छी तरह हाय नहीं, अन्न कूखमें रहै देहमें दुर्बलता हो कूखमें अफरा हो अग्नि मंद होजावे डकार बहुत आवैं जंघामें पीडा थोडा दस्त उतरे संग्रहणी और पांडुरोगकी आंति होना क्योंकि इनके लक्षण मिलते है और उदररोगकी शंका होना यह लक्षण होवे तब जानना कि इस पुरुषके ववासीर रोग होवेगा ।

शंका-केवल गुदामें दोपोंके कोपसे ववासीर रोग होय है फिर सब देहमें कृशत्व और काला होजाना कैसें होताहै ।

उत्तर

पंचात्मामारुतःपित्तं कफो गुदवलित्रये । सर्वएवप्रकुप्यंतिगु-
दजानांसमुद्भवे ॥ ३३ ॥ तस्मादर्शांसिदुःखानिवहुव्याधि-
कराणिच । सर्वदेहोपतापीनिप्रायःकृच्छ्रतमानिच ॥ ३४ ॥

अर्थ-गुदाके तीन आठोंमें ववासीरके मस्से प्रगट होनेसें पांचप्रकारकी वायु पांचप्रकारका पित्त, पांचप्रकारका कफ ये सब दोष कुपित होते हैं ।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पांच प्रकारकी वायु, हृदय, गुदा, नाभि, कंठ और सर्व देह ये इनके क्रमसें स्थान हैं, तथा आलोचक, रंजक, साधक, पाचक, भ्राजक इन भेदोंसें पित्त पांचप्रकारका है । इनके स्थान आलोचक नेत्रोंमें, रंजक यकृत और प्लीहमें, साधक हृदयमें, पाचक पकाशय और आमाशयमें, भ्राजक त्वचामें रहताहै । ऐसैहीं कफवी अवलुंपक, क्लेदक, वांघक, तर्पक और श्लेपक या पांच भेदके क्रमकरके हृदय, आमाशय, जीभ, मस्तक और सन्धि इन पांचों स्थानमें रहता है इस प्रकार सर्व दोष अपने अपने पांच

पांच स्वरूपसैं कुपित होते हैं, यासे ये रोग (ववासीर) बहुत दुःखकारक और अनेकप्रकारकी व्याधि (उदर और अग्निमांघ इसादि उपद्रव) कर्त्ता सर्व देहको क्लेशदायक और विशेषकरके कुच्छ्रसाध्य तथा असाध्य जानने ।

मुखसाध्य लक्षण

बाह्यायांतुवलीजातान्येकदोषोल्बणानिच ।

अर्शासिसुखसाध्यानिनचिरोत्पतितानिच ॥ ३५ ॥

अर्थ—बाहरके आटेमें भई हो एक दोषोल्बण होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत न भयाहो ऐसी ववासीर मुखसाध्य है ।

कुच्छ्रसाध्यके लक्षण

द्वंद्वजानिद्वितीयायांवलीयान्याश्रितानिच ।

कुच्छ्रसाध्यानिनितान्याहुःपरिसंवत्सराणिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—दो दोषसैं प्रगट भईहो और दूसरी वली (अर्थात् आंटेमें) होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत होगयाहो ऐसी ववासीरके मस्से कुच्छ्रसाध्य होय है और जो बाहरकी वलीमें द्विदोषोल्बण होय और एक दोषोल्बण दूसरी वली (दूसरे अंटे)में होवे तौ येभी कुच्छ्रसाध्य जानना ।

असाध्यके लक्षण

सहजानिन्निदोषाणियानिचाम्यंतरावलिम् ।

जायंतेऽर्शासिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—सहज कहिये जन्म होनेके समयसैं जो होय अथवा तीन दोषोंसैं प्रगट भईहो और जो तीसरा अंतका आंटा है उसमें भईहो सो ववासीर असाध्य जाननी ।

याप्यलक्षण

शेषत्वादायुषस्तानिचतुःपादसमन्विते ।

याप्यंतेदीप्तकायामौप्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३८ ॥

अर्थ—यदि असाध्य ववासीर होय और उस रोगीकी आयुष्य बाकी होय, और चतुःपाद सम्पत्ति (वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये जैसे चाहिये ऐसे होवे) तौ और रोगीकी जठराग्नि प्रदीप्त होवे तौ रोगी याप्य जानना । और इससैं विपरीत होवे तौ रोगीको वैद्य छोड़देवे । [प्रसंगवस रोगी, वैद्य, औषध और सेवकके लक्षण कहे हैं ।]

वैद्योव्याध्युपसृष्टश्रमेषजं परिचारकः ।

एतेपादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ३९ ॥

अर्थ—वैद्य, रोगी, औषध और सेवक ए कर्मसाधनहेतु चिकित्साके पाद है ।

तत्रादौ वैद्यलक्षण

तत्वाधिगतशास्त्रार्थोदृष्टकर्मस्वयंकृती । लघुहस्तः शुचिः शू-

रः सज्जोपस्कृतभेषजः ॥ ४० ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्दीमान्व्यव-

सायीप्रियंवदः । सत्यधर्मपरोयश्च वैद्य ईदृक्प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ—शुद्धसे भलेप्रकार शास्त्रको पढाहो और दूसरे दृढ़ वैद्यकी चिकित्सा अर्थात् इलाज जिसने देखा होय और आप चिकित्सा करनेमें चतुर होय तथा सिद्धहस्त अर्थात् जिस रोगीका इलाज करे सो शीघ्र अच्छा होजावे पवित्र रहै शूर हो श्रेष्ठ औषधि चन्द्रोदय आदिरसादिक सामग्री जिसके समीप रहा करे तत्काल जिसकी बुद्धी स्फुरणवाली होय बुद्धिमान् संसारके व्यवहारको जानने-वाला होय मियवचन बोलनेवाला सत्य और धर्मका आचर्ण करनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होताहै ।

निषिद्धवैद्यके लक्षण

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ।

पंचवैद्यान् पूज्यन्ते धन्वन्तरि समा अपि ॥ ४२ ॥

अर्थ—मैले बल्लवाला बुरा बोलनेवाला अभिमानी व्यवहारमें न समझे और जो विना बुलाये आवे ये पांच वैद्य श्रीधन्वन्तरिके समानभीहों तौभी पूजने योग्य नहींहैं ।

रोगीके लक्षण

आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ।

उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यरुदास्तिकः ॥ ४३ ॥

अर्थ—आयुवाला बलयुक्त साध्य द्रव्यवान् ज्ञानी वैद्यकी आज्ञाकारी और आस्तिक ऐसा रोगी होना चाहिये ।

उत्तमऔषधके लक्षण

प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेहनिचोद्धृतम् ।

अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—उत्तम स्थानमें प्रगटभई होय और शुभ दिनमें उसको उखाड़ी होय थोड़ा मात्रा देनेसे बहुत गुण करै दुर्गंधरहितउत्तमस्वरूप और रसयुक्त होय सो औषध उत्तम है ।

दुष्टऔषधके लक्षण

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोखरमार्गजाः ।

जंतुवह्निहिमव्याप्तानौषध्यःकार्यसाधकाः ॥ ४५ ॥

अर्थ—इतने स्थानकी औषध कार्यकर्त्ता नहीं होती बांवीखोटीधरतीकी जलके समीपकी श्मशानकी ऊसरकी जहां रेह चूना निकलता होय तहांकी और रास्तेकी कीड़ोंकी खाई अग्निसे जरी भई जादेकी मारी ऐसी औषध कार्य करनेवाली नहीं होतीहै ।

अथ दूतके लक्षण

स्निग्धोऽलुगुप्सुर्बलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे ।

वैद्यवाक्यरुदश्रांतःपादःपरिचरःस्मृतः ॥ ४६ ॥

अर्थ—नवीन अवस्थाका बलवान् रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर होय वैद्यके वचनका करनेवाला होवै आलस्यरहित ऐसा परिचारक अर्थात् दूत होय इन पूर्वोक्तको चतुष्पाद सम्पत्ति कहतेहैं सो यह बिना आयुशेषके नहीं मिलते ।

अथ उपद्रवसें असाध्यत्व कहतेहैं

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथा ।

शोथोहृत्पार्श्वशूलंचतस्यासाध्योऽर्शसोहिसः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जिसके हाथ पैर गुदा नाभि मुख और अंडकोश इनमें सूजनहो हृदय और पसवादे दूखें वो रोगी असाध्य जानना ।

हृत्पार्श्वशूलंसंमोहश्छर्दिरंगस्यरुग्ज्वरः ।

तृष्णागुदस्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हृदय और पसवादेमें दर्द होय इन्दी और मन इनमें मोह होय वमन, अंगोंमें पीड़ा ज्वर प्यास गुदाका पकना (अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोड़ा) ये लक्षण होनेसें बवासीरवाला रोगी असाध्य जानना ।

तृष्णारोचकशूलार्चमतिप्रस्तुतशोणितं ।

शोथातिसारसंयुक्तमर्शासिक्षपर्यतिहि ॥ ४९ ॥

मात्रेप्रताम्यति ॥ ८ ॥ तृट्कासदाहमोहाःस्युर्व्याधयोऽत्य-
ग्निसंभवाः ।

अर्थ—क्षीण कफवाले पुरुषके कफ कुपित हो वायुसँ मिलकर उष्माके साथ पा-
चकस्थानमें जायकर अधिको बल देवे तब जठराग्नि वातकी सहायता पायकर प्र-
बल होकर देहको रूखा करदेवे और उसके जोरसँ बारंबार अन्नको पचावै । अ-
न्नको पचाय पीछे रुधिरआदि धातुओंको पचावै रुधिरआदिके पचनेसँ देहमें दु-
र्बलताका रोग और मृत्युको मनुष्य प्राप्त होवे जब अन्नको खावे तबतौ शांति
होजाय और जब अन्न पचजाय तब मूर्च्छित होय प्यास, खांसी, दाह, मोह
(अर्थात् कुछ सुष न रहै) ये रोग असंत अग्निसँ होताहै ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां अग्निमांघनिदानम् ।

अथ अजीर्णनिदानम् ।

अग्निमांघ और अजीर्ण इनका परस्पर कारण है इसीसे अग्निमांघ-
के पीछे अजीर्णनिदानको कहते हैं ।

आमंविदग्धंविष्टब्धंकफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णकेचिदि-
च्छंतिचतुर्थैरसशेषतः ॥ १ ॥ अजीर्णपंचमकेचिन्निर्दोषंदि-
नपाकिच । वदंतिषष्ठंचाजीर्णप्राकृतंप्रतिवासरम् ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्यके कफसँ आम, पित्तसँ त्रिदग्ध, वातसँ विष्टब्ध ऐसे तीन प्रका-
रका अजीर्णरोग होताहै और जो भोजन करा सो पक होय नहीं रस शेष रहै
सो रस शेषसँ चतुर्थ अजीर्ण होय है और रात्रिदिनमें जो आहार पचे और
जिसमें अफरा हड़ फूटन कुछ न होय ये पांचवा अजीर्ण किसीके मतसँ हैं और
जो निसही स्वाभाविक अजीर्ण रहै (विकृतिजन्य न होय) उसको छटा अजीर्ण
कहते हैं । इस अजीर्णके पचानेके अर्थ (मुश्रुत)में वामपार्श्वशयनादिक उपाय
कहे हैं सो करने चाहिये ।

भुक्त्वाशतपदंगच्छेद्वामपार्श्वेनसंविशेत् । शब्दरूपरसस्पर्श-
गंधांश्चमनसःप्रियान् । भुक्तवानुपसेवेततेनान्नंसाधुतिष्ठति ३

अर्थ—भोजनकरे पीछे सौ पैद डोलना बाईकरबट शयन करना अपने मनको

अजीर्णनिदान

५२

जो प्रियशब्द रूप, रस, स्पर्श, सुगंध उनको सेवन करना या प्रकार करनेसे अन्न भले प्रकार पचेहै ।

अजीर्णके कारण

अत्यंबुपानाद्विषमाशनाच्चसंधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । का-

लेपिसात्स्यंलघुचापिभुक्तमन्नंनपाकंभजतेनरस्य ॥ ४ ॥

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेनलुब्धेनशुद्धेन्यनिपीडितेन । प्रदे-

षयुक्तेनचसेव्यमानमन्नंसम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥

अर्थ—बहुत जल पीनेसे भोजनके समयको छोड़ पीछे भोजन करनेसे मल-मूत्र आदिवेगोंके रोकनेसे दिनमें सोवनेसे रातमें जागनेसे इनकारणोंसे भोजनके समय यदि लघु और शीतल पदार्थ खाय तो अन्न अच्छी रीतिसे नहीं पचे ये देहके कारण कहै ॥ ३ ॥ अब अजीर्णके कारण जो मनसे सम्बंध रखतेहैं उनको कहतेहैं ईर्ष्या कहिये परद्रव्यको न देखसकना, डरना, क्रोध करना इन कारणोंसे तथा लोभ शोक दीनता इन कारणोंसे और मत्सरता करना इन कारणोंसे मनुष्यके भोजन कराभया अन्न भलेप्रकार पचता नहीं हैं ।

आमादिकअजीर्णके लक्षण

तत्रामेगुरुतोत्क्रेदःशोथोगंडाक्षिकूटगः ।

उद्गारश्चयथाभुक्तमविदग्धःप्रवर्तते ॥ ६ ॥

अर्थ—उन चारों अजीर्णोंमें प्रथम आमाजीर्णके लक्षण कहतेहैं, पेट और अंग भारी होय वमनका आना ऐसा प्रतीत हो कपोल और नेत्रोंमें सूजन होवै और इसी अजीर्णके प्रभावसे जैसा भोजन करो होय मीठा आदि उसी प्रकारकी डकार आवै ।

विदग्धाजीर्णके लक्षण

विदग्धेभ्रमतृणमूर्च्छाःपित्ताच्चविविधारुजः ।

उद्गारश्चसधूमाम्लःस्वेदोदाहश्चजायते ॥ ७ ॥

अर्थ—विदग्ध अजीर्णमें भ्रम प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं और पित्तके अनेक रोग प्रगटहों तथा धूँएके साथ खट्टी डकार आवै पसीना आवै और दाह होय ।

विष्टब्धअजीर्णके लक्षण

विष्टब्धेशूलमाध्मानंविविधावातवेदनाः ।

मलवाताप्रवृत्तिश्चर्तभोमोहोऽगपीडनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—विष्टब्ध अजीर्णके यह लक्षण हैं शूल अफरा अनेक वातकी पीड़ा मल और अधोवायुका रुकजाना देह जकड़ जाय मोह और देहमें पीड़ा होय ।

रसशेषअजीर्णके लक्षण

रसशेषेऽन्नविद्वेषोऽहृदयाशुद्धिगौरवे ।

अर्थ—रसशेष अजीर्णके यह लक्षण हैं । अन्नमें अरुचि हृदयमें शुद्धि न होय और देह भारी होय ।

अजीर्णके उपद्रव

मूर्च्छाप्रलापोवमधुःप्रसेकःसदनभ्रमः ।

उपद्रवाभवत्येतेमरणंचाप्यजीर्णतः ॥ ९ ॥

अर्थ—मूर्च्छा, बड़बड़, औकारी अर्थात् वमन, लारका गिरना, ग्लानी, भ्रम ये अजीर्णके उपद्रव हैं और बहुत बड़ा अजीर्ण मनुष्यको मारभी डालता है ।

बहुत भोजनही अजीर्णका हेतु है उसीको कहते हैं

अनात्मवंतःपशुवद्भुजतेयेऽप्रमाणतः ।

रोगानीकस्यतेमूलमजीर्णप्राप्नुवन्तिहि ॥ १० ॥

अर्थ—जिन मनुष्योंकी इन्द्रि स्वाधीन नहीं हैं वे पशुके समान अप्रमाण भोजन करते हैं उन्हींके अनेक रोगोंका कारण अजीर्णरोग प्रगट होता है ।

अब कहते हैं कि अजीर्णरोगसे विषूचिकारोगकी उत्पत्ति होय है यासें अजीर्णके अनंतर विषूचिकाको कहैं हैं ।

अजीर्णमामंविष्टब्धंविदग्धंचयदीरितम् ।

विषूच्यलसकौतस्मान्नवेच्चापिविलंबिका ॥ ११ ॥

अर्थ—आम, विष्टब्ध और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहैं हैं उनसें विषूचिका (हैजा) अलस और विलंबिका पैदा होय हैं इनमें चौथा रस शेष अजीर्णको विषूच्यादिक उत्पादक नहीं लिखा है इसका कारण यह है कि उस रसाजीर्णको अपांशनाममात्रलकरके विषूचिकाआदिके आरंभल स्वभावादिकोपमतके कहनेसें आम, विदग्ध और विष्टब्ध इनसें क्रमपूर्वक विषूचिका, अलस, विलंबिका ये प्रगट होती हैं ऐसें कार्तिककुंड आचारी कहता है सो असत्य है क्योंकि विदग्धाजीर्णको विलंबिकाका प्रगट करना असम्भव है क्योंकि उस विलंबिकाको

विलंबिकाके लक्षण

तुष्टंतुमुक्तंकफमारुताभ्यांप्रवर्ततेनोर्ध्वमधश्चयस्यां ।

विलंबिकांतांभृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षतेशास्त्रविदःपुराणाः ॥१७॥

अर्थ—जिस मनुष्यके भोजन कराभया अन्न, कफ वातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नहीं जाय अर्थात् वमन, विरेचन न होय, उसको वैद्य विद्याके जान-नेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी विलंबिकारोग कहते हैं । * कोई शंका करे कि अलसक और विलंबिका इन दोनोंको वातकफके प्रबल होनेसे ऊपर नीचे प्रवृत्ति होती है इन दोनोंमें भेद क्या है सो कहो * उत्तर—अलसकमें शूल आदि घोर पीडा कर्त्ता होते हैं और विलंबिकामें नहीं हो इतनाही भेद है ।

अजीर्णसैं प्रगट विषूच्यादिको कहिकर अजीर्णजन्य

आमके दूसरे कार्यांतर कहैहैं

यत्रस्थमामंविस्जेतमेवदेशंविशेषेणविकारजातैः ।

दोषेणयेनावततंशरीरंतल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस ठिकानेपर आम रहता है उस ठिकानेपर जिस दोषसैं वह स्थान व्याप्त हो उसके लक्षण करके (पीडा, दाह, गौरव आदि) और आमजन्य विकारकरके (आमवातादिक) विशेष पीडा होती है यासे जाना गया कि और ठिकानेपर थोड़ी पीडा होती है और (यत्र) या सर्वनाम शब्दसैं क्लृपित भये वातादिकोंके सदृश आमका कोई स्थान नहीं है ये दिखाया ।

अब विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण

यःश्यावदंतोष्ठनखोऽल्पसंज्ञोवम्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ।

क्षामस्वरःसर्वविमुक्तसंधिर्याथान्नरोऽसौपुनरागमाय ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस रोगीके दांत, नख, होठ काले पड़जावे और संज्ञा जाती रहै वमनसैं पीडित होवे और नेत्र भीतरको बैठ जाय मन्द स्वर हो तथा हाथपैरकी संधि ढीली पड़जाय वो मनुष्य बचै नहीं विलम्बिकास्वरूपसैंही असाध्य है यह जैज्जट आचारीका मत है ।

निद्रानाशोऽरतिःकम्पोमूत्राघातोविसंज्ञिता । अमीडपद्रवा

घोराःविषूच्यांपंचदारुणाः ॥२०॥ प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्ण

जायतेवृणाम् । तन्मूलोरोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥२१॥

अर्थ—निद्राका नाश, मनका लगना, कम्प, मूत्रका रुकना, संज्ञाका नाश ये विषुचिकाके घोर पांच उपद्रव हैं। बहुधा भोजनकी विषमतासँ अजीर्णरोग मनुष्योंके होता है वही अजीर्ण सब रोगोंका कारण है उस अजीर्णरोगके नाश होनेसँ सब रोगोंका नाश होय है ये दोनों श्लोक शेषक हैं।

अजीर्ण जातारहा उसके लक्षण

उद्गारशुद्धिरुत्साहोवेगोत्सर्गोयथोचितः ।

लघुताक्षुत्पिपासाचजीर्णाहारस्यलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ—शुद्ध डकार आवै, शरीर मनका प्रसन्न होना, जैसा भोजन कराहो उसके सदृश मलमूत्रकी भलेप्रकार प्रवृत्ति होना, शरीर हलका होय परंतु कोष्ठ विशेष हलका हो, भूख और प्यास लगे, भोजन पचनेके उत्तर यह लक्षण होतेहैं।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरप्रणीतमाधुरीमाधवार्थबोधनीटीकायां अजीर्णरोगनिदानम् ।

अथ कृमिरोगनिदानम् ।

अजीर्णरोगसँ कृमिरोग प्रगट होय है इसीसँ अजीर्णरोगके अनन्तर कृमिरोग कहैहैं।

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याऽभ्यन्तरभेदतः

बहिर्मलकफासृग्विद्वज्जन्मभेदाच्चतुर्विधः

अर्थ—कृमिरोग दो प्रकारका है एक बाहरका दूसरा मल (पसीनाआदि) और कफ, रुधिर, विष्टा इन का रि प्रकारका है उनके नाम बीस प्रकारके हैं।

(७६) . चा-

बाह्यकृमीके नाम

नामतोर्विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशांबराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षादिनामतः । द्विधा ते कुष्ठपिटिकाकंद्वुगंडान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

अर्थ—वह कृमिरोगके बीस नामसे बीस भेद हैं। तहां बाहरके मलसँ प्रगट कृमि, तिलके प्रमाण श्वेत, काली, केश और वस्त्रमें रहनेवाली होती है तथा बहुत पैरकी और छोटी जू लीस नामसँ प्रसिद्ध दो प्रकारकी है ये कृमि कोढ़, पीढिका, साज, गांठ इत्यादि रोग प्रगट करै है।

कृमिरोगका कारण

अजीर्णभोजीमधुराम्लनित्योद्वप्रियःपिष्टगुडोपभोक्ता ।

व्यायामवर्जीचदिवाशयानोविरुद्धभुक्संलभतेकृमीस्तु ॥ ४ ॥

अर्थ—अजीर्णमें भोजन करे प्रतिदिन मीठा, खट्टा, खावे तथा पतला पदार्थ (जैसे कढ़ी, रायता आदि) खावे पिसा अन्न मैदा आदि और गुडके पदार्थ खावे और भोजन करके परिश्रम न करे दिनमें सोवै, विरुद्ध भोजन जैसे दूध, मछली आदिको खावे ऐसे पुरुषके कृमिरोग प्रगट होता है ।

कौनकारणसे कौनसी कृमि प्रगट होतीहै

माषपिष्टान्नलवणगुडशकैःपुरीषजाः । मांसमाषगुडक्षीर-
दधिशुक्लैःकफोद्भवाः । विरुद्धाजीर्णशकाद्यैःशोणितोत्थाभ-
वन्तिहि ॥ ५ ॥

अर्थ—उरद, पिसा अन्न, (लड्डू, घेवर, गुंझाआदि) नोनके, गुडके तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसे मलकी कृमि प्रगट होती है । मांस, उदद, गुड, दूध, दही कांजी ऐसे पदार्थ खानेसे कफकी कृमि पैदा होती है ।

विरुद्ध पदार्थ जैसे दूध मछली और आधा कच्चा आधा पका शाक जैसे हरा चनेका आदि ऐसे भोजनसे रुधिरजन्य कृमि पैदा होती है ।

पेटमें कृमि पडगईहो उसके लक्षण

ज्वरोविवर्णतागूलंहृद्रोगःसदनंभ्रमः ।

भक्तद्वेषोऽतिसारश्चसंजातकृमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—ज्वर हो शरीरका रंग औरही प्रकारका होजावे शूल हृदय दुखे वमन कीसी इच्छा हो भ्रम भोजन बुरा लगे दस्त होय ये लक्षण जिसके पेटमें गिंढोहा आदि कृमि पडजातें उसको होते हैं ।

कफकी कृमिके लक्षण

कफादामाशयेजातावृद्धाःसर्पितिसर्वतः । पृथुब्रध्निभाःके-

चित्केचिद्गुणपदोपमाः ॥ ७ ॥ रूढ़धान्यांकुराकारास्तनुदी-

र्घास्तथाणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्चनामतःसप्तधानुते ॥ ८ ॥

अंत्रादाउदरावेष्टाहृदयादामहारुजः । चुरवोदर्भकुसुमाःसु-

गंधास्तेचकुर्वते ॥ ९ ॥ हृल्लासमास्यस्त्रवणमविपाकमरो-
चकं । मूर्च्छाच्छर्दिस्तृषानाहकार्यश्च्यथुपीनसान् ॥ १० ॥

अर्थ—कफसँ आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ़जाती है तब चारों तरफ ढोलती है कोई चामके सदृश कोई गिंढोहेके आकार कोई धान्यके अंकुरके स-
मान होती है कितनीही छोटी, बड़ी, चौड़ी होती है और किसीका वर्ण श्वेत,
किसीका तामेके समान होय है उन्हींके सात नाम हैं सो इस प्रकार १ अंश्राद,
२ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगंध ये
नाम कोई सार्थक है और कोई निरर्थक है । व्यवहारके निमित्त पहले आचार्योंने
कहे हैं इन कृमियोंसँ वमन कीसी इच्छा होय मुखसँ पानी गिरै अन्नका पाक न
होना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कुश होवे, सृजन और पीनस
इतने विकार होतेहैं ।

रुधिरकी कृमिके लक्षण

रक्तवाहिशिरास्थानारक्तजाजंतवोऽणवः । अपादावृत्तता-
म्राश्वसौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ११ ॥ केशादारोमविध्वंसा
रोमद्वीपाउदुंबराः । षट्तेकुष्ठैककर्माणःसहसौरममातरः १२

अर्थ—रुधिरकी बहनेवाली नाडीन्में रुधिरसँ प्रगट कृमि बारीक, पादरहित,
गोल, तामेके रंगके होते हैं कोई बहुत बारीक होती है वो देखनेसेभी नहीं
दीखे ये कृमि छः प्रकारकी है उनके नाम ये हैं १ केशाद, २ रोमविध्वंस, ३
रोमद्वीप, ४ उदुंबर, ५ सौरम और ६ मातर ये कुष्ठको पैदा करतीहैं ।

विष्टासँ प्रगट कृमिके लक्षण

पकाशयेपुरीषोत्थाजायंतेऽधोविसर्पिणः । प्रवृद्धाःस्युर्भवेयु-
श्चतेयदाऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा
विड्गंधानुविधायिनः । पृथुवृत्ततनुस्थूलाःश्यावपीतसिता-
सिताः ॥ १४ ॥ तेषंचनाम्नाक्रमयःककेरुकमकेरुकाः । सौ-
सुरादामलूनाश्चलेलिहाजनयंतिच ॥ १५ ॥ विड्भेदशूल-
विष्टंभकार्यपारुष्यपांडुताः । रोमहर्षाग्निसदनगुदकंडूवि-
मार्गगाः ॥ १६ ॥

अर्थ—पक्षाशयमें विष्टासैं प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसती है जब यह वदजाती है तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्टाकी-सी वास आने लगती है। ये कृमि, बड़ी, छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफ़ेद, नीली होती है इनके पांच नाम हैं १ ककेरुक, २ अकेरुक, ३ सौसुरादा, ४ मलून, ५ लेलिह। जब ये कृमि मार्गको छोड़ अन्य मार्गमें जाते हैं तब इतने रोग प्रगट करे हैं दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा देहमें कठोरता पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि, और गुदामें खुजलीका होना।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां कृमिरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पांडुरोगाःस्मृताःपंचवातपित्तकफैस्त्रयः ।

चतुर्थःसन्निपातेनपंचमोभक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

अर्थ—मलसैं प्रगट कृमिरोग पांडु (पीलिया) रोगकों प्रगट करै है इसी कारण कृमिरोगके अनन्तर पांडुरोगका निदान कहैहैं तहां प्रथम पांडुरोगकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्निपातका और ५ माटीके खानेसैं ऐसैं पाण्डुरोग पांच प्रकारका कहा है।

पाण्डुरोगके कारण और सम्प्राप्तिके लक्षण

व्यवायमम्लंलवणानिमद्यंमृदंदिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम् ।

निषेव्यमाणस्यविदूष्यरक्तदोषास्त्वचंपांडुरतानयन्ति ॥ २ ॥

अर्थ—अति मैथुन, खट्टे पदार्थका भोजन, नोनका पदार्थ खानेसैं, बहुत मद्य पीनेसैं, मिट्टी खानेसैं, दिनमें सोनेसैं, अत्यंत तीखा पदार्थ खानेसैं इन कारणोंसे तीनो दोष रुधिरको विगाड़ देहकी त्वचाको पीले रंगकी कर देते हैं इस जगह रुधिरकातौ उपलक्षणमात्र है रक्तके कहनेसैं त्वचा, मांस इनको दूषित करते हैं।

हारीतने—रसको दूष्य कहा है दोष नाम वातादिक और दूष्य कहिये रसरक्तादि ।

पूर्वरूप

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।

विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाकोभविष्यतस्तस्यपुरःसराणि ॥ ३ ॥

अर्थ—त्वचाका फटना, मुखसें वारंवार थूकना, अंगोंका जिकड़ना मादी खानेकी इच्छा, नेत्रोंपर सूजन, मलमूत्र पीले हो, अन्नका परिपाक न होय ये लक्षण पांडुरोग प्रगट होनेवाला होय है तब होते हैं ।

वातपांडुरोगके लक्षण

त्वब्धूत्रनयनादीनारूक्षकृष्णारुणात्मता ।

वातपांड्वामयेकंपतोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

अर्थ—वातके पांडुरोगमें लचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापना कालापना और लाली होय है तथा कंप सुई छेदनेका साचभका अफरा, भ्रम आदिशब्दसें भेद और शूलदिकभी होतेहैं ।

पित्तपांडुरोगके लक्षण

पीतमूत्रशक्नेत्रोदाहतृष्णाज्वरान्वितः ।

भिन्नविट्कोऽतिपीताभःपित्तपांड्वामयीनरः ॥ ५ ॥

अर्थ—पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होते हैं मलमूत्र और नेत्र पीले हों दाह, प्यास, ज्वर इनसें पीडित हो मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांती अत्यंत पीली होती है ।

कफपांडुरोगके लक्षण

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।

पांडुरोगीकफाच्छुक्लैस्त्वब्धूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

अर्थ—मुखसें कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलस, शरीरका भारी होना, लचा, मूत्र, नेत्र, मुख, इनका सफेद होना इन लक्षणोंसें कफका पांडुरोग जानना ।

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका पांडुरोग जानना ।

सन्निपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दिनृष्णाकृमान्वितः ।

पांडुरोगीत्रिभिर्दोषैस्त्याज्यःक्षीणोहर्तेद्रियः ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त जो त्रिदोषजन्य पांडुरोगी और क्षीण होगयाहो और जिस रोगीके इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहीहो ऐसे रोगीको वैद्य साग दे ।

मिठी खानेसे प्रगट पांडुरोगके लक्षण

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः । कषायामारुतंपि-
त्तमुखरामधराकफं ॥ ८॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्याद्भुक्तंचरू-
क्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैवस्त्रोतांसिनिरुणद्धापि ॥ ९ ॥ इ-
न्द्रियाणांबलंहत्वातेजोवीर्यौजसीतथा । पांडुरोगंकरोत्या-
शुबलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

अर्थ—मिठी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होवे कषेली माटीसँ वात कुपित होय खारी माटीसँ पित्त और मीठी मा-
टीसँ कफ कुपित होवे फिर वही मिठी पेटमें जायकर रसादिक धातुओंको रूखा
करै। जब रौक्ष्य गुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाय। फिर वही
मिठी पेटमें विना पके रसको रस बहनेवाली नसोंमें प्राप्त कर उनके मार्गको रोक-
दे रसके बहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुकजाय तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने
अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नाश होय शरीरकी कांति तेज और ओज
कहिये सब धातुनका सार (हृदयमें रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट
कर उसमें बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश होता है।

विशेष लक्षण

शूनाक्षिकूटगंडभूःशूनपन्नाभिमेहनः ।

कृमिक्रोष्ठोऽतिसार्येतमलंचासृक्कफान्वितम् ॥ ११ ॥

अर्थ—नेत्र, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और को-
ठमें कृमि पडजाय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे सब पांडुरोगोंमें जब
पेटमें कृमि पडजाय है तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं यह (जैजट आचारीका)
मत है और कोई कहता है ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण हैं क्योंकि मृत्तिका-
जन्य पांडुरोगलक्षणके अनंतर लिखे हैं परंतु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पांडुरो-
गके लक्षण स्पष्ट कहे हैं।

असाध्य लक्षण

पांडुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतो न सिद्ध्यति । कालप्रकर्पाच्छूनां-

गोयोवापीतानि पश्यति ॥ १२ ॥ बद्धाल्पविट्सहरितंसक-

फ्रंयोऽतिसार्यते । दीनःश्वेतातिदिग्धांगश्छर्दिमूर्च्छातृपा-

न्वितः ॥ १३ ॥ सनास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तुपांडुः श्वेतत्वमाप्नु-
यात् । पांडुदंतनखोयस्तुपांडुनेत्रश्चयोभवेत् ॥ १४ ॥ पां-
डुसंधातदर्शीचपांडुरोगीविनश्यति । अंतेशुगूनं परिहीनमध्यं
म्लानंतथातेषुचमध्यशूनं ॥ १५ ॥ गुदेचशोफस्यथमुष्कयो-
श्चशूनंप्रताम्यंतमसंज्ञकल्पं । विवर्जयेत्पाण्डुकिनंयशोर्थी
तथातिसारज्वरपीडितंच ॥ १६ ॥

अर्थ—बहुत दिनका पांडुरोग काल बहुत बीतनेसे पुराना होजाय है सो अ-
च्छा नहीं होय ।

अथवा—सब देहमें सूजन आगई होवे और उसको पदार्थ पीले दीखें सोभी
असाध्य है ।

अथवा—जिस मनुष्यका बंधा हुआ मल थोडा हरे रंगका कफमिश्रित उतरे
सोभी असाध्य है ।

अथवा—जो पुरुष दीन कहिये ग्लानयुक्त हो और जिसकी देहका श्वेत वर्ण
हो और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसे पीडित होवे सो पांडुरोगी नष्ट होवे ।

अथवा—जो रुधिरक्षय होनेसे पांडुरोग उत्पन्न होय सोभी असाध्य है जिसके
दांत, नख और नेत्र पीले होय वो रोगी असाध्य है । जिसको सब पदार्थ पीलेही
पीले दीखें वो रोगी मरे । हाथ, पैर, शिर इनमें सूजन हो और जिसका मध्य प-
तला होय ऐसा पांडुरोगी असाध्य है यासें विपरीत साध्य है ।

जिस रोगीके देहके मध्यमें सूजन हो और हाथ, पग, शिर ये सूखजाय तथा
शुदा, लिंग इनमें सूजन होय तथा मरेके समान होगया होय ऐसे पांडुरोगीको
जिस वैद्यको यशकी इच्छा हो सो त्याग दे । उसीप्रकार अतिसार और ज्वर इ-
नसें पीडित रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १६ ॥ परंतु इस अंतके श्लोकमें जो (पां-
डुकिनं) यह पाठ है इस जगह (पानकिनं) ऐसा पाठ कोई आचारी मानते हैं
सो ठीक है क्योंकि ऐसा पढ़नेसे पांडुरोगकी अवस्था अर्थात् पांडुरोगका भेद
जो पानकी है उसकेभी लक्षण इस पाठसे आगये सो (मुश्रुत) में लिखाभी है
इसीका आशय लेकर किसीने लिखाभी है । यथा—

अंतेगूनःकृशोमध्येत्वथवागुदशोफसि ।

गूनोज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तुपानकी ॥ १७ ॥

१ सकामलापानकिपांडुरोगः कुम्भाह्व्योलाघविकोलसाह्वयः इति ।

अर्थ—जिस मनुष्यके हाथपैरपर सूजन होय और देहका मध्य कृश होगया होय अथवा गुदा लिंगपर सूजन हो तथा ज्वर अतिसारकरके मुदाके समान होय यह लक्षण पानकी रोगके हैं । पांडुरोगका भेद कामला है ।

अथ कामलाके लक्षण

पांडुरोगीतुयोऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृज्यासं
दग्धवारोगायकल्पते ॥ १८ ॥ हारिद्रनेत्रः सभृशं हरिद्रत्वङ्-
नखाननः । रक्तपित्तशकृन्मूत्रोभेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ १९ ॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामलाबहुपित्तैषा-
कोष्ठशाखाश्रयामता ॥ २० ॥

अर्थ—जो पांडुरोगी असंत पित्तकारक वस्तुका सेवन करे उसके पित्त, रुधिर मांसको जलाय (दुष्ट कर) कामलारूप रोग प्रगट करनेको समर्थ होय उस मनुष्यके नेत्र असंत पीले होय त्वचा, नख और मुख ये पीले होय मल मूत्र काले होय अथवा पीले होय वह मनुष्य वर्षाऋतुके मेंढकेके समान पीला होवे इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होय दाह अन्न पचे नहीं दुर्बलता, अंगगलानि, अन्नमें अरुचि इनसैं पीडित होय जिसमें पित्त प्रवल ऐसी यह कामला एक कोष्ठाश्रय और दूसरी शाखा (रक्तादि धातु) आश्रित है । उसीप्रकार कामला स्वतंत्र होय है ।

अब कहतेहैं कि पांडुरोगकी उपेक्षा करनेसैंही कामलादिक होते हैं उसीकी दूसरी अवस्था कुंभकामला है ।

अथ कुंभकामलाके लक्षण

कालांतरात्स्वरीभूता कृच्छ्रास्यात्कुंभकामला ।

अर्थ—बहुत कालसैं पुरानी पड़नेसैं जो कुंभकामला होवे सो कृच्छ्रसाध्य होती है । कुम्भ कहिये कोष्ठ तद्वत् जो कामला अर्थात् कोष्ठाश्रय कामला ।

असाध्य लक्षण

कृष्णपीतशकृन्मूत्रोभृशं शूनश्च मानवः ।

संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रोयश्च ताम्यति ॥ २१ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो और शरीरपर सूजन विशेष होवे और नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये असंत लाल होय मोह होय वो कामलावान् रोगी बचे नहीं ।

दूसरे असाध्य लक्षण

दाहाऽरुचितृडानाहतंद्रामोहसमन्वितः ।

नष्टाग्निसंज्ञःक्षिप्रंचकामलावान्विपद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तंद्रा, मोह इन लक्षणयुक्त तथा मन्दाग्नि और विस्मृतिवान् कामलावाला रोगी तत्काल मरे ।

कुम्भकामलाके असाध्य लक्षण

छर्द्यरोचकहृत्तासज्वरक्लमनिपीडितः ।

नश्यतिश्वासकासार्तोविड्भेदीकुम्भकामली ॥ २३ ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायासश्रम इनसैं पीडित तथा श्वास खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुम्भकामलावाला रोगी मरजावे ।

पांडुरोगसैं हलीमक रोग प्रगट होताहै सो कहते हैं ।

यदातुपांडुवर्णःस्याद्वरितःश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्त-

न्द्रामन्दाग्नित्वंमृदुज्वरः ॥ २४ ॥ स्त्रीष्वहर्षेणगमर्दश्चदाहतृ-

ष्णारुचिर्भ्रमः । हलीमकंतदातस्यविद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

अर्थ—जिस समय पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होय और बल व उत्साह इनका नाश, तंद्रा, मन्दाग्नि, महीनज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसैं प्रगट हलीमक रोगके हैं ।

पानकी लक्षण

सन्तापेभिन्नवर्चस्त्वंबहिरन्तश्चपीतता ।

पांडुतानेत्रयोर्चस्यपानकीलक्षणंभवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—सन्ताप कहिये इन्द्री मन इनका ताप मलका पतला होना भीतर बाहर पीला होजावे और नेत्रोंका पीला होना ये पानकी रोगके लक्षण हैं ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवार्थवोधिन्यां भापाटीकायां पाण्डुकामला हली-

मकनिदानम् ।

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

पांडुरोगके सदृश रक्तपित्तकोभी पित्तजन्य होनेसे तदनन्तर
रक्तपित्तनिदानको कहते हैं

धर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः । तीक्ष्णोष्णक्षारल-
वणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥ पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु
शोणितम् । ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्ववाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥
ऊर्ध्वनासाक्षिकर्णास्यैर्मैदूयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च
समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

अर्थ—धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चल-
नेसे, अति मैथुन करनेसे, मिर्च आदि तीखी वस्तु खानेसे, अधिक तापनेसे,
जवाखार आदि खारे पदार्थ नोनते आदिले लवणके पदार्थ खट्टी, कड़वी ऐसी
वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इसादि गु-
णोंसे रुधिरको बिगाड़े तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा दोनों मार्ग
होकर प्रवृत्त हो (निकले) ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनकेद्वारा निकले
और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और
जब रुधिर अत्यंत कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसे निकले हैं ।

पूर्वरूप

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ।

लोहगंधिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—ग्लानि, शीतकी इच्छा, कंठसे धूआं निकलना वमन और तपाये भये
लोहपर जल गेरनेसे जैसी गंध आवै ऐसी श्वास लेनेसे गंधका आना । जिस मनु-
ष्यमें इतने लक्षण मिलते होय उसके जानना कि इसके रक्तपित्त प्रगट होवेगा ।

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण

सांद्रं सपांडुसंलक्षितं पिच्छिलं च कफान्वितं ।

अर्थ—सघन कुछ पीला और कुछ चिकना तथा गाढ़ा ऐसा रक्तपित्त कफ-
मिश्रित जानना ।

वातिक रक्तपित्तके लक्षण

इथावारुणसफेनचतनुरुक्षंचवातकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—नीला वर्ण, लाल वर्ण, कुछ झागयुक्त पतला और रूखा ऐसा रक्तपित्तवातका जानना ।

पित्तके रक्तपित्तके लक्षण

रक्तपित्तकपायाभंरुष्णंगोमूत्रसंनिभम् ।

मेचकागारधूमाभमंजनाभंचपैत्तिकम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त काढेके रंगसमान हो काला गौंके मूत्रसमान हो अथवा मारकी चन्द्रिकाके समान नीलवर्ण होय अर्थात् बंजनी रंगके सदृश होय घरके धुआँके मुर्माके समान होय ये पित्तके रक्तपित्तके लक्षण हैं * आँका—क्याँजी केवल पैत्तिक रक्तपित्त नहीं होसके हैं कारण इस्का यह है कि जैसे कफके रक्तपित्तका मार्ग कहा है इसप्रकार पित्तके रक्तपित्तका नहीं कहा * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह मार्ग जो कहा है सो वातकफके लक्षण प्रति नहीं कहा है ।

द्विदोषजाद लक्षण

संसृष्टलिंगंसंसर्गात्रिलिङ्गसान्निपातिकं ।

ऊर्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतान्वितम् ॥ ७ ॥

द्विमार्गकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते ।

अर्थ—दो दोषके मिलनेसे जो रक्तपित्त होय है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलनेहों उसका सन्निपातका रक्तपित्त जानना ऊपरके मार्गमें कफका और नीचेके मार्ग द्वारा वातका और दोनों मार्गसे जो रक्तपित्त निकले सो वात और पित्त इन दोनोंमें प्रगट भया जानना ।

ऊर्ध्वगादिकोंका माध्यामाध्यावचार

ऊर्ध्वसाध्यमधोचाप्यमसाध्यंयुगपद्वतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—ऊपरके मार्गसे जो निकले सो माध्य है [क्योंकि कफमें प्रगट है सो कफके रक्तपित्तमें साथ नीचे रग कफ पित्तके हरण कर्त्ता होते हैं] और नीचेके मार्गमें जिसमें रुधिर गिरे सो आप्य (माध्यामाध्य) है [इसका कारण यह है कि पित्तके हरणमें विरेचन मुख्य है और इसपर दानांपन दायन वर्जनात्मा म

धुर रस प्रधान है वमन देनेसे विरुद्धमार्गी होय है अर्थात् वेगमात्रका अवरोधक है । परंतु पित्तका हरण करनेवाला नहीं है] । और दोनों मार्गसे गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्य है । कारण इसपर विरुद्ध चिकित्सा करनी पड़ती है ।

साध्य होनेके कारण

एकमार्गबलवतोनातिवेगंनवोत्थितम् ।

रक्तपित्तसुखेकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥ ९ ॥

अर्थ—बलवान् पुरुषके एक मार्ग (अर्थात् ऊपरके मार्ग) से जाता होय अति वेग नहीं होवे नवीन प्रगट भया होय और हेमन्त शिशिर कालमें प्रगट भया हो और दुर्बलता आदि उपद्रवरहित होय । ऐसा रक्तपित्त साध्य होय है ।

दोषभेदसे साध्यासाध्यलक्षण

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते ।

त्रिदोषजमसाध्यंस्थान्मंदाग्नेरतिवेगितम् ॥ १० ॥

व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यानश्रतश्चयत् ॥ ११ ॥

अर्थ—एक दोषका रक्तपित्त साध्य है द्विदोषका याप्य है और तीनों दोषोंका असाध्य है । मन्दाग्नि अतिवेगसे होय रोगसे क्षीण देहवालेका बूढ़े मनुष्यके और जिसका आहार थक गया होय ऐसे मनुष्यके रक्तपित्त असाध्य होय है ।

रक्तपित्तके उपद्रव

दोर्बल्यश्वासकासज्वरवमधुमदाःपांडुतादाहमूर्छाभुक्तेधोरो

विदाहस्त्वधृतिरपिसदाढ्यतुल्याचपीडा । तृष्णाकोष्ठस्य

भेदःशिरसिचतपनंपूतिनिष्ठीवनत्वंभक्तद्वेषाविपाकौविकृति-

रपिभवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १२ ॥

अर्थ—अशक्तता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, धतूरेके फल खानेसे जैसी अवस्था होय ऐसी अवस्था, शरीरका पीला वर्ण होजावे, दाह, मूर्च्छा, अन्न खानेसे असंत दाह होय, अधीरजपना, सर्व काल हृदयमें विलक्षण पीडा, प्यास, कोष्ठ-भेद (अर्थात् मल पतला होय), मस्तकमें पीडा, दुर्गन्धयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना, ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं और उसीप्रकार उस रक्तपित्तकी विकृतीभी होय हैं सो आगे (मांसप्रक्षालनाभं) इत्यादि श्लोककरके कहते हैं ।

असाध्य लक्षण

मांसप्रक्षालनाभंक्रथितमिवचयत्कर्दमाभोनिभंवामेदःपूया-
स्त्रकल्पंयत्कृदिवयदिवापक्कजम्बूफलाभम् । यत्कृष्णंयञ्चनी-
लंभृशमतिकुणपंयत्रचोक्ताविकारास्तद्वर्ज्यैरक्तपित्तंसुरपतिध-
नुषायञ्चतुल्यंविभाति ॥ १३ ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त मांस धोये हुए जलके समान हो अथवा सड़े पानीके स-
मान अथवा कीचके समान, अथवा जलके समान, उसीप्रकार भेद राघ रुधिर
इनके समान, अथवा कलेजेके टुकड़ेके समान, अथवा पकी जामनके समान,
किंवा काले रंगका किंवा नील कहिये पपैया पक्षीके पंखके समान अथवा जिसमें
मेरखट मल कीसी वास आवै और जिसमें पूर्वोक्तकहे श्वासकासादि विकारयु-
क्त हों ऐसा रक्तपित्त वर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्णसमान रंग
हो सोबी साज्य है अर्थात् ऐसे रक्तपित्तका वैद्य चिकित्सा न करे ।

दूसरे असाध्य लक्षण

येनचोपहतोरत्तरक्तपित्तेनमानवः ।

पश्येदृश्यंविद्यञ्चापितञ्चासाध्यमसंशयम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जिस रक्तपित्तने मनुष्यको ग्रसलिया होय वो दृश्य कहिये घटपटादि
और अदृश्य कहिये आकाश इनको रक्तवर्णका देखे वो रोगी निःसन्देह
असाध्य जानना ।

दूसरे असाध्य लक्षण

लोहितंछर्दयेद्यस्तुबहुशोलोहितेक्षणः ।

लोहितोद्गारदर्शीचन्त्रियतेरक्तपौत्तिकः ॥ १५ ॥

अर्थ—जो बारंवार रुधिरकी वमन करे और जिसके लाल नेत्र होय तथा ड-
कारभी लाल आवै सो रक्तपित्तवाला रोगी मरजावे ।

इति श्रीपण्डितदत्तरामभाथुरनिर्मितमाथुरीमाधवार्यदीपिकाभाषाटीकायां रक्तपित्तनिदानम् ।

अथ राजयक्ष्मनिदानम् ।

वेगरोधात्क्षयाच्चैवसाहसाद्विषमाशानात् ।

त्रिदोषोजायतेयक्ष्मागदोहेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

अर्थ—वात, मूत्र, पुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे अति मैथुन, उपवास, इर्ष्या, खेद इत्यादिक धातुक्षयके कारणोंसे बलवानसे वैर करनेसे विषमाशन कहिये कुसमय थोड़ा अथवा बहुत भोजन करनेसे इन चार कारणोंसे तीनों दोषोंके कोपसे मनुष्यके राजयक्ष्मा रोग होय है । वेगका रोकनाही वातकोपका कारण है यह सत्य है तथापि वातकोपसे अग्नि दुष्टहोकर कफपित्तका कोप होय है इन चार हेतुओंमें असंख्य हेतुओं अन्तर्भाव होय है । रसादि धातुके शोषण (सुखाने)से इस रोगको (शोष) कहते हैं । तथा शरीरमें पाचनादि सर्व क्रियाओंको क्षयकरे है इसीसे इस रोगको (क्षय) कहते हैं । और राजा (चन्द्र) इस रोगसे अति पीडित भया इसीसे इसको (राजयक्ष्मा) कहते हैं । यह (सुश्रुत) का आशय है और (वाग्भट) ने इसको सर्व रोगोंका राजा कहा है इसीसे इसको (राजयक्ष्मा) नाम कहा है इस श्लोकमें जो कहा है कि त्रिदोषका एकही यक्ष्मारोग प्रगट होय है उसका तात्पर्य यह है कि तीनों दोषोंके कारणभेदसे अनेक प्रकारका नहीं है सो (सुश्रुत) में कहाही है और इस श्लोकमें (वेगरोधात्) इस पदसे केवल वात, मूत्र, मल इनकाही ग्रहण करना चाहिये । भ्रमादिक सबोंका ग्रहण नहीं है सो (चरक) में लिखा है इति ।

राजयक्ष्माकी विशिष्टसंभाषि

कफप्रधानैर्दोषैस्तुरुद्धेधुरसवर्त्मसु । अतिव्यवायि-
नोवापिक्षीणेरेतस्यनंतराः ॥ २ ॥ क्षीयन्तेधातवःसर्वे
ततःशुष्यतिमानवः ।

अर्थ—कफ है प्रधान जिनमें ऐसे जो वातादिक दोष तिनकरके रसके बहने-

१ संशोषणाद्रसादीनांशोषइत्यभिधीयते । क्रियाक्षयकरत्वाच्चक्षयइत्युच्यतेपुनः ॥ राजश्चंद्रमसो यस्माद्भूदेपकिलमयः । तस्मात्तंराजयक्ष्मेतिकेचिदाहुर्मनीषिणः ॥ इति ॥

२ एकएवमतःशोषःसन्निपातात्मकोयतः । उद्रेकात्तत्रलिंगानिदोषाणानिर्मितानिहि ॥ इति ॥

३ ह्रीमत्वाद्वाघृणित्वाद्वाभयाद्वावेगमागतम् । वातमूत्रपुरीषाणानिगृह्णातियदानरः ॥ इत्यादि ॥

वाली नाडियोंके मार्ग रुकजानेसे (इससे यह सूचना करी कि रसमार्ग बन्द होनेसे हृदयमें स्थित जो रस उसको बिगाड़ और उसी स्थानमें विकृति कहिये और प्रकारका स्वरूप करके खांसीके वेगसे मुखमार्ग होकर निकाले) सो (चरक)-में लिखाभी है “ इससे अनुलोम क्षय दिखाया ” “ अर्बु प्रतिलोम क्षय कैसा होय है उसको कहते है ” अथवा अति मैथुन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षीण होय है । जब शुक्र क्षीण होजाय तब समीपकी धातु क्षीण होय तब पुरुष सूखने लगे-जैसे शुक्र क्षीणके अनन्तर मज्जा क्षीण होय मज्जा क्षीणके अनन्तर हड्डी क्षीण होय ऐसे पूर्व पूर्व धातु क्षीण होय जाय । * शंका-क्योंकी रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र इनमें क्रमसे प्रत्येकके क्षीण होनेसे शुक्रका क्षय होना उचित है परंतु कार्यभूत शुक्रका क्षय होनेसे कारणभूत धातुओंका नाश कैसे होय है ? * उत्तर-जब शुक्रका क्षय होय है तब वात कुपित होताहै सो तंत्रान्तरोंमें लिखाहै अर्थात् धातुके नष्ट होनेसे पवनके बहनेवाली नाडियोंका मार्ग बन्द होकर वायुको कुपित करे तब वही पवन समीपकी मज्जा धातुको सुखावे तदनन्तर हड्डी और उसके पश्चात् मेदा इसी रीतिसे रसपर्यंत धातुओंको सुखावे है इस जगोपर * दृष्टान्त-है जैसे अग्निमें तपाया भया लोहका गोला गीली पृथ्वीमें धरनेसे प्रथम समीपकी पृथ्वीके आर्द्रपनेको शोषण करे पीछे दूरका गीलापना शोषण करे उसी रीतिसे यहां जानना चाहिये ।

पूर्वरूप

श्वासांगसादकफसंस्त्रवतालुशोषवम्यग्रिसादमदपीनसकास-
निद्राः । शोषेभविष्यतिभवन्तिसचापिजंतुःशुक्लेक्षणो भव-
तिमांसपरोरिरंसुः ॥ ३ ॥ स्वप्नेषुकाकशुकशहकनीलकंठगृ-
ध्रास्तथैवकपयःकुकलासकाश्च । तंवाहयंतिसनदीर्विजलाश्च
पश्येच्छुष्कांस्तरुण्यवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥

अर्थ-श्वास, हाथपैरका गलना, कफका थूकना, तालुकेका सूखना, वमन, मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं और उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते हैं और उस मनुष्यकी मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेकी इच्छा होती है और सपनेमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ,

१ रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, इसी रीतिसे शुक्रपर्यंत धातुओंका क्षय होय सो ।

२ प्रतिलोम कहिये शुक्रसे रसपर्यंत धातुओंका शोष ।

(मोर) गीघ, वन्दर, करकैटा इनपर अपनेको वैठा देखे और जलहीन नदीको देखे तथा पवन धूर और धूआं इनसे पीडित ऐसे वृक्ष देखे । चकारसै वृण, केवा, आदिका गिरना ये होते हैं ये सब स्वप्न क्षीररोग होनेके पहले दीखते हैं (सो चरकमें लिखा है) * शंका—क्योंजी शुक्रका तो क्षय होजाय है फिर (रिरिंघुः) यह पद क्यों धरा ? * उत्तर—यह केवल व्याधिके बढ़नेसे मनके दोषसे ज्ञानना चाहिये ।

त्रिरूपक्षयके लक्षण

अंशपार्श्वभितापश्चसंतापः करपादयोः ।

ज्वरःसर्वांगश्रैवलक्षणंराजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥

अर्थ—कन्धा और पसवाडेमें पीडा हाथपैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये राजयक्ष्माके लक्षण ये तीन लक्षण अवश्य होते हैं ऐसे चरकने कहा है ।

एकादशरूप षड् रूप और त्रिरूप शोषके लक्षण कहते हैं ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलसंकोचश्चांशपार्श्वयोः । ज्वरोदाहोऽति-

सारश्चपित्ताद्रक्तस्यचागमः ॥ ६ ॥ शिरसःपरिपूर्णत्वमभक्त-

च्छन्दएवच । कासःकंठस्यचोद्धंसोविज्ञेयःकफकोपतः ॥ ७ ॥

एकादशभिरेतैर्वाषड्विर्वापिसमन्वितम् । कासातिसारपार्श्व-

र्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ८ ॥ त्रिभिर्वापीडितंलिङ्गैर्ज्वरका-

सासृगामयैः । जह्याच्छोषार्दितंजंतुमिच्छन्सुविपुलंयशः ॥ ९ ॥

अर्थ—राजयक्ष्मा ये त्रिदोषसे उत्पन्न है इसमें दोषोंके न्यारे न्यारे मिलायकर सब ग्यारह रूप हैं ये व्याधिके प्रभावसे होते हैं सन्निपातज्वरके सदृश सर्व लक्षण सब दोषोंसे नहीं होते पृथक् पृथक् होते हैं सो दिखाते हैं । वादीके प्रभावसे स्वरभेद कन्धा और पसवाडे इनमें संकोच और पीडा होय पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना और कफके कोपसे मस्तकका भारीपना,

१ पूर्वरूपप्रतिश्रयायोदौर्वल्यंदोपदर्शनं । अदोपेष्वापिमावेपुकायेवीमत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्रुतश्चापिबलमांसपरिक्षयः । स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुंठने ॥ मक्षिकाघृणकेशादि-
तृणानांपतनानिच । प्रायोन्नपानेकेशानानखानांचाभिवर्द्धनम् ॥ पतत्रिभिःपतंगैश्चपदैश्चापि
घर्षणम् । स्वभेकेशास्थिराशीनामस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ जलाशयानांशैलानांवनानांज्योतिषा-
मपि । शुष्कतांक्षीयमाणानांपततांचापिदर्शनम् ॥ प्राग्रूपंबहु रूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः । इति ॥
अत्रश्रापदान्याप्रादयः ॥

अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं इसमें तीन तो वातसे और चार लक्षण पित्तसे तथा चारही लक्षण कफसे ऐसे सब ग्यारह लक्षणसे अथवा खांसी अतिसार, पसवाडेन्में पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर ये छः लक्षणोंसे अथवा ज्वर, खांसी और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे पीडित खईरोगवाले मनुष्य तथा जिस्का बल, मांस, क्षीण होगया होय ऐसे रोगीकों यशेच्छ वैद्य त्याग देय ऐसा रोगी असाध्य है ।

साध्यासाध्य विचार

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापिलिङ्गैर्वापिबलक्षये ।

युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोप्यतोऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—स्वरभेदादिक जो ग्यारह लक्षण कहे वो सब लक्षणकरके अथवा उनमेंसे आधे (अर्थात् छः लक्षणोंसे) अथवा तीन लक्षण कहे इन्से युक्त जो खईरोगी बल, मांस क्षीण होनेपर त्याज्य है । यदि बल, मांस, जिस्का क्षीण न भया हो परंतु सर्व लक्षणयुक्तभी है तथापि त्याज्य नहीं है उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

असाध्य लक्षण

महाशिनंक्षीयमाणमतिसारनिपीडितम् ।

शूनमुष्कोदरंचैवयक्ष्मिणंपरिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जो बहुत भोजन करे परंतु दिनदिनप्रति क्षीण होताजाय (ये असाध्य रोगी है) अतिसार करके अत्यंत पीडित होय सो रोगीभी असाध्य होय है क्यों कि खईरोगवालेका जीना मलके आधीन है (जैसे लिखा है) उक्तंच यथा—मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ इति ॥ और जिसके अंडकोश, और उदर ये सूजगयेहों ऐसा रोगी असाध्य है क्यों कि शोथवाला दस्तके कारनेसे अच्छा होय है सो इसपर दस्त करना वर्जित है इसीसे ऐसे रोगीको वैद्य सागदेय ।

कौनसे रोगीको औषध देना योग्य है सो कहतेहैं

ज्वरानुबंधरहितंबलवन्तंक्रियासहं ।

उपक्रमेदात्मवंतंदीप्ताग्निमरुशंनरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस खईरोगवाले मनुष्यको ज्वरका सम्बन्ध होय नहीं बलवान् औषधादि उपचारका सहनेवाला और जिसकी इन्द्री बलमें हो तथा जठराग्नि जि-



माधवनिदान

सकी दीप्त होय और कुश न होय ऐसे रोगीकी चिकित्सा (उपचार) करना चाहिये । इस श्लोकमें (अकुशं) इस पदके धरनेका यह प्रयोजन है कि पुष्ट देहवाला भी इस खईरोगसे हजार दिन बचसके है सोई ग्रन्थान्तरमें लिखा है ॥

असाध्यलक्षण

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।

कच्छ्रेणबहुमेहंतंयक्ष्माहंतीहमानवम् ॥ १३ ॥

अर्थ—सपेदनेत्र जिसके होगयेहोंय अन्न जिसको बुरा लगे ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मृतनेवाला अर्थात् मल मुखसे उतरे यासे ये दिखाया कि जो आहार खाया सो मल होजाय जब आहारका मल होगया तब उसके मांस, रुधिर इनका क्षय होय इसीसे यह असाध्य है । शुक्लाक्षदिक ये प्रत्येक अलग अलग भी असाध्य हैं । अब कहते हैं कि अति मैथुनादि करनेसे धातुका क्षय होय है इसीसे खईरोग प्रगट होय है ऐसा नहीं किंतु औरभी कारणसे होय है उसको कहते हैं ।

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषिणः ।

व्रणोरःक्षतसंज्ञौचशोषिणोलक्षणंशृणु ॥ १४ ॥

अर्थ—अति मैथुनका शोष, शोकशोषी, वार्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, मार्गशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इनके न्यारेन्यारे लक्षण कहता हूं ।

व्यवायशोषीके लक्षण

व्यवायशोषीशुक्रस्यक्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।

पांडुदेहोयथापूर्वक्षीयंतेचास्यधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ—व्यवायशोषी (अति मैथुनसे क्षीण भया) (सुश्रुत) के कहे अनुसार शुक्रक्षयलक्षणोंसे (शुक्रक्षय होनेसे लिंग और अंडकोशमें पीडा होय मैथुन करनेमें अशक्ति और बलसे मैथुन करै तौ बहुत देरमें शुक्रका श्राव होय और वह श्राव बहुत अल्प होय अथवा रुधिरका श्राव होय) पीडित होय उसके देहका वर्ण पीला होजाय और शुक्रसे मज्जा मज्जासे हृद्दी ऐसे उलटे धातु क्षीण होते जाते हैं ।

शोकशोषीके लक्षण

प्रध्यानशीलःस्वस्ताङ्गःशोकशोष्यपितादृशः ।

अर्थ—शोकशोषी अर्थात् शोचसे जिसको क्षय हो वह चिन्ता करे और हाथ,

१ परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः । सुभिपत्तिरुपक्रांतस्तरुणः शोपपीडितः ॥ इति ।

पैर गलने लगे तथा शुक्रक्षयव्यतिरिक्त शोषवान् हो और पांडुदेह होय ऐसा शोचसे क्षयवाला पुरुष होता है ।

जराशोषीके लक्षण

जराशोषीकृशोमन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १६ ॥ कं-
पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः । धीवतिष्ठे-
ष्मणाहीनंगौरवारुचिपीडितः ॥ १७ ॥ संप्रस्रुतास्य-
नासाक्षःशुष्करूक्षमलच्छविः ।

अर्थ—जरा (बुढ़ापा) शोषी मनुष्य कृश होय है उसके वीर्य, बुद्धी, बल और इन्द्री ये मन्द होजाय, कंप होय, अन्नमें अरुचि, फूटे कांसेके वासनको लकड़ीसे वजानेसे जैसा शब्द होय ऐसा शब्द होय कफरहित वारंवार थूके (अर्थात् कफके निकालनेके वास्ते यत्न करे तथापि कफ नहीं निकले) शरीर भारी रहै अरुचिसे पीडित (पुनः अरुचि ग्रहणविशेषताद्योतकके वास्ते कही है) मुख, नाक और नेत्र इन्से श्राव होय मल शुष्क उतरे और देहकी कांति निस्तेज होय ।

अध्वप्रशोषीके लक्षण

अध्वप्रशोषीस्त्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः ।

प्रसुप्तगात्रावयवःशुष्कक्लोमगलाननः ॥ १८ ॥

अर्थ—अध्वप्रशोषी (अति मार्ग चलनेसे क्षीण हुआ) मनुष्यके हाथ, पैर शिथिल होजावे उसके देहका वर्ण भूजेपदार्थके सदृश और खरदरा होय है सर्व देहमें प्रसुप्ता हृदयमें प्यासका स्थान है सो गला और मुख इन्का सूखना ।
* शंका—क्योंजी जराशोषीके अनन्तर व्यायामशोषीके लक्षण कहने चाहिये अध्व (मार्ग) शोषीके लक्षण नहीं कहने चाहिये फिर माधवाचार्यने अध्वशोषीके लक्षण क्यों कहे । * उत्तर—अध्वशोषीके लक्षण इसवास्ते पहले कहे कि व्यायामशोषीमें इसके सब लक्षण मिलते हैं । अच्छा आप ऐसे कहेंगे तो व्यायामशोषीमें अध्वशोषीके कौनसे लक्षण नहीं मिलते ? * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु अध्वशोषीमें उरःक्षत आदि चिन्ह नहीं है यासे पूर्व अध्वशोषीके लक्षण कहे ।

व्यायामशोषीके लक्षण

व्यायामशोषीभूयिष्ठमेभिरेवसमन्वितः ।

लिङ्गैरुरःक्षतकृतैःसंयुक्तश्चक्षतंविना ॥ १९ ॥

अर्थ—व्यायामशोषी (अत्यंत दंडकसरत आदि श्रमसे क्षीण) मनुष्य, विशेष-

करके अध्वशोषीके लक्षण स्रस्तांगतादियुक्त होय है, अर्थात् जो लक्षण अध्वशो-
षीमें थोड़ेथोड़े होते हैं वे व्यायामशोषीमें अधिक होते हैं और उस मनुष्यके पा-
वके विनाही उरःक्षतके लक्षण मिलते हैं उरःक्षतके लक्षण (मुश्चुत)में लिखे हैं ।

तीनकारणोंसे त्रणशोष होय है सो कहते हैं ।

रक्तक्षयाद्देदनाभिस्तथैवाहारयंत्रणात् ।

ब्रणिनश्चभवेच्छोषःसचासाध्यतमोमतः ॥ २० ॥

अर्थ—रुधिरके क्षयसे फोड़ाकी पीड़ासे तैसेही आहारके घटनेसे त्रणीपुरुषके
जो शोष होय सो असंत असाध्य जानना ।

उरःक्षतसे धातुशोषहोनेका सम्भवहै अतएव शोषप्रकर्णमें निदान सहित
उरःक्षतरोग कहतेहैं

धनुषायस्यतोऽत्यर्थंभारमुद्वहतोगुरुं । युध्यमानस्यबलिभिः

पततोविषमोच्चतः ॥ २१ ॥ वृषंहयंवाधावतंतदम्यंचान्यनि-

गृहृतः । शिलाकाष्ठादमनिर्घातान्क्षिपतोनघ्नतःपरान् ॥ २२ ॥

अधीयानस्यवाऽप्युच्चैर्दूरंवाव्रजतोद्भुतम् । महानदीर्वातरतो

हयैर्वासहधावतः ॥ २३ ॥ सहस्रोत्पततोदूरात्तूर्णवातिप्रनृ-

त्यतः । तथान्यैःकर्मभिःक्रूरैर्भृशमभ्याहतस्यच ॥ २४ ॥ ताडि-

तेक्षवसिव्याधिर्बलवान्समुदीर्यते । स्त्रीषुचातिप्रसक्तस्यरू-

क्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २५ ॥

अर्थ—बहुत तीरंदाजी करनेसे बहुत भारीवस्तु उठानेसे बलवान् पुरुषके साथ
युद्ध करनेसे उंचे स्थानसे गिरनेसे वैल घोड़ा हाथी ऊंट इत्यादिक दौड़ते हुआ
को थामनेसे भारी शिला लकड़ी पत्थरनिर्घात (अस्त्रविशेष) इनके फेंकनेसे
शत्रुको मारनेवाला जोरसे वेदादिक शास्त्रको पढ़नेसे अथवा दूर दिशावर शीघ्र
चलकर जानेसे गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला अथवा घोड़ाके साथ दौ-
ड़नेवाला अकस्मात् कला खानेवाला जल्दी जल्दी बहुत नाचनेसे याप्रकार दूसरे
मच्छयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे उर (छाती) फट जातीहै जैसे पुरुषकी छाती
दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधी उत्पन्न होयहै और बहुत मैथुन करै तथा

१ तस्योरसिक्षतेरक्तंभूयःश्लेष्माचगच्छति । कासमानश्छर्दयेच्चपीतरक्तासितारुणम् ॥ संतप्तवर्ण-
सोऽप्यर्धदयनात्परिताम्यति । दुर्गंधोच्छ्वासवदनोभिज्वर्णस्त्रोऽनरः ॥

रूखा थोड़ा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसे अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोड़ा और अनमानका भोजन करनेवालेके ।

उरोविरुज्यतेऽत्यर्थमिद्यतेऽथविरुज्यते । प्रपीड्यतेतथापार्श्वे
शुष्यत्यङ्गप्रवेपते ॥ २६ ॥ क्रमाद्वीर्यबलवर्णोरुचिरग्निश्चही-
यते । ज्वरोव्यथामनोदैर्न्यविद्भेदोऽग्निवधादपि ॥ २७ ॥ दु-
ष्टःश्यावःसुदुर्गन्धिःपीतोविग्रथितोबहु । काशमानस्यचाभी-
क्ष्णंकफःसास्त्रःप्रवर्त्तते ॥ २८ ॥ सक्षतःक्षीयतेऽत्यर्थतथाशु-
क्रौजसोःक्षयात् ।

अर्थ—पूर्वोक्त लक्षणयुक्त ऐसे पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूककर ढाले ऐसा मालूम होय और हृदयमें असंत पीड़ा होय और उसके पसवाडोमें असंत पीड़ा होय अंग सब सूखनेलगे तथा थरथर कांपने-लगे और शक्ति मांस वर्ण रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटनेलगे ज्वर रहै व्य-था होय मनमें सन्ताप दीन होजाय अग्नि मन्द होनेसे दस्त होनेलगे और वारं-वार खांसते खांसते दुष्ट काला असन्त दुर्गन्धयुक्त पीला गाँठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे यामकार क्षतरोगी असंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण होजाय ऐसा नहीं किन्तु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब घातून्का तेज) इनका क्षय होनेसे ये मनुष्य क्षीण होय है ॥

पूर्वरूप

अव्यक्तलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ २९ ॥

अर्थ—उस उरःक्षतके अप्रगट लक्षणोंको पूर्वरूप कहतेहैं ।

क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण

उरोरुक्शोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकःकफे ।

क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वेष्टकटिग्रहः ॥ ३० ॥

अर्थ—क्षतक्षीण रोगीके हृदयमें पीड़ा होय रुधिरकी उलटीकरे और विशिष्ट कांस (अर्थात् पूर्वकहे जो दुष्टश्वासादि लक्षण उन्हींसे युक्त होय) और रुधिर-युक्त मूत्रका उतरना पसवाड़े पीठ और कमर इन्में पीड़ा होय ॥

अथ साध्यलक्षण

अल्पलिङ्गस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतो नवः ।

परिसंवत्सरोयाप्यःसर्वलिङ्गविवर्जयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिसमें थोड़े लक्षण मिलतेहों और जिसको अग्नि दीप्त होय ऐसे पुरुष बलवान्के होय तथा रोग नवा हो तो वो साध्य है और रोगको भये एक वर्ष व्यतीत होगया होय सो याप्य (साध्यासाध्य) है और जिसमें सर्व लक्षण मिलते होय सो असाध्य है उसको वैद्य त्याग देय ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधुरीमाधवार्थदीपिकामाधुरीभाषाटीकायां राजयक्ष्म-
रोगः समाप्तः ॥

अथ कासनिदानम् ।

अथ कारणसम्प्राप्ति और निरुक्ति

धूमोपघाताद्रजसस्तथैवव्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गत्वादपिभोजनस्यवेगावरोधात्क्षवधोस्तथैव ॥ १ ॥ प्राणो-

द्बुदानानुगतःप्रदुष्टःसंभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेतिवक्रात्सहसासदोषोमनीषिभिःकासइतिप्रदिष्टः ॥ २ ॥

अर्थ—नाक मुखमें धूर वा धूआ जानेसे दंड़कसरत, रूक्षाच्च इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलयूत्रके रोकनेसे, उसीप्रकार छिक्का अर्थात् (छिक्क) आतीहुईके रोकनेसे, प्राणवायु असंत दुष्ट होकर और दुष्ट उदानवायुसे मिलकर कफपित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटेकांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वानलोग कांस (खांसी) कहते हैं ।

पंचकासाःस्मृतावातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।

क्षयायोपेक्षिताःसर्वैर्बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय ऐसे पांचप्रकारकी खांसी होती हैं इनकी औषध न करै तो सर्वका क्षयरूप होजाय है ये उत्तरोत्तर बलवान् जाननी । जैसे वातसे पित्तकी पित्तसे कफकी कफसे क्षतकी क्षतसे क्षयकी खांसी प्रबल है ।

पूर्वरूप

पूर्वरूपंभवेत्तेषांशूकपूर्णगलास्थता ।

कंठेकंठूश्चभोज्यानामवरोधश्चजायते ॥ ४ ॥

अर्थ—मुख और गलेमें कांटेसे पड़जाय तथा कंठमें खुजली चले भोजन करा न जाय ये खांसी होनेहारेके लक्षण हैं ।

वातकी खांसीके लक्षण

हृच्छंखमूर्धोदरपार्श्वगूलीक्षामाननःक्षीणबलस्वरौजाः ।

प्रसक्तवेगस्तुसमीरणेनभिन्नस्वरःकासतिशुष्कमेव ॥ ५ ॥

अर्थ—हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम ए क्षीण पड़जाय वारंवार खांसीका उठना स्वरभेद और सूखी खांसी उठे यह वातकी खांसीके लक्षण हैं ।

पित्तकी खांसीके लक्षण

उरोविदाहज्वरवक्रशोषैरभ्यर्दितस्तित्तमुखस्तृषार्तः ।

पित्तेनपीतानिवमेत्कटूनिकासेनपांडुःपरिदह्यमानः ॥ ६ ॥

अर्थ—पित्तकी खांसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसें पीडित हो मुख कड़ुआ रहै प्यास लगे पीले रंगकी और कड़ुवी ऐसी पित्तके प्रभावसें वमन होय रोगीका पीला वर्ण होजाय और सब देहमें दाह होय ।

कफकी खांसीके लक्षण

प्रलिप्यमानेनमुखेनसीदन्तिशारुरुजाऽर्त्तःकफपूर्णदेहः ।

अभक्तरुग्गौरवकंडुयुक्तःकासेद्भृशंसांद्रकफःकफेन ॥ ७ ॥

अर्थ—कफकी खांसीसे मुख कफसें लिपटा रहै मथवाय और सब देह कफसें परिपूर्ण रहै अन्नमें अरुचि शरीर भारी रहै कंठमें खुजली और रोगी वारंवार खांसे कफकी गांठ थुकनेसें मुख मालुम होवे ।

क्षतकासलक्षण

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः । रूक्षस्थोरःक्षतंवायु-

र्गृहीत्वाकासमावहेत् ॥ ८ ॥ सपूर्वकासतेशुष्कततःष्ठीवेत्सशो-

णितम् । कंठेनरुजताऽत्यर्थविरुग्णेनेवचोरसा ॥ ९ ॥ सू-

चीभिरिवतीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेनशूलिना । दुःखस्पर्शेनगूले-

नभेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्व-

र्थपीडितः । पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

अर्थ—बहुत स्त्रीसंग करनेसे भारके उठानेसे बहुत मार्ग चलनेसे मल्लयुद्ध (कुस्ती) करनेसे हाथी घोड़ा दौड़नेको रोकनेसे इनकारणोंसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करे। सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे पीछे रुधिरमिला थूके कंठ अखंत दूखे हृदय फूटेसदृश मालुम होय और तीसी मुई-केसे चमका चले और उसको हृदयका स्पर्श सुहाय नहीं दोनों पसवाडोंमें शूल होय यह (चाग्भट) का मत है तथा दाह हो उस रोगीके गांठ गांठमें पीड़ा होय ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घुंघुं शब्द करे।

क्षयकी खांसीके लक्षण

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनांशो-
चतानृणांव्यापन्नेऽग्नौत्रयोमलाः ॥ १२ ॥ कुपिताःक्षयजं
कासंकुर्युर्देहक्षयप्रदम् । सगात्रशूलज्वरदाहमोहात्प्राणक्षयं
चापिलभेतकासी ॥ १३ ॥ शुष्यन्विनिष्ठीवतिदुर्बलस्तुप्र-
क्षीणमांसोरुधिरंसपूयम् । तंसर्वलिंगंभृशदुश्चिकित्स्यंचिकि-
त्सितज्ञाःक्षयजंवदन्ति ॥ १४ ॥

अर्थ—कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे अति मैथुन मलमूत्रादिक वेगधारण इनसे अति दया करनेसे अति शोक करनेसे अग्नि मन्द होय (अर्थात् आहार थककर वायुकुपित हो अधिको नष्ट करे) तब तीनो दोष कोपको प्राप्त हो क्षय-जन्य देहका नाशक ऐसी खांसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करै शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होय तब यह प्राणका नाश करे सूखी खांसी रुधिर मांस शरीरको सूखजानो रुधिर और राध थूके ए सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अति कठिन ऐसे इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं।

साध्यासाध्यविचार

इत्येषक्षयजःकासःक्षीणानदिहनाशनः । साध्योबलवतां
वास्याद्याप्यस्त्वेवंक्षतोत्थितः ॥ १५ ॥ नवौकदाचित्सिध्ये-
तामपिपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वोयाप्यःप्र-
कीर्तितः ॥ १६ ॥ त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यास्तु
यापयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—इस प्रकार यह क्षयजकास (खांसी) क्षीण पुरुषकी धातक होय है बलवान् पुरुषके असाध्य अथवा याप्य (साध्यासाध्य) होय है अतज खांसीभी इसीप्रकारकी होती है यदि वैद्यादि पादचतुष्टयसंपन्न हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन होय तौ कदाचित् साध्य होय और बूढ़े पुरुषके जराकास अर्थात् धातुक्षीण होनेसे भई जो खांसी सो सब प्रकारकी याप्य है सो सब इन्द्रीके अंतर्गत जाननी । अब कहते हैं कि वात, पित्त, कफ ये तीन खांसी साध्य हैं और बाकी तीन याप्य हैं वो पथ्य सेवन करनेसे नाश होती और अवज्ञा करनेसे असाध्य होजाती है ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाधुरीटीकायां कासरोगनिदानम् ।

हिका और श्वासनिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः । शीतपानाशन-
स्नानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेग-
घातापतर्पणैः । हिकाश्वासश्चकासश्चनृणांसमुपजायते ॥ २ ॥

अर्थ—दाहकारक, भारी, अफराकारक, रूखी अभिष्यंदी ऐसे भोजन करनेसे शीतल जल पीनेसे शीतल अन्न खानेसे शीत जलकरके स्नान करनेसे रज और धूँआका मुख नाकमें जानेसे गरमी हवामें डोलनेसे दंडकसरतके करनेसे भारके उठानेसे बहुत मार्गके चलनेसे मलादिक वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यके हिका (हिचकी) श्वास (दमा) और कास (खांसी) ये रोग उत्पन्न होते हैं ।

हिकाका स्वरूप और निरुक्ति

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेतिसस्वनोयकृत्छिहं त्राणिमुखादिवाक्षिपन् ।

सधोषवानाशुहिनस्त्यसून्यतस्ततस्तुहिकेत्यभिधीयतेबुधैः ॥ ३ ॥

अर्थ—उदानवायु प्राणवायुके साथ मिलकर जब निकले तब मनुष्य हिग्रहिग्र ऐसा शब्द करे और कलेजा घ्रीह इनको मुखपर्यंत खींचलाई (इस स्थानमें मुख

१ पूयामरूपं श्यावंहरितंपीतनीलकं । निष्ठीवेच्छ्वसकासार्तोनजीवातिहतस्वरः ॥ कास-
श्वासक्षयच्छर्दिस्वरभेदादयोगदाः । भवंत्युपेक्षयाऽसाध्यास्तस्मात्तात्स्वरयाजयेत् ॥ इति ।

शब्दकरके प्राण जल, अन्न इनके बहनेवाले मार्ग जानने) और मुखमें आनकर बड़ा शब्द निकले उसको वैद्यवर हिक्का (हिचकी) रोग कहै हैं यह शीघ्र प्राणों-का हर्चा होय है ।

हिक्काके भेद और संप्राप्ति

अन्नजायमलांक्षुद्रांगंभीरांमहतीतथा ।

वायुःकफेनानुगतःपंचहिक्काःकरोतिहि ॥ ४ ॥

अर्थ—वातकफसे मिलकर १ अन्नजा, २ यमला, ३ क्षुद्रा, ४ गंभीरा ५ और महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकी रोगको प्रगट करे ।

पूर्वरूप

कंठोरसोर्गुरुत्वंचवदनस्यकषायता ।

हिक्कानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ ५ ॥

अर्थ—कंठ और हृदय भारी रहै और वादीसे मुख कसैला रहै कूखमें अफरा रहै यह हिचकीका पूर्वरूप जानना ।

अन्नजाके लक्षण

पानान्नैरतिसंभुक्तैःसहसापीडितोऽनलः ।

हिक्कयत्यूर्ध्वगोभूत्वातांविद्यादन्नजांभिषक् ॥ ६ ॥

अर्थ—अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्व-गामी होयकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करे ।

यमलाके लक्षण

चिरेणयमलैर्वैर्याहिक्कासंप्रवर्त्तते ।

कंपयंतीशिरोग्रीवांयमलांतांविनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—ठहरठहरके दोदो हिचकी चलें शिरकंथाको कंपावै उसको यमला हिचकी जाननी ।

क्षुद्राके लक्षण

प्रकृष्टकालैर्यावेगैर्मन्दैःसमभिवर्त्तते ।

क्षुद्रिकानामसाहिक्काजन्तुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

१ उक्तंच । प्राणोदकान्नवाहीनिश्रोतासिविद्धतोनिः । हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासार्लिंगांपृथक्-
वृणु ॥ इति ।

अर्थ—जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसँ मंदमंद चले उसको खुद्रा-
नाम हिचकी कहते हैं ।

गंभीराके लक्षण

नाभिप्रवृत्तायाहिक्काघोरागंभीरनादिनी ।

अनेकोपद्रववतीगंभीरानामसास्मृता ॥ ९ ॥

अर्थ—जो हिचकी नाभिके पाससँ उठ घोर गंभीर शब्द करे और जि-
समें प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हो उसको गंभीराहिचकी कहते हैं ।

महतीहिचकीके लक्षण

मर्माण्युत्पीडयंतीवसततंयाप्रवर्तते ।

महाहिक्केतिसाज्ञेयासर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ १० ॥

अर्थ—जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करती हुई और सर्व गात्रको कपावती
हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय उसको महाहिक्का कहते हैं ।

असाध्यलक्षण

आयम्यतेहिक्तोयस्यदेहोदृष्टिश्वोर्ध्वताम्यतेयस्यनित्यं ।

क्षीणोऽन्नद्विदक्षौतियश्चातिमात्रंतौद्वौचांत्यौवर्जयेद्विक्कमानौ ११

अर्थ—जिसका हिचकीसँ देहतन जावे ऊंची दृष्टि होजावे और मोह होय
क्षीण पड़जाय भोजनसे अरुचि होय और छीक बहुत आवै ये दोनों हिचकी-
वाला रोगी अर्थात् जिसको गंभीरा और महतीहिचकी होय सो वैद्यको साज्य है ।

असाध्यलक्षण

अतिसंचितदोषस्यभक्तच्छेदकृशस्यच । व्याधिभिःक्षीणदेह-

स्यवृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥ आसांयासासमुत्पन्ना

हिक्काहंत्यागुजीवितम् ।

अर्थ—जिस्के असन्त दोषोंका संचय होगयाहो और जिसका अन्न छूटगयाहो
जो कृश होगयाहो जिसके अनेक व्याधिसे देह क्षीण होगया होय और जो वृद्ध
है अतिमैथुन करनेवाला हो ऐसे पुरुषके ये दोनों हिचकी उत्पन्न होय तो त-
त्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करे ।

यमिकाके असाध्यलक्षण

यमिकाचप्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

अर्थ—बकवादकरे पीडा होय मोह, प्यास इनलक्षणसेयुक्त जो यमिकानामकी हिचकी सो तत्काल प्राणहर्त्ता जाननी ।

यमिकाके साध्यलक्षण

अक्षीणश्वाप्यदीनश्चस्थिरधात्विन्द्रियश्वयः ।

तस्यसाधयितुंशक्यायमिकाहंत्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—बलवान्, प्रसन्न मन जिसकी घातु और इन्द्री स्थिर होय ऐसे पुरुषकी यमिकाहिचकी साध्य है और इससे विपरीत (अर्थात् क्षीण, दीन इत्यादि) पुरुषको तत्कालही नाश करे । अन्नजा, क्षुद्रा यह दोनों साध्य ही दोवार आनेसे यमिका कहाती है चरकोक्त यमला इस जगह नहीं ग्रहण करनी चाहिये ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाध्वार्थकोषनीमाथुरीभाषाटीकायां हिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ श्वासनिदानम् ।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तुपञ्चधा ।

भिद्यतेसमहाव्याधिःश्वासएकोविशेषतः ॥ १ ॥

अर्थ—हिकाश्वासका एक हेतु होनेसे हिकाके अनन्तर श्वासरोगको कहते हैं महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास इन भेदोंसे एक श्वासरोग पांचप्रकारका है ।

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण

प्राग्रूपंतस्यहृत्पीडागूलमाध्मानमेवच ।

आनाहोवक्रवैरस्यंशंस्वनिस्तोदएवच ॥ २ ॥

अर्थ—हृदय दूखे, शूल होय, अफरा होय, पेट तनासा होय, कनपटी दूखे, मुखमें रसका स्वाद आवै नहीं यह श्वासरोगका पूर्वरूप है ।

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति

यदास्त्रोतांसिसंरुध्यमारुतःकफपूर्वकः ।

विष्वग्ब्रजतिसंरुद्धस्तदाश्वासान्करोतिसः ॥ ३ ॥

अर्थ—सर्व देहमें विचरनेवाला पवन जब कफसे मिलकर प्राण अन्न उदक व-

हनेवाली सब नसोंके मार्गको रोकदेवे तब पवन फिरनेसे रुककर श्वासरोगको प्रगट करे ।

महाश्वासके लक्षण

उद्ध्वमानवातोयःशब्दबहुःखितोनरः । उच्चैःश्वसितिसंरुद्धो
मर्त्तर्भइवानिज्ञं ॥ ४ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रांत-
लोचनः । विष्टब्धाक्षाननोबद्धमूत्रवर्चाविशीर्णवाक् ॥ ५ ॥
दीनःप्रश्वसितंचास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् । महाश्वासोपसृष्ट-
स्तुक्षिप्रमेवविपद्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस्का वायु ऊपरको जायके प्राप्तहो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको निकाले ऊंचे स्वरसे अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे या प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय उसका ज्ञानविज्ञान जाते रहै नेत्र चंचल होय और जिस्का श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फटजाय मलमूत्र बन्द होजाय बोलाजाय नहीं अथवा बोले तौ मन्द बोलै मन खिन्न होय और जिस्का श्वास दूरसे सुनाई देय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ।

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण

ऊर्ध्वश्वसितियोदीर्घनचप्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुख-
खोताःकुद्गंधवहार्दितः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्वविभ्रां-
ताक्षइतस्ततः । प्रमुह्यन्वेदनार्तश्वशुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ८ ॥

अर्थ—बहुत देरपर्यंत ऊंचो श्वास लेय नीचे आवै नहीं कफसे मुख भर जाय तथा और सब नाडीन्के मार्ग कफसे बन्द होजाय कुपित वायुसे पीडित होय ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखें मूर्च्छासे और पीडासे अत्यंत पीडित होय मुख सूखे तथा बेहोश होय यह ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं ।

ऊपरकोही श्वास ले नीचे नहीं आवे ये जो कहा उसमें कारण कहते हैं

ऊर्ध्वश्वासेप्रकुपितेह्यधःश्वासोनिरुध्यते ।

मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वश्वासस्तस्यैवहंत्यसून् ॥ ९ ॥

अर्थ—ऊपरका श्वास कुपित होनेसे नीचेका श्वास बन्द होय अर्थात् हृदयमें रुकजाय अथवा श्वास कहिये वायु सौ खाली नीचे नहीं उतरे तब मनुष्यको मोह होय ग्लानि होय ऐसे पुरुषके ऊर्ध्वश्वास प्राणका हरण करे ।

छिन्नश्वासके लक्षण

यस्तुश्वासितिविच्छिन्नसर्वप्राणेनपीडितः । नवाश्वासितिदुः-
स्वार्तोर्मर्मच्छेदरुग्दितः ॥ १० ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदह्य-
मानेनबस्तिना । विप्रुताक्षःपरिक्षीणःश्वसन्नक्तैकलोचनः ॥
॥ ११ ॥ विचेताःपरिशुष्कास्योविवर्णःप्रलपन्नरः । छि-
न्नश्वासेनविच्छिन्नःसशीघ्रंविजहात्यसून् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ती उतनी शक्तिसँ श्वासको साग
करे, अथवा क्लेशको प्राप्तहो, श्वासको नहींछोडे, और मर्म कहिये हृदयवस्ती (मू-
त्रस्थान) और नाडियोंको मानों कोई छेदन करे ऐसी पीडा होय, पेटका फू-
लना, पसीना और मूर्च्छा, इनसे पीडित होय, वस्ती (मूत्रस्थान)में जलन होय,
नेत्र चलायमान होय, अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे होय, श्वास लेते लेते थकजाय,
तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल होजाय, (यह व्याधीके प्रभावसे होयहै दो-
षके प्रभावसे होयतौ दोनों होजाय) उद्विग्न चित्त होजाय, मुख सूखे, देहका
वर्ण पलट जाय, बकवादकरे, संधिके सब बंध शिथिल होजाय, इस छिन्नश्वास-
करके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करे ।

तमकश्वासके लक्षण

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च
संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १३ ॥ करोति पीनसं
तेन रुद्धो घुर्धुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपी-
डकम् ॥ १४ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते ।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ श्लेष्म-
णामुच्यमानेनभृशंभवतिदुःखितः । तस्यैवचविमोक्षतिमुहू-
र्तलभतेसुखम् ॥ १६ ॥ तथास्योद्ध्वंसतेकंठःकृच्छ्राच्छक्रो-
तिभाषितुं । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वासपीडितः ॥ १७ ॥
पार्श्वतस्यावगृह्णातिशयानस्यसमीरणः । आसीनोलभतेसौ-
ख्यमुष्णंचैवाभिनन्दति ॥ १८ ॥ उच्छ्रिताक्षोललाटेनस्वि-

द्यताभृशमार्तिमान् । विशुष्कास्योमुहुःश्वासोमुहुश्चैवावध-
म्यते ॥ १९ ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्चविवर्द्धते ।
सयाप्यस्तमकश्वासःसाध्योवास्यान्नवोत्थितः ॥ २० ॥ .

अर्थ—जिसकालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसँ नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रयकर कफसंयुक्त होय, तब कफसे रुककर अतिवेग-पूर्वक कंठमें घुर घुर शब्द करे, और मस्तकमें पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र-वेगसे हृदयको पीड़ाका करनेवाला ऐसा श्वासको उत्पन्न करे, उस श्वासके वेगसँ मूर्च्छित होय, त्रासको प्राप्त होय, चेष्टारहित होय, और खांसीके उठनेसे बड़े मोहको वारंवार प्राप्त होय, और जब कफ छूटे तब दुःख होय, और कफ छूट-नेके बाद दोघड़ी पर्यन्त सुख पावै, कंठमें खुजली चले, बड़े कष्टसे बोले, श्वा-सकी पीड़ासे नींद न आवै, सोवेतौ वायुसे पसवाड़ोंमें पीड़ा होय, बैठेही चैन पड़े और गरमीके पदार्थसँ खुस होय, नैत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवै अत्यन्त पीड़ा होय, मुख सूखे, वारंवार श्वास और वारंवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्वदेह चलायमान होवे, यह श्वास मेघके वर्षनेसँ, शीतसँ पुरवकी पवनसँ और कफकारक पदार्थ इनके सेवन करनेसे बदेहै यह तमकश्वास याप्यहै यदि नया प्रगटभया होय तौ साध्य होयहै ।

पित्तका अनुबन्धहोकर ज्वरादिकोंका योग होनेसँ

प्रतमक होय है उसको कहते हैं

ज्वरमूर्च्छांपरीतस्यविद्यात्प्रतमकंतुतम् ॥

अर्थ—इस तमकश्वासमें श्वास, ज्वर और मूर्च्छा ये दोनों लक्षण होनेसँ इ-सको प्रतमकश्वास कहते हैं ।

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते हैं

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २१ ॥ तमसावर्ध-
तेऽत्यर्थंशीतैश्वाशुप्रशाम्यति । मज्जतस्तमसीवास्यविद्यात्प्र-
तमकंतुतम् ॥ २२ ॥

अर्थ—उदावर्त्त, धूल, आम्रादि, अजीर्ण, विदग्धान्न, मल, मूत्रादि वेगके रो-कनेसँ अथवा क्लिन्नकाय कहिये वृद्ध मनुष्य और निरोध कहिये वेगरोध इन कारणोंसँ प्रगट भई जो श्वास सो अंधकारसँ अथवा तमोगुणसँ अत्यन्त बड़े और

शीतल उपचारसैं शीघ्र शांति होजाय, इस श्वासके योगसैं रोगीको अन्धकारमें बूढासदृश मालूम होय, इसको प्रतमकश्वास ऐसे कहते हैं ।

क्षुद्रश्वासके लक्षण

रूक्षायासोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रोवातमुदीरयेत् । क्षुद्रश्वासोनसोऽत्य-
र्थदुःखेनांगप्रबाधकः ॥ २३ ॥ हिनस्तिनसगात्राणिनचदुःखो
यथेतरे । नचभोजनपानानानिरुणद्धयुचितांगतिं ॥ २४ ॥

नेन्द्रियाणांव्यथांचापिकांचिदापादयेद्भुजम् । ससाध्यउक्तः

अर्थ—रूखा पदार्थ खानेसैं, श्रमके करनेसैं, प्रगट भई जो क्षुद्रश्वास सो पव-
नको ऊपर लेजाय यह क्षुद्रश्वास असन्त दुःखदायक नहीं हैं । तथा अंगोंको
कुछ विकार नहीं करे, जैसे ऊर्ध्व श्वासादिक दुःखदायक हैं । ऐसे यह नहीं हैं
और भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको बन्द नहीं करे । और इन्द्रीनकोभी
पीडा नहीं करे । और कोई रोगकोभी नहीं प्रगट करे । यह क्षुद्रश्वास साध्य
कहा है ।

बलिनःसर्वेचाव्यक्तलक्षणाः ॥ २५ ॥ क्षुद्रःसाध्यतमस्तेषां

तमकःक्षुद्रउच्यते । त्रयःश्वासानसिद्धयंतितमकोदुर्बलस्यच २६

अर्थ—बलवान् पुरुषके सब महाश्वासादिकोंके लक्षण प्रगट न होय तौ साध्य
है, तिनमेंभी क्षुद्रश्वास असंत साध्य है, और तमकको क्षुद्र कहते हैं । अथवा
“तमकः क्षुद्र उच्यते” इस जगह “तमकः कृच्छ्र उच्यते” ऐसाभी पाठ कोई क-
हते हैं । उसका अर्थ यह है कि तमक कृच्छ्रसाध्य है, महान्, ऊर्ध्व, और छिन्न,
ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्त साध्य नहीं हैं और निर्वल पुरुषके तमकश्वासभी
साध्य नहीं होय ।

कामंप्राणहरारोगाबहवोनतुतेतथा ।

यथाश्वासश्चहिक्राचहरतःप्राणमाशुवै ॥ २७ ॥

अर्थ—प्राणहरण करनेवाले ऐसे सन्निपात ज्वरादिक रोग बहुतसे हैं सो ठीक
है । परंतु श्वास और हिचकी ये जैसे जल्दी प्राण हरण करते हैं ऐसे और ज्व-
रादिक नहीं करें ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां हिक्रा तथा

श्वासनिदानं समाप्तम् ।

स्वरभेदनिदानम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवना-
दयस्तु । स्रोतः सुतेस्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठाहन्त्युः स्वरं भवति
चापि हिषद्विधः सः ॥ १ ॥

अर्थ—बहुत जोरके बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊंचे स्वरके पाठ करनेसे, अ-
र्थात् वेदादि पाठ करनेसे कंठमें लकड़ी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे, कोपको
प्राप्तहुये जो वात, कफ, पित्त सो कंठमें स्वरके वहनेवाली चार नसे हैं उनमें
प्राप्तहो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त स्वरको नाश करे यह स्वरभेद रोग वात, पित्त,
कफ, सन्निपात, क्षय और भेद इन भेदोंसे छः प्रकारका है ।

वातस्वरभेदके लक्षण

वातेन रुष्णनयनाननमूत्रवर्चाभिन्नं स्वरं वदति गर्दभवत्स्वरं च ।

अर्थ—वायुसे स्वरभंग होयतौ रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा यह काले
होय वह पुरुष दृढ़ हुआ शब्द बोले, अथवा गंधाके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ।

पित्तजस्वरभेदके लक्षण

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्भ्रूल्लेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २

अर्थ—पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्टा ये पीले हो-
ते हैं और बोलतेसमय गलेसे दाह होय है ।

कफके स्वरभेदके लक्षण

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकंठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा वि-
शेषात् ।

अर्थ—कफके स्वरभेदसे, कंठ कफसे रुका रहै, और मंद मंद तथा थोड़ा बोले
दिनमें बहुत बोले ।

सन्निपातके स्वरभेदका लक्षण

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तंचाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ३

१ “ विषाध्ययननाभिघातैः ” अत्र स्थाने विषाध्ययनाभिघातैः इति पाठः साधुः ।

२ यदुक्तं सुश्रुते—द्वाम्यां भाषते द्वाम्यां घोषं करोति, भाषणघोषणयोरल्पमहत्त्वाम्यां भेदः ।

अर्थ—सन्निपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होय हैं यह स्वरभेद असाध्य है ऐसे ऋषि कहते हैं ।

क्षयजन्यस्वरभेदके लक्षण

धूम्येतवाक्क्षयकृतेक्षयमाप्नुयाच्चवागेपचापिहतवाक्परिवर्जनीयः ।

अर्थ—अईके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलतेसमय मुखसें धूआंसा निकले, और वाणीक्षय होजाय, अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले । इस स्वरभेदमें जिससमय वाणी हत होजाय अर्थात् ओजका क्षय होनेसें बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होय है । और ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तौ साध्य है ।

भेदके स्वरभेदका लक्षण

अंतर्गतस्वरमलक्ष्यपदंचिरेणभेदोन्वयाद्बदतिदिग्धगलस्तृपार्तः॥

अर्थ—भेदके सम्बन्धसें कफ अथवा भेद इनसें गला लिप्त होय अथवा भेदसें स्वरके मार्ग रुकजानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर बोलें, और मंद बोले ।

असाध्यलक्षण

क्षीणस्यवृद्धस्यकृशस्यचापिचिरोत्थितोयस्यसहोपजातः ।

भेदस्विनःसर्वसमुद्भवश्चस्वरामयोयोनससिद्धिमेति ॥ ५ ॥

अर्थ—क्षीण पुरुषके, वृद्धके, कृशके, बहुत दिनका, जन्मके संगड़ी प्रगट भया मोटे पुरुषके, और सन्निपातोद्भव, ऐसा स्वरभेद रोग साध्य नहीं होय ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरप्रणीतमाधुरीमाधवार्थबोधनीटीकायां स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ।

अरोचकनिदानम् ।

वातादिभिःशोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।

अरोचकाःस्युःपरिहृष्टदंतकपायवक्रस्यमतोऽनिलेन ॥ १ ॥

अर्थ—पृथक् वातादि दोषकरके ३, सन्निपातसें १, शोकसें १, भयसें १, अतिलोभसें १, तथा अतिक्रोधसें ऐसे ८ प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोगहै । वह मनको क्लेश देनेवाले अन्न, रूप और गंध इन कारणोंसें प्रगट होय है परंतु सुश्रुत और अन्य ग्रन्थोंके मतसे पांचही प्रकार मुख्य मानी हैं भय, लोभ, क्रोधकी

१ अरोचके भवेदौषैको हृदयसंश्रयैः । सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥ इति ।

अरुचिको शोककीही अरुचिके अन्तर्गत मानते हैं । वादीकी अरुचिसे दांत खट्टे हों और मुख कसेला होय ।

कट्वम्लमुष्णविरसंचपूतिपित्तेनविद्याल्लवणंचवक्रं ।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतंकफेन ॥ २ ॥

अर्थ—पित्तकी अरुचिसँ कटुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गन्धयुक्त ऐसा मुख होय । कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल मुख होय है । और मुख बंधा सरीखा अर्थात् स्वाय नहीं और आंत कफसे लिस होय ।

शोकादि अरुचिके लक्षण

अरोचकेशोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याऽशुचिगन्धजेस्यात् ।

स्वाभाविकंचास्यमथारुचिश्चत्रिदोषजेनैकरसंभवेत्तु ॥ ३ ॥

अर्थ—शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र वास इनसँ प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहै अर्थात् वात-जादिकोंके सहश कसेला, खट्टा आदि नहीं होय । सन्निपातकी अरुचिमें अन्नसँ अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हो ।

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहिकर अन्य

ठिकानेपर जो विकृति होय है उसे कहते हैं

हृच्छूलपीडितयुतंपवनेनपित्तात्तृदाहशोषबहुलंसकफप्रसेकं ।

श्लेष्मात्मकंबहुरुजंबहुभिश्चविद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरंचा ॥

अर्थ—वातकी अरुचिसँ हृदयमें शूल, और वेदना होती है । पित्तसँ प्यास, दाह, और चूषनेके सहश पीडा, ये लक्षण होते हैं कफकी अरुचिमें मुखसँ कफ गिरे, सन्निपातकी अरुचिमें पीडा अत्यन्त होय । वैशुण्य कहिये मनकी व्याकुलता मोह, जडत्व इन लक्षणोंसे अपर कहिये आर्गंतुज अरोचक जाने । भूख होय परंतु खानेकी सामर्थ्य न होना इसको अरुचि कहते हैं । आपको प्रियवी अन्न किसीने दिया हो परंतु स्वाय नहीं उसको अन्नाभिनन्दन कहते हैं अन्नके स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास इनसे जिसको त्रास होय, उसको भक्तद्वेष कहते हैं । इस प्रकार ये रोग तीन प्रकारका है । इसीवास्ते चरक मुश्रुतने अरोचक शब्दकरके संग्रह करा है ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाधुरीभापाटीकाया अरुचिरोगनिदानं स०

१ उक्तं हि बृद्धभोजेन । प्राक्षिप्तं यन्मुखे चान्नं जंतोस्तत्त्वदतेऽसुहः । अरोचकः सविज्ञेयो भक्तद्वेषमथोऽनुगुण ॥ चिंतयित्वा तु मनसा हृष्टाश्रुत्वा च भोजनं । द्वेषमायातियोजन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ कुपितस्य भयार्त्तस्य अभिचारमिभूतये । यस्यान्नेन भवेत् श्रद्धासंभक्तद्वेष उच्यते ॥ इति ॥

छर्दिनिदानम् ।



छर्दिके कारण और निरुक्ति

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयः पञ्चविज्ञे-
यास्तासालक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्वैर्ल-
वणैरपि । अकालेचातिमात्रैश्च तथासात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥
श्रमाद्भयादथोद्वेगादजीर्णात्कुमिदोषतः । नार्याश्चापन्नस-
त्वायास्तथातिद्रुतमश्रतः ॥ ३ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुत-
मुत्क्रेशितोबलात् । छादयन्नाननवेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ ४ ॥
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्रम्प्रधावति ।

अर्थ—दुष्ट हुये पृथक् और सब दोषोंकरके तथा दुष्ट वस्तुके देखनेसें आदि-
शब्दकरके दुष्ट गंधके सूंघनेसें पांच प्रकारकी छर्दि जाननी अर्थात् जिसको रह,
वमन, उलटी कहते हैं उसके लक्षण आगे कहते हैं । अत्यन्त पतले अथवा चिकने
अहृद्य (अप्रिय) वस्तु, खारके पदार्थ, इनके सेवन करनेसें, कुसमय भोजन कर-
नेसें, अथवा अत्यन्त भोजन करनेसें, अथवा जो न पचे ऐसे भोजन करनेसें, श्रम,
भय, उद्वेग, अजीर्ण, कुमिदोष इन कारणोंसें गर्भिणी स्त्रीके गर्भकी पीड़ासें, तथा
जल्दी जल्दी भोजन करनेसें, और बीभत्स (खोटे) कारणोंसें जैसे विष्ठा, राध,
आदिका देखना इनसें तीनों दोष कुपित हो बलसे मुखको आच्छादन करे और
अंगोंको पीडाकर मुखद्वारा भोजन हुआ सब निकाल देय इसको (छर्दि) उलटी
ऐसे मनुष्य कहते हैं । इसजगे उदान वायु वमन कराती है ।

पूर्वरूप

हृत्तासोद्गारसरोधौ प्रसेकोलवणस्तनुः ।

द्वेषोन्नपानेचभृशंवमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हृदयसें खारा, खट्टा, प्रथमही निकले अथवा सूखी रह होय, डकार
आवै नहीं, लार गिरे, खारी मुख होजाय, अन्न और पानीसें अत्यन्त अरुचि
होय, ये छर्दि (छट)के पूर्वरूप हैं ।

वातकी छर्दिके लक्षण

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः । उ-
द्गारशब्दप्रबलंसफेनंविच्छिन्नकृष्णंतनुकंकषायम् ॥ ६ ॥ कृ-
च्छ्रेणचाल्पमहताचेवेगेनाऽर्तोऽनिलाच्छर्दयतीहदुःखम् ।

अर्थ—हृदय और पसवाडा इन्में पीडा होय, मुखशोष, मस्तक और नाभि इन्में
शूल होय, खांसी, स्वरभेद, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल
होय, वमनमें झाग आवै, ठहर ठहर कर वमन होय, तथा थोड़ी होय, वमनका
रंग काला होय, पतली और कसैली होय, वमनका वेग बहुत होय, परंतु वमन
थोडा होय, और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय, ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ।

पित्तकी छर्दिके लक्षण

मूर्च्छापिपासामुखशोषशीर्षताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ।
पीतंभृशोष्णंहरितंसतिक्तंधूअंचपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥

अर्थ—मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अ-
र्थात् तपायमान रहै, अंधेरा आवे, चक्कर आवै, रोगी पीला गरम द्वारा कडुआ
धूआंके रंगका और दाहयुक्त ऐसा पित्तको वमन करे यह पित्तकी छर्दिका
लक्षण है ।

कफकी छर्दिके लक्षण

तंद्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकंसंतोषनिद्राऽरुचिगौरवार्त्तः ।
स्निग्धंघनंस्वादुकफाद्विशुद्धंसरोमहर्षोऽल्परुजंवमेत्तु ॥ ८ ॥

अर्थ—तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पटना, संतोष, (अन्नमें अरुचि) निद्रा,
अरुचि, भारीपना इनसैं पीडित हा । चिकना, गाढा, मीठा, सफेद ऐसे क-
फको वमन करे । जब रह करे तब पीडा थोड़ी होय, रोमांच होय, ये कफकी
छर्दिके लक्षण हैं ।

त्रिदोषका छर्दिके लक्षण

गूलाविपाकाऽरुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तं ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसांद्रोष्णरक्तंवमतांनृणांस्यात् ॥ ९ ॥
अर्थ—शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसैं प्रबल

१ यदुक्तं सुश्रुते । शुक्लं हिमं सांद्रकफ कफेन इति ।

भई जो वमन सो सन्निपातसे होय है । रह करनेवालेकी वमन खारी, खड़ी, नीली, संघट्ट, (जिसको देशवारी मनुष्य जाडी कहे हैं) गरम, लाल, ऐसी होय है ।

असाध्यलक्षण

विट्स्वेदमूत्रांशुवहानिवायुःस्रोतांसिसंरुद्धयदोर्ध्वमेति । उत्सन्नदोषस्यसमाचितंतंदोषंसमुद्धूयनरस्यकोष्ठात् ॥ १० ॥

विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णतृट्श्वासकासार्तियुतंप्रसक्तं । प्रच्छदयेदुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशुविनाशमेति ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस समय यह वायु पुरीष, पसीना, मूत्र और जल इनके बहनेवाली नाडीन्के मार्गको रोककर ऊपर आवै तब ऊपर आनेवाला दोष (मलमूत्रादि) को कोठेसँ बाहर निकाल वमन करावै, उस वमनमें मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवै, तथा वर्णभी मलमूत्रके सदृश होय, प्यास, श्वास, खाँसी और शूल ये होय और यह वमन बारंवार बड़ेवेगसँ होय है । इस वमनसँ पीडित मनुष्य थोड़े कालमें नाशको प्राप्त हो, यहभी सन्निपातकी है ऐसे कोई आचार्य कहते हैं और अन्य आचार्य कहते हैं कि सब छर्दि प्रबल है परंतु ऐसी छर्दि असाध्य है ।

आगंतुजछर्दिके लक्षण

बीभत्सजादोहृदजाऽमजाचयाऽसात्म्यजावाकमिजाचयाहि ।

सापंचमीतांचविभावयेत्तुदोषोच्छ्रयेणैवयथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

अर्थ—बीभत्स पदार्थ कहिये मल, राध, रुधिर आदि अपवित्र वस्तुके देखनेसे, गंधसे, स्वादसे, स्त्रीके गर्भ रहनेसे, आमसे, असमान भोजनसे, अथवा कृमिरोगसे इन कारणोंसँ प्रगट भई, आगंतुज पांचमी छर्दि होय है । उसमें पूर्वोक्त लक्षणोंमेंसे जिस दोषके अधिक लक्षण मिलें उसी दोषको प्रबल जाने ।

कृमिकी छर्दिके लक्षण

शूलहृल्लासबहुलाकमिजाचविशेषतः ।

कृमिहृद्रोगंतुल्येनलक्षणेनचलक्षिता ॥ १३ ॥

अर्थ—कृमिकी छर्दिमें शूल, खालीरह ये विशेष होते हैं और बहुधा कृमि और हृदयरोग इनके लक्षणसदृश लक्षण जाननो । जैसे पिछाडी कहि आये हैं । उत्क्लेदः छीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ।

साध्यासाध्यलक्षण

क्षीणस्थयाच्छर्दिरतिप्रसक्तासोपद्रवाशोणितपूययुक्ता ।

सचंद्रिकांतांप्रवदेदसाध्यांसाध्यांचिकित्सेन्निरुपद्रवांच ॥ १४ ॥

अर्थ—क्षीण पुरुषकी अथवा वारंवार एकसीहोनेवाली और कासादि उपद्रव-युक्त और रुधिर राध मिली मोरचंद्रिकाके समान ऐसी छर्दी असाध्य है । और जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य समझकर उपाय करे ।

उपद्रव

कासश्वासौज्वरोहिकातृष्णावैचित्यमेवच ।

हृद्रोगस्तमकश्चैवज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

अर्थ—खांसी, श्वासज्वर, हिचकी, प्यास, वेचेत, हृदयरोग, अधिरा आना ये छर्दीरोगके उपद्रव हैं ।

मधुकोशं सुनिर्मय्य सारमारुष्य वै मया । नृजभाषा कृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति छर्देनिदानम् ।

अथ तृष्णानिदानं लिख्यते ।

तृष्णाकी सम्प्राप्ति

भयश्रमाभ्यावलसंक्षयाद्वाप्यूर्ध्वचितंपित्तविवर्धनैश्च ।

पित्तंसवातंकुपितंनराणांतालुप्रपन्नंजनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

अर्थ—भयसे, श्रमसे, बलके क्षयसे, और पित्तके बढ़ानेवाले क्रोध उपवासा-दिर्कोसे अपने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त और वात ये कुपितहोकर ऊपर तालुजे (पिपासास्थान)में जाय तृष्णा (प्यास)को उत्पन्न करे । इस जगह ता-लुकातो उपलक्षणमात्रहै तालुके कहनेसे क्लोमस्थान (हृदयमें जो प्यासका स्था-नहै उसकाभी ग्रहणहै क्योंकि वोभी प्यासका स्थानहै सो (चरक)में लिखाहै ।

अन्नजादिकतृष्णाकी संप्राप्ति

स्रोतःस्वपांवाहिषुदूषितेषुदोषैश्चतृष्णाभवतीहजंतोः । ति-

स्वःस्मृतास्ताःक्षतजाचतुर्थीक्षयात्तथाह्यामसमुद्भवाच ॥ २ ॥

१ रसवाहिनीचघमनीनिव्हामूलगलतालुकोष्ठः । संशोध्य नृणां देहे कुरुतस्तृष्णामतिप्रबलौ ।

भक्तोद्भवासप्तमिकेतित्तासांनिबोधलिंगान्यनुपूर्वशश्च ।

अर्थ—जलके बहनेवाली नसके दूषित होनेसे दोष (अन्न कफ और आम) इन्से तृष्णा रोग होयहै सो तीनहै और चौथी क्षतज तृष्णा [जो व्रणवाले पुरुषके होतीहै] पांचमी क्षयसँ होतीहै छठी आमसँ होयहै सातवी अन्नसे होयहै उन्होंके लक्षण क्रमसँ कहताहूँ इनमें पहिली चार तृष्णा मुखसाध्यहै और बाकीकी तीन कष्टसाध्यहैं * शंका—क्योंजी इस श्लोकमें स्रोतःसु यह बहुवचन क्यों धरा ये विरुद्धहै क्योंकि (सुश्रुत)में तो जलके बहनेवाली दोही नाडी मानीहै * उत्तर—अन्न, कफ, आमको दुष्ट करनेसे तथा दुष्ट रोगोंके सम्बन्ध होनेसे अन्न, आम, कफको दोषत्व ग्रहणहै यह गयदासका मतहै अथवा दोषके कहनेसे वात, पित्त, कफकाही ग्रहण करना चाहिये ।

वातकी तृषाके लक्षण

क्षामास्यतामारुतसंभवायांतोदस्तथाशंखशिरःसुचापि ।

स्रोतोनिरोधोविरसंचवक्त्रंशीताभिरङ्गिश्चवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

अर्थ—वातकी तृषा (प्यास)सँ मुख उतरजाय अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकाने नोचनेके समान पीडा होय, रस और जल बहनेवाली नाडीन्का मार्ग रुक जाय, मुखसे स्वाद जाता रहै, और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे, यह अनुपशयके लक्षणहैं । चकारसे निद्राका नाश होय ।

पित्तकी तृषाके लक्षण

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहारक्तेक्षणत्वंप्रततश्चशोपः ।

शीताभिनंदामुखतित्कताचपित्तात्मिकायांपरिदूयनंच ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोप, शीत पदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुवाट और सन्ताप यह लक्षण होतहैं ।

कफकी तृषाके लक्षण

वाष्पावरोधात्कफसंवृतोऽग्नौतृष्णावलासेनभवेत्तथातु ।

निद्रागुरुत्वंमधुरास्यताचतृष्णार्दितःशुष्यतिचातिमात्रं ॥ ५ ॥

अर्थ—अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होय, तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडीन्को मुखाय कफकी तृषाको प्रगत करे

केवल कफसें तृष्णाको प्रगट होना असंभवहै, केवल कफ बढे भयका द्रवीभूतधर्म पतला होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभवहै और वात पित्तको तृषा करनेवाले होनेसे होयहै सो ग्रन्थांतरमें लिखाभीहै इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही, सुश्रुतने चिकात्सामें भेद होनेसे कहीहै और हारीतनेभी सपिच कफकी तृषा मानीहै, केवल कफकी नहीं मानी इस तृषामें निद्रा, भारीपना मुखमें मिठास, यह लक्षण होतेहैं इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जायहै।

क्षतजतृष्णाके लक्षण

क्षतस्यरुक्शोणितनिर्गम्भाभ्यांतृष्णाचतुर्थीक्षतजामतातु ।

अर्थ—शस्त्रादिकके लगनेसे घाव होय तब उस पुरुषके पीडा और रुधिरका साव होनेसे जो तृष्णा होय यह चौथी क्षतज तृष्णा जाननी ।

क्षयजतृष्णाके लक्षण

रसक्षयाद्याक्षयसंभवासातयाभिभूतस्तुनिशादिनेषु । पेयी-
यतेंभःससुखंनयातितांसन्निपातादितिकेचिदाहुः ॥७॥ रस-
क्षयोक्तानिचलक्षणानितस्यामशेषेणभिषग्व्यवस्येत् ।

अर्थ—रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होयहैं सो सब क्षयजतृष्णामें होतेहैं, तिस्से पीडित पुरुष रात्रि दिन बारंवार पानी पीवै, परंतु संतोष नहीं होय । कोई आचारी इसको सन्निपातसे प्रगट कहतेहैं रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सब होतेहैं सो वैद्योंको जानने चाहिये (रसक्षयलक्षण सुश्रुतमें कहेहैं सो इस प्रकार रसक्षय होनेसे हृदयमें पीडा कंप, शोष, बधिरता, (बहरापना) और प्यास, होयहै ।

आमजतृष्णाके लक्षण

त्रिदोषलिङ्गाऽमसमुद्भवातुहृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ ८ ॥

१ यदुक्तं । पित्तं सवातं कुपितं नराणां इत्यादि । चरकेप्युक्तम् । मंदस्याग्नेर्विना हि तृष्णा-
पवनाद्वातौ हि शोषणे हेतुरिति । सुश्रुतेप्युक्तम् । मंदस्याग्नेयवायव्यौ गुणावंबुवहानि च । स्तो-
तासि शोषयेद्यस्मात्तत्तृष्णा प्रवर्तते ॥

२ तदुक्तंहारीतने । स्वाद्वल्लवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा । प्रपद्याम्बुवह्नौतत्तृष्णां सं-
जनेयन्नृणाम् ॥ शिरसो गौरवं तद्वा माधुर्यं वदनस्य च । भक्तद्वेपः प्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैवच ॥
लिङ्गैरितैर्विजानीयात्तृष्णा कफसमुद्भवाम् ।

३ रसक्षये हृत्पीडा कंपशोषबधिरता तृष्णा चेति ।

अर्थ—आमज कहिये अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं सो सुश्रुतमें लिखाभीहै और हृदयमें शूल लारका गिरना ग्लानि ये सब होयें ।

अन्नजटृषाके लक्षण

स्निग्धतथाम्लंलवणंचभुक्तंगुर्वन्नमेवाशुतृषंकरोति ।

अर्थ—चिकना, खट्टा, खारा, [चकारसँ कड़ुआ, कषेला आदि जानना] ऐसे भोजनसे, तथा मात्राधिक, और भारी, ऐसा अन्न खानेसे, अवश्यही शीघ्र प्यासको प्रगट करे । दृढबल आचारीने पाँचही प्रकारकी तृष्णा कहीहै वातकी, पित्तकी, क्षयकी, आमकी, उपसर्गकी तहां कफकी आमकी, तृषाके अंतर्गत कहीहै और क्षतजा वातकी तृषाके अंतर्गत जाननी और अन्नजाभी वातकी तृषाके अंतर्गत कहीहै क्योंकि भोजनसँ वातका कोप होयहै * शंका—क्योंजी सुश्रुतने मद्यके प्रकर्णमें मद्यकी तृष्णा कहीहै फिर माधवाचार्यने सातही तृष्णा कैसे कहीहै * उत्तर—दृढबलाचारीके मतसँ मद्यकी तृषाको वातकी तृषाके अन्तर्गत होनेसे माधवाचार्यने सातही कहीहैं ।

उपसर्गजटृषाके लक्षण

दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः । भवतिखलुसोपसर्गतृष्णासाशोषिणीकष्टा ॥ ९ ॥ ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानां ॥ १० ॥

अर्थ—हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लान होय, मुख दीन होजाय, हृदय, गला, और तालु, सूखजाय । यह तृष्णाके उपद्रवसँ होय है यह मनुष्यको मुखाय ढाले और व्याधिसँ शरीर कुश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाय है । वो उपद्रव यह हैं ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी, श्वास, आदिशब्दसे अतिसारादिकोंका ग्रहण है । ये रोग जिसके होय उसके तृष्णा कष्टसाध्य जाननी ।

असाध्यलक्षण

सर्वास्त्वतिप्रसक्तारोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ।

धोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणायविज्ञेयाः ॥ ११ ॥

अर्थ—वातजादि सब प्रकारकी तृष्णा अत्यन्त बढी हुई अथवा रोगसँ कुश

१ अजीर्णात्पवनादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत् । इति । सततं यः पिबेत्तोयं न तृप्तिमधिगच्छति । पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णादितमादिजेत् ॥ इति ।

भया ऐसे पुरुषके जो तृष्णा है सो अथवा छर्दिसे प्रगट भई जो तृषा और जो भयंकर उपद्रवकरके युक्त ऐसी तृष्णा मारनेका कारण होय है ।

मधुकोशंसुनिर्मथ्यसारमाकृष्यवैमया ।

व्रजभाषाकृताटीकामाधवार्यप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरप्रणीतमाधवार्यबोधिनीभाषाटीकायां तृष्णारोगनिदानं समाप्तम् ।

मूर्च्छानिदानम् ।

निदान और संप्राप्ति

क्षीणस्यबहुदोषस्यविरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाता-
द्धीनसत्त्वस्यवापुनः ॥ १ ॥ करणायतनेषूग्राबाह्येष्वाम्यंत-
रेषुच । निविशंति यदादोषास्तदामूर्च्छंतिमानवाः ॥ २ ॥ सं-
ज्ञावहासुनाडीषुपिहितास्वनिलादिभिः । ततोभ्युपैतिसह-
सासुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्चनरःप-
ततिकाष्ठवत् । मोहोमूर्च्छंतितामाहुःषड्विधासाप्रकीर्तिता ॥
॥ ४ ॥ वातादिभिःशोणितेनमद्येनचविषेणच । षट्स्वप्ने-
तासुपिचंतुप्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

अर्थ—तृष्णामें मोह होय है, इसीसे तृष्णाके अनन्तर मूर्च्छाको कहते हैं । क्षीण पुरुषके बहुत दोषके संचय होनेसे, विरुद्ध आहार क्षीर मत्स्यादिकके सेवन करनेसे, मलमूत्रादि वेगके धारण करनेसे, लकड़ी आदिके चोट लगनेसे, अथवा जिस पुरुषका सतोशुण क्षीण होगया होय, ऐसे पुरुषकी बाहरकी और भीतरकी मनके बहनेवाली नाडीमें दोष प्रवेश करे तब मनुष्यको मूर्च्छा आती है । अर्थात् संज्ञाके बहनेवाली नाडीमें वातादि दोषोंकरके आच्छादित होनेसे सुखदुःखका ज्ञान नष्ट होय, तब मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठ कीसीतरह गिरे । इस रोगको मूर्च्छा अथवा मोह ऐसे कहते हैं । अथवा बाहरकी इन्द्री नेत्र, कान आदि कर्मेन्द्रि और बुद्धीन्द्री इनमें बलवान् दोष (वात, पित्त, कफ) प्रवेश कर संज्ञाकी

१ उक्तचाभिधानातरे । संज्ञोपघातेमूर्च्छायामूर्च्छास्यान्मूर्च्छनंतथा । कश्मलंप्रलयोमोह संन्या-
सस्तुमृतोपमः ॥ इति ।

वहनेवाली जो नाडी तिनको वह वात, पित्त, कफ, रोक अंधकारको प्रगट करे तब मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे उसको मूर्च्छा कहते हैं । अथवा मोह कहते हैं । सो मूर्च्छा छः प्रकारकी है । वात, पित्त, कफसँ तीनप्रकारकी और रुधिर, विष और मद्य इन भेदोंसँ तीन प्रकारकी इन तीनों मूर्च्छान्में पित्त है सो मुख्य प्रधान है अथवा व्यापक है ।

मूर्च्छाका पूर्वरूप

हृत्पीडाजृम्भणंग्लानिःसंज्ञादौर्बल्यमेवच ।

• सर्वासांपूर्वरूपाणियथास्वंताविभावयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—हृदयमें पीडा, जंभाई, ग्लानि, भ्रांति ये मूर्च्छाके पूर्वरूप हैं । आगे उस मूर्च्छाके वातादि भेद जानने । यह प्रगट अवस्थाके पूर्वरूप अवस्थाके भेद नहीं यह (जैजटाचार्यका) मत है ।

वातकी मूर्च्छाके लक्षण

नीलंवायदिवाकृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् । पश्यंस्तमःप्रवि-
शतिशीघ्रंचप्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥ वेपथुश्चांगमर्दश्चप्रपीडाहृदय-
स्यच । काश्यंश्यावारुणाच्छायामूर्च्छायेवातसंभवे ॥ ८ ॥

अर्थ—जो मनुष्य नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगका आकाशको देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय, और जलदी होश होजाय, देहमें कंप, अंगोंका टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कुश होजाय, शरीरका रंग काला लाल पड़जाय, उसको वातकी मूर्च्छा जाननी ।

पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण

रक्तंहरितवर्णंवावियत्पीतमथापिवा । पश्यंस्तमःप्रविशति
सस्वेदश्चप्रबुध्यते ॥ ९ ॥ सपिपासःससंतापोरक्तपीताकु-
लेक्षणः । संभिन्नवर्चाःपीताभोमूर्च्छाचेत्पित्तसंभवा ॥ १० ॥

अर्थ—जिस्को आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्च्छा आवै और सावधान होतेसमय पसीना आवै, प्यास होय, संताप होय, नेत्र लाल, पीले होय । मल पतला होय । देहका वर्ण पीला होय, ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं ।

कफकी मूर्च्छाके लक्षण

मेघसंकाशमाकाशमालृतंवातमोघनैः । पश्यंस्तमःप्रविशति

चिराच्चप्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥ गुरुभिःप्रावृत्तैरंगैर्यथैवाद्र्द्रेणच-
र्मणा । सप्रसेकःसहस्रासोमूर्च्छायेकफसंभवे ॥ १२ ॥

अर्थ—कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बदल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय देरमें सावधान होय, भारी बोझासा देहपर भार मालूम होय, अथवा गीला चमड़ा धारण करासा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रहहोयगी ऐसा मालूम होय ।

सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण

सर्वाकृतिःसन्निपातादपस्मारइवापरः ।

सजंतुंपातयत्याशुविनाबीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

अर्थ—सन्निपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं, ये रोग दूसरा अप-
स्मार (मृगी) जानना चाहिये । परन्तु अपस्मारमें दातोंका चवाना, मुखसे झा-
गका गेरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका होजाना, इत्यादिक लक्षण होते हैं
सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है । * झांका—क्योंजी पूर्व तो छः प्र-
कारकी मूर्च्छा कहि आये फिर सन्निपातकी मूर्च्छा कैसे कही * उत्तर—चरक-
की अष्टोत्तरीयाध्यायमें लिखा है, जैसे अपस्मार चार प्रकारका है वातका, पि-
त्तका, कफका, सन्निपातका उसीप्रकार मूर्च्छारोगभी चार प्रकारका है यही म-
तको ग्रहण कर माधवाचार्यने सन्निपातकी मूर्च्छा कही है ।

रक्तकी मूर्च्छाके लक्षण

पृथिव्यापस्तमोरूपरक्तगंधस्तदन्वयः । तस्माद्रक्तस्यगंधेन

मूर्च्छतिभुविमानवाः ॥ १४ ॥ द्रव्यस्वभावइत्येकेदृष्ट्वायद-

भिमुह्यति ।

अर्थ—पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुणविशिष्ट हैं सो सृष्ट्युत्तमें लिखा है ।
और रुधिरकी गंधभी उनदोनोंसे अर्थात् पृथ्वी और जलसे प्रगट है तो रुधि-
रकी गंधभी तमोगुण विशिष्टहुई इसीसे जो तामसी पुरुष है सो रुधिरकी गं-
धीसे मूर्च्छित होते हैं । और जो राजसी, सात्त्विकी पुरुष हैं सो मूर्च्छित नहीं

१ चतस्रो मूर्च्छा अपस्मारे व्याख्याताः । यथा चत्वारोपस्माराः वातेन, पित्तेन, श्लेष्मणा,
सन्निपातेन, तद्वन्मूर्च्छा अपीत्यर्थः ।

२ तमोबहुला पृथ्वी तमोबहुला आप इति ।

होते * शंका—क्योंकी चंपक (चम्पा) पुष्पकी गंधसेभी मूर्च्छा होनी चाहिये क्योंकि उसमेंभी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गंध है इसवास्ते कहते हैं (द्रव्यस्वभावमित्येके) अर्थात् कोई आचार्य कहते हैं कि ये द्रव्यकाही स्वभाव है अर्थात् रुधिरका यही स्वभाव है कि जिसकी गंधसेही मनुष्य मूर्च्छित होय है । अव प्रभावको औरभी दृढ करते हैं (दृष्ट्वा यदभिप्लवति) अर्थात् रक्तके देखनेसेभी मूर्च्छित होय है सो लिखावी है ।

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाको कहते हैं

गुणास्तीव्रतरत्वेनस्थितास्तुविषमद्ययोः ॥ १५ ॥

तएवतस्मादाभ्यांतुमोहौस्यातांयथेरितौ ।

अर्थ—तैलादिकोंमें जो दशगुण है वोही गुण विष और मद्यमें असंत तीव्रतासे रहते हैं । इसीसे विष और मद्यके सेवन करनेसें मोह होय है, इसमेंभी मद्यमें तीव्र रहै और विषमें तीव्रतर रहै इसीसें विषका मोह स्वयं शांति नहीं होय, क्योंकि विष अपाकी है और मद्यका मोह, मद्यके नसा उत्तरेपर शांति होजाय है यह भेद विष और मद्यमें रहता है ।

रक्तजादि तीन मूर्च्छांके लक्षण

स्तब्धांगदृष्टिस्त्वसृजामूढोच्छ्वासश्चमूर्च्छितः ॥ १६ ॥ मद्ये-

नविलपञ्जोतेनष्टविभ्रांतमानसः । गात्राणिविक्षिपन्भूमौज-

रायावन्नयातितत् ॥ १७ ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाःश्युस्तमश्चविष-

मूर्च्छिते । वेदितव्यंतीव्रतरंयथास्वंविषलक्षणैः ॥ १८ ॥

अर्थ—रुधिरकी मूर्च्छामें अंग और नेत्र निश्चल होजाय, और श्वास अच्छेप्रकार आवै नहीं । बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्च्छा हो उसके ये लक्षण हैं बहुत बके सोय जाय, संज्ञा जाती रहै, भ्रमयुक्त होय, और जबतक मद्य न पचे तबतक पृथ्वीमें हाथपैर पटके । विषजन्य मूर्च्छामें कापि, सोवे, प्यास लगे, और अंधेरा आवै, एवं मूल, पत्र, दूध इनके भेदकर जो विषभक्षणसे लक्षण होते हैं सो सब लक्षण होते हैं ।

१ यदुक्तं । भेदस्तब्धांगदृष्टिश्च गूढोच्छ्वासस्तथैवच । दर्शनादसृजस्तस्माद्गंधाच्चैव प्रमुह्यति ।

२ यदुक्तं दृढबलेन । लघु रूक्षमाशु विशदं व्यवयि तीक्ष्णं विकाशि सूक्ष्मं च । उष्ण-
मनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विष तज्ज्ञैः ।

३ ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः संनिपातप्रकोपिनः । त एव मद्ये दृश्यंते विषे तु बलवन्तराः । इति ।

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इनके भेद कहते हैं
मूर्च्छापित्ततमःप्रायारजःपित्तानिलाद्धर्मः ।

तमोवातकफातन्द्रानिद्राश्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥

अर्थ—मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहै हैं । रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम होय है । तमोगुण, वायु और कफ इनसे तन्द्रा । और कफ, तथा तमोगुण, इनसे निद्रा उत्पन्न होती है ।

तन्द्राके लक्षण

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवंजृम्भणंक्लमः ।

निद्रार्तस्येवयस्यैतेतस्यतंद्राविनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ—इन्द्री अपने अपने विषयको ग्रहण न करे, देह भारी होजाय, अर्थात् सुस्त होजाय, जंभाई और क्लम होय, ये लक्षण निद्रार्त पुरुषके सदृश जिसके होय उसको तन्द्रा कहते हैं । इस्में आधे नेत्र खुले रहते हैं, निद्रामें इन्द्री और मनको मोह होय है, तन्द्रामें केवल इन्द्रीनकोही मोह होय है । निद्रा और भ्रम ये दोनों अतिप्रसिद्ध होनेसे माधवाचार्यने नहीं कहे, परंतु चरकमें कहे हैं । सो इस प्रकारकी जिस समय मन और इन्द्री खेदको प्राप्त होय, और अपने अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) को त्याग देय, तब यह मनुष्यको निद्रा आवती है ।

संन्यासके भेदको कहते हैं

दोषेषुमदमूर्च्छाद्यागतवेगेषुदेहिनाम् ।

स्वयमेवोपशाम्यंतिसंन्यासोनौषधैर्विना ॥ २१ ॥

अर्थ—दोषोंके वेग नष्ट होनेसे मदमूर्च्छादिक अपने आप शांति होजाय हैं, परंतु संन्यास यह औषधके विना शांति नहीं होय है ।

संन्यासके लक्षण

वाग्देहमनसांचेष्टाआक्षिप्यातिबलामलाः । संन्यस्यंत्यबलं

१ तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतसत्त्वज्ञानादिक अन्ये चक्रस्थितस्येव संभ्रामवस्तुदर्शनमिति ।

२ यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ।

३ येनायासश्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ।

जंतुंप्राणायतनमाश्रिताः ॥ २२ ॥ सनासंन्याससंन्यस्तः
काष्ठीभूतोमृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यतेशीघ्रंमुक्त्वासद्यःफलां
क्रियाम् ॥ २३ ॥

अर्थ—असंत बलिष्ठ भये जो दोष, सो वाणी देह, और मन इनके व्यापारको बंद कर हृदयमें प्राप्त हो निर्मल मनुष्यको सूँछित करे, वह संन्याससँ पीडित मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे, उसकी सद्यःफल चिकित्सा अर्थात् सुईसे छेदना, तीखा अंजनका लगाना, अनामिकाको पीडित करना, काँचकी फली लगाना, दाह देना नास देना इसादिक क्रिया न करै तौ वह रोगी प्राणवियुक्त कहिये मरणको प्राप्त हो अन्यथा बचे है ।

मधुकोशं मुनिर्मथ्य सारमाकृष्य यत्नतः ।

ब्रजभाषा कृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूर्च्छानिदानम् ।

मदात्ययनिदानम् ।

येविषस्यगुणाःप्रोक्तास्तेपिमद्येप्रतिष्ठिताः। तेनमिथ्योपयुक्तेन
भवत्युद्योमदात्ययः ॥ १ ॥ किंतुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथा
स्मृतम् । अयुक्तियुक्तरोगाययुक्तियुक्तंयथाऽस्मृतम् ॥ २ ॥

अर्थ—विषके जो गुण कहेहैं सोई गुण मद्यमेंहैं, अर्थात् यही मद्य अविधिसँ सेवन कराभया घोर भयंकर मदात्ययरोग प्रगट करैहै, कोई ऐसी शंका करे कि विषके गुण मद्यमें है यासे विषके समान मद्यको सेवन न करै इस विषयमें कहते हैं मद्य यह स्वभावसेही जैसे अन्न देहधारकहै ऐसाहीहै, परंतु वो मद्य अविधिसँ पीवै तौ रोगकारक होयहै और विधीसे सेवन करै तौ अमृतके समान गुण करे ।

१ विधिश्चायं तद्यथा । कुसुमितल्लतोपगूढः प्रकटनिरंतरनवांकुरानिकरैरोमाचैः मधुकरमधुरसु-
त्कारशिल्कारैर्मुक्तकंठकलकंठकूजितैर्दक्षिणसमीरणोद्धितसमुद्धृतपल्लवकरप्रचरैस्तरुणतरुभिः
उपक्रांततरल्लताभिरतिशोभनेषु वनोपवनेषु तुषारकिरणं रजितप्रदोषेषु शृंगारसमुच्चिताल्लं-
तिकमनीयकामिनीसमर्पितं ललितललनोपनीयमानं सुरभि रुचिररूपरसोपदंशकं नामपरिभितप-
रार्द्धमधुपानं कं न सुखयति चरकेण तु विस्तरणैतदुक्तंविद्धि ।

विधिसे मद्य पीनेका फल

**विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथाबलं । प्रहृष्टोयःपिबेन्मद्यं
तस्यस्यादमृतंयथा ॥ ३ ॥ स्निग्धैःसदन्नैर्मासैश्चभक्ष्यैश्चस-
हसेवितम् । भवेदायुःप्रकर्षायबलायोपचयायच ॥ ४ ॥**

अर्थ-विधिपूर्वक प्रमाणके संग योग्य कालमें, चिकना आदि अच्छे अन्नके संग, बलाबलके अनुसार, अत्यंत हर्षके साथ, जो मद्यपान करे, उसको अमृतके तुल्य गुण करे इसके पीनेकी विधि मदास्यके दूसरे श्लोककी टिप्पणीमें लिख आयेहैं तथा और ग्रन्थान्तरोंमें विधि तथा मात्रा कालका नियम लिखाहै, अर्थात् शुद्ध शरीर होकर प्रातःकाल सोपदंश (अर्थात् मद्यपान करनेके बाद जो चटनी आदि पदार्थ खाये जाय हैं सो) इन करके सहित सो दो पल पीवै मध्यान्हको चार पल पीवै तदनंतर चिकना पदार्थ भोजन करे और सायंकालको आठपल पीवै इस जगह पल नाम जैपुरसाई १ टका पकेको कहतेहैं ४ अथवा चिकने अन्नके साथ मांसके साथ, अथवा और भक्ष्य हैं उनके साथ मद्यको सेवन करे तो मनुष्यकी आयुष्य बढे, बल बढे, तथा देह पुष्ट होय, इस श्लोकमें (स्निग्धैःसदन्नैः) यह जो पद घरा सो स्निग्धका एक उपलक्षण मात्र है अर्थात् जो मद्यसे विपरीत गुण रखते हैं जैसे तीक्ष्णादि दश गुण हैं उनसे विपरीत होय उसके साथ मद्य पीना चाहिये सो तीक्ष्णादि दशगुण ग्रन्थान्तरोंमें लिखे हैं, और विशेष देखना होय सो (भावप्रकाश)में देखलेवे, इस स्थलमें ग्रन्थविस्तारभयसे हमने सांग दीने हैं ।

१ शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंशपलद्वयं । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाचयेत् । प्रदोषेष्टपलं तद्वन्मात्रामधे रसायनम् । आरोग्यं धातुसात्म्यं च क्रांतिपुष्टिबलप्रदं । अनेन विधिना सैव्य मद्यं नित्यमतादितैः । अन्यैर्बुद्ध्यादयो यांबदुल्लसन्ति निरल्पयाः । मात्रेयं विहितामधे पाने रोगाय चापरा । काल इति । तत्रकालो द्विविधः । नित्यकः आवश्यकश्च । तत्र नित्यकः ऋतुसंबन्धी यथा श्रौण्णेशीतमधुरंमाषीकादिशीते उष्णातीक्ष्णं गौडिकपिष्टकादि । तथा आवश्यके काले वातेस्निग्धादि एवं वयस्युदाहार्य ।

२ लघुतीक्ष्णो ह्यसूक्ष्मांशो व्यवायाशुगमेव च । रूक्षं विकाशि विशदं मधे दशगुणाः स्मृताः ॥ (तथाच सुश्रुते) मद्यं रास्तं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विगटमेव च । रूक्षमाशुकरं चैव व्यवाये च विकाशिचेति । अत्र अम्बरसत्वं वास्योद्भूतसत्वेनोक्तं यदुक्तमन्यत्र । सर्वेषाम्भोजातीनां मद्यं मूर्ध्नि व्यवस्थितमिति ।

विधिसे मद्यपीनेके दूसरे गुण

काम्यतामनसस्तुष्टिस्तेजोविक्रमएवंच ।

विधिवत्सेव्यमानेतुमद्येसंतिहितागुणाः ॥ ५ ॥

अर्थ—मद्यको विधिपूर्वक पीनेसे सुन्दर स्वरूप, मनको संतोष, उत्साह, दूसरे को जीतनेकी सामर्थ्य इत्यादि हितकारक गुण होय हैं कहीं हुई विधिसे विरुद्ध मद्यपान करनेसे मदात्यय रोग होय है सो मदात्यय तीन प्रकारका है पूर्वमद, मध्यमद, और अन्त्यमद ।

पूर्वमदके लक्षण

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरःसुखश्चपानान्ननिद्रारतिबंधनश्च ।

संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्चप्रोक्तोऽतिरम्यःप्रथमोमदोहि ॥ ६ ॥

अर्थ—बुद्धि, स्मरण और प्रीति इन्को करे सुखकरे पान (पीना) अन्न, निद्रा, और रति इन्को बढ़ावे, सुन्दर पाठ, और गीत गानेको बढ़ावे, ऐसा प्रथम मद अति रमणीय कहा है * शंका—क्योंजी मदतौ मनमें विकार उत्पन्न करे है फिर आप इसको रमणीय कैसे कहतेहो ? * उत्तर—आपने कहा सो ठीक है परंतु दुःखको दूर करनेसे इसको रमणीयता है, इसी कारण मुश्रुतने (हर्ष) को मनके विकारोंमें कहा है ।

द्वितीयमदके लक्षण

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टाःसोन्मत्तलीलाकृतिरप्रज्ञातः ।

आलस्यनिद्राभिहतोमुहुश्चमध्येनमत्तःपुरुषोमदेन ॥ ७ ॥

अर्थ—मध्यम मदसे मत्तवाले पुरुषकी बुद्धि स्मरण और वाणी यथार्थ नहीं होय, विरुद्ध चेष्टा करे, और बावलेकीसी चेष्टा करे, प्रचंड होजाय, बारंबार आलस और निद्रासँ पीडित होजाय ।

तृतीयमदके लक्षण

गच्छेदगम्यांनशुरूंश्चपदयेत्वादेदभक्ष्याणिचनष्टसंज्ञः ।

ब्रूयाच्चगुह्यानिहृदिस्थितानिमदेतृतीयेपुरुषोऽस्वतंत्रः ॥ ८ ॥

अर्थ—तीसरे मदसे पुरुष मदके स्वाधीन होकर अगम्या (गुरूकी स्त्री आदिसे) गमन करे, वडेनका तिरस्कार करे जो वस्तु खानेके योग्य नहीं हैं उसको खाय, संज्ञा जाती रहै, और जो गुप्त बात हृदयमें हैं उनको कहने लगे ।

चतुर्थमदके लक्षण

चतुर्थेतुमदेमूढोभग्नदार्विण्यनिष्क्रियः । कार्याकार्यविभागाज्ञो
मृतादप्यपरोमृतः ॥ ९ ॥ कोमदंतादृशंगच्छेदुन्मादमि-
वचापरम् । बहुदोषमिवारूढः कांतारंस्ववशः कृती ॥ १० ॥

अर्थ—चतुर्थ मदसे मनुष्य मूढ होकर दृष्टे दृष्टके समान क्रियारहित होय, कार्य (करनेयोग्य) अकार्य (नहीं करने योग्य) इनको न समझे, वह पुरुष मरेसेभी अधिक मराभया है कौन ऐसा स्ववश अथवा सुकृती पुरुष ऐसे निचमद (अमल) का सहनशील होय है किंतु कोई नहीं होय कैसे कि जैसे सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशु जिस वनमें बहुत हैं ऐसे निर्जन वनमें मार्गमें कौन चतुर मनुष्य जायगा । * शंका—चरक, विदेह, वाग्भट आदि आचार्योंने तौ चतुर्थमद कहाही नहीं है, और सुश्रुतने कहा है इनमें विरोध क्यों है ? * उत्तर—चरकमें जो दूसरे और तीसरे में अन्तर कहा है सोई सुश्रुतने तृतीयमदको मानकर उसके लक्षण कहे हैं और जो चरकमें तृतीय मदके लक्षण कहे हैं सो सुश्रुतने चतुर्थ मदके लक्षण कहे हैं । ऐसे विरोध नहीं हैं वास्तवमें तीनही मद हैं । * शंका—क्योंजी एक मद्यसे ३ प्रकारके मद होय हैं इसमें क्या कारण है ? * उत्तर—मद्य यह अधिके समान है जैसे अग्निमें सुवर्ण (सोना) तपानेसे उत्तम, मध्यम, अधमकी परीक्षा होय है । ऐसेही मद्यभी सनोगुण, रजोगुण, तमोगुणवाले पुरुषोंकी प्रकृतिसूचक है अर्थात् सतोगुणवाले पुरुषको प्रथम मद, रजोगुणवाले पुरुषको दूसरा मद, तमोगुणवाले पुरुषको तीसरा मद प्राप्त होय है । सो (चरक) में लिखा है ।

विधिहीन मद्य सेवनसे और विकार होते हैं उनको कहते हैं

निर्भक्तमेकान्ततएवमद्यनिपेव्यमाणंमनुजेननित्यम् ।

आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चपिशरीरभेदं ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस पुरुषने अन्नरहित निरंतर मद्यपान निरत करा होय, वो अत्यंत दुःखदायक विकार (पानात्ययादिक) उत्पन्न करे है । और शरीरका विनाश करे है ।

अन्नके साथ मद्य सेवन कराभयाभी क्रुद्धत्वादिकारणोंसे

विकारकर्त्ता होय है सो कहते हैं

क्रुद्धेनभीतेनपिपासितेनशोकाभितसेनबुभुक्षितेन । व्याया-

१ प्रधानावरमध्याना रुक्माणां व्यक्तिदर्शजः । यथाग्निरेवं मत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥

मभाराध्वपरिक्षतेनवेगावरोधाभिहतेनचापि ॥ १२ ॥ अ-
त्यम्लभक्ष्यावततोदरेणसाजीर्णभुक्तेनतथाऽबलेन । उष्णा-
मितप्तेनचसेव्यमानं करोतिमद्यंविविधान्विकारान् ॥ १३ ॥

अर्थ—क्रोधयुक्त, भयसें पीडित, प्यासा, शोकवान्, क्षुधायुक्त, दंडकसरत और भारसे जो क्षीण होगया होय, मलमूत्र आदि वेगसे पीडित हो, अत्यंत अ-
म्लरस खानेसे जिसका पेट भर रहा होय, अजीर्णमें भोजन करनेवाले पुरुषके,
निर्वल पुरुषके, गरमीसे तपायमान, ऐसे मनुष्यके मद्य सेवन करनेसे अनेक वि-
कार उत्पन्न होते हैं ।

उन विकारोंको कहते हैं

पानात्ययंपरमदंपानाजीर्णमथापिवा ।

पानविभ्रममुग्रंचतेषांवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ १४ ॥

अर्थ—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादिक भयंकर वि-
कार होते हैं उनके लक्षण कहता हूं ।

वातमदात्ययके लक्षण

हिक्काश्वासशिरःकंपंपार्श्वशूलप्रजागरैः ।

विद्याद्बहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश
और अत्यंत बकवाद, ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय जानना ।

पित्तमदात्ययके लक्षण

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।

विद्याद्भरितवर्णस्यपित्तप्रायंमदात्ययम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान
होय) द्रेहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना ।

कफमदात्ययके लक्षण

छर्द्यरोचकटह्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।

विद्याच्छीतपरीतस्यकफप्रायंमदात्ययम् ॥ १७ ॥

अर्थ—वमन, (रद्द) अन्नमें अरुचि, खालीरद्द (ओकारी) तन्द्रा, देह गीली
और भारी, और शीत लगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना ।

सन्निपातमदास्यके लक्षण

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापिसर्वलिङ्गैर्मदास्ययः ॥ १८ ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों उसको सन्निपातप्रधान मदास्य जानना ।

परमदके लक्षण

श्लेष्मोच्छ्रयोऽगुरुतामधुरास्यताचविण्मूत्रसक्तिरथतंद्रिरो-
चकश्च । लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृण्यरुजाशिरसि सं-
धिषु चातिभेदः ॥ १९ ॥

अर्थ—कफका कोप (यह नासास्रावादिक जानना) देहका जड होना, मुखमें मिठास, मलमूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, प्यास, मस्तकमें पीडा और सं-
धिमें कुठारीसे तोड़नेसरीखी पीडा होय, ये परमदके लक्षण जानने ।

पानाजीर्णके लक्षण

आध्मानमुग्रमथवोद्विरणं विदाहः

पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥

अर्थ—अत्यंत पेटका फूलना, वमन अथवा डकारका आना, जलन होना, ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं ।

पानविभ्रमके लक्षण

हृद्वात्रतोदकफसंस्त्रवकंठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः ।

द्वेषः सुरान्नविरुतेष्वपितेषु तेषु तं पानविभ्रममुशंत्य खिलेन धीराः ॥

अर्थ—हृदय और गात्र इनमें सुई चुभानेकीसी पीडा होय, कफका स्राव होय, कंठसे धूआंसा निकलनेकीसी पीडा, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, सिरमें पीडा, मुख कफसे चिह्नासा होय । अनेकप्रकारकी भैरेय पैष्टिक, इत्यादिक सुरावि-
कृति और लहड़, पेडा आदि अन्नविकृति इनमें द्वेष होय, ये सर्वलक्षणसे इस रोगको (पानविभ्रम) ऐसे कहते हैं । सन्निपातके अंतर्गत होनेसे ये परमदादिक तीनों चरकने नहीं कहे और पूर्वोक्त मदास्यके लक्षणोंसे विलक्षण होनेसे सुश्रुत उक्तत्रिदोषज मदास्यको पृथक् कहा है ।

असाध्य लक्षण

हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतंत्य-

जेतु ॥ २१ ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापिनीलं पीते च यस्य-
नयने रुधिरप्रभेवा ॥

अर्थ—ऊपरके होठसे नीचेका होठ कुछ लम्बा होय, देहके बाहर अति शीत लगे, और भीतर अत्यन्त दाह होय, तेलसे लिप्त सदृश मुखहो, जीभ, होठ, दांत, ये काले अथवा नीले होय जाय, नेत्र पीले, अथवा रुधिरके समान लाल होय ऐसा अतिपानसे अर्थात् अतिमद्यपीनेसे नष्ट मनुष्यको वैद्य त्याग देय (चरकमें) ध्वंसक, विक्षेपक, दो मद्यविकार और कहे हैं ।

उपद्रव कहते हैं

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वगूलाः

कासभ्रमावपिचपानहतं त्यजेत्तम् ॥ २२ ॥

अर्थ—हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसवाडोंमें पीडा होय, खांसी, भ्रम ये उपद्रव जिसके होय उसको वैद्य त्यागदे परन्तु जैजट आचारी कहते हैं कि असाध्य लक्षणसे पृथक् पाठ होनेसे यह लक्षण होनेसे रोगी कृच्छ्रसाध्य जानना, असाध्य न जानना ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरविरचितमाधवार्थबोधिण्यां भापाटीकायां मदालयरोग-

निदानम् समाप्तम् ।

अथ दाहनिदानम् ।

त्वचंप्राप्तः समानोष्मापित्तरक्ताभिर्मूर्च्छितः ।

दाहंप्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

अर्थ—दाहरोग सात प्रकारका है तिसमें प्रथम मद्यजन्य दाहके लक्षण कहते हैं मद्यपान करनेसे कुपित भया जो पित्त उस पित्तकी उष्णता पित्तरक्तको बढ़ाय भयंकर दाहरोग उत्पन्न करे इसमें पित्तके समान औषध करे ।

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रितं दहति ध्रुवम् । समुष्यते तृष्यते च ता-

१ विच्छिन्नमद्यः सहसा योतिमद्यं निपेवते । ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ १ ॥

श्लेष्माप्रसेकः कठास्यशोषः सर्वासहिष्णुता । निद्रातन्द्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ १ ॥

हृत्कण्ठरोगसंमोहछर्दि रंजरुजाज्वरः । तृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ २ ॥

आभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥ लोहगंधांगवदनोवन्हिनेवावकी-
र्यते । पित्तज्वरसमःपित्तात्सचाप्यस्यविधिःस्मृतः ॥ ३ ॥

अर्थ—सर्व देहका रुधिर कुपितहोकर असन्त दाह करे, और वह रोगी अ-
धिके समीप रहनेसे जैसा तपे है ऐसा तपे, प्यासयुक्त ताम्रके रंगसदृश देहका
रंग होय, और नेत्रभी लाल होय, तथा मुखसे और देहसे तप्तलोहेपर जल डाल-
नेकीसी गंध आवे, और अंगोंमें मानोंकिसीने अग्नि लगाय दीनी ऐसी वेदना
होय, पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं उसपर पित्तज्वर-
की चिकित्सा करनी चाहिये पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है
कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशयका दुष्ट होना होय है और पित्तके दाहमें
नहीं होय, और सब लक्षण होते हैं ।

प्यासरोकनेके दाहके लक्षण

तृष्णानिरोधादब्धातौक्षीणेतेजःसमुद्गतम् । सबाह्याभ्यन्तरं
देहंप्रदहेन्मंदचेतसः । संशुष्कगलताल्वोष्ठोजिह्वानिष्कृष्य
वेपते ॥ ४ ॥

अर्थ—प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमी-
को बढ़ावे तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे, इस दाहसे रोगी
वेमुध होय, और गला, तालू, होठ यह अत्यंत सूखें और जीभको बाहर काढदे,
कोपे ।

शस्त्रघातजदाहके लक्षण

असृजःपूर्णकोष्ठस्थदाहोऽन्यःस्यात्सुदुःसहः ॥ ५ ॥

अर्थ—शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगटरुधिर उस रुधिरसे कोष्ठ
कहिये हृदय भरजाय तब दाह असन्त दुःसह प्रगट होय ।

धातुक्षयजन्यदाहके लक्षण

धातुक्षयोत्थोयोदाहस्तेनमूर्च्छातृषान्वितः ।

क्षामस्वरःक्रियाहीनःससीदेऽश्रुशपीडितः ॥ ६ ॥

अर्थ—धातुके क्षय होनेसे जो दाह होय उससे रोगीको मूर्च्छा प्यास इनसे
युक्त होय, स्वरभंग और चेष्टाहीन होय, और इस दाहसे पीडित होकर यदि
चिकित्सा न करावे तौ वो रोगी मरणको प्राप्त होय ।

क्षतजदाहके लक्षण

क्षतजोऽनश्रुतश्चान्यःशोचतोवाप्यनेकधा ।

तेनांतर्दह्यतेऽत्यर्थतृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७ ॥

अर्थ—क्षत (घाव) के होनेसे जो दाह होय उससे आहार थोड़ा रहिजावे, और अनेकप्रकारके शोक कर दाह होय, और इस दाहकरके अभ्यन्तर दाह होय, तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप (वकवाद) ये लक्षण होय ।

मर्माभिघातजदाहके लक्षण

मर्माभिघातजोऽप्यस्तिसोऽसाध्यःसप्तमोमतः ।

अर्थ—मर्मस्थान (हृदय शिर वस्ति) में चोट लगनेसे जो दाह होय सो सा-
तवा असाध्य है । अर्थात् और जो छः दाह हैं सो साध्य हैं ।

सर्वएवचवर्ज्याःस्युःशीतगात्रस्यदेहिनः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब दाहोंमें शीतल देहवाला रोगी साज्य है ।

इति दाहनिदानम् ।

अथ उन्मादनिदानम् ।

मदयंत्युद्धतादोषायस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।

मानसोऽयमतोव्याधिरुन्मादइतिकीर्त्यते ॥ १ ॥

अर्थ—दोष कहिये (वात पित्त कफ) बढ़कर अपने अपने मार्गको छोड़ अ-
न्य मार्ग अर्थात् मनोबह धमनियोंमें प्राप्त होकर मनको उन्मत्त करे और यह
व्याधि मानसी है अत एव इसको (उन्माद) ऐसे कहते हैं ।

एकैकशःसर्वशश्चदोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । मानसेनचदुःखेनसंप-
चविधउच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवतिषष्ठश्चयथास्वंतत्रभेषजं ।

सचाप्रवृद्धस्तरुणोमदसंज्ञाविभर्तिच ॥ ३ ॥

अर्थ—अत्यन्त कुपितभये पृथक् पृथक् दोषोंसे ३ सन्निपात और मानसिक
दुःखसे यह रोग पांचप्रकारका और विष खानेसे ६ छटा इन्मे यथा दोषानुसार
औषध देनी चाहिये, जबतक यह रोग बढे नहीं. और जबतक तरुण रहे तबतक
इस रोगको मद ऐसे कहते हैं ।

उन्मादके सामान्य कारण और सम्प्राप्ति-

विरुद्धदुष्टाऽशुचिभोजनानिप्रथर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उ-
न्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥ तै-
रल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्त्रोतास्य-
धिष्ठाय मनो वहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

अर्थ-विरुद्ध दुष्ट कहिये जहर मिला अन्न आदि, अशुचि चांडालादिसँ स्पर्श करा ऐसा भोजन, देवता, गुरु, ब्राह्मण इन्का तिरस्कार करनेसँ भय और हर्षके होनेसँ मनको बिगडा सब चेष्टा विपरीत करे (अर्थात् टेढा तिरछा चले बलवानसे बैर करै बकनेलगे) इस श्लोकमें पूर्व शब्द करणका है और चकारसे काम क्रोध लोभादिकभी उन्माद रोगके कारण है यह जैज्जटका मत है ।

इनमें कहे जो कारणोंसे अल्प (थोडा) मल गुण पुरुषके वातादिक दोष कुपित होकर बुद्धिका निवासस्थान (रहनेका ठिकाना) कोन हृदय कहिये मन उसको बिगाड़ मनके वहनेवाली नसोंमें प्राप्त हो मनुष्यके अंतःकरणको मोहित करे ।

उन्मादका स्वरूप

धीविभ्रमः सत्त्वपरिह्वयश्च पर्याकुलादृष्टिरधीरता च ।

अबद्धवाक्त्वं हृदयं च गूढं सामान्यमुन्मादगदस्य चिन्हम् ॥ ६ ॥

अर्थ-बुद्धीमें भ्रम, मनका चञ्चल होना, दृष्टिका सर्वत्र चलना, अधीरजपना, (डरपना) कुछका कुछ बोलना, हृदय शून्य होजाय, (अर्थात् विचार शक्तिका नाश होना) ये उन्माद रोगके सामान्य लक्षण हैं ।

विशेषलक्षण

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोतिवृद्धः । चि-
न्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चापि निहंति शीघ्रं ॥ ७ ॥

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि । पारु-
ष्यकाश्रयारुणवर्णताचजीर्णे बलं चानिलजस्वरूपम् ॥ ८ ॥

अर्थ-रूखा, थोडा, और 'शीतल' ऐसा अन्न 'विरेक' इस शब्दसे इस जगह दस्त, और वमन जानना, धातुक्षय, और उपवास, इन कारणोंसे अत्यन्त बड़ी जो वायु, सो चिन्ता शोकादिकरके युक्त होकर हृदय (मनको) अत्यंत दुष्ट कर, बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करै और हंसनेके कारण विना

हंसे, मंदसुप्तकानकरे, नाचे विना प्रसंगके गीत और बोलना करे, हाथोंको सर्वत्र चलावै, रोवै, और शरीर रूखा तथा कुश, और लाल होजाय, और आहारका परिपाक भयेपर ज्यादा जोर होय, यह वातज उन्मादके लक्षण हैं ।

पित्तजउन्मादके कारण और लक्षण

अजीर्णकटुम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्यहृदिस्थितंपूर्ववदाशुकुर्यात् ॥ ९ ॥

अमर्षसंरंभविनग्रभावाःसंतर्जनाभिद्रवणोष्णरोषाः । प्रच्छा यशीतान्नजलाभिलाषाःपीतास्थतापित्तकृतस्यलिंगम् ॥ १० ॥

अर्थ—अधकच्ची, कड़वी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम ऐसा भोजन करनेसे, संचित भया जो पित्त सो तीव्र वेग होकर अजितेंद्री पुरुषके हृदयमे प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करे । इस उन्मादसे असहनशील, हाथपैरोंको पटकना, नग्न होजाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम होजाय, क्रोध करे, छायामें रहै, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख होजाय, यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं ।

कफजउन्मादके कारण और लक्षण

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्यसोष्माकफोर्मणि संप्रवृद्धः । बुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्तिचित्तंप्रमोहयन्संजनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा । छ-

र्दिश्रलालाचबलंचभुंक्तेनखादिशौक्ल्यंचकफाधिकेस्यात् ॥ १२ ॥

अर्थ—मंद भूखमें पेटभर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे, ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करे, और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करे, उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यंत आवै, वमन होय, मुखसे लार बहे, भोजन करे पिछाड़ी इस रोगका जोर हो । नख, आदिशब्दसे खचा, मूत्र, नेत्रादिक यह सफेद होय यह लक्षण कफके उन्मादके हैं ।

सन्निपातके उन्मादके लक्षण

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरःसर्वैःसमस्तैरपिहेतुभिःस्यात् । स-

वाणिरूपाणिबिभर्त्तिताद्वक्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्य ॥ १३ ॥

अर्थ—जो उन्माद वातादिक दोषकरके अथवा तीनों दोषोंके कारणकरके होय, वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होय है। उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है। यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण यहकि असाध्य है।

शोकज उन्मादके लक्षण

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्यधनबांधवसंक्षया-
द्वा । गाढंक्षतेमनसिचप्रिययारिरंसोर्जायेतचोत्कटतरोमन-
सोविकारः ॥ १४ ॥ चित्रं ब्रवीतिचमनोनुगतं विसंज्ञो गाय-
त्यथोहसतिरोदितिचातिमूढः ।

अर्थ—चोररैने, राजके मनुष्योंने, अथवा शत्रुओंने, उसीप्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदिकिसीने त्रास दिया होय, अथवा धन, बंधूके नाश होनेसे, ऐसे पुरुषका अन्तःकरण असन्त दूखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, वो पुरुष गुप्त बातकोभी कहने लगे, और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, वो गावे, हंसे, और रोवे, तथा मूर्ख हो जाय।

विषजन्य उन्मादके लक्षण

रक्तेक्षणोहतबलेन्द्रियभाःसुदीनःशयावाननोविषकृतेनभवे-
द्विसंज्ञः ॥ १५ ॥

अर्थ—विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होय, बल इन्द्री और शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आय जाय, और संज्ञा जाती रहै।

असाध्य लक्षण

अवाङ्मुखस्तून्मुखोवाक्षीणमांसबलोनरः ।

जागरूकोह्यसन्देहमुन्मादेनविनश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस्का मुख नीचेको होय अथवा ऊपरको होय, और जिसका मांस और बल क्षीण हो गया होय, तथा जिसकी निद्रा जाती रही हो, ऐसा मनुष्य निश्चय इस उन्मादकरके नाशको प्राप्त हो।

भूतज उन्मादके लक्षण

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।

उन्मादकालोऽनियतश्चर्यस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, शक्ति, देहका व्यापार, तत्त्वज्ञान, शिल्पादि ज्ञान, अथवा ज्ञान कहिये शास्त्रज्ञान और विज्ञान नाम तदर्थ निश्चय आदिशब्दसंस्मृतादिक ए जिस्की मनुष्यकीसी न होय, और जिस्का उन्मत्त होनेका काल निश्चय होय, ऐसे उन्मादको भूतोन्माद कहते हैं। भूतशब्दसे यहाँ आगे कहेंगे सो सब देवता जानने।

देवग्रहके लक्षण

सन्तुष्टःशुचिरतिदिव्यमाल्यगंधोनिस्तंद्रिस्त्ववितथसंस्कृतप्रभापी । तेजस्वीस्थिरनयनोवरप्रदाताब्रह्मण्योभवतिनरःसदेवछुष्टः ॥ १८ ॥

अर्थ—सदा संतोषयुक्त रहै, पवित्र रहै, देहमें दिव्यपुष्पके समान मुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सख और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरदृष्टी, बरका देनेवाला, (तेरा कल्याण हो ऐसैं बरदेय) ब्राह्मणसैं प्रीति राखे, ऐसा मनुष्य (देवग्रह) पीडित जानना, देवशब्दसैं गण मात्रिकादि ग्राह्य हैं सो (विदेह) ने कहावी है।

असुरपीडितके लक्षण

संस्वेदीद्विजगुरुदेवदोषवक्ताजिह्वाक्षोविगतभयोविमार्गदृष्टिः । संतुष्टोऽभवतिचान्नपानजातैर्दुष्टात्माभवतिसदेवज्ञानुछुष्टः ॥ १९ ॥

अर्थ—पसीना युक्त देह, ब्राह्मण, गुरु, और देव, इन्में दोषारोपण करनेवाला, देही दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्ध मार्गका चलनेवाला, और बहुत अन्न जलसेभी जिस्को संतोष न होय, और दुष्टबुद्धि, ऐसा मनुष्य (देवग्रह) पीडित जानना।

गंधर्वग्रहके लक्षण

दुष्टात्मापुलिनवनांतरोपसेवीस्वाचारःप्रियपरिगीतगंधमा-
ल्यः । नृत्यनवैग्रहसतिचारुचाल्पशब्दगंधर्वग्रहपरिपीडितो
मनुष्यः ॥ २० ॥

अर्थ—गंधर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन, और वारा बगीचामें रहनेवाला, अनिदित आचारका करनेवाला, गान, मुगंध, और पुष्प, ये जि-
स्को प्यारे लगे वह पुरुष नाचे हंसे, सुन्दर बोले, थोड़ा बोले ।

यक्षग्रहके लक्षण

ताम्राक्षःप्रियतनुरक्तवस्त्रधारीगम्भीरोद्भुतगतिरल्पवाक्सहि-
ष्णुः । तेजस्वीवदतिचकिंददामिकस्मैयोयक्षग्रहपरिपीडितो
मनुष्यः ॥ २१ ॥

अर्थ—यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके नेत्र लाल हों, सुंदर वारीक ऐसे रक्त
वस्त्रका धारण करनेवाला, गंभीर, बुद्धिवान् जलदी चलने वाला, प्रमाणका बो-
लनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देखें ऐसे बोलनेवाला ऐसा होय ।

पितृग्रहके लक्षण

प्रेतानांसदिशतिसंस्तरेषुपिंडान्भ्रान्तात्माजलमपिचापसव्य-
हस्तः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तोभवतिपितृ-
ग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

अर्थ—कुशाके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंड देय, चित्तमें भ्रांति रहै, और
उत्तरीय वस्त्र अपसव्यकरके तर्पणभी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल,
गुड, खीर इनपर मन चले (इस कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस प-
दार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है
ऐसेही सर्वत्र जानना) ये डल्लनका मत है । और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे
ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके है ।

सर्पग्रहयुक्तके लक्षण

यस्तूर्व्याप्रसरतिसर्पवत्कदाचित्सृक्किण्वौविलिहतिजिह्वया
तथैव । क्रोधाळुर्मधुगुडदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयोभवतिभुजंगमे-
नजुष्टः ॥ २३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीसे लोटाकरे, अर्थात् छाती केवल चले, तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रांत (होठोंको) चाटाकरे, सदां क्रोधी रहै, सह-त, गुद्, दूध और खीरकी इच्छा रहै, वो सर्पग्रहग्रस्त जानना ।

राक्षसग्रहपीडितके लक्षण

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जोभृशमतिनिष्ठुरोऽति-
शूरः । क्रोधालुर्विपुलबलोनिशाविहारीशौचद्विद्भवतिचरा-
क्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य मांस, रुधिर, नानाप्रकारके मद्य पीनेकी इच्छा करे, और निर्लज्ज, अतिनिष्ठुर, अत्यन्त शूर, क्रोधी, बड़ावली, रात्रिमें डोलनेवाला, अपवित्र, ऐसा होय वह (राक्षसकरके) ग्रस्त जानना ।

पिशाचजुष्टके लक्षण

उद्धस्तःकृशपरुषश्चिरप्रलापीदुर्गंधोभृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ।
बव्हाशीविजनवनांतरोपसेवीव्याचेष्टन्भ्रमतिरुदन्पिशाच-
जुष्टः ॥ २५ ॥

अर्थ—जो अपने हाथ ऊपरको करे, (उद्धस्त, ऐसाभी पाठ है) उस जगह उद्धस्त नाम नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बकनेवाला, जिसके दे-हमें दुर्गंध आवै अपवित्रते, तथा अति चंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा कर-नेवाला, खानेको मिलै तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, वि-रुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदन करता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य पिशाचग्रस्त जा-नना । प्रसंगवससे ब्रह्मराक्षस और भूतोन्मादके लक्षण ग्रन्थान्तरोंसे लिखते हैं ।

देवविप्रगुरुद्वेषीवेदवेदांगविच्छविः ।

आशुपीडाकरोऽहिंस्त्रोब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

अर्थ—देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, कल्प व्याकरणादि) का पढ़ा भया, शीघ्र पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं ।

भूतोन्मादके लक्षण

महापराक्रमोयस्यदिव्यज्ञानंचभापते ।

उन्मादकालोनैश्चित्योभूतोन्मादीसउच्यते ॥ २७ ॥

अर्थ—महापराक्रमी, जिसके श्रेष्ठ ज्ञानको कहे, और जो उन्माद कालका नि-
श्चै न होय, उसको भूतोन्मादी कहते हैं, अब कहते हैं कि देवादिक ग्रह इस
मनुष्यको तीन कार्यके वास्ते ग्रहण करते हैं, हिंसा अर्थात् मारनेके निमित्त, और
पूजाके निमित्त, तथा विहारके निमित्त, इसमें हिंसाके निमित्त ग्रस्त मनुष्य सा-
ध्य (अच्चा) नहीं होय, उसके लक्षण आगे कहते हैं ।

स्थूलाक्षोद्भुतमटनःसफेनलेहीनिद्रालुःपततिचकंपतेचयोऽति ।

यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतःस्यात्सोऽसाध्योभवतितथात्रयो-
दशोऽब्दे ॥ २८ ॥

अर्थ—नेत्र भयानक होजाय, शीघ्र चले, मुखमें जो झाग हैं उनको चाटने-
वाला, और जिसको निद्रा बहुत आवै, तथा गिरपड़े, कांपे, और जो पर्वत, हा-
थी, अथवा नग नाम वृक्ष, आदिशब्दसे भीति, मन्दिर आदि जानने, इन्से
गिरकर ग्रहग्रस्त होय, वो असाध्य है, तैसेही तेरवें वर्षमें सर्व देवादि उन्मादी
असाध्य जानने, (विदेह)ने विशेष लक्षण कहे है सो ग्रन्थान्तरोंसे जानलेने ।

देवादीनामावेशसमयः

देवग्रहाःपौर्णमास्यामसुराःसंध्ययोरपि । गन्धर्वाःप्रायशोऽष्ट-

म्यांयक्षाश्चप्रतिपद्यथ ॥ २९ ॥ पितृग्रहास्तथादर्शपंचम्याम-

पिचोरगाः । रक्षांसिरात्रौपैशाचाश्चतुर्दश्यांविशंतिहि ॥ ३० ॥

अर्थ—देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह, सायंकालमें, अपिशब्दसै
पूर्णमासीकोभी प्रवेश करते हैं, गंधर्वग्रह बहुधा अष्टमीको, प्रायशब्दसै संध्या-
कोभी गंधर्व ग्रह प्रवेश करते हैं, यक्ष ग्रह पड़वाको, पितृग्रह अमावास्याको, सर्प-
ग्रह पंचमीको, अपिशब्दसै अमावास्याकोभी प्रवेश करते हैं, राक्षस रात्रिमें, और
पिशाच चतुर्दशीको, मनुष्यके देहमें प्रवेश करते हैं, तिथिकहनेका यह प्रयोजन है
कि जिसजिस तिथीको जो जो ग्रह मनुष्यको ग्रस्त करे उसको उसी उसी तिथिमें
शांतिके निमित्त बलिदानादिक कराने चाहियें । * शंका—क्योंजी जब ग्रह-
ग्रस्त मनुष्योंको उन्माद होता है तौ वो ग्रह मनुष्यकी देहमें प्रवेश करते क्यों
नहीं दीखते हैं इसवास्ते कहते हैं ।

दर्पणादीन्यथाछायाशीतोष्णंप्राणिनोयथा । स्वमणिभास्क-

१ संख्यात्रिनाडीप्रमिताऽर्कविवादद्वौदितास्तादधऊर्ध्वमत्र । इति ।

२ प्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः । दिनेषु बलिहोमादीन्युज्जीत चिकित्सकः ॥१॥

रांशुश्चयथादेहंचदेहधृक् । विशान्तिनचदृश्यन्तेग्रहास्तद्वच्छरी-
रिणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणमें मनुष्यका प्रतिबिम्ब पड़ै है, आदिशब्द इस जगह प्रकार-
वाची है, अर्थात् जल, तेल आदिमें जैसे छाया पड़ती है, और सरदी, गरमी
जैसे मनुष्योंको लगती है, अथवा जैसे सूर्यकिरण सूर्यकान्त मणि (आतसी-
काच)में प्रवेश करें हैं, अथवा जैसे जीव देहमें प्रवेश करे है, इसीप्रकार सब ग्रह
मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं परंतु दीखते नहीं हैं, इस श्लोकके पोषक दृष्टांत
जेज्जट आचारिणी बहुत दीने हैं, परंतु हमने ग्रन्थवदनेके भयसे नहीं लिखे ।

इस उन्मादरोगमें सर्वत्र देवशब्दकरके देवतानकेसे आचरणवाले देवतानके
अनुचर (दास) जानने चाहियें, क्योंकि देवतानको मनुष्यनके अपवित्र देहमें
प्रवेश होना असंभव है सो (सुश्रुत)में लिखा है ।

नतेमनुष्यैःसहसंविशान्तिनवामनुष्यान्कचिदाविशन्ति । ये
त्वाविशन्तीतिवदन्तिमोहात्तेभूतविद्याविषयादपोह्याः॥३२॥
तेषांग्रहाणांपरिचारिकायेकोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः । अ-
सृग्वसामांसभुजःसुभीमानिशाविहाराश्चतथाविशन्ति ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो देवादिक मनुष्यके साथ मिलते नहीं हैं नवे मनुष्योंकी देहमें प्रवेश
करते हैं, और जो वैद्य प्रवेश करते हैं ऐसे कहते हैं, वो अज्ञानसे कहते हैं, ऐसा
वैद्य भूतविद्यावाला जानकर साज्य है । तौ कौन प्रवेश करते हैं इसवास्ते कहते
हैं तेषामिति—अर्थात् उन देवताओंके परिचारक (नोकर) जो करोड़ों हजारों,
पद्म संख्याक, रुधिर, वसा, मांसके भोजन करनेवाले, भयंकर, रात्रिमें विचरनेवाले
हैं वो प्रवेश करते हैं ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुर्यमाधवार्थबोधनीमाधुरीभाषाटीकाया उन्मादरोगः समाप्तः ॥

अपस्मारनिदानम् ।

प्रथममुश्रुतोक्त इसरोगकी निरुक्ति लिखते हैं
स्मृतिभूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ।

अपस्मारइतिप्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥ १ ॥

अर्थ—स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहते हैं, और अपशब्द उसका नाशक है, इसीसे स्मृति और अप इन दोनों शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यह रोग जलादिकके विषै प्रवेश होनेसे प्राणांतकारक है।

अपस्मारस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह

चिंताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धाहृत्स्त्रोतसिस्थिताः ।

कृत्वास्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ २ ॥

अर्थ—चिंता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध, लोभ, मोहादिसे कृपित भये जो दोष (वात, पित्त, कफ,) सो हृदयमें स्थित जो मनके बहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करे है।

वाग्भटके मतसे निदान

मिथ्यायोगेन्द्रियार्थानां कर्मणामतिसेवनात् । विरुद्धमलि-
नां कर्मविहारकुपितैर्मलैः ॥ ३ ॥ वेगनिग्रहशीलानामहि-
ताशुचिभोजनात् । रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां वारजस्वेला-
म् । तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् । चेतसोऽभिभ-
वैः पुंसामपस्मारोभिजायते ॥ ४ ॥

अर्थ—इन्द्रीयके अर्थ कहिये विषय और कर्म, इनका मिथ्या योग, अतियोग और अयोगके सेवन करनेसे, तथा विरुद्ध और मलिन भोजन और विहारसे कृपित भये जो दोष उनसे तथा मूत्रमलादिवेगोंके धारण करनेवालोंके, अहित और अपवित्र भोजन करनेसे, रजोशुण्, तमोशुणी, मनुष्योंके रजस्वला स्त्रीगमन करनेसे, तथा काम, भय, उद्वेग, क्रोध, शोक इन कारणोंसे; चित्त (मन) के विगडनेसे, मनुष्योंके अपस्माररोग प्रगट होय है। तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण, ए इन्द्रीयके अर्थ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ए इन्द्रीयके विषय हैं। इनके अतिसेवनसे उदाहरण दिखाते हैं। जैसे पुरुषका इष्ट नाशादि सुनना, मिथ्या योग है। पटहादि वार्जोंका सुनना अतियोग है। कुछ न सुनना अयोग है। ऐसेही अपवित्र आदिको छूना, मिथ्यायोग है। अति शीतल, अति गरम छूना योग, स्नान उबटना आदिका सेवन अतियोग है। किसीको न छूना अयोग है, छोटी वस्तुका देखना मिथ्यायोग है। बड़ी वस्तुका देखना अतियोग, और किसीको न देखना अयोग है, रसोंका अतिसेवन अतियोग है, थोड़ा सेवन मिथ्यायोग है, असेवन अयोग है। दुर्गंधका

सूँघना मिथ्यायोग है। अतितीक्ष्ण गंधका सूँघना अतियोग है, किसीको न सूँघना अयोग है। तहां कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारका कर्म कहा है तहां कायिक कर्म जैसे कुसमयमें दंडकसरतका करना मिथ्यायोग, बहुत करना अतियोग, कुछ न करना अयोग है। खोटा और झूठ बोलना वाणीका मिथ्यायोग है, बहुत बोलना अतियोग, चुप होजाना अयोग है। मानसकर्म जैसे शोकादि चिंतवन मानसिक मिथ्यायोग है, अखंत चिंता करना अतियोग है। और किसीकी चिंता न करना अयोग है। इति आगे श्लोक सब माधवके हैं।

अपस्मारके सामान्यलक्षण

तमःप्रवेशःसंरंभोदोषोद्रेकहृत्स्मृतिः ।

अपस्मारइतिज्ञेयोगदोघोरश्वतुर्विधः ॥ १ ॥

अर्थ—अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढ़े बाँके फिरे दोषोंके बढनेसे ज्ञानका नष्ट होना, ये लक्षण जिस रोगमें होय ऐसा यह भयंकर (अपस्मार) रोग चार प्रकारका है इसको लौकिकमें मिरगी ऐसे कहतेहैं।

पूर्वरूप

हृत्कंपःशून्यतास्वेदोध्यानंमूर्च्छाप्रमूढता ।

निद्रानाशश्वतस्मिंस्तुभविष्यतिभवंत्यथ ॥ २ ॥

अर्थ—जब अपस्मार होनेवाला होय है तब ये लक्षण होते हैं हृदय कांपे, और शून्य पडजाय, (कुछ सूझे नहीं) चिंता, मूर्च्छा, पसीने आवे, ध्यान ल-गजाय, मूर्च्छा कहिये मनका मोह, और प्रमूढता कहिये इन्द्रिका मोह, होय निद्रा जाती रहै।

वातज अपस्मारके लक्षण

कंपतेप्रदशेदंतान्फेनोद्दामीश्वसत्यपि ।

परुषारुणकृष्णानिपश्येद्रूपाणिचानिलात् ॥ ३ ॥

अर्थ—वातके अपस्मारसे रोगी कांपे, दांतोंको चंवावे, मुखसे झाग गेरे, और श्वास भरे, तथा कर्कश अरुणवर्ण और काला वर्ण मनुष्योंका दीखै अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है। इसीप्रकार पित्तसे पीलवर्णका पुरुष दौडा आता है। और कफमें सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है। ऐसे जानना।

पित्तकी मृगीके लक्षण

पीतफेनांगवक्राक्षःपीतासृग्रूपदर्शनः ।

सत्तृष्णोष्णाऽनलव्यासलोकदर्शीचपैत्तिकः ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तकी मिरगीवालेके ज्ञाग, देह, मुख और नेत्र ए पीले होते हैं । और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अभिसे न्यास भया ऐसा सब जगत्को देखे ।

कफकी मृगीके लक्षण

शुक्लफेनांगवक्राक्षःशीतदृष्टांगजोगुरुः ।

पश्यञ्जुक्कानिरूपाणिमुच्यतेऽलैष्मिकश्चिरात् ॥ ५ ॥

अर्थ—कफकी मृगीवालेके ज्ञाग, अंग, मुख और नेत्र सपेद होय, देह शीतल होय, तथा देहके रोमांच खड़े रहें, भारी होय, और सब पदार्थ सपेद दीखें यह अपस्मार (मिरगी)रोग देरमें छोड़े । यासे यह सूचना करी कि वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड़ देती है ।

सन्निपातकी मृगीके लक्षण

सर्वैरेतैःसमस्तैश्चलिगैर्ज्ञैयस्त्रिदोषजः ।

अपस्मारःसचासाध्योयःक्षीणस्याऽनवश्रयः ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों वो त्रिदोषज अपस्मार जानना, यह असाध्य है । और जो क्षीण पुरुषके होय वोभी असाध्य है । तथा पुराना पड़गया होय वोभी अपस्मार (मिरगी)रोग असाध्य है ।

मिरगीके असाध्यलक्षण

प्रतिस्फुरन्तंबहुशःक्षीणंप्रचलितभ्रुवम् ।

नेत्राभ्यांचविकुर्वाणमपस्मारोविनाशयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—बारंबार कंपयुक्त होय, क्षीण होगयाहो, भ्रुकुटी (भौंह)का चलाने-वाला और नेत्र टेढ़े बांके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं ।

मिरगीरोगकी पाली

पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वामासाद्वाकुपितामलाः ।

अपस्मारायकुर्वन्तिवेगंकिंचिदथोत्तरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कोपको प्राप्तभये जो दोष सो पंद्रहे दिन अथवा बारहे दिन अथवा

महीनाभरमें मिरगीरोग प्रगट करे, तिनमें पैत्तिक १५ दिन, वातिक, १२ दिन और श्लैष्मिक ३० दिनमें आती है। इस जगह बारवे दिनके पिछाडी पक्ष कहना ठीक था फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि अधिक कालकरकेही दोष वेग करते हैं यह कहा। किंचिदथोत्तरम्—इस पदसे यह सूचना करी है कि जिस जिस दोषका जो जो काल कहा है उससे पहिलेही दोषोंके तारतम्यसं मिरगीरोग होय है। ऐसे जानना। * शंका—वेग उत्पन्नकरके अपस्मारके प्रगट कर्चा दोष देहमें सदां रहते हैं, फिर वो सर्वकालमें वेग क्यों नहीं करते द्वादशादि दिनमें क्यों करते हैं? इस विषयमें दृष्टान्तरूप समाधान कहते हैं।

देवेवर्षत्यपियथाभूमौबीजानिकानिचित् ।

शरदिप्रतिरोहन्तितथाव्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे चातुर्मासमें इन्द्र वर्षेवी है परन्तु कोई जव गेहूं चना आदि बीज शरदऋतुमेंही ऊगते हैं तैसेही सर्व रोगके बीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादि व्याधिविशेषके निदानादिकका संगम होनेसे उस रोगको प्रगट करते है। अथवा इसको मुख्य प्रयोजन यह है कि बीजके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायकवी हैं। परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा (इच्छा) करते हैं। अंकुर आनेको कालही सहाय चाहिये अर्थात् जिसकालमें जिस अंकुरका बीज आता है वो उसीकालमें आवैगा बीचमें कभी नहीं आनेवाला यही न्याय चातुर्थिक ज्वरादिकोंमेंभी जानना।

अथ वातव्याधिनिदानम् ।



रूक्षशीताल्पलध्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचारा-
च्चदोषासृक्स्त्रावणादपि ॥ १ ॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामा-
तिविचेष्टनेः । धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगार्त्तिकर्षणात्
॥ २ ॥ वेगसंधारणादामादभिधातादभोजनात् । मर्मवाधा-
द्भजोष्ठाश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ॥ ३ ॥ देहेस्त्रोतांसिरिक्तानि
पूरयित्वाऽनिलोबली । करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकां-
गसंश्रयान् ॥ ४ ॥

अर्थ—रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्न खानेसे, अति मैथुनके करनेसे, बहुत जागनेसे, विषम उपचार करनेसे दोष (कफ पित्त मल मूत्र इत्यादि) और रुधिर इनके निकलनेसे, अर्थात् वमन विरेचनसे । लंघन, अर्थात् अखाड़े आदिमें कला खेलनेसे, नदी आदिमें तैरनेसे, बहुत चलनेसे, अति दंढकसरत आदि श्रमके करनेसे, अत्यंत विरुद्धचेष्टा करनेसे, रस रुधिर आदि धातुके क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा कुश होनेसे मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे, आगेसे लकड़ी आदिकी चोट लगनेसे, उपवास (व्रत)के करनेसे आदि ले सब मर्मस्थानोंमेंके लगनेसे, हाथी ऊंट घोडा इत्यादि जल्दी चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे, क्रोधको प्राप्त भई जो बलवान् वायु सो देहमें खाली जो नस उनमें प्राप्त हो सर्वांग, अथवा एक अंगमें व्याप्त होनेवाली ऐसी अनेकप्रकारकी वातव्याधि उत्पन्न करे ।

पूर्वरूप

अव्यक्तलक्षणैतेषांपूर्वरूपमिति स्मृतम् ।

आत्मरूपंतु तद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ॥ ५ ॥

अर्थ—उस वक्ष्यमाण वातव्याधिके जो प्रगट लक्षण उसको पूर्वरूप ऐसे कहते हैं । ज्वरादिकोंके सहस्र विशिष्ट नहीं हैं । और जो रूप प्रगट होय अर्थात् दोषादि भेदकरके यथार्थ दीखे उसको उस व्याधिका लक्षण जानना । अपानवायुको चंचल होनेसे स्तंभ संकोच कंपादिकका कदाचित् अभाव होय है । और लघुता (शरीरकी उस वायुकरके धातुशोषण करनेसे) अथवा अपायलघुता कहिये सब वातविकारोंका अपाय कहिये अभाव होय और वातविकारोंकी लघुता कहिये अल्पत्वकरके जो स्थिति है सो निःशेष निवृत्ति नहीं होय । अब नानाप्रकारकी व्याधि करै है ये जो कहिआयेहैं उसको आगेके श्लोकमें कहते हैं ।

संकोचःपर्वणांस्तंभोभंगोऽरूपापर्वणामपि । लोमहर्षःप्रलाप-
श्रपाणिष्ठश्शिरोग्रहः ॥ ६ ॥ खांज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोथो-
ऽगानामनिद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशःस्यंदनगात्रसुप्तता ॥ ७ ॥
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुंडनम् । भेदस्तोदोऽर्चि-
राक्षेपोमोहश्चायास एव च ॥ ८ ॥ एवंविधानिरूपाणिकरो-
तिकुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकत् ॥ ९ ॥

अर्थ—संधीन्का संकोच और स्तंभ, हड्डीन्का और संधीन्का फूटनेकीसी पीड़ा, रोमांच, बाह्यात् बकना, हाथ पैर और मुख इनका जकड़जाना, खंजत्व, पांशुरा होना, कुबड़ापना, अंगोंका सूजना, निद्राका नाश, गर्भका न रहना, शुक्र और रज (स्त्रीका आर्चव) इन्का नाश, कंप, अंगोंमें शून्यता, मस्तक, नाक, मुख, जन्तु और नाड इनका भीतर जाना, अथवा टेढ़े होजाय, भेदसदृश पीड़ा, नोचनेकीसी पीड़ा, शूल, आक्षेपरोग जो आगे कहेंगे, मोह, श्रम, कुपित भई जो वायु यामकार लक्षण करे है। वो वायु हेतु और स्थान इन भेदसे विशिष्ट रोग उत्पन्न करनेवाली होती है। जैसे कफादृत होनेसे मन्यास्तंभ रोग करे यदि पक्काशयमें वात स्थित होय तौ आंतोंका गुंजना इत्यादि रोग करे है।

कोष्ठाश्रितवायुके कार्य

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहोमूत्रवर्चसोः ।

वर्ध्महृद्गोगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ॥ १० ॥

अर्थ—कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध होय, बदरोग, हृदयरोग, गोला, ववासीर, और पसवाडोंमें पीड़ा इतने रोग उत्पन्न करे।

सर्वाङ्गकुपितवायुके कार्य

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणजृम्भणम् ।

वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटंतीवास्यसंधयः ॥ ११ ॥

अर्थ—सब अङ्गकी वायु कुपित होनेसे अंगोंका फरकना जंभाई, और संधी वेदनायुक्त हो, फूटनेकीसी पीड़ा होय।

गुदामें स्थितवायुके कार्य

ग्रहोविण्मूत्रवातानांशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।

जंघोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोफोगुदेस्थिते ॥ १२ ॥

अर्थ—वायु गुदामें स्थित होनेसे मलमूत्र और वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी, जंघा ऊरु त्रिकस्थान हृदयपीठ इनमें पीड़ा, और सूजन ये रोग होते हैं।

आमाशयस्थितवायुके कार्य

रूपपार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविषूचिकाः ।

१ इस जगह गुदाशब्दकरके उत्तरगुदा अर्थात् पक्काशय जानना। गुदा नहीं जानना। क्योंकि गुदामें कहे तौ उसको अम्परी (पथरी) कर्तृत्व नहीं होसके।

कासःकंठास्यशोषश्चश्वासश्चामाशयेस्थिते ॥ १३ ॥

अर्थ—वायु आमाशयमें स्थित होनेसे पसवादा उदर हृदय और नाभि इन्में पीडा होय, प्यास, डकार, और हैजा (मुख और गुदाके द्वारा अन्नकी प्रवृत्ति) खांसी, कंठ शुष्कता सूखना, श्वास ये लक्षण होते हैं ।

पक्काशयस्थवायुके कार्य

पक्काशयस्थोऽत्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच ।

मूत्रकृच्छ्रपुरीषत्वमानाहंत्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥

अर्थ—वायु पक्काशयमें होय तो आंतोंका गूजना, शूल, आटोप (गुडगुडा-शब्द) मलमूत्र कष्टसे निकले, अफरा, त्रिकस्थानमें पीडा, ए लक्षणोंको करे ।

इन्द्रिन्में स्थितवायुके कार्य

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्कुहसमीरणः ।

अर्थ—कानसेआदि जो और इन्द्री हैं उनमें कुपितवायु यदि स्थित होय तो इन्द्रिन्का नाश करे ।

रसधातुगतवायुके लक्षण

त्वग्रूक्षास्फुटितासुसाकृशाकृष्णाचतुद्यते ।

आतन्यतेसरागाचमर्मरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥

अर्थ—वायु त्वग्गत अर्थात् धातुरूप त्वचामें प्राप्त होनेसे त्वचा रूखी, और फटी, शून्य, कर्कश और काली होजाय, और उसमें चमका चले, तथा तन जाय, कुछ तावेके समान लाल रंग होजाय, और हृदयादि मर्ममें पीडा होय ।

रक्तगतवायुके लक्षण

रुजस्तीव्राःससंतापावैवर्ण्यकृशतारुचिः ।

गात्रेचारुषिभुक्तस्यस्तंभश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥

अर्थ—वायु रुधिरमिश्रित होनेसे सन्तापयुक्त तीव्रवेदना होय, देहका विवर्ण होय, कृशता, अरुचि और देहमें फोडा, तथा भोजन करनेके उपरांत देहका जिकड़जाना, ये लक्षण हैं ।

मांसमेदोगतवायुके लक्षण

गुर्वगन्तुद्यतेस्तब्धदंडमुष्टिहतंयथा ।

सरुक्श्रमितमत्यर्थमांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥

अर्थ—मांस और मेदमें वायुके पहुँचनेसे अंग भारी होजाय चोंटनेके सघन पीडा होय, अथवा निश्चल होजाय, अथवा मुका मारनेकीसी तथा लकड़ी मारनेकीसी पीडा होय ।

मज्जास्थिगतवायुके लक्षण

मेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसवलक्षयः ।

अस्वप्नसततारुकचमज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १८ ॥

अर्थ—मज्जा और हड्डी इन ठिकानेपर वायुका कोप होनेसे हड्डी फूटनी हो, संधिसंधिमें पीडा होय, मांस और वल ये क्षीण होजाय, निद्रा आवे नहीं, और निरन्तर पीडा होय । इसजगह मुशुतने कुछ विशेष लिखा है ।

शुक्रगतवायुके लक्षण

क्षिप्रमुंचतिवध्नातिशुक्रगर्भमथापिवा ।

विकृतिंजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः ॥ १९ ॥

अर्थ—शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वो वायु शुक्रको जल्दी पतन करे । और बंधन करे, अथवा गर्भको जलदी छोड़े, और बंधन करे, और गर्भका अथवा शुक्रका विकार प्रगट करे ।

शिरागतवायुके लक्षण

कुर्याच्छिरागतःशूलंशिराकुंचनपूरणं ।

सवाह्याभ्यन्तरायामंखल्लीकुब्जत्वमेवच ॥ २० ॥

अर्थ—वायु शिरा (नाडी)गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच, और स्थूलत्व करे । और, बाह्यायाम आभ्यन्तरायाम, खल्ली, और कुब्जापना, इन रोगोंको उत्पन्न करे ।

स्नायुगत और संधिगतवायुके लक्षण

सर्वाङ्गैकांगरोगांश्चकुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ।

हंतिसंधिगतःसंधीज्जूलशोथौकरोतिच ॥ २१ ॥

अर्थ—वायु स्नायुगत होनेसे सर्वाङ्ग और एकाङ्ग रोगोंको करे, संधिगत होनेमें संधिका विश्लेष (जुदा जुदा होना) और संधिका जकड़जाना तथा शूल और सूजन इन रोगोंको प्रगट करे ।

पित्त और कफ इनसे आटूच हुई प्राणादिकवायुके
आधेआधे श्लोकोंमें लक्षण कहते हैं

प्राणेपित्तावृतेछर्दिर्दाहश्चैवोपजायते । दौर्बल्यंसदनंतंद्रावैर-
स्यंचकफावृते ॥ २२ ॥ उदानेपित्तयुक्तेतुदाहोमूर्च्छाभ्रमक्ल-
मः । अस्वेदहर्षौमन्दाग्निःशीतताचकफावृते ॥ २३ ॥ स्वे-
ददाहौष्ण्यमूर्च्छाःस्युःसमानेपित्तसंयुते । कफेनसंगेविण्मू-
त्रेगात्रहर्षश्चजायते ॥ २४ ॥ अपानेपित्तयुक्तेतुदाहौष्ण्यंर-
क्तमूत्रता । अधःकायेगुरुत्वंचशीतताचकफावृते ॥ २५ ॥
व्यानेपित्तावृतेदाहोगात्रविक्षेपणंक्लमः । स्तंभनोदंडकश्चापि
शोथशूलौकफावृते ॥ २६ ॥

अर्थ—प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन, और दाह उत्पन्न होय । और
कफसंयुक्त होनेसे दुर्बलपना, ग्लानि, तंद्रा और मुखमें विरसता ये होय । उ-
दानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनायास, श्रम ए होय । और
कफयुक्त होय तौ पसीना नहीं आवै, रोमांच, अग्नि मंद होय, और शीत लगे ।
समानवायु पित्तयुक्तहोनेसे पसीना, दाह, गरमी और मूर्च्छा ये होते हैं ।
पित्तकफयुक्तहोनेसे मलमूत्रका रुकना, और रोमांच होय । अपानवायु पित्त-
युक्तहोनेसे कमरके नीचेके भागमें भारीपना, और सरदीका लगना, व्यानवायु
पित्तयुक्तहोनेसे दाह, गात्रोंका विक्षेप अर्थात् इधरउधरको फेरना, और श्रम
होय, कफयुक्तहोनेसे शरीर लकड़ीके समान स्तंभ होय, सूजन और शूल होय,
इस जगह प्राणादि पंच वायुनके परस्पर मिलनेसे वीसप्रकारके आवर्ण चरकोक्त
जानलेने और बाग्भटके मतसे आवर्ण बाईसप्रकारके हैं हमने ग्रंथके विस्तारभयसे
छोड़दीने हैं ।

आक्षेपके सामान्य लक्षण

यदातुधमनीःसर्वाःकुपितोऽभ्येतिमारुतः । तदाक्षिपत्याशु-
मुहुर्मुहुर्देहंमुहुश्चरः । मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपकइतिस्मृतः॥२७॥

अर्थ—जिसकालमें वायु कुपितहोकर सब धमनीनाडीन्मे जायकर प्राप्त होय, तब
उमजगे वह बारंवार संचार करके देहको बारंवार आक्षिप्त करती है, अर्थात् हा-

थीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करे उसदेहके वारंवार चलानेको आक्षेपक रोग कहते हैं ।

आक्षेपकके अपतंत्र और अपतानक ऐसे दो अवस्थाविशेषको कहते हैं
 क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थानादूर्ध्वप्रवर्त्तते । पीडयन् हृदयंगत्वा
 शिरःशंखौचपीडयेत् ॥ २८ ॥ धनुर्वन्नामयेद्वात्राण्याक्षिपेन्मोह-
 येत्तथा । सरुच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापिस्तब्धाक्षोऽथनिमीलकः ॥ २९ ॥
 कपोतइवकूजेच्चनिःसंज्ञःसोऽपतंत्रकः । दृष्टिसंस्तम्भसंज्ञांच
 हृत्वाकंठेनकूजति ॥ ३० ॥ हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमो-
 हं वृत्तेषुनः । वायुनादारुणंप्राहुरेकेतमपतानकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—रूक्षादिस्वकारणोंमें कोपको प्राप्त भई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड़ ऊपर जायकर प्राप्त हो, और हृदयमें जायकर पीड़ा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीड़ा करे, और देहको धनुषके समान नवाय देवे, और चलेतो मूर्च्छित करदे, वो रोगी बड़े कष्टसे श्वास लेय, नेत्र भिचजावें, अथवा टेढ़े हो-जाय, कबूतरके समान गूँजे, तथा बेहोस होय, इसरोगको अपतंत्रक कहते हैं । दृष्टीका स्तंभन होजाय, संज्ञा जाती रहै, गलेमें धुरधुर शब्द होय, वायू जब हृदयको छोड़े तब रोगीको होश होय, और वायू हृदयको व्याप्त करै तब फेर मोह होजाय इस भयङ्कर रोगको कोई अपतानक ऐसे कहते हैं । अब कहते हैं कि दंडापतानक, अंतरायाम, वहिरायाम, और अभिघात इनभेदोंसे आक्षेपकरोग चार प्रकारका है । उनके लक्षण लिखते हैं ॥

दंडापतानकलक्षण

कफान्वितोभृशंवायुस्तास्वेवयदितिष्ठति ।

सदंडवत्स्तंभयतिरुच्छ्रोदंडापतानकः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनीनाडीमें प्राप्त होय तब सब देहको दंड (लकड़ी) के समान तिरछा करदे यह दंडापतानक कष्टसाध्य है ।
 [अब अंतरायाम और वहिरायाम इनके साधारणरूपको कहते हैं ।]

धनुस्तुल्यंनमेद्यस्तुसधनुःस्तंभसंज्ञितः ।

अर्थ—जो वायु, धनुषके समान शरीरको बाँका करदे, उसको धनुःस्तंभ संज्ञक कहते हैं ।

अंतरायामके लक्षण

अंगुलीगुल्फजठरहृद्बक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो
यदाक्षिपतिवेगवान् ॥ ३३ ॥ विष्टब्धाक्षःस्तब्धहनुर्भग्नपा-
श्वःकफवमन् । अभ्यंतरंधनुरिवयदानमतिमानवः ॥ ३४ ॥
तदासोऽभ्यन्तरायामंकुरुतेमारुतोबली ॥ ३५ ॥

अर्थ-पैरकी जंगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहै जो वायू वो वेगवान् होकर जो वहा नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकालदे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजाय, मेढो रहिजाय, पसवाडोंमें पीड़ा होय, मुखसे कफ गिरै और जिससमय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नमजाय तब वह बली वायु (अंतरायाम) रोगको करै ।

बाह्यायामलक्षण

बाह्यःस्नायुप्रतानस्थोबाह्यायामंकरोतिच ।

तमसाध्यंबुधाःप्राहुर्वक्षःकटचूरुभंजनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो, बाह्यायाम अर्थात् पीठको बाकी करदे उरःस्थल, कमर और जांघोंको मोर दे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य कहते हैं ।

अब पूर्वोक्त आक्षेपकका पित्तकफका अनुबन्ध होय है उसको कहते हैं

कफपित्तान्वितोवायुर्वायुरेवचकेवलः ।

कुर्यादाक्षेपकंत्वन्यंचतुर्थमभिधातजम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-कफपित्तयुक्त वायु, अथवा केवल वायु, आक्षेपकरोगको करे, और दूसरा कहिये दंडापतानकादि तीनोंकी अपेक्षा चतुर्थ अभिधातज आक्षेपकरोगको करे । इसके लक्षण यदा तु घमनीः सर्वाः इत्यादि पूर्वोक्त सामान्यलक्षणोंसे जानने । इस श्लोकका गदाधरने ऐसा अर्थ करा है कि कफपित्तान्वित इत्यादि निमित्तभेदकरके चार प्रकारका आक्षेपकरोग प्रगट होय, सो ऐसैं एक कफान्वित वायूसें, दूसरा पित्तान्वितवायूसें, तीसरा केवलवायूसें, और चौथा दंडादिक चोट लगनेसें कुपितवायूसें, इस पक्षमें गर्भपात और रुधिरका अतिश्राव जो होय है सो केवलवातजन्य जानना और उस ठिकाने बारंबार आक्षेपक ये होयहै इसका कारण यह है कि ये सब आक्षेपकका भेद है ।

असाध्यत्वके कहते हैं

गर्भपातनिमित्तश्चशोणितातिस्त्रिवाञ्चयः ।

अभिघातनिमित्तश्चनसिद्धयत्यपतानकः ॥ ३८ ॥

अर्थ—गर्भपातके होनेसे, अथवा अतिरक्तश्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी चोटलगनेसे, जो प्रगट अपतानकरोग सो असाध्य है ।

पक्षाघातके लक्षण

गृहीत्वार्धतनोर्वायुःशिरास्त्रायूविशोष्यच । पक्षमन्यतरंहन्ति
संधिबंधान्विमोक्षयन् ॥ ३९ ॥ कृत्स्नोर्द्धकायस्तस्यस्याद-
कर्मण्योविचेतनः । एकांगरोगंतंकेचिदन्येपक्षवधंविदुः ॥ ४० ॥

अर्थ—वायु आधे शरीरको पकड़ सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य करदे, और संधिके बंधनोंको शिथिल करदे, पीछे उस रोगीके सब वा आधे अङ्ग हलें चलें नहीं, और उसको थोड़ाभी देखनेका स्पर्शादिका ज्ञान नहीं रहै इसको एकांगरोग कहते हैं । दूसरे पक्षवध कहते हैं इसीको पक्षाघात कहते हैं ।

सर्वांगरोगके लक्षण

सर्वांगरोगंतंकेचित्सर्वकायाश्रितेऽनिले ।

अर्थ—तद्वत् कहिये शिरास्त्रायूविशोष्य इत्यादि सम्प्राप्तिलक्षण इससे जानने । सर्व शिरा (नाड़ी)में वायु प्राप्त होनेसे उसको सर्वांगरोग कोई कहते हैं । अब साध्यासाध्यके ज्ञानार्थ और दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं ।

दाहसंतापमूर्च्छाःस्युर्वायौपित्तसमन्विते ॥ ४१ ॥ शैत्य-
शोथगुरुत्वानितस्मिन्नेवकफान्विते । शुद्धवातहतंपक्षंकृच्छ्र-
साध्यतमंविदुः । साध्यमन्येनसंसृष्टमसाध्यंक्षयहेतुकम् ।

॥ ४२ ॥ गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्स्तुतौ । पक्षा-
घातंपरिहरेद्वेदनारहितोयदि ॥ ४३ ॥

अर्थ—पक्षवधकी वायु, कफपित्तयुक्त होय तौ दाह, संताप और मूर्च्छा होय । और वही वायु कफयुक्त होय तौ शीत, सूजन, भारीपन ये लक्षण होय । और केवल वायुसे प्रगट पक्षाघात अत्यंत कष्टसाध्य होय है । और दोषोंसे संसृष्ट होनेसे साध्य होय है । क्षयसे प्रगट भया पक्षाघात असाध्य होय है । गर्भिणी, बाल-

क, वृद्ध और क्षीण इनके भया तथा रुधिरके श्रावसे प्रगट पक्षाघात पीडारहित होय तौ उसको वैद्य त्यागदे । अर्थात् असाध्य जानकर चिकित्सा न करे ।

अर्दितरोगके लक्षण

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च । हसतो जृम्भमाणस्य
विषमाच्छयनासनात् ॥ ४४ ॥ शिरोनासौष्ठु बुकललाटे
क्षणसंधिगः । अर्दयत्यनिलोक्त्रवमर्दितं जनयत्यतः ॥ ४५ ॥
वक्रीभवति वक्रार्धेष्ठीवाचा स्यात्प्रवर्त्तते । शिरश्चलति वाक्स्तंभो
नेत्रादीनां च वैकृतम् ॥ ४६ ॥ ग्रीवाचुबुकदंतानां तस्मिन्पार्श्वे स-
वेदना । तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—ऊंचेस्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे, अथवा कठिणपदार्थ सुपारीआ-
दिके खानेसे, बहुत हंसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊंचेनीचेस्थानमें सोनेसे,
विषमाशन (भोजन) के करनेसे, कोपको प्राप्त भई जो वायु मस्तक, नाक, होठ,
ठोड़ी, ललाट और नेत्र इन्की सन्धीन्में प्राप्त हो मुखमें पीड़ा करे, अर्थात्
(अर्दित) रोगको उत्पन्न करे उसपुरुषका मुख आधा टेढ़ा होजाय, उसकी नाड
मुड़े नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छीतरह बोल्यो जाय नहीं, नेत्र, भृकुटी,
गाल इनकी विकृति कहिये पीड़ा, फरकना टेढ़ा होना इत्यादि होय । और
जिसतरफ अर्दित रोग होय उसतरफ नार, ठोड़ी और दांत इनमें पीड़ा होय ।
व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य है वो इसव्याधिको अर्दितरोग ऐसे कहते हैं ।
* शंका—क्योंजी अर्दित रोगमें और पक्षाघातमें क्या भेद है ? * उत्तर—
अर्दितसे गर्भमेंभी पीड़ा होय है कभी नहीं होय है और पक्षाघातमें सदा पीड़ा
होती है । अर्दितरोग चार प्रकारका है ।

अर्दितरोगके असाध्य लक्षण

क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ।

नसिद्ध्यत्यर्दितंगाढं त्रिवर्षं वैपनस्य च ॥ ४८ ॥

अर्थ—क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगे ऐसे पुरुषके, असंत शुद्ध बोले नहीं

१ अथवा सब लक्षणयुक्त अर्दितरोग है उससे विपरीत अर्द्धांगवातके लक्षण जानने ।
परंतु संस्कृतमें मुखमात्रकोही अर्दितरोगमें लिखा है । और अर्धशरीरको अर्धवातकरके लब्ध
होनेसे नहीं लिखा सोई माधवने पाठ लिखा है ।

ऐसे पुरुषके, अर्दित रोगको प्रगटभये तीनवर्ष व्यतीत होगये हों, अथवा त्रिवर्ष कहिये मुख, नाक और नेत्र इनतीनोंका श्राव होय, ऐसा और कंपयुक्त पुरुषका अर्दितरोग साध्य नहीं होय ।

अब आक्षेपकते लेकर अर्दितपर्यंत रोगोंका वेग कहतेहैं ।

गतेवेगेभवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वक्षेपकादिषु ।

अर्थ— आक्षेपकादि सब वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य कहिये पीडा कम होय, जैसे मस्तकके ऊपरका भार (बोझा) उतारनेसे मुखकी प्राप्ति होती है ।

हनुग्रहके लक्षण

जिह्वानिलैखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितोहनुमूलस्थः खंसयित्वाऽनिलोहनुम् ॥ ४९ ॥ करोतिविवृतास्यत्वमथवासंवृतास्यताम् । हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ५० ॥

अर्थ— जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे अथवा किसी प्रकार चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढ़की जड़में रहे जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचेकर मुखको खुलाही राखदे अथवा मुखको बंद करदे, उस्ते हनुग्रहरोग कहते हैं । तब उस मनुष्यको खाना, बोलना, कठिनतासे होय ।

मन्यास्तंभके लक्षण

दिवास्वप्नाशनस्नानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः ।

मन्यास्तंभं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणायुतः ॥ ५१ ॥

अर्थ— दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफ युक्त होकर मन्या (नाडी) स्तंभन करे इसरोगको मन्यास्तंभन रोग कहते हैं ।

जिह्वास्तंभके लक्षण

वाग्वाहिनीशिरासंस्थोजिह्वास्तंभयतेऽनिलः ।

जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ५२ ॥

अर्थ— वायु वाणीके बहनेवाली नाडीमें प्राप्त हो जिह्वाका स्तंभन करदे,

उसको जिह्वास्तंभरोग कहते हैं । यह अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे ।

शिराग्रहके लक्षण

रक्तमाश्रित्यपवनःकुर्यान्मूर्धधराःशिराः ।

रूक्षाःसवेदनाःकृष्णाःसोऽसाध्यःस्याच्छिराग्रहः ॥ ५३ ॥

अर्थ—वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाड़ीको रूखी पीड़ायुक्त और काली करदे यह शिराग्रहरोग असाध्य है । शिरोग्रह ऐ-माभी पाठ है ।

गृध्रसीके लक्षण

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात् । गृध्रसीस्तंभरु-

क्तोदैर्गृह्णातिस्पंदतेमुहुः ॥ ५४ ॥ वाताद्वातकफात्तन्द्रागौ-

रवारोचकान्विता ॥ ५५ ॥

अर्थ—प्रथम स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिस्को कूला कहते हैं उ-स्को स्तंभित करदे, पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानू, जंघा और पग इन-को स्तंभित करदे अर्थात् ये रहिजाय, वेदना और तोड़ कहिये चोंटनेकीसी पीड़ा होय, और-वारंवार कम्प होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होय है । और वातकफसे होय तौ इसमें तन्द्रा और भारीपना और अरुचि, ये विशेष होय । इसप्रकार गृध्रसीरोग दो प्रकारका है ।

विश्वाचीके लक्षण

तलंप्रत्यंगुलीनायाःकंडराबाहुपृष्ठतः ।

बाव्होःकर्मक्षयकरीविश्वाचीचेहसोच्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपरले भागपर्यंत मत्येक उंगलीके नीचे मोटी नस हैं उनको दुष्ट कर हाथसे लेना देना पसारना मुट्टी मारनी इसादिक कार्योंका नाश कर्चा जो रोग होय उसको विश्वाचीरोग कहते हैं ।

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण

वातशोणितजःशोथोजानुमध्येमहारुजः ।

ज्ञेयःक्रोष्टुकशीर्षस्तुस्थूलःक्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५७ ॥

अर्थ—वातरक्तसे जानु (घेंदू) इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीड़ाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो उनको क्रोष्टुशीर्ष ऐसे कहते हैं ।

खंज और पांशुरेके लक्षण

वायुःकट्याश्रितःसक्थःकंडरामाक्षिपेद्यदा ।

खंजस्तदाभवेजंतुःपंगुःसक्थौर्दयोर्वधात् ॥ ५८ ॥

अर्थ—कमरमें रहे जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित करदेय, उसको खोडोरोग कहते हैं। और दोनों जंघानकी नसोंको पकड़ दोनों पैरोंको स्तंभित करदे उसको पांशुली कहते हैं।

कलायखंजके लक्षण

प्रकामंवेपतेयस्तुखंजन्निवचगच्छति ।

कलायखंजंतंविद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो पुरुष चलतेसमय थरथर कांपे, और खंज अर्थात् एक पैरसेही न मालूम होय, इसरोगमे संधिके बंधन सिथिल होते हैं इसरोगको कलायखंज कहते हैं।

वातकंटकके लक्षण

रुक्पादेविपमेन्यस्तेश्रमाद्वाजायतेयदा ।

वातेनगुल्फमाश्रित्यतमाहुर्वातकंटकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे, वायू कुपित टुकनारमें प्राप्त होकर पीडा करै तो इस रोगको वातकंटक ऐसे कहते हैं।

पादहर्षके लक्षण

पादयोःकुरुतेहर्षपिचासृक्सहितोऽनिलः ।

विशेषतश्चक्रमतःपादहर्षतमादिशेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ—जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त) होय और असंत सोय जावें, उसको पादहर्षरोग कहते हैं। यह कफवातके कोपसे होय है।

अंसशोप और अपवाहुकके लक्षण

अंसदेशेस्थितोवायुःशोपयेदंसबंधनम् ।

शिराश्चाकुंच्यतत्रस्योजनयेदपवाहुकम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—कंधामें रहे जो वायू सो कुपित होकर उसके बंधनको मुखायदं, तब

अंसशोषरोग प्रगट होय, और कंधामें रहै जो वायु सो नसोंको संकोचकरके अपवाह्नुकरोग प्रगट करे ।

शूकादिक तीन रोगोंके लक्षण

आतृत्यवायुःसकफोधमनीःशब्दवाहिनीः ।

नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिम्भिणगद्गदान् ॥ ६३ ॥

अर्थ—कफयुक्त वायु, शब्दके वहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योंका वचन क्रियारहित शूक, मिम्भिण, और गद्गद, ऐसा करदे । शूक कहिये जिस्से बोला न जाय, मिम्भिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोले, और गद्गद बोल-तेसमय बीचके पद और व्यंजनोंको न बोले, और मंद बोले इन रोगोंके कारण सदृश होकर रोगोंके भिन्नभिन्न प्रकार होते हैं । वो दोषोंके उत्कर्षकरके अथवा मारव्यवशसे होते हैं ऐसा जानना ।

तूनीरोगके लक्षण

अधोयावेदनायातिवर्चोमूत्राशयोत्थिता ।

भिन्दन्तीवगुदोपस्थंसातूनीनामनामतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—पकाशय और मूत्राशयसे उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्त हो, और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके शुद्धस्थान इनमें भेद करे, अर्थात् पीडा करे उसको तूनीरोग कहते हैं ।

प्रतूनीके लक्षण

गुदोपस्थोत्थिताचैवप्रतिलोमंप्रधावति ।

वेगैःपकाशयंयातिप्रतूनीचेहसोच्यते ॥ ६५ ॥

अर्थ—गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोरसे पकाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे उसको प्रतूनी कहते हैं ।

आध्मानरोगके लक्षण

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरंभृशम् ।

आध्मानमितिजानीयाद्धोरंवातनिरोधजम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—गुड़गुड़ शब्दयुक्त असंत पीडायुक्त ऐसा उदर (पकाशय) असंत फूले अर्थात् वादीसे भरकर चामकी-थैलीके समान होजाय इस भयंकर रोगको आध्मानरोग कहते हैं यह वातके रुकनेसे होय है ।

प्रत्याध्मानके लक्षण

विमुक्तपार्श्वहृदयंतदेवामाशयोत्थितम् ।

प्रत्याध्मानंविजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—और वही आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तौ उसको प्रत्याध्मान कहते हैं इसमें पसवाड़े और हृदय इनमें पीड़ा नहीं होय, और वायु कफकरके व्याकुल हो ।

वातघ्नीलाके लक्षण

नाभेरधस्तात्संजातःसंचारीयदिवाऽचलः ।

अघ्नीलावद्धनोग्रंथिरूर्ध्वमायतउन्नतः ॥ ६८ ॥

वातघ्नीलांविजानीयाद्दहिर्मार्गावरोधिनीम् ।

अर्थ—नाभीके नीचे उत्पन्न भई और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अघ्नीला (गोलपाषाण)के समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा हांय, और आड़ी कुछ उंची होय और वहिर्मार्ग कहिये अधोवायु मल मूत्र इनका अवरोध कहिये (रुकना) हो ऐसी गाँठको वातघ्नीला कहते हैं ।

प्रत्यघ्नीलाके लक्षण

एतामेवरुजायुक्तांवातविण्मूत्ररोधिनीं ॥ ६९ ॥

प्रत्यघ्नीलामितिवदेज्जठरेतिर्यगुत्थिताम् ।

अर्थ—वातघ्नीला असंतपीडायुक्त वात मूत्र मलके रोधकरनेवाली और जांतिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यघ्नीला कहते हैं ।

मूत्रावरोधके लक्षण

मारुतेविगुणेबस्तौमूत्रंसम्यक्प्रवर्त्तते ॥ ७० ॥

विकाराविविधाश्चापिप्रतिलोमेभवन्तिहि ।

अर्थ—वस्ती (मूत्रस्थान)में वायु अनुलोमगतिसे गमन करै, तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे ऐसे प्रतिलोमसे गमन करै तौ अनेकप्रकारके पथरी मूत्र-कृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होय ।

१ श्रमातुरेण पानीयं पीत्वा वेगविधारणम् । धाविते वा पिबेत्तोयं भुञ्जतो वा विटाहि च ॥
तथा पयोऽम्बुपानाद्वा दुर्जरः पल्लेन वा । सा घ्नीलानाम् विख्याता गुर्वी कुक्षिश्रिताणि वा ॥
इति आत्रेयः ।

कंपवायुके लक्षण

सर्वाङ्गकंपःशिरसोवायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ७१ ॥

अर्थ—सब अंगोंको और मस्तकको जो कंपाये उस वायुको वेपथु (कंप)-वायुकहते हैं ।

खल्लीके लक्षण

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोदिनी ।

अर्थ—और जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली (मूलावमना) रोग कहते हैं ।

ऊर्ध्ववातके लक्षण टीकाकारने लिखे हैं

अधःप्रतिहतोवायुःश्लेष्मणामारुतेनच ॥ ७२ ॥

करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातंप्रचक्षते ।

अर्थ—कफवातकरके पीडित नीचेकी वायु डकार बहुत लावे उस वातको ऊर्ध्व कहते हैं, परंतु दोहरानंदने कुछ विलक्षण लिखा है ।

यथा

भुक्तेष्वभुक्तेषुसेवायस्योद्गारःप्रजायते ॥ ७३ ॥

सततजंघोषवांश्चातिऊर्ध्ववातंतमादिशेत् ।

अर्थ—भोजन करनेके अथवा भोजनके पहिले अथवा सोनेके समय डकार निरन्तर शब्दवान् आवै उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं ।

प्रलापके लक्षण

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धनिरर्थकम् ॥ ७४ ॥

वचनयन्त्रोब्रूतेसप्रलापःप्रकीर्तितः ।

अर्थ—अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणीं बोले, अर्थात् बकवाद करे अथवा बड़बड़ शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ।

रसाज्ञानके लक्षण

भुंजानस्यनरस्यान्नमधुरप्रभृतीन्नसान् ॥ ७५ ॥

रसज्ञायन्नजानातिरसाज्ञानंतदुच्यते ।

अर्थ—जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादि-क रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं ।

अनुक्तवातरोगसंग्रहार्थं कहते हैं

स्थाननामानुरूपैश्चलिङ्गैः शोषान्विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

सर्वेष्वेतेषु संसर्गपित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ।

अर्थ-स्थान और नाम इनके अनुरूप कहिये तुल्य ऐसे लक्षणोंसे शोष वातव्याधि जाननी । स्थानानुरूप कहिये जैसे कुक्षिशूल, नखभेद इत्यादिक । नामानुरूप कहिये जैसे शूलके कहनेसे कीलनिखातवत् पीड़ा जाननी । उसी प्रकार तोदभेदादिकरकेभी पीड़ा विशेष जाननी चाहिये । और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे द्विदोषजव्याधि जाननी चाहिये ।

साध्यासाध्यविचार

हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ ७७ ॥

कालेनमहतावातायत्नात्सिद्ध्यन्तिवानवा ।

नवान्बलवत्स्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ७८ ॥

अर्थ-हनुस्तंभ, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात, अपतानक ये वातव्याधि बहुत दिनमें बड़े परिश्रमसे और यत्नसे साध्य होती हैं । अथवा कभी साध्य नहीं होय । परंतु बलवान् पुरुषके ये वातव्याधि नई प्रगट भई हो और उपद्रवरहित होय तौ उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

वातव्याधिके उपद्रव

विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ।

क्षीणमांसबलंवाताघ्नंतिपक्षवधादयः ॥ ७९ ॥

अर्थ-विसर्परोग, दाह, शूल, मलमूत्रका निरोध, मूर्च्छा, अरुचि, मंदाग्नि इन लक्षणयुक्त जो होय और बलक्षीण होगया होय ऐसे पुरुषोंको पक्षवधादिक विकार मारक अर्थात् प्राणके हरण कर्त्ता होते हैं ।

असाध्य लक्षण

शून्यसुप्तत्वचंभग्नकंपाध्माननिपीडितम् ।

रुजार्तिमंतंचनरंवातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-सूजनवाला, जिसकी त्वचा सोई गई होय, अर्थात् जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी दृढ़गई होय, कंप और अफरा इनसे अत्यन्त पीडित होय, रुजा और आर्ति कहिये शूलयुक्त ऐसे मनुष्यको यह वातव्याधिरोग नाश करता है ।

अब पांचप्रकारकी प्रकृतिस्थ वायुके लक्षण और कार्य कहते हैं

अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः ।

वायुःस्यात्सोधिकंजीवेद्वीतरोगःसमाःशतम् ॥ ८१ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी वायु अव्याहतगति, और अपने आश्रयसे रहनेवाली, और प्रकृति स्थित कहिये न वृद्ध न क्षीण होय, वह पुरुष निरोगी होकर (अधिक समाःशतं) कहिये एकसे बीसवर्ष और पांच दिन पर्यन्त जीवे ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाधुरीभाषाटीकायां वातव्याधि-
निदानं समाप्तम् ।

वातरक्तनिदानम् ।

* शंका—क्योंजी मुश्तुतमें तौ वातव्याधिअध्यायमेंहीं वातरक्त कहा है फिर माधवने पृथक् क्यों कहा ? * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु क्रियाविशेष-
ज्ञापनार्थ माधवने अलग लिखा है, और इसी रीतिसें चरकमेंभी वातव्याधिअ-
ध्यायके पीछे वातरक्ताध्याय कही है ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । छिन्नशुष्कांबु-
जानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥ कुलित्थमाषनिष्पाव-
शाकादिपल्लेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरसुक्ततक्रसुरासवैः
॥ २ ॥ विरुद्धाध्ययनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशःसुकु-
माराणामिथ्याहारविहारिणाम् ॥ ३ ॥ स्थूलानांसुखिनां
चाथवातरक्तंप्रकुप्यति ।

अर्थ—नोनं, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे
सड़े और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके
मांससे, पिण्याक (खर) मूली, कुलत्थी, उडद, निष्पाव (सेम) शाक, (तर-
कारी) पल्ल, (तिलकी चटनी) ईख, दही, कांजी, सौवीर मद्य, सुक्त (सि-
रकाआदि) छाछ, दारू, आसव, (मद्यविशेष) विरुद्ध (जैसे दूध मछली) अ-
ध्ययन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना, इन कार-
णोंसे विशेषकरके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पु-

रुषोंके, और जो मोटा होय तथा सूखा होय, ऐसे मनुष्योंके वातरक्त रोग होय है ।

वातरक्तकी सम्प्राप्ति

हस्त्यश्वोर्गच्छतश्चाश्वतश्चविदाह्यन्नसंविदाहाशनस्य ॥४॥

कृत्स्नरक्तंविदहत्याशुतच्चस्त्रस्तंदुष्टंपादयोश्चीयतेतु । तत्संप्लुतं

वायुनादूषितेनतत्प्राबल्यादुच्यतेवातरक्तम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हाथी, घोडा, ऊँट इनपर बैठकर जानेसे, (यह वायुके बढनेका और विशेषकरके रुधिरके उतरनेका कारण है) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है) गरमागरम अन्नके खानेवाले ऐसे पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय, और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले, इस रोगमें वायु प्रबल है इसीसे इस रोगको वातरक्त ऐसे कहते हैं ।

पूर्वरूप

स्वेदोऽत्यर्थेनवाकाष्ण्येस्पर्शाज्ञत्वंक्षतेऽतिरुक् । सन्धिष्वैथि-

ल्यमालस्यंसदनंपिटिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरुक्द्व्यंशह-

स्तपादांगसंधिषु । निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वंसुप्तिरेवच ॥७॥

कंदूःसंधिषुरुक्भूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत् । वैवर्ण्यमंडलो-

त्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पसीना बहुत आवै, अथवा नहीं आवै, शरीर काला होजाय, शरीरमें स्पर्शका ज्ञान जाता रहै, और थोड़ीसी चोट लगनेसे पीडा अधिक होय, संधि ढीली होजाय, आलस आवे, ग्लानि हो, शरीरमें फुन्सी उठे, घोंट, जंघा, ऊरु, कमर, कंधा, हाथ, पैर, सन्धि और अंगोंमें छुईके चुभानेकीसी पीडा होय, स्फुरण (फरकना) तोड़नेकीसी पीडा, भारीपना, बधिरता, ये लक्षण होते हैं । और संधिनामें खुजली चले, और शूल होकर बारंवार नाश होजाय, शरीरका विवर्ण होजाय, रुधिरके चकचा देहमें पड़जाय, ये वातरक्तके पूर्वरूप होते हैं ।

अब वातरक्तको अन्यदोषोंका संसर्ग होनेसे उसके लक्षण न्यारेन्यारे लिखते हैं ।

वाताधिकेऽधिकंतत्रशूलस्फुरणतोदनम् । शोथश्चरौक्ष्यंरुग्ण-

त्वंदयावतावृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसंधीनांसंकोचो-

ऽग्न्यहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयस्तंभवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥

अर्थ—वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा, ये अधिक होते हैं । सूजन, रूखापना, नीलापना, अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय, और सणभरमें हास (कमहो) घमनी और अंगुलीनकी संधीनमें संकोच होय, शरीर जकडबंध होय, अक्षत पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप, और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिकके लक्षण

रक्तेशोफोऽतिरुक्छेदस्ताम्रश्चिमचिमायते ।

स्निग्धरुक्षैःशमनैतिकंदूहेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

अर्थ—रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा, और उसमेंसे तामेके रंगका छेद बहे, उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रुखे पदार्थसे शांति न होय, उस सूजनमें खुजली और पानी निकरे ।

पित्ताधिकके लक्षण

पित्तेविदाहःसंमोहःस्वेदोमूर्च्छामिदःसतृट् ।

स्पर्शसहत्वंरुग्नागःशोफःपाकोभृशोष्णता ॥ १२ ॥

अर्थ—पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्रियनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटेछोटे पीरे फोड़ा, अत्यन्त गरमी यह लक्षण होते हैं ।

कफाधिकके लक्षण

कफेस्तैमित्यगुरुतासुसिस्निग्धत्वशीतताः ।

कंदूर्मन्दाचरुगद्वेसर्वलिङ्गचशङ्करात् ॥ १३ ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपड़ासें आच्छादितसमान) भारीपना, शून्यता, चिकनापना, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा ये लक्षण होते हैं ।

दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण और तीनों दोषोंके वातरक्तमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं । पैरोंमें वातरक्त हुआ होय उसकी अपेक्षा करनेसे हाथोंमें होय है उसको कहै हैं ।

पादयोर्मूलमास्थायकदाचिद्वस्तयोरपि ।

आखोर्विषमिवक्रुद्धंतद्देहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

अर्थ—जो वातरक्त पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् हाथोंमेंभी होय है। सो आखु (मूसे)के विषसदृश सर्वदेहमें मंदमंद फैल जाय, ये वातरक्त चरकने दोषकारका कहा है एक उत्तान, दूसरा गंभीर, त्वचा और मांस इनमें होय सो उत्तान और गंभीर, इसकी अपेक्षा भीतरी होय है ।

असाध्यलक्षण

आजानुस्फुटितंयच्चप्रभिन्नं प्रस्तुतंचयत् ।

उपद्रवैर्यच्चजुष्टंप्राणमांसक्षयादिभिः ॥ १५ ॥

वातरक्तमसाध्यस्याद्याप्यंसंवत्सरोत्थितम् ।

अर्थ—आजानु (जंघाके नीचेके भाग)पर्यन्त गयाभया वातरक्त असाध्य है जिसकी त्वचा फटगई होय, चिरगया होय, और जो श्रावयुक्त होय ऐसा वातरक्त अप्राण मांसक्षयादि उपद्रवयुक्त होय, आदिशब्दसे जो आगे (भ्रम अरोचक श्वास) इत्यादिक कहेंगे वोभी लक्षण होय सोभी असाध्य है । वातरक्त प्रगट भये वर्षदिन व्यतीत होगयाहोय सो याप्य होय है, वर्षदिनके पहिले साध्य होय है, परन्तु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होय तौ साध्य है ।

उपद्रव

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ १६ ॥ संमूर्च्छा-

ऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः । हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाक-

तोदभ्रमक्लमाः ॥ १७ ॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहा-

र्बुदाः । एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यमोहेनैकेनचापियत् ॥ १८ ॥

अर्थ—निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, मस्तकका जकडना, मूर्च्छा-अत्यन्त पीडा, प्यास, ज्वर, मोह, कंप, हिचकी, पांगुरापना, विसर्पारोग, पकना, नोचनेकीसी पीडा, भ्रम, अनायासभ्रम, उंगली टेढ़ी होजाय, फोडा, दाह, मर्मस्थानोंमें पीडा, अर्बुद (गांठ) हो इन उपद्रवयुक्त वातरक्तवाला रोगी असाध्य है । अथवा एक मोहयुक्तही होय तौभी असाध्य जानना ।

साध्यासाध्यविचार

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यस्यान्निरुपद्रवम् । एकदोषानुगंसा-

ध्वनवंयाप्यं द्विदोषजम् । त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्यु-

रुपद्रवाः ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस वातरक्तमें सब उपद्रव होयें नहीं वो याप्य है, और निरुपद्रव साध्य है । और जो एक दोषका होय वो साध्य है । और द्विदोषज याप्य, और त्रिदोषज, तथा उपद्रवयुक्त होय तो वातरक्त असाध्य है । यह श्लोक शेषक है माधवका नहीं है ।

इति वातरक्तम् ।

ऊरुस्तंभनिदानम् ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः । जीर्णाजीर्णा तथा-
याससंक्रोधस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥ सश्लेष्ममेदःपवनःसामम-
त्यर्थसंचितम् । अभिभूयेतरंदोषमुरुचेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
सकथ्यस्थीनिप्रपूर्यातःश्लेष्मणास्तिमितेन च । तदास्तभ्ना-
तितेनोरुस्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविवगुरु-
स्यातामतिभृशव्यथौ । ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्दयरुचि-
ज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौपादसदनरुच्छ्रोद्धरणसुसिभिः । तमुरु-
स्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

अर्थ—शीतल, गरम, पतले, शुष्क, भारी, चिकने, ऐसे परस्पर विरुद्ध भोजनसे, जीर्ण, अजीर्ण, उसीप्रकार दंडकसरतके करनेसे, चित्तके सोभने, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागना, इन कारणोंसे कफ मेदयुक्त असन्त संचित भया आमयुक्त वात इतर दोषोंको अर्थात् पित्तको आच्छादितकर ऊरुमें आयकर प्राप्त होय, और ऊरुके हाडोंको आर्द्रकफसे परिपूर्ण करे, तब उसके ऊरु स्तंभित हो (जकड़जाय) और शीतल तथा निर्जीव होजाय । और दूसरे पुरुषके ऊरुके समान उल्लरके चलना इस विषयमें असमर्थ होय और भारी, अत्यन्त पीडायुक्त होय, चिंता, अंगोंका तोडना, आर्द्रता, (गीला) तन्द्रा, वमन, अरुचि, और ज्वर-सहित मनुष्यके दोनों ऊरु जकड़जाय, बड़े कष्टसे चले, और शून्यता होय, इस रोगको ऊरुस्तंभ ऐसे कहते हैं और कोई आढ्यवात कहते हैं ।

पूर्वरूप

प्राग्रूपंतस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितताज्वरः ।

लोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जघोर्वोऽसदनंतथा ॥ ६ ॥

अर्थ—निद्रा बहुत आवै, असन्त चिंता, मंदता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरु इनमें पीडा होय, यह ऊरुस्तंभके पूर्वरूप होते हैं ।

ऊरुस्तंभके लक्षण

वातशंकिभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोः सद्वनं

मुसिः कृच्छ्रादुद्वरणंतथा ॥ ७ ॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वदानाहवेदना ।

पदंच व्यथतेऽत्यर्थं शीतस्पर्शनवेत्ति च ॥ ८ ॥

संस्थाने पीडने गत्यांचालने चाप्यनीश्वरः । अन्यस्येव हि संभ-

ग्रा ऊरुपादौ च मन्यते ॥ ९ ॥

अर्थ—पैरोंका सोना, संकोच होना, इत्यादिक वातरोगके समान चिन्ह मिलनेसे उस मनुष्यको वातरोगकी शंका होय । तब वो मनुष्य तैलादिक स्नेहन चिकित्सा करै, तौ उसके दूनारोग बढे, पैरोंमें पीडा होय, तथा पैर सोय जावें, बडे कष्टसे पैर उठाया और धराजाय, जंघा और ऊरु इनमें अधिक पीडा होय, और निरन्तर दाह तथा वेदना होय, पैरोंमें व्यथा होय, शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न होय, तथा पैरके उठानेमें रगड़नेमें अथवा चलनेमें अथवा हलानेमें असमर्थ होय, पैर और ऊरु ये दूटते तथा अन्य मनुष्यकेसे मालूम हो, ये लक्षण ऊरुस्तंभके हैं । व्याधिके स्वभावसे यह ऊरुस्तंभ त्रिदोषका एकही है वातादि भेदोंसे अनेक प्रकारका नहीं हैं ।

असाध्यलक्षण

यदा दाहार्चितो दातो विपन्नः पुरुषो भवेत् ।

ऊरुस्तंभस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथानवम् ॥ १० ॥

अर्थ—जिस समय पुरुष दाह, शूल, और तोद (नोचनेकीसी पीडा) इनसे पीडित होकर कंपयुक्त होय । उससमय वो ऊरुस्तंभरोग उसका नाश करै । और ये लक्षण न होय और रोग नया होय तौ ये रोग साध्य है ।

इति ऊरुस्तंभनिदानम् ।

आमवातनिदानम् ।



विरुद्धाहारचेष्टस्यमन्दाग्नेर्निश्चलस्यच । स्निग्धंभुक्तवतोह्यन्नं
व्यायामंकुर्वतस्तथा ॥ १ ॥ वायुनाप्रेरितोह्यामःश्लेष्मस्था-
नंप्रधावति । तेनात्यर्थंविदग्धोऽसौधमनीःप्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयोदूषितःसोन्नजोरसः । स्त्रोतांस्यभिस्पंदयति
नानावर्णोतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ युगपत्कुपितावेतौत्रिकसंधि-
प्रवेशकौ । स्तब्धंचकुरुतोगात्रमामवातःसञ्च्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—विरुद्ध आहार (क्षीरमत्स्यादि) और विरुद्ध विहार करनेवाले मज्जु-
प्यके, मंदाग्निवालेके, जो दंडकसरत न करे और चिकना अन्न खाकर दंडक-
सरत करनेवाले, ऐसे पुरुषके आमवायुसे प्रेरित होकर कफके आमाशयादि-
स्थानके प्रति जायकर प्राप्त होय, और उस कफसे अत्यन्त दूषित होकर वही
आम, धमनी नाडीन्में प्राप्तहोकर भीतर वो अन्नका रस (आम) वात और कफ-
पित्तसे दूषित होकर नाडीन्के छिद्रोंमें भरजाय, वह अनेकप्रकारके रंगका अति-
गाढा होय है पीछे ये वात कफ एकही कालमें कुपित होकर त्रिकसंधीन्में जायके
प्रवेश करे, तब देह जकडीसी होजाय, इस रोगको आमवात ऐसे कहते हैं ।

आमवातके सामान्यलक्षण

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णाआलस्यंगौरवंज्वरः ।

अपाकःशून्यतांऽगानामामवातःसञ्च्यते ॥ ५ ॥

अर्थ—अंगोंका दृटना, अरुचि, प्यास, आलस्य, भारीपना, ज्वर, अन्नका
न पचना, और देहमें शून्यता होजाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ।

अब अर्थात् बहगया होय आमवात उसके लक्षण कहते हैं

सकष्टःसर्वरोगाणायदाप्रकुपितोभवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फ-
त्रिकजानूरुसंधिषु ॥ ६ ॥ करोतिसरुजंशोथंयत्रदोषैःप्रपद्य-

१ अविपक्तसं पृक्तं दुर्गंधं बहुपिच्छलं । सरणं सर्वमात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥ अविपक्करसं
कोचित्कोचितं मलसञ्चयं । प्रथमं दोषदुष्टिं वा कोचिदाम प्रचक्षते ॥

ते । सदेशोरुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ ७ ॥ जनये-
त्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवं । उत्साहहानिवैरस्यं दाहं च
बहुमूत्रतां ॥ ८ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् ।
तृच्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विट् विबन्धताम् ॥ ८ ॥ जाड्या-
त्र कूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १० ॥

अर्थ—यह आमवात जिस समय बढे उस समय सब रोगोंमें कष्टकर्त्ता होती है, अर्थात् सब रोगोंसे बढकर कष्टदायक है । हाथ, पैर, मस्तक, घोंटू, त्रिकस्थान, जानू, जंघा इनकी सन्धिन्में पीड़ा युक्त सूजन करे और जिसजिस ठिकाने आग जाय उसीउसी ठिकाने वीचूके डंक मारनेकीसी पीड़ा करे, यह रोग मंदाग्नि मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, देह भारी, उत्साहका नाश, मुखमें विरसता, दाह, बहुत मूत्रका उतरना, कूखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवै, रातिमें जागे, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका गूँजना, अफरा तथा असंत उपद्रव कहिये वातव्याधिमें कहे कलाप खंजादिकोंको करे ।

विशेषलक्षण

पित्तात्सदाहरागंच सशूलं पवनानुगम् ।

स्तैमित्यंगुरुकंडूचकफजुष्टं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होय है वादीके आमवातमें शूल होय है । कफसम्बन्धी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपना तथा खुजली चले है ।

साध्यासाध्यविचार

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।

सर्वदेहे चरः शोथः सकृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥ १२ ॥

अर्थ—एक दोषका आमवातरोग साध्य है, दो दोषोंका याप्य है, और सर्व देहमें विचरनेवाली सूजन अथवा त्रिदोषसे प्रगट आमवातरोग कष्टसाध्य जानना ।

इति आमवातनिदानम् ।

शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।

सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इनसे तीनप्रकारका, एक सन्निपातसे, एक आमसे और तीन द्वंद्वज ऐसे सब मिलकर आठप्रकारका शूलरोग है । इन सब शूलोंमें वादीका शूल प्रबल है । ज्वरके समान शूलरोगकी प्रथम उत्पत्ति हार्त्तनमें कही है सो इसप्रकार कामदेवके नाश करनेके अर्थ शिवने क्रोधकरके त्रिशूलको फेंका, उस त्रिशूलको अपने सन्मुख आताहुआ देख कामदेव भयभीत होकर विष्णुभगवान्‌के देहमें प्रवेश करगया । तदनंतर वो त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसे सृष्टित होकर गिरा तो पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध भया, तबसे वो शूल पंचभूतात्मक देहधारी मनुष्योंको पीडा करने लगा । इसप्रकार इसकी उत्पत्ति है, शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न भया तथा शूलके घावके समान पीडा करे है इसीसे इसको शूल ऐसे कहते हैं ।

वातशूलके कारण और लक्षण

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।

कलायमुद्गाढकिकोद्गदोषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥

कषायतिक्तादिविरूढकान्नविरुद्धं च द्यूकशुष्कशाकात् । विद-
शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ ३ ॥

वायुः प्रवृद्धोजनयेद्विशूलं हृत्पाश्वर्धं पृष्ठत्रिकबस्तिदेशे । जीर्णे
प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥ मुहुर्मु-
हुश्चोपशमप्रकोपौ विष्णूमूत्रसंस्तंभनतोदभेदैः । सस्वेदनाभ्यं-
जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

अर्थ—दंडकसरत, बहुत चलना, अति मैथुन, असंत जागना, बहुत शीतल

१ अनगताशापहरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मर्करध्वजश्च । तमापतंतं सहसा निरीक्ष्य भया-
दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितश्च शूलः । स पंचभू-
तानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥

जल पीना, कांगनी, मूंग, अरहर, कोदों असन्त रुखे पदार्थके सेवनसे, और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) लकड़ी आदिके लगनेसे, कपेली, कड़वी भीजा अन्न जिस्मे अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि सूखा मांस सूखा शाक (कचरिया आदि) इन्के सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इन्के वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवास (व्रत)के करनेसे, असन्त हंसनेसे, बहुत बोलनेसे, कोपको प्राप्त भई जो बात सो बढकर हृदय पसवाडा पीठ त्रिकस्थान मूत्रस्थानमें शूलको करे । और वो भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल असंत कोप करे । और बारंबार कोप होय, मल-मूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं । तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इसादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूलशान्ति होय है ।

पित्तशूलके कारण और लक्षण

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः ।

कट्वम्लसौवीरसुराविकारैःक्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥

ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैःपित्तप्रकुप्याशुकरोतिशूलं । तृ-

ण्मोहदाहार्तिकरंहिनाभ्यांसस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तं ॥ ७ ॥

मध्यंदिनेकुप्यतिचार्यरात्रेविदाहकालेजलदात्ययेच । शीते

तुशीतैःसमुपैतिशान्तिंसुखादुशीतैरपिभोजनैश्च ॥ ८ ॥

अर्थ—यवक्षारआदि खार, मरिचआदि तीखी और गरम विदाहकारक वांत और करील आदि, तेल, सिंवी, खल, कुलथीके यूपसे, कड़वा, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष) सुराविकार (कांजी इत्यादिक) क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे । वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा इनको करे । और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहरके समय, मध्यरात्रमें, अन्नके विदाहकालमें, शरदकालमें, शूल अधिक होय । शीतकालमें शीतल पदार्थसे और असंत मधुर (मीठा) शीतल अन्नसे यह शूलशान्ति होय ।

कफशूलके कारण और लक्षण

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मसैक्षुपिष्टकृशरातिलशङ्कु-

लीभिः । अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्माप्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ ९ ॥ हृत्लासकाससदनाऽरुचिसंप्रसेकैरामाशयेस्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः । भुक्ते सदैव हिरुजंकुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १० ॥

अर्थ—जलके समीप रहनेवाले पक्षीन्का मांस, मछली आदिका मांस, दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचड़ी, तिल, पूरी कचौड़ी आदि और कफकारक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे उसमें सूखी रद्द, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ए लक्षण होय । भोजन करते समय पीडा होय, सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें, और वसंतकालमें, शूल बहुत होय ।

आमशूलके लक्षण

आटोपहृत्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः ।

कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

अर्थ—पेटमें गुडगुडाहट होय, उवाकि ओंका आना, रद्द, देह भारी, मंदता, अफरा, मुखसे कफका स्राव, इन लक्षणोंसे तथा कफशूललक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं ।

द्वंद्वजशूलोंके लक्षण

वस्तौ हृत्कंठपार्श्वेषु शूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृत्नाभिपार्श्वेषु शूलः कफपैत्तिकः ॥ १२ ॥ दाहज्वरकरोधोरोविज्ञेयो वातपैत्तिकः । एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ १३ ॥ सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

अर्थ—वस्ति (मूत्रस्थान) हृदय, कंठ, पसवाड़े, इन ठिकाने शूल होय वो (कफवातिक) जानना, कुक्षमें हृदय नाभि और पसवाड़े इनमें कफपित्तका शूल होय है, दाह ज्वर करनेवाला ऐसा भयङ्कर शूल होय वो वातपित्तका जानना, एक दोषका शूलरोग साध्य है, दो दोषका कृच्छ्रसाध्य और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत उपद्रवयुक्त होय वो शूल असाध्य जानना ।

ग्रन्थांतरोक्तशूलके स्थान

वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं अपि वदन्ति नाभ्याम् ।

हृत्पार्श्वकुक्षौकफसन्निविष्टसर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १ ॥

शूलके उपद्रव

वेदनाचतृषामूर्च्छा आनाहो गौरवारुची ।

कासश्वासौ च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २ ॥

परिणामशूलनिदान

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तथा । कफपित्तसमावृत्य शूलकारी भवेद्वली ॥ १४ ॥ भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥ १५ ॥

अर्थ—अपने रौक्षादि कारणोंसे वायु कुपित होकर कफपित्तके समीप जाय उसको आवृत कर वली होकर शूलको उत्पन्न करै, आहार पचनेके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं । उसके लक्षण संक्षेपसे कहता हूँ ।

वातिकपरिणामशूलके लक्षण

आध्मानाटोपविष्मूत्रनिबन्धारतिवेपनैः ।

स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेन्नृपिक् ॥ १६ ॥

अर्थ—पेटका फूलना, तथा पेटमें गुडगुडशब्द, मलमूत्रका अवरोध, अरति (मनका न लगना), कंप, यह लक्षण हैं । और चिकना, गरम, पदार्थसे शान्ति होय ऐसे शूलको वातिक कहते हैं ।

पैत्तिकपरिणामशूलके लक्षण

तृष्णादाहारतिस्वेदकटुम्ललवणोत्तरम् ।

गूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ॥ १७ ॥

अर्थ—प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना, यह लक्षण होय । तीखा, खट्टा, नोनका, ऐसे पदार्थ खानेसे बढ़नेवाला और शीतपदार्थके सेवनसे शान्ति होय ऐसा शूल पित्तका जानना ।

श्लेष्मिकपरिणामशूलके लक्षण

छर्दिदृह्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसंतति ।

कटुतिक्तोपशान्तं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ १८ ॥

अर्थ—वमन, ओकारी, और संमोह, (इन्द्री और मनको मोह) ये लक्षण

जिसमें बहुत होय, पीडा थोड़ी होय, शूल बहुत दिन रहै, कडुवे और तीखे पदार्थसे शांति होय उस शूलको कफात्मक जानना ।

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण

संसृष्टलक्षणयच्चद्विदोषपरिकल्पयेत् ।

त्रिदोषजमसाध्यंतुक्षीणमांसबलाननम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलेहों उसको द्वंद्वज कहते हैं, और तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज जानना, मांस बल और अग्नि ए जिसके क्षीण होगयेहो ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ।

अन्नके उपद्रवसे प्रगटशूलके लक्षण

जीर्णेजीर्यत्यजीर्णेवायच्छूलमुपजायते । पथ्यापथ्यप्रयोगेन

भोजनाभोजनेनच । नशमंयातिनियमात्सोऽन्नद्रवउदाहृतः २०

अर्थ—अन्न पचगया होय अथवा पचरहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय, वो पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसे शांति नहीं होय, उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एकप्रकारका है । परन्तु असाध्य नहीं है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवार्यवैद्यिनीभाषाटीकायां परिणामशूल-

निदान समाप्तम् ।

उदावर्तनिदानम् ।

उदावर्तके कारण

वातविण्मूत्रजृम्भास्त्रक्षवोद्गारवर्मीन्द्रियैः ।

क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणांधृत्योदावर्त्तसंभवः ॥ १ ॥

अर्थ—अधोवायू, विष्ठा, मूत्र, जंभाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, श्रुक्र, भूख, प्यास, स्वास और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्तरोग उत्पन्न होय है, तेरहके नियमके करनेसे यह प्रयोजन है कि क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होय । क्योंकि इनके रोकनेमें तौ स्वस्थ-

ता प्राप्त होती है । सब उदावर्तोंमें मुख्य कारण वायु है । उदावर्तकी निम्नलिखित इसप्रकार है । (उद्धृतेन वेगविधारणेन आवृत्तस्य वायोरावर्तनमुदावर्तः ।)

तेरह उदावर्तोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं

वातमूत्रपुरीपाणांसंगाध्मानंकुमोरुजः ।

जठरेवातजाश्चान्येरोगाःस्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

अर्थ—अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होजाय, पेट फूल जावे, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय, तथा और वातकुत (तोड़ शूलदि पीडा) होय ।

आटोपशूलोपरिकर्त्तिकाचसंगःपुरीपस्यतथोर्ध्ववातः ।

पुरीपमास्यादथवानिरेतिपुरीपवेगेऽभिहतेनरस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—मलके वेग रोकनेसे पेटमें गुद्गुदाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरन कीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, ढकार आवै, अथवा मल मुखके द्वारा निकले ।

वस्तिमेहनयोःशूलमूत्रकृच्छ्रंशिरोरुजा ।

विनामोर्वक्षणाहाःस्याह्लिगंमूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

अर्थ—मूत्रके वेग रोकनेसे वस्ति (मूत्राशय) और शिश्न इन्द्री इनमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय ।

मन्यागलस्तंभशिरोविकाराजृभोपरोधात्पवनात्मकाःस्युः ।

तथाक्षिनासावदनामयाश्चभवन्तितीव्राःसहकर्णरोगैः ॥ ५ ॥

अर्थ—जंभाई आती हुईके रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इन्का और वातजन्य विकार मस्तकमें होय, उसी प्रकार नेत्ररोग, नासा रोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होय हैं ।

आनन्दजंवाप्यथशोकजंवानेत्रोदकंप्राप्तममुंचतोहि ।

शिरोगुरुत्वंनयनामयाश्चभवन्तितीव्राःसहपीनसेन ॥ ६ ॥

अर्थ—आनन्दसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे, उसके इतने रोग प्रगट होंय मस्तक भारी रहै, नेत्ररोग, और पीनम ये प्रबल हों ।

मन्यास्तंभशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ॥

इन्द्रियाणांचदौर्बल्यंक्षवथोःस्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

अर्थ—मन्या (कहिये नाड़के पिछाड़ीकी नस) उसका स्तंभ कहिये जकड़-
जाना, शिरमें शूलका चलना, आधा मुख टेढ़ा होजाय, अर्धांगवात, और सब
इन्द्री दुर्बल होजाय इतने रोग आती हुई छींक रोकनेसे होते हैं ॥

कंठास्यपूर्णत्वमतीवतोदःकूजश्चवायोरथवाऽप्रवृत्तिः ।

उद्गारवेगेऽभिहतेभवंतिघोराविकाराःपवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

अर्थ—आती हुई इकारके वेग रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं। कंठ और
मुख भारीसा मालूम होय; अत्यंत नोचनेकीसी पीड़ा होय, अव्यक्तभाषण,
(अर्थात् जो समझमें न आवे) ।

अधोवायूकी अपवृत्ति

कंडूकोठारुचिव्यंगोऽशोफपांड्वामयज्वराः ।

कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजागदाः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अङ्गोंमें खुजली चले,
देहमें चकत्ता होजाय, अरुचि, मुखपर झाँईसी पड़े, सूजन, पांडुरोग, ज्वर,
कुष्ठ, खालीरुद्ध, विसर्परोग, ये होय ॥

मूत्राशयेवैगुदमुष्कयोश्चशोथोरुजामूत्रविनिग्रहश्च ।

शुक्रादमरीतत्स्त्रवणंभवेच्चतेतेविकाराभिहतेचशुक्ले ॥ १० ॥

अर्थ—मैथुन करतेसमय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारसे
शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामें और अंडकोशोंमें
पीड़ा होय, मूत्र बड़े कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी (पथरीके निदानमें आगे कहेंगे)
सो होय, शुक्रका स्राव होय, ऐसे अनेकप्रकारके रोग होय ।

तन्द्रांगमर्दावरुचिःश्रमश्चक्षुधाभिघातात्कृशताचट्टष्टेः ।

अर्थ—भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टीका मन्द
होना, ये रोग प्रगट होय । चकारसे कृशता, और दुर्बलता होय, ये अन्यग्र-
न्यसे जानना ।

कंठास्यशोषःश्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्दृढदयव्यथावै ॥ ११ ॥

अर्थ—प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मन्द सुनना, और
हृदयमें पीड़ा ये लक्षण होय ।

श्रांतस्यनिःश्वासविनिग्रहेणहृद्रोगमोहावथवापिगुल्मः ।

अर्थ—जो मनुष्य हारगया हो और वो श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायगोला इतने रोग होय ।

जृम्भांगमर्दाक्षिशिरोतिजाब्धनिद्राभिघातादथवापितंद्रा ॥१२॥

अर्थ—आती हुई निद्राके रोकनेसे जंभाई, अंगोंका दूटना, नेत्र और मस्तकका अत्यंत जड़ता होना, और तन्द्रा होय । अब कहते हैं कि वेग रोकनेसे प्रगट रोगोंको कहिके अब रुक्षादिकारणोंसे कुपितवायुसे उत्पन्न होनेवाले उदावर्त्तरोगोंको कहते हैं ।

वायुःकोष्ठानुगोरूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैःकुपितःसद्य

उदावर्त्तकरोतिच ॥ १३ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहा-

निवै । स्रोतांस्युदावर्तयतिपुरीषंचातिवर्त्तयेत् ॥ १४ ॥

ततोहृद्वस्तिगूलार्चोहृल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषा-

णिकृच्छ्रेणलभतेनरः ॥ १५ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमो-

हतृषाज्वरान् । वमिहिकाशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान्

॥ १६ ॥ बहूनन्यांश्चलभतेविकारान्वातकोपजान् ॥ १७ ॥

अर्थ—रूखा, कषेला, तीखा और कड़वा ऐसे भोजन करनेसे कोष्ठगतवायु, मलमूत्र, अश्रुपात, कफ और मेद इनके बहनेवाली नाडीके मार्गको रोकदे और मलको सुखाय दे तब रोगी हृदय मूत्रस्थानमें शूलके होनेसे बेकल हो, सुखी रह, अस्वस्थपना इनसे पीड़ित होय, मलमूत्र और वात यह कष्टसे उतरे, और स्वाँस, खोंसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकरोग, मनकी भ्रांति, मन्दसुने तथा वातकोपसे औरभी बहुतसे विकार होंय ।

आनाहरोगनिदान

आमंशकृद्धानिचितक्रमेणभूयोविबद्धंविगुणानिलेन । प्रव-

र्त्तमानंनयथास्वमेनंविकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥ तस्मि-

न्भवत्यामसमुद्भवेतुतृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः । आमा-

शयेशूलमथोगुरुत्वंहृत्स्तंभउद्गारविघातनंच ॥ २ ॥ स्तंभः

कटीष्ठपुरीषमूत्रेशूलेश्चमूर्च्छाशकृत्तश्चछर्दिः । श्वासश्चप

क्वाशयजेभवन्ति तथाऽलसोक्तानिचलक्षणानि ॥ ३ ॥

अर्थ—आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित हो विगुण वायुसे वारंवार विवद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं। आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड़जाना, शूल, सूच्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, सूच्छा और विष्टा मिली हुई रह और श्वास, यह लक्षण होय। पकाशयमें आनाहरोग होनेसे आलसरोगोक्त लक्षण (आध्माज्-वातरोधादिक) होते हैं।

असाध्यलक्षण

तृष्णार्दितंपरिक्षिष्टक्षीणंशूलैरुपद्रुतम् ।

शूलद्वमंतंमतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—प्याससे पीड़ित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे पीड़ित, और मलकी रह करनेवाला, ऐसे उदावर्त्त रोगीको वैद्य त्याग दे।

इति उदावर्त्तिनिदानम् ।

अथ गुल्मनिदानम् ।

दुष्टावातादयोऽत्यर्थमिध्याहारविहारतः । कुर्वन्तिपञ्चधागु-
ल्मंकोष्ठांतर्ग्रथिरूपिणम् ॥ १ ॥ तस्यपञ्चविधंस्थानंपार्श्व-
हन्नाभिवस्तयः ।

अर्थ—मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष कोष्ठ (पेट) में ग्रंथिरूप (गांठ) पांचप्रकारका गुल्मरोग उत्पन्न करे हैं। उस गुल्मरोगके पांच स्थान हैं दोनों पसवाड़े, हृदय नाभि और वस्ति।

गुल्मके सामान्यरूप

हन्नाभ्योरन्तरेग्रन्थिःसंचारीयदिवाऽचलः ।

वृत्तश्चयोपचयवान्सगुल्मइतिकीर्त्तितः ॥ २ ॥

अर्थ—हृदय और नाभि तथा वस्ती (मूत्रस्थान) इनमें चलायमान अथवा निश्चल गोल कभी घटे कभी बढे ऐसी ग्रन्थि (गांठ) होय उसको गुल्म गोलाका रोग कहते हैं। इस श्लोकमें नाभिशब्दसे वस्तीका ग्रहण करा है।

सम्प्राप्ति

सव्यस्तेर्जायतेदोषैःसमस्तैरपिचोच्छ्रितैः ।

पुरुषाणांतथास्त्रीणाङ्गियोरक्तेनचापरः ॥ ३ ॥

अर्थ—कुपित भये दोषोंसे पृथक् २ और सब दोष मिलकर एक, ये चार प्रकारके गुल्म पुरुषोंके होते हैं । और स्त्रीनके रक्त (रज)के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होय है, परंतु प्रथम जो लिख आये हैं कि गुल्मरोग पांचप्रकारका है सो इसका निश्चय नहीं है; क्योंकि रक्तगुल्म स्त्रीनके होय है । पुरुषोंके नहीं हो, धातुरूप रक्तजगुल्म जो है सो स्त्री पुरुष दोनोंके होय है, यह क्षीरपाणीका मत है । पांच प्रकारका गुल्म है इसपर बहुत शास्त्रार्थ और मतमतांतर है, जिनको देखनेकी इच्छा हो सो मधुकोश और आतंकदर्पण टीकामें देखलेवें ।

पूर्वरूप

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्रनिकूजनानि ।

आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्यवदन्तिचिह्नम् ॥ ४ ॥

अर्थ—डकार बहुत आवें, मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय, साध-
र्भ्यका नाश होना, आंत बोले, पेटमें पीड़ा होय, और अफरा होय, तथा पेटका जकड़जाना, मंदाग्नि होना यह लक्षण होय तो जानना कि गुल्म (गोला) रोग शीघ्र प्रगट होना चाहता है ।

गुल्मके साधारणलक्षण

अरुचिःकृच्छ्रविण्मूत्रंवातेनांत्रविकूजनम् ।

आनाहश्चोर्ध्ववातत्वंसर्वगुल्मेपुलक्षयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—अरुचि मलमूत्र कष्टसे उत्तरें, वादीसे आंत बोले, पेट फूलआवें, ऊर्ध्व-
वात होय, यह लक्षण सब गुल्मोंमें होय है । सब गुल्मरोगमें वात कारण है सो (चरक) और (सुश्रुत)मेंभी लिखा है ।

वातगुल्मके कारण और लक्षण

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रंविचेष्टनवेगविनिग्रहश्च । शोका-

१ गुप्तिनामनिलशातिरूपायैः सर्वशोविधिवदाचरणीया । मारुतेऽत्र विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्मनिहन्यात् ॥ इति ॥

२ कुपिताऽनिलमूलवात्संचितत्वान्मलस्य च । तुल्यवद्वाविशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते । इति ॥

भिघातोऽतिमलक्षयश्चनिरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥ यः
स्थानसंस्थानरुजाविकल्पंविद्धातसङ्गलवक्त्रशोषं । श्यावा-
रुणत्वंशिंशिरज्वरश्चहृत्कुक्षिपार्श्वसंशिरोरुजश्च ॥ ७ ॥ क-
रोतिजीर्णोऽप्यधिकश्चोपभुक्तेमृदुत्वंसमुपैतिपश्चात् । वा-
तात्सगुल्मोनचतत्ररूक्षक्षयैतत्कटुचोपशेते ॥ ८ ॥

अर्थ—रूखा, विषम और अतिमात्र ऐसे अन्नपान सेवन करनेसे, बलवान् पुरुषसे लहना, मलमूत्र आदि वेगोंके धारण करनेसे, शोक और अभिघात (लकड़ी आदिकी चोट) विरेचन आदिसे, मलका क्षय करना, उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं ।

जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ती, कभी पसवाड़ेमें चलाजाय, तथा कभी लंबा कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें पीडा कभी थोड़ी कभी बहुत होय, तोदमेद (मुईचुभानेकीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाड़े, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय, और गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे, और, भोजन करनेके पिछाडी नरम होजाय, वह गोला वादीसे भगद होय है । उसमें रूखा कसेला कड़ुवा तीखा पदार्थ खानेसे मुख नहीं होय ।

पित्तगुल्मके कारण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदारिर्लक्ष्णक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।

आमाभिघातोरुधिरश्चदुष्टं पैतस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥ ९ ॥

ज्वरःपिपासावदनाङ्गरागःशूलंमहजीर्यतिभोजनेच । स्वे-

दोविदाहोत्रणवच्चगुल्मःस्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥

अर्थ—कटु, खट्टा, तीक्ष्ण रस, दाहकारक, (वंशकरीलादिक) रूखा, ऐसे भोजन करनेसे, क्रोधसे, अति मद्यपान, सूर्यकी धूपमें डोलनेसे, अधिके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्णसे दुष्ट भया रस चस्से, अभिघात कहिये लकड़ीआदि लगनेसे, रुधिरका विगडना, ये पित्तगुल्मके कारण कहे हैं । ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लालपना, अन्न पचनेके समय असन्त शूल होय, पसीना आवै, जलन होय, कोडाके समान स्पर्श सहा न जाय, ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ।

कफके और सन्निपातके गुल्मके कारण और लक्षण
 शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनश्चसंपूरणंप्रस्वपनंदिवाच । गुल्मस्य
 हेतुःकफसंभवस्यसर्वस्तुदुष्टोनिचयात्मकस्य ॥ ११ ॥ सै-
 मित्यशीतज्वरगात्रसादृह्लासकासारुचिगौरवाणि । शैत्यं
 रुगल्पाकठिनोन्नतत्वंगुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥ १२ ॥

अर्थ—शीतल, भारी, चिकने, ऐसे पदार्थके सेवनसे तृप्तिकी अपेक्षा अधिक भोजन करना, दिनमें सोना, ये कफोत्पन्नगुल्म होनेका कारण हैं। और जो वातजादि तीनों गुल्मोंके कारण कहे हैं, वो सब सन्निपातगुल्मके कारण जानने। देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद, (उवाकी) खांसी, अरुचि, भारीपना, शीतका लगना, थोड़ी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय, और ऊंचा होय, इतने ये सब कफात्मकगुल्मके लक्षण है।

द्वंद्वजगुल्मके लक्षण

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मेसंसर्गजेदोषबलावलञ्च । व्या-
 मिश्रलिङ्गानपरांश्चगुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १३ ॥

अर्थ—द्वंद्वज गुल्ममें कारण, लक्षण और दोषोंका बलावल जानकर चिकित्सा करनेके वास्ते, मिश्र लक्षणके और तीन गुल्म समझने चाहिये, अर्थात् एक दोष बलवान् होय तौ चिकित्सा करनी चाहिये, और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होय तौ चिकित्सा न करे।

सन्निपातगुल्मके लक्षण

महारुजंदाहपरीतमदमवद्धनोन्नतंशीघ्रविदाहदारुणम् । म-
 नःशरीराग्निबलापहारिणंत्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—भारी पीडा करनेवाला, दाहकरके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन, तथा ऊंचा, और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इन्का नाश करनेवाला, (अर्थात् मनकी विकल करनेवाला, शरीरको कृश करनेवाला और विवर्ण करनेवाला, अग्निवैषम्यादिकारक, असामर्थ्य करनेवाला) ऐसा त्रि-दोषज गुल्म असाध्य जानना।

रक्तगुल्मके लक्षण

नवप्रसूताऽहितभोजनायायाचामगर्भेविसृजेद्वतौवा । वायु-

हिंतस्याःपरिगृह्यरक्तङ्करोतिगुल्मंसरुजंसदाहम् ॥ १५ ॥

पैतृस्थलिङ्गेनसमानलिङ्गंविशेषणश्चाप्यपरंनिबोध । यः

स्पंदतेपिंडितेएवनाङ्गैश्चिरात्सशूलःसमगर्भलिङ्गः ॥ १६ ॥

सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मोमासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ।

अर्थ—नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे, अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे, अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे, वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले उसको) लेकर गुल्म करे । वो गुल्म पीडा-युक्त व दाहयुक्त होय है, और पित्तगुल्मके जो लक्षण कहे हैं वो सब इसमें होय, और इसमें दूसरे विशेष लक्षण होते हैं उनको कहता हूं सुनों । यह गुल्म बहुत दे-रमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नाहिं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्षण मिलें, (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड़जाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय, और दोहदादि लक्षण सब मिलें, ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं । जैसे खई रोगवालेको स्त्रीरमणकी इच्छा, और काले नखें ताल्वादिक होते हैं) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होय है, दश महीना व्यतीत होजाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । कोई कहते हैं कि यह गर्भ है, अथवा रक्तगुल्म है, यह शंका जानकर माधवाचार्यने (दश महीना व्यतीत होनेपर) ऐसा कहा है । कारण इसका यह है कि नवमा और दशमा महीना यह प्रसूत होनेका समय है * शंका—क्योंजी (यः स्पंदते पिंडित एव नांगैः) इत्यादिक विशेषणोंसे स्पष्ट प्रतीति होयहै क्योंकि गर्भ तो निरंतर प्रत्येक अवयवके साथ शूलरहित फटकता है, और रक्तगुल्मके इससे विपरीत लक्षण हैं, फिर दश महीना व्यतीत होनेपर चिकित्सा करना चाहिये ये क्यों कहा ? * उत्तर—इसका कारण इसप्रकार है कि इस रोगमें जब तो दश महीना व्यतीत होजाय जब चिकित्सा करै तो मुखसाध्य होय है, कुछ प्रसवके नियमसे नहीं कहा क्योंकि प्रसव ग्यारह बारह महीनामेंभी होय है सो (चरक)मेंभी लिखा है “ तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं स्पष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् ” जैसे जीर्णज्वर होनेपर दूध पीना, और दस्तका लेना हितकारक होय है । इसीसे ग्रन्थान्तरोंमेंभी लिखा है “ रक्तगुल्मे पुराणत्वं मुखसाध्यस्य लक्षणम् ” इस रक्तगुल्मको दसमहीना व्यतीत होनेपर पुरानापना होय है । और जेज्जटनेभी कहा है कि दसमहीनाके पहले मर्दनादि क्रिया करनेसे गर्भाशयको विकार होय है क्योंकि रुधिर उस ठिकानेपर जमा होय है, और ग्यारह महीनेमें गुल्मका गो-

ला बहुत अच्छा जमजाता है, इसीसे ग्यारवे महीनें स्नेहादिककरके सब शरीर मृदु (नरम) करनेसे भेदनक्रिया करै तो गर्भाशय भलेप्रकार अच्छा रहै, अब कहते हैं कि बहुत दिनका गुल्मरोग ऐसी अवस्था होनेपर असाध्य होजाय है उसको कहते हैं ।

सञ्चितः क्रमशोगुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलः शिरान-
द्वोयदाकूर्मइवोन्नतः ॥ १७ ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्दर-
तिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिञ्च्यति ॥ १८ ॥

अर्थ—क्रमक्रमसे बड़ा गुल्म जब सब उदर (पेट)में फैलजाय, और धातुनमें उसका मूल जाय पहुंचे, तथा उसपर नाडीन्का जाल लिपटनाय, और कछु-वाकी पीठके समान गुल्म ऊंचा होय, तब इस रोगीके निःसत्त्वपना, अरुचि, सूखी रद्द, खांसी, वमन, अरति और ज्वर तथा प्यास, तन्द्रा और पीनस, यह लक्षण होय, ऐसा रोगी असाध्य है ।

असाध्यलक्षण

गृहीत्वासज्वरः श्वासश्छर्द्यतीसारपीडिते । हृन्नाभिहस्तपादे-
षु शोथः क्षिपति गुल्मिनम् ॥ १९ ॥ श्वासः शूलं पिपासान्नवि-
द्वेषोऽग्रन्थिमूढता । जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनां मरणाय वै ॥ २० ॥

अर्थ—वमन और अतिसार इनसे पीड़ित ऐसा गुल्मरोगीका हृदय, नाभी हाथ, पैर इन ठिकाने सूजन होय । और ज्वर, दमा जिसके होय, ऐसे लक्षण होनेसे रोगी बचे नहीं ।

श्वास, शूल, प्यास, अन्नमें अरुचि, और गुल्मकी गांठका एकाएकी नष्ट होजाना और दुर्बलता, ये लक्षण होनेसे जानना कि गुल्मरोगवालेकी मृत्यु समीप है * चांका—क्याँजी अंतर्विद्रधि और गुल्मरोग इनमें क्या भेद है इन दोनोंके स्थान और स्वरूप तो एकसे हैं फेर भेद क्या है ? * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है अन्तर्विद्रधि पचता है और गुल्म नहीं पचे है इसका कारण यह है कि गुल्म तो निराश्रय है सो (सुश्रुतने) कहाभी है ।

ननिबन्धोस्तिगुल्मस्य विद्रधिः सनिबन्धनः । गुल्मस्तिष्ठति
दोषेस्वेविद्रधिर्मांसशोणिते । विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि
नपच्यते ॥ २१ ॥

अर्थ—गुल्मका निर्वन्ध नहीं है, और विद्रधिका निर्वन्ध है, गुल्म अपने दोषोंमें रहता है, और विद्रधिका ठिकाना मांस रुधिरमें है, इसीसे विद्रधिका पाक होय है, और गुल्मका पाक नहीं होय, गुल्म मुठ्ठीके समान बड़ा है। और विद्रधि इससे कुछ ज्यादा बड़ा होय है।

इति गुल्मनिदानम् ।

अथ हृद्रोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वस्लकषायतिक्तैःश्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः ।

संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्चहृदामयःपंचविधःप्रदिष्टः ॥ १ ॥

अर्थ—अति गरम, अति भारी, अति खट्टा, अति कषेला, अति कड़वा ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे। श्रम, (धनुषआदिका खेंचना), अभिघात (हृदयमें चोट लगना) और भोजनके ऊपर भोजन निख करनेसे, संचिन्तन (राजाके भयसे चिन्ता) मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, वातादिकके क्षय और सन्निपातकरके तथा क्रिमिसे हृदयका रोग होय है वो पांच प्रकारका है।

उस्की संप्राप्ति आर सामान्य लक्षण

दूषयित्वारसंदोषाविगुणाहृदयंगताः ॥

हृदिबाधांप्रकुर्वन्तिहृद्रोगंतंप्रचक्षते ॥ २ ॥

अर्थ—कुपित भये दोष रसको (हृदयमें जो रहता है) दुष्टकरके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीड़ा करे उसको हृदयरोग कहते हैं।

वातहृद्रोगके लक्षण

आयम्यतेमारुतजेहृदयंतुद्यतेतथा ।

निर्मथ्यतेदीर्यतेचस्फोट्यतेपाट्यतेपिच ॥ ३ ॥

अर्थ—वातज हृदयरोगमें हृदय ईचासरीखा, मुईसे चोंटनेसरीखा, फोरनेसरीखा, दो टुकड़ा करनेके समान, मथनेके समान, कुहाड़ीसे फारनेके समान पीड़ा करे है।

पित्तके हृद्रोगके लक्षण

तृष्णोष्णदाहमोहाःस्युःपैत्तिकेहृदयक्लमः ।

धूमायनंचमूर्च्छाचस्वेदःशोपोमुखस्यच ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धूर्आं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना यह लक्षण होय हैं ।

कफके हृदयरागके लक्षण

गौरवंकफसंस्त्रावोऽरुचिःस्तंभोऽग्निमार्दवं ।

माधुर्यमपिचास्यस्थबलासावर्ततेहृदि ॥ ५ ॥

अर्थ—कफसे हृदय व्याप्त होनेसे भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड़जाय, मन्दामि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं ।

त्रिदोषके लक्षण

विद्यात्रिदोषंत्वपिसर्वलिङ्गम् ।

अर्थ—जिसमें सब लक्षण मिलते होय वो त्रिदोषका हृद्रोग जानना, इसमें कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है, उस गांठसे कृमि पैदा होय है, ऐसे चरकमें कहा है ।

कृमिज हृद्रोगके लक्षण

तीव्रार्तितोदंकृमिजंसकण्डूः ॥ उत्क्लेदःष्ठीवनंतोदःशूलंहृल्ला-

सकस्तमः । अरुचिःश्यावनेत्रत्वंशोपश्चकृमिजेभवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—तीव्र पीडाकरके, तथा नोचनेकीसी पीडाकरके, तथा खुजलीकरके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो) थूकना, तोद (सुई चुमानेकीसी पीडा), शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड़जाय और मुखशोष यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं । जेज्जटका यह मत है कि (उत्क्लेदसे लेकर तमपर्यंत) त्रिदोषके लक्षण कहे हैं जैसे तोद, शूल ये वादीसे होय । उत्क्लेद, हृल्लास और ष्ठीवन ये कफसे । और तम यह पित्तसे लक्षण होते हैं । और अरुचिसे लेकर शोषपर्यन्त कृमिज हृद्रोगके लक्षण जानने, इस विषयमें प्रत्येक आचार्याके भिन्नभिन्न मत हैं ।

सर्वोंके उपद्रव

क्लोन्नःसादोभ्रमःशोपोज्ञेयास्तेपामुपद्रवाः ।

कृमिजेकृमिजातीनांश्चैषिमिकाणांचयेमताः ॥ ७ ॥

१ त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निपेवते । तिलक्षीरगुडादौश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ मर्म-
कदेने संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । संक्लेदात्कृमयश्चास्य भवत्युपहतात्मनः ॥

अर्थ—छोम कहिये पिपासा (प्यास) स्थान उसमें ग्लानि होय, भ्रम, शोष, ये सब उन हृद्रोगोंके उपद्रव जानने । और कफकी कृमिरोगके जो उपद्रव पिछाडी कहिआयेहैं सोई कृमिज हृद्रोगके लक्षण होतेहैं । तथा ' हृल्लासमास्य-स्त्रवणमविपाकमरोचकम् ' इत्यादि ।

इति हृद्रोगनिदानम् ।

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ।

आनूपमत्स्याध्यशानादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ १

अर्थ—व्यायाम (दंडकसरत आदि) तीक्ष्णौषध (राई आदि) रूखा पदार्थ, और नित्यप्रति मद्यपान करना, और निरंतर घोड़ेपर चढ़नेसे, और जलसमीप रहनेवाले पक्षी (हंस, सारस, चकवा, आदि) का मांस खानेसे, और मछली, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, और कच्चे पदार्थ इत्यादिकोंके खानेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग होय है । पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेका १, मल रोकनेका १, वीर्य रोकनेका १, और पथरीका १, यह सब मिलकरके आठ ८ भये ।

संप्राप्ति

पृथङ्मलाःस्वैःकुपितानिदानैःसर्वेऽथवाकोपमुपेत्यवस्तौ ।

मूत्रस्यमार्गपरिपीडयंतियदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अर्थ—अपने कारणसे कुपित भये जो वातादिक दोष, अथवा सब दोष वस्तीमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीडित करें, तब मनुष्यके घड़े कष्टसे मूत्र उतरे ।

पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

पीतंसरक्तंसरुजंसदाहंकृच्छ्रंमुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ।

अर्थ—पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रसे पीला, कुछ लाल, पीढायुक्त, अधिक समान, वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे ।

वातिकमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

तीव्रार्तिरुग्वंक्षणवस्तिमेद्रेस्वलपंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ॥ ३ ॥

अर्थ—वातके मूत्रकृच्छ्रसे वंक्षण (जांघ और ऊरु इन्की संधि) सूत्राशय और इन्द्री इनमें पीड़ा होय और मूत्र बारंवार थोड़ा थोड़ा उतरे ।

कफमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

वस्तेःसर्लिंगस्यगुरुत्वशोथौमूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ।

अर्थ—कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और सूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय ।

सन्निपातमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपाताद्भवन्तितत्कृच्छ्रतमंतुकृच्छ्रं ॥ ४ ॥

अर्थ—सन्निपातसे सर्व लक्षण होतेहैं यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है ।

शल्यजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

मूत्रवाहिषुशल्येनक्षतेष्वभिहतेषुच । मूत्रकृच्छ्रंतदाघाताज्जा-
यतेभृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेणतुल्यानितस्यलिंगानिलक्ष-
येत् ॥ ५ ॥

अर्थ—मूत्र बहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि)से विंधजाय, अथवा पीडित होय तौ उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होयहै इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होय ।

मलके मूत्रकृच्छ्रके लक्षण

शकृतस्तुप्रतीघाताद्वायुर्विगुणतांगतः ।

आध्मानंवातसंगंचमूत्रसंगंकरोतिच ॥ ६ ॥

अर्थ—मलके (विष्टाके) अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलबटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्र नाश करे; तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय ।

अश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्र

अश्मरीहेतुतत्पूर्वमूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ।

शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

शुक्रदोषैरुपहतेमूत्रमार्गेविधारिते ।

सशुक्रमूत्रयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—दोषोंके योगसे शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस

भई जो वायु सो वस्ती (सूत्राशय)में प्राप्त हो पीडा करे, और सूत्रसे मिलकर सूत्रके वेगको विगुण (उलटा)करके वहां आप कुण्डलके आकार (गोलाकार) सूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो सूत्रको बारंवार थोड़ाथोड़ा पीडाके साथ साग करे इस दारुण व्याधिको वातकुण्डलिकारोग कहते हैं ।

अष्टीलाके लक्षण

आध्मापयन्वस्तिगुदंरुध्वावायुश्चलोज्जतां ।

कुर्यात्तीव्रार्तिमष्टीलांमूत्रमार्गावरोधिनीम् ॥ ४ ॥

अर्थ—वस्ती (सूत्राशय) और गुदा इनमें यह वायु अफरा करे, तथा गुदाकी वायुको रोककर चञ्चल और उन्नत (ऊंची) ऐसी अष्टीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश)को प्रगट करे, यह सूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है ।

वातवस्तीके लक्षण

वेगंविधारयेद्यस्तुमूत्रस्याकुशलो नरः । निरुणद्धिमुखंतस्य

वस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ २ ॥ मूत्रसंगोभवेत्तेनवस्तिकुक्षि-

निपीडितः । वातवस्तिःसविज्ञेयोव्याधिःकृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य अङ्ग (जिह्वा)से सूत्र बाधाको रोके उसके वस्ती (सूत्राशय)-का वायु वस्तीके मुखको बन्द करदे तब उसका सूत्र बन्द होजाय, और वो वायु वस्तीमें और कूखमें पीडा करे उस व्याधीको वातवस्ती ऐसे कहते हैं । यह बड़े कष्टसे साध्य होय ।

सूत्रातीतके लक्षण

चिरंधारयतोमूत्रंत्वरयानप्रवर्तते ।

मेहमानस्यमन्दं वामूत्रातीतःस उच्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—सूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वो जल्दी नहीं उतरे और मूत्रतेसमय धीरे धीरे उतरे इस रोगको सूत्रातीत कहते हैं ।

सूत्रजठरके लक्षण

मूत्रस्यवेगेऽभिहतेतदुद्वर्त्तहेतुकः । अपानःकुपितोवायुरु-

दरंपूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानंजनयेत्तीव्रवेदना-

म् । तन्मूत्रजठरंविद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

अर्थ—मूत्रके वेग रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित, और उदावर्त्तका कारणभूत, ऐसा अपानवायु कुपित होयकर पेट बहुत फूलजाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोवस्तीका रोष करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर ऐसे कहते हैं ।

मूत्रोत्संगके लक्षण

वस्तौवाप्यथवानालेमणौवायस्यदेहिनः । मूत्रंप्रवृत्तंसज्जेत
सरक्तंवाप्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवच्छनैरल्पमल्पंसरुजंवाथ
नीरुजम् । विगुणानिलजोव्याधिःसमूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रवृत्त भया मूत्र, वस्तीमें अथवा शिश्नमें (लिंगमें) अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय, और बलसे मूत्रको करैवी तौ वादीसे वस्तीको फाड़कर जो मूत्र निकले वो मंद मंद थोड़ा थोड़ा पीड़ाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं ।

मूत्रक्षयके लक्षण

रूक्षस्यक्लान्तदेहस्यवस्तिस्थौपित्तमारुतौ ।

मूत्रक्षयंसरुग्दाहंजनयेतांतदाव्हयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—रूक्षाभया अथवा श्रांत (थकगया) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्ती (मूत्राशयमें) रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसे कहते हैं ।

मूत्रग्रन्थिके लक्षण

अन्तर्वस्तिमुखेवृत्तःस्थिरोऽल्पःसहसाभवेत् ।

अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिःसञ्च्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—वस्तीके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि ऐसे कहते हैं ।

मूत्रशुक्रके लक्षण

मूत्रितस्यस्त्रियंयातोवायुनाशुक्रमुद्धतम् । स्थानाज्युतंमूत्र-
यतःप्राक्पश्चाद्वाप्रवर्तते ॥ १४ ॥ भस्मोदकप्रतीकाशंमूत्र-
शुक्रंतदुच्यते ।

अर्थ—मूत्रवाधाको रोकके जो मनुष्य स्त्रीसङ्ग करे उसके वायु शुक्रको उड़ाय

स्थानसे भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे, और उसका वर्ण राखमिला पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र ऐसे कहते हैं।

उष्णवातका लक्षण

व्यायामाध्वातपैःपित्तं वस्तिप्राप्या निलायुतं ॥ १५ ॥ व-
स्तिमेद्वंगुदं चैव प्रदहेत्स्त्रावयेदधः । मूत्रं हारिद्रमथ वासरक्तं-
क्तमेव च ॥ १६ ॥ कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जैतोरुष्णवातं वदंति तम् ।

अर्थ—व्यायाम (दंडकसरत) अति मार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्तं सो वस्तीमें प्राप्त हो वायुसे मिल वस्ति अंडकोश और गुदा इन्में दाह करे और हलदीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्रका स्राव बारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं।

मूत्रसादके लक्षण

पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतेऽनिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा
पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् । सदा हंरोचनां शंखचूर्णवर्णं भवेत्तु तत्
॥ १८ ॥ शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदंति तम् ।

अर्थ—पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके विगडे हुए होंय तब मनुष्य पीला लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय और जब वो मूत्र पृथ्वीमें सूखजाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय, अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहें हैं।

विद्विधातके लक्षण

रूक्षदुर्बलयोर्वीतेनोदावर्तशक्यदा ॥ १९ ॥ मूत्रस्रोतोऽनु-
पद्येत विद्विषृष्टं तदानरः । विद्विधं मूत्रं येत्कृच्छ्राद्विद्विधातं वि-
निर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ—रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शक्यत् (मल) जब वायुकरके प्रेरित उदाव-
र्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवै उस समय मनुष्य मूतने लगे तौ बड़े कष्टसे मूत्र उतरे, और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवै, उसको विद्वि-
धात कहते हैं।

वस्तिकुंडलरोगके लक्षण

द्रुताध्वलं घनायासैरभिधातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्वस्ति-

रुद्धतःस्थूलस्तिष्ठतिगर्भवत् ॥ २१ ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो
बिन्दुंबिन्दुंस्त्रवत्यपि । पीडितस्तुसृजेद्वारांसंरंभोद्वेष्टनार्त्तिमा-
न् ॥ २२ ॥ वस्तिकुण्डलमाहुस्तंघोरंशस्त्रविषोपमम् । पव-
नप्रबलंप्रायोदुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥

अर्थ—जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकड़ी आदिकी
चोट लगनेसे, पीडासे वस्ती अपने स्थानको छोड़ ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके
समान कठिन रहै, उससे शूल, कम्प और दाह ये होय । मूतकी एक एक बून्द
गिरे, यदि वस्ती जोरसे पीडित होय तौ बड़ी धार पड़े, वस्तीमें सूजन होय, पे-
टमें पीडा होय इस रोगको वस्तीकुण्डल ऐसे कहते हैं । यह शस्त्रके समान
जल्दी प्राणनाशक, और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाश कर्त्ता भयंकर
है । इसमें प्रायः वायु प्रबल है, मन्दबुद्धिवाले वैद्योंसे इसका निवारण (चिकि-
त्सा) करना कठिन है । इसको अन्य दोषोंका सम्बन्ध होनेसे जो लक्षण होते
हैं उनको कहताहूँ ।

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलंमूत्रविवर्णता । श्लेष्मणागौरवंशो-
थःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम् ॥ २४ ॥ श्लेष्मरुद्धबिलोवस्तिःपि-
तोदीर्घोन्नसिद्ध्यति । अविध्नांतबिलःसाध्योचयःकुण्डली-
कृतः । स्याद्वस्तौकुण्डलीभूतेतृणमोहःश्वासएवच ॥ २५ ॥

अर्थ—वही वस्तिकुण्डल पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्रका बुरा रंग होय,
और कफयुक्त होनेसे जडल, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा, सपैदा ऐसा होय ।

साध्यासाध्यलक्षण

कफकरके जिसका मुख वन्द होय ऐसा और पित्तकरके व्याप्त भई ऐसी
वस्ती साध्य नहीं होय, और जिस वस्तीका मुख खुला होय तथा जो कुण्डली-
कृत होय नहीं सो साध्य है ।

कुण्डलीभूतके लक्षण

वस्ती कुण्डलीभूत होनेसे प्यास, दाह और श्वास यह लक्षण होय ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितभावाथर्वबोधिनीमाधुरीभाषाटीकाया मूत्राघातनिदानं समा ०

अथ अश्मरीरोगनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्त्रश्रुतुर्थीशुक्रजाऽपरा ।

प्रायःश्लेष्माश्रयाःसर्वाअश्मर्यःस्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ, इनसे ३ चौथी शुक्रसे, अश्मरीरोग (पथरी) हो है ये पथरी विशेषकरके कफाश्रित है, ' यमोपमा ' कहिये अच्छी चिकित्सा न होय तौ यह अवश्य प्राणनाशक है ।

सम्प्राप्तिमाह

विशोषयेद्वस्तिगतंसशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनःकफंवा । यदायदा-
श्मर्युपजायतेचक्रमेणपित्तेष्विवरोचनागोः ॥ २ ॥

अर्थ—जिन मनुष्योंको वायू वस्तीमें प्राप्त होय, शुक्रयुक्त अथवा पित्तयुक्त मूत्र अथवा कफको सुत्तावै तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होतीहै । जैसे गऊके पित्तमें गोरौचन जमे हैं, उसी प्रकार वस्तीमें वीर्यसे पथरी होय है ।

पूर्वरूप

नैकदोषाश्रयाःसर्वाअश्मर्याःपूर्वलक्षणम् । वस्त्याध्मानंत-
दासन्नदेशेषुपरितोऽतिरुक् ॥ ३ ॥ मूत्रेवस्तसंगंधत्वंमूत्रकृ-
च्छ्रंज्वरोऽरुचिः ।

अर्थ—सब अश्मरी (पथरी) एक दोषके आश्रय नहीं है अर्थात् अनेक दो-
षाश्रित हैं वस्तीका फूलना, वस्तीके आसपास असंत पीडा होनी, मूत्रमें वकराके
पेशावकीसी दुर्गंध आवे, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, अरुचि, ये पथरीके पूर्वरूप जानने ।

पथरीके सामान्य लक्षण

सामान्यलिंगंरुद्धनाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु ॥ ४ ॥ विशीर्ण-
धारंमूत्रस्यात्तयामार्गनिरोधने । तद्वपायात्सुखंमेहेदच्छंगो-
मेदकोपमम् ॥ ५ ॥ तत्संक्षोभात्क्षतेसास्त्रमायासाच्चातिरु-
ग्भवेत् ।

अर्थ—नाभि सेवनी (अंडकोशके समीपका भाग) और वस्तीका अग्रभाग इ-
नमें शूल होय, पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार फटी निकले, पथरी

मूत्रमार्गके पाससे हटजाय तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे, और स्वच्छ गोमेदमणीके समान होय, अश्मरी (पथरी)के योगसे वस्तीमें घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे, और मूतते समय जोर करनेसे बड़ा छेश और पीड़ा होय ए सामान्य लक्षण जानना ।

वातकी पथरीके लक्षण

तत्रवाताद्भृशंव्याप्तोदन्तान्वादतिवेपते । मग्नातिमेहनना-
भिपीडयंत्यनिशंकणन् ॥ ६ ॥ सानिलंमुंचतिशकन्मुहुर्म-
हतिबिन्दुशः । श्यावारूक्षाश्मरीचास्यस्याञ्चिताकंटकैरिव ॥ ७ ॥

अर्थ—वायुकी पथरीसे रोगी अत्यंत पीड़ा करके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कापि, लिंगको हाथसे रगड़े नाभिको रगड़े, और रातदिन दुःखसे रोवै, और मूत्र आनेके समय पीड़ा होनेके कारण अधोवायुको परित्याग करे, मूत्र बारंवार टपक टपक गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कटि होय ।

पित्तकी पथरीके लक्षण

पित्तेनदह्यतेबस्तिःपच्यमानइवोष्मवान् ।

भल्लातकास्थिसंस्थानारक्तापीतासिताऽश्मरी ॥ ८ ॥

अर्थ—पित्तकी पथरीसे रोगीके वस्तीमें दाह होय, और खारसै जैसा दाह होय ऐसी वेदना होय, वस्तीके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय, और भि-
लाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय ।

कफकी पथरीके लक्षण

बस्तिर्निस्तुद्यतइवश्लेष्मणाशीतलोगुरुः ।

अश्मरीमहतीश्लक्ष्णामधुवर्णाथवासिता ॥ ९ ॥

अर्थ—कफकी पथरीसे वस्तीमें नोचनेकीसी पीड़ा होय, शीतलपना होय, और पथरी बड़ी मुर्गीके अंडेसमान, स्वच्छ और मद्य (दारू)के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीरीसी होय, यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होतीहै सो कहैं ।

एताभवंतिबालानामेषामेवचभूयसा ।

आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणेमुखाः ॥ १० ॥

अर्थ—पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी (पथरी) विशेषकरके बालकोंके होयहै,

कारण उनका भारी मीठा शीतल चिकना आहार है, और उनकी वस्ती छोटी तथा पुष्टता थोड़ी होय है इसीसे वैद्योंको उसका चीरना फाड़ना काटना निकासना कठिन नहीं होय सो (सुश्रुत) नेभी कहा है ।

शुक्राश्मरीके लक्षण

शुक्राश्मरीतुमहतांजायतेशुक्रधारणात् ॥ स्थानाद्भ्युत्तममुक्तं
हिमुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ ११ ॥ शोषयत्युपसंहृत्यशुक्रंत
च्छुष्कमश्मरी ॥ बस्तिरुक्कच्छ्रूमूत्रत्वंमुष्कश्चयथुकारिणी
॥ १२ ॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायांशुक्रमेतिविलीयते । पीडिते
त्ववकाशेस्मिन्नश्मर्येवचशर्करा ॥ १३ ॥

अर्थ—शुक्राश्मरी यह शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे बड़े मनुष्योंकोही यह पथरी होती है । मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान होगया हो वीर्य उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले, भीतरही रहै तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है । उसीको शुक्रजाश्मरी कहते हैं । इसकारिके अंडकोषोंमें सूजन बल्लिमें पीडा और मूत्रकुच्छ्रा होती है । शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष पेहू इनमें पीडा होती है वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है ।

पथरीशर्कराके उपद्रव

अणुशोवायुनाभिन्नासातस्मिन्ननुलोमगे । निरेतिसहमूत्रे-
णप्रतिलोमेविवर्ध्यते ॥ १४ ॥ मूत्रस्त्रोतःप्रवृत्तासासक्ताकु-
र्यादुपद्रवान् । दौर्बल्यंसदनंकार्श्यकुक्षिशूलमथारुचिम् ।
पांडुत्वमुष्णवातश्चतृष्णाहृत्पीडनं वमिम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वायु वस्तीमें अणुलोमगतिसे प्रवेश होय तो वह शर्करा वायुकरके छोटे छोटे इकट्ठी होकर मूत्रके साथ बाहर निकले, और यदि वायु प्रतिलोम होय तो मूत्रमार्गको रोक दे, यदि मूत्रमार्गमें प्राप्त होय तो मूत्रके बहनेवाले छिद्रोंको रोक दे फिर इतने उपद्रवोंको प्रगट करे । दुर्बलता, ग्लानि, कुशता, कृष्णमें शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, उष्णवात, प्यास, हृदयमें पीडा, वमन ये सब उपद्रव होय ।

असाध्यलक्षण

प्रशूननाभिवृषणंबद्धमूत्रंरुजान्वितम् ।

अश्मरीक्षपयत्याशुशर्करासिकतान्विता ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसकी नाभि और वृषण सूजजाय, यूत्र उतरे नहीं, पीडा होय, ऐसे पुरुषके शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राणनाश करै ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाधुरीभाषाटीकायां अश्मरीनिदानसमाप्तम्

माधवनिदानका उत्तरभाग ।

प्रमेहनिदान

आस्यासुखंस्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पर्याप्ति ।

नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्छ्रसर्व ॥ १ ॥

अर्थ—वैठनेके सुखसे निद्राके सुखसे अथवा स्वप्नसुख कहिये स्वप्नमें स्त्रीप्रसंग आदि सुखसँ दही ग्रामके संचारी जीव भेड बकरी आदि जलके संचारी जीव मच्छी कछुआ आदि अनूप (जलसमीप)के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि ऐसे प्राणीन्के मांसरस दूध नया अन्न और नया जल तथा शर्करा आदि गुडके पदार्थ अथवा गुडके विकार ए और जितने कफकारक पदार्थ हैं सो सब प्रमेह होनेके कारण हैं ।

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसँ संप्राप्ति

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य । करोति मे-

हान्त्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ २ ॥ क्षीणे-

षु दोषेष्ववकृष्य धातून् संदूष्य मेहान् कुरुतेऽनिलश्च । साध्याः

कफोत्थादशपित्तजाः षट्प्याप्यान् साध्याः पवनाश्चतुष्काः ॥ ३ ॥

समक्रियत्वा द्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाश्च यथाक्रमते ।

अर्थ—वस्ति (यूत्रस्थान)गत कफ—मेदमांस और शरीरके क्लेदको विगाड कर प्रमेहको उत्पन्न करै है उसी प्रकार गरम पदार्थसँ पित्त कुपित होकर पूर्वोक्त मेद मांसको विगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करे और वायु यह दोष क्षीण होनेसँ धातु (कहिये वसामज्जादिक)को ईंचकर (वस्तीके मुखपर लायकर) प्रमेहको प्रगट करै कफसे प्रगट दस प्रमेह साध्य हैं कारण इस्का यह है कि कफदोष और मेद-प्रभृति दूष्य इनपर कटुतिक्तादि क्रिया समान है इस रोगमें रोगकाही प्रभाव ऐसा

है कि इसमें तुल्यदूष्यको साध्यत्व कहा है और प्रमेहके बिना और रोगोंको अतुल्य (असमान) दूष्यत्व साध्यका हेतु होय है पित्तकी छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे याप्य होय है अर्थात् पित्त हरण करनेवाले जे शीत मधुर आदि द्रव्य वो मेदको बढ़ानेवाले हैं और मेद हरणकर्त्ता उष्णकटुकादि द्रव्य वो पित्तकर्त्ता हैं ऐसे क्रिया विषम है वादीसैं प्रगट चार प्रमेह मज्जादिगंभीर धातूके आकर्षण करनेसैं असन्त पीडा कर्त्ता है और इन्की विषमही क्रिया है इसीसैं ए चार असाध्य हैं ।

प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह

कफःसपित्तंपवनश्चदोषामेदोस्त्रशुक्रांबुवसालसीकाः ।

मज्जारसौजःपिशितंचदूष्याःप्रमेहिणींविंशतिरेवमेहाः ॥ ४ ॥

अर्थ—कफ पित्त और वादी ए दोष और मेद रुधिर शुक्र जल मांस स्नेह (चर्बी) लसिका (मांसकाजल) मज्जारस ओज और मांस ए दूष्य जानने इन दोष और दूष्य दोनोंसैं बीस प्रकारके प्रमेह होते हैं ।

पूर्वरूप

दन्तादीनामलाढ्यत्वंप्राग्रूपंपाणिपादयोः ॥ ५ ॥

दाहश्चिक्रणतादेहेतुश्वासश्चोपजायते ।

अर्थ—दांतोंमें आदिशब्दसैं जिन्हा तालू आदिका ग्रहण है इन्में मेल बहुत रहै हाथ पैरमें दाह अंगका चिकनापना प्यास श्वास चकारसैं केशों (घारों) का आपसमें लिपट जाना और नखोंका बढ़ना जानना ए प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ।

सामान्यलक्षण

सामान्यलक्षणंतेषांप्रभूताविलमूत्रता ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुत और गाढा मूत्र उतरे ए प्रमेहके सामान्य लक्षण हैं ।

प्रमेहके कारण

दोषदूष्याविशेषेपित्तसंयोगविशेषतः ।

मूत्रवर्णादिभेदेनभेदोमेहेपुकल्प्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—दोष और दूष्य इन्के भेद न होनेसे परंतु दोष और दूष्य इन्के संयोग भेदसे मूत्र वर्णादि भेद कर्के प्रमेहमें भेद होय है दस छः चार इत्यादिक दोष (वात पित्त कफ) दूष्य (मांस मेदा मज्जादि) जैसे सफेद पीला काला तामेके रंगका और श्याम इन पांच रंगोंके संयोग करनेसैं पिंगल पाटलादि अनेक वर्ण भेद होते हैं इसी प्रकार दोषादिकोंके संयोगसैं नाना प्रकारके प्रमेह होते हैं संयोग

भेदकी कैसे प्रतीतहो ऐसे कोई पूछे तो उसके वास्ते कहतेहैं मूत्रके वर्णादि भेदसैं समान कारणोंके भेद कल्पना करने चाहियें जैसे घट (घड़ा) बनानेके समय मृत्तिकादि कारण सामग्रीमें भेद नहीं है परन्तु कुम्भकारादि (कुम्हारआदि) संयोग भेद कर्के घड़ा सरवा मटकना आदि अनेक जातिभेद होजाते हैं ।

कफकी १० प्रमेहके लक्षण

अच्छंबद्भुसितंशीतंनिर्गन्धमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेनकिं-
चिदाविलपिच्छिलम् ॥ ८ ॥ इक्षोरसमिवात्यर्थमधुरंचक्षु-
मेहतः । सांद्रीभवेत्पर्युषितंसान्द्रस्नेहेनमेहति ॥ ९ ॥ सुरा-
मेहीसुरातुल्यमुपर्यच्छमधोघनम् । संहृष्टरोमापिष्टेनपिष्टव-
द्बहुलंसितं ॥ १० ॥ शुक्राभंशुक्रमिश्रंवाशुक्रमेहीप्रमेहति ।
मूत्राणून्सिकतामेहीसिकतारूपिणोमलान् ॥ ११ ॥ शीत-
मेहीसुबद्भुशोमधुरंभृशशीतलम् । शनैःशनैःशनैर्मैहीमन्दंम-
न्दंप्रमेहति ॥ १२ ॥ लालातंतुयुतंमूत्रंलालामेहेनपिच्छिलम् ।

अर्थ— १ उदकप्रमेहकर्के—स्वच्छ बहुत सपेद शीतल गंधरहित पानीके समान कुछ गाढा, और चिकना मूत्रे है ।

- २ इक्षुप्रमेहसै—ईखके रससमान अत्यंत मीठा ऐसा मूत्र होय ।
- ३ सांद्रप्रमेहसै—रात्रमें पात्रमें धरनेसै जैसा होवै ऐसा मूत्र होय ।
- ४ सुराप्रमेहसै—दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा ऐसा मूत्रे ।
- ५ पिष्टप्रमेहसै—पिसे चामलोंके पानीसमान सपेद और बहुत मूत्रे तथा मूत्रे तते समय रोमांच होय ।
- ६ शुक्रप्रमेहसै—शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय ।
- ७ सिकतामेहसै—मूत्रके कण और बालू रेतके समान मलके रवागिरें ।
- ८ शीतमेहसै—मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा बारंबार बहुत मूत्रे ।
- ९ शनैर्मैहसै—धीरे धीरे और मंद मंद मूत्रे ।
- १० लालाप्रमेहसै—लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होयहै ।

पित्तकी ६ प्रमेहके लक्षण

गंधवर्णरसस्पर्शैःक्षारेणक्षारतोयवत् ॥ १३ ॥ नीलमेहेन
नीलाभंकालमेहीमषीनिभं । हारिद्रमेहीकटुकंहारिद्रासन्नि-

भंदहत् ॥ १४ ॥ विस्त्रमांजिष्ठमेहेनमंजिष्ठासलिलोपमम् ।

विस्त्रमुष्णंसलवणंरक्ताभंरक्तमेहतः ॥ १५ ॥

अर्थ— ११ क्षारप्रमेहसै—खारीजलके समान गंध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है ।

१२ नीलप्रमेहसै—नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूत्रे ।

१३ कालप्रमेहसै—स्याईके समान काला मूत्रे ।

१४ हारिद्रप्रमेहसै—तीक्ष्ण हलदीके समान और दाहयुक्त मूत्रे ।

१५ मांजिष्ठप्रमेहसै—आम दुर्गंध और मजीठके समान मूत्रे ।

१६ रक्तप्रमेहसै—दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करै ।

वातकी ४ प्रमेहको लक्षण

वसामेहीवसामिश्रंवसाभंमूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभंमज्जमिश्रं

वामज्जमेहीमुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ कषायमधुरंरूक्षंक्षौद्रमेहंवदे-

द्ध्युधः । हस्तीमत्तइवाजस्त्रंमूत्रंवेगविवर्जितम् । सालसीकं-

विवद्धंचहस्तिमेहीप्रमेहति ॥ १७ ॥

अर्थ— १७ वसाप्रमेही—वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूत्रे ।

१८ मज्जाप्रमेही—मज्जाके समान अथवा मज्जामिला बारंवार मूत्रे ।

१९ क्षौद्रप्रमेही—कपेला मीठा और चिकना ऐसा मूत्रे ।

२० हस्तिप्रमेही—मस्त हाथीके समान निरंतर बेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूत्रे ।

कफप्रमेहके उपद्रव

अविपाकोऽरुचिर्छार्दिज्वरःकासःसपीनसः ।

उपद्रवाःप्रजायन्तेमेहानांकफजन्मनाम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अन्नका परिपाक न होय अरुचि वमन ज्वर खांसी पीनस ए कफप्रमेहके उपद्रव हैं ।

पित्तप्रमेहके उपद्रव

वस्तिमेहनयोःशूलंमुष्कावदरणंज्वरः ।

दाहस्तृष्णाभिलकामूर्च्छाविड्भेदःपित्तजन्मनां ॥ १९ ॥

अर्थ—वस्ती और लिंग इन्में पीड़ा होय अंडकोशोंका पककरफटना ज्वर प्यास खट्टीढकार मूर्च्छा और पतला दस्त होय ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं।

वातप्रमेहके उपद्रव

वातजानामुदावर्तकंठहृद्ब्रह्मलोलताः ।

शूलमुन्निद्रताशोषःकासःश्वासश्चजायते ॥ २० ॥

अर्थ—उदावर्त गला हृदय इन्का रुकना लोलता (सर्वरस भक्षणच्छा) शूल निद्रानाश शोष सूखी खांसी श्वास ए वातप्रमेहके उपद्रव हैं ।

प्रमेहके असाध्य लक्षण

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रसृतमेवच ।

पिडिकापीडितंगाढंप्रमेहोहन्तिमानवम् ॥ २१ ॥

अर्थ—ऊपर कहिआए जो अविपाकादि उपद्रव वो सब होय जिसके मूत्रका श्राव बहुत हुआ होय शराविकाआदि जो पिडिका आगे कहेंगे वो होय रोग अंगमें प्रवेश होगया हो ऐसे लक्षण होनेसे वो प्रमेह मनुष्यको मारडाले ।

दूसरे असाध्य लक्षण

जातःप्रमेहीमधुमेहिनायोनसाध्यरोगःसहिबीजदोषात् ।

अर्थ—मधुमेही पुरुषसै उत्पन्न भया जो प्रमेहवान् पुरुषका रोग बीजदोषके कारणसै साध्य नहीं होय इस जगे मधुमेहशब्दसै साधारण प्रमेह जानना इस जगेबी मधुकोशटीकावालने मधुमेहशब्दसै बहुतसा शास्त्रार्थ लिखा है ।

कुलपरंपरागत अन्य विकारोंको असाध्यत्व कहते.

येचापिकेचित्कुलजाविकाराभवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् २२

अर्थ—जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार हैं वो सब असाध्य हैं अब कहते हैं कि सर्व प्रमेहोंकी अपेक्षा करनेसै मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं इस्को कहते हैं ।

सर्व प्रमेहकी अपेक्षा करनेसे मधुमेह होयहै

सर्वएवप्रमेहास्तुकालेनाप्रतिकारिणः ।

मधुमेहत्वमायातितदाऽसाध्याभवन्तिहि ॥ २३ ॥

अर्थ—सब प्रमेह औषधके विना कालकरके मधुमेहको प्राप्त होते हैं तब वो असाध्य होजाते हैं ।

धातुक्षय और आवरण इन्सै कुपित भयी वायुको मधुमेहका संभव होय है
मधुमेहेमधुसमंजायतेसकिलद्विधा ।

ऋद्धेधातुक्षयाद्वायौदोषावृतपथेऽथवा ॥ २४ ॥

अर्थ—मधुमेहमें मूत्र मधु (सहत) के समान होय है सो दो प्रकारका है एक तो धातुक्षय होनेसे वायु कुपित होकर होय और दूसरा दोषोंके पवनका मार्ग आवृत (ढकने) कर्के होय है ।

आवर्णके लक्षण

आवृतोदोषलिंगानिसोऽनिमित्तप्रदर्शयन् ।

क्षीणःक्षणात्पुनःपूर्णोभजतेकृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥

अर्थ—आवृत वायुसे प्रगट मधुमेह जिस पित्तादिदोषकर्के आच्छादित होय उसके लक्षण अकस्मात् दीर्घ क्षणभरमें क्षीण होय क्षणमें पूर्ण होय वो कष्टसाध्य जानना ।

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त

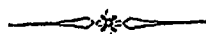
मधुरयञ्चमेहेषुप्रायोमध्विवमेहति ।

सर्वेऽपिमधुमेहारण्यामाधुर्याच्चतनोरतः ॥ २६ ॥

अर्थ—प्रमेहमें रोगी प्रायशः मधु (सहत) के समान मीठा मूत्र औ और सब शरीरको मीठा करदे इसीसे सर्व प्रमेहको मधुप्रमेहसंज्ञा दीनी है और अमृतसागरमें जो छः प्रमेह आज्ञेयके मतसे लिखी है वो प्रमाणरहित है और प्रसिद्धमेंभी प्रमेह बीस प्रकारके हैं इसीसे हमने छोड़दीने हैं ।

इति दत्तरामकृतमाध्वभावार्थबोविनीभाषांमाधुरीटीकायां प्रमेहनिदानं समाप्तम् ।

प्रमेहपिटिकानिदानम् ।



शराविकाकच्छपिकाजालनीविनताऽलजी । मसूरिकासर्प-
पिकापुत्रिणीसविदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चेतिपिटिकाःप्रमे-
होपेक्षयादश । संधिमर्मसुजायन्तेमांसलेपुचधामसु ॥ २ ॥

अर्थ—प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे शराविकादि दशपिटिका संधिमर्म और मांसल पिटिकानें होती हैं ।

सर्वके लक्षण

अंतोन्नताचतद्रूपानिन्नमध्याशराविका । सदाहाकूर्मसंस्था-
नाज्ञेयाकच्छपिकाबुधैः ॥ ३ ॥ जालनीतीव्रदाहातुमांसजा-
लसमावृता । अवगाढरुजोत्केदाष्टेष्वप्युदरेऽपिवा ॥ ४ ॥
महतीपिटिकानीलासाबुधैर्विनतास्मृता । रक्तासितास्फो-
टवतीदारुणात्वलजीभवेत् ॥ ५ ॥ मसूरदलसंस्थानाविज्ञे-
यातुमसूरिका । गौरसर्षपसंस्थानातत्प्रमाणाचसर्षपी ॥ ६ ॥
महत्यल्पचिताज्ञेयापिडिकाचापिपुत्रिणी । विदारीकंदवट्ट-
त्ताकठिनाचविदारिका ॥ ७ ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ताज्ञेयाविद्र-
धिकातुसा ।

अर्थ— १ शराविका—ये पिटिका ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होय जैसा मड़ीका शराव होय है ऐसी होय है ।

२ कच्छपिका—ये कछुवाके पीठके समान कुछ दाहयुक्त ऐसी होय है ।

३ जालनी—ये तीव्र दाहकके संयुत और मांसके जालसे व्याप्त होय है ।

४ विनता—ये फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होय है इसी पीडा बहुत होय, ठंडी-
होय तथा बड़ी और नीले रंगकी होय है ।

५ अलजी—लाल काली वारीक फोडान्कके व्याप्त भयंकर होय है ।

६ मसूरिका—मसूरकी दालके समान बड़ी होय है ।

७ सर्षपिका—सर्पद सरसोंके समान बड़ी होय है ।

८ पुत्रिणी—ये बीचमें एक बड़ी फुंसी होय उसके चारों ओर छोटी छोटी
फुंसी और होय उसको पुत्रिणी कहते हैं ।

९ विदारिका—ये विदारीकंदके समान गोल और करडी होय है ।

१० विद्रधिका—ये विद्रधिके लक्षणके युक्त होय है भोज और मृश्रुतके मतसे
नो पीडिका हैं और चरकके मतसे सातही हैं ।

ये पिटिका कैसे उत्पन्न होती हैं

येयन्मयाःस्मृतामेहास्तेषामेतास्तुतन्मयाः ॥ ८ ॥ विनाप्र-
मेहमप्येताजायन्तेदुष्टमेदसः । तावच्चैतानलक्ष्यन्तेयावद्वा-
स्तुपरिग्रहः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो प्रमेह जिस दोपकर्के उत्पन्न होयहै तिसकर्के तिसी दोपके उत्पन्न-कर्के पिटिका होयहै ए पिटिका प्रमेहके विना दुष्टमेदके होनेसे प्रगट होतीहै जब-तक इन्की गांठ नहीं बधे तबतक नहीं दीखे (येयन्मयाः स्मृतामेहाः) इस पदके ऊपर मधुकोशवालेने शास्त्रार्थ लिखा है ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखा ।

असाध्यपिटिकालक्षण

गुदेहृदिशिरस्यंसेष्टेष्टमर्मसुचोत्थिताः ।

सोपद्रवादुर्बलाग्नेःपिटिकाःपरिचर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—गुदामें हृदयमें शिरमें कंधामें पीठमें और मर्मस्थानमें उठी पिटिका और उपद्रव युक्त हो तथा दुर्बलाग्नि पुरुषकी पिटिका लाज्य है पिटिकाके उपद्रव चरकने कहे हैं सो या प्रकार (तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः । विसर्प-मर्मसंरोधाःपिटिकानामुपद्रवाः) इसका अर्थ सुगम है इसीसे नहीं लिखा * शंका * क्योंजी स्त्रीन्के प्रमेह क्यों नहीं होय * उत्तर * इसका कारण और ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है (रजःप्रसेकान्नारीणांमासिमासिविशुद्धयति । कृत्स्नंशरीरदोषाश्चनप्रमेहंत्यतःस्त्रियः ।

अर्थ—स्त्रीन्के महीनाके महीना रज बहाकरै है इसीसें सर्व देह और दोष शुद्ध होतेहैं इसीसे स्त्रीन्के प्रमेह नहीं होय और स्त्रीन्के प्रमेह होना कहीं नहीं देखा येवी एक बलवान् कारण है और सोमादिक रोग होते हैं कदाचित् कोई कहै कि और रोगका होना असंभव है तो ये केवल झगडेका स्थान है इसका किसीने यथार्थ निर्णय नहीं करा प्रमेहनिवृत्तिके लक्षण सुश्रुतमें कहे हैं यथा प्रमेहिणोयदा मूत्रमनाविलमपिच्छलम् । विशदंकटुतिक्तंचतदारोग्यप्रचक्षते ।

इति प्रमेह मधुमेह पिटिकानिदानम् ।

मेदोनिदानम् ।



कारण और सम्प्राप्ति

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोऽन्नरसःप्रा-
यःस्नेहान्मेदोविवर्द्धते ॥ १ ॥ मेदसावृत्तमार्गत्वात्पुष्प्यत्य-
न्येनधातवः । मेदस्तुचीयतेयस्मादशक्तःसर्वकर्मसु ॥ २ ॥

अर्थ—दंड कमरतके न करनेमें दिनमें सोनेसे और कफकारी पदार्थके भोजन

करनेसे ऐसी रीतिसँ वर्त्तनेवाले पुरुषका अन्नरस केवल मधुर कहिये आभरूप हो स्नेहकर्के-मेदको बढ़ावे मेदकर्के मार्ग बंद होनेसे अन्य धातु हाड मज्जा वीर्य आदि पुष्ट होंय नहीं और मेद बढे तब वह पुरुष सर्व कर्म करनेको अशक्त होय ।

मेदस्वी पुरुषके लक्षण

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तःक्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यै-
रल्पप्राणोल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तुसर्वभूतानामुदरेष्वस्थि-
पुस्थितम् । अतएवोदरेवृद्धिःप्रायोमेदस्विनोभवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ-क्षुद्र स्वासः रुक्षायासोद्भव इत्यादिक पिछाडी कहि आये सो तृषा मोह नि-
द्रा अकस्मात् श्वासका रोग अंगगलानि भूख पसीना और दुर्गन्धि इन लक्षणकर्के वह
पुरुष युक्त होय उसकी शक्ति घटजाय और मैथुन करनेमें उत्साह न होय मेद यह सब
प्राणीमात्रोंके उदर और हड्डीनमें रहै है इसीसँ मेदवाले पुरुषका पेट बढा करता है ।

मेदस्वीकी अवस्थाविशेष

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुःकोष्ठेविशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्नि-
माहारंशोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्सशीघ्रंजरयत्याहारंचा-
पिकांक्षति । विकारांश्चाश्रुतेघोरांन्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात्
॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौविशेषादग्निमारुतौ । एतौहिदहतः
स्थूलंवनंदावानलोयथा ॥ ७ ॥

अर्थ-मेदसँ मार्ग रुकजानेसँ कोठेमें पवनका संचार विशेष होय तब अग्निको
यह पवन बढ़ावै भोजन करै आहारको तुरन्त शोषण करे तब वह आहार शीघ्र
पचकर फेर जमनेकी इच्छाको प्रगट करै और भोजन करनेमें कालका व्यतिक्रम
होनेसँ भयंकर वातके रोग उत्पन्न होंय यह अग्नि और वायु बढा उपद्रव करेहैं जैसे
दावानल (अग्नि) वनको जरावै है उसी प्रकार ये दोनो उस स्थूल (मोठे) पु-
रुषको जराति है ।

असंत मेद बढ़नेका परिणाम

मेदस्यतीवसंवृद्धेसहसैवानिलादयः ।

विकारान्दारुणान्कृत्वानाशयंत्याशुजीवितम् ॥ ८ ॥

अर्थ-मेद असन्त बढ़नेसँ वायुआदि ए अकस्मात् भयंकर (प्रमेह पिटिका
ज्वर भगंदर विद्विध वातरोग इत्यादि) उत्पन्न करके शीघ्रही जीवकां नाश करै ।

स्थूललक्षण

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।

अयथोपचयोत्साहोनरोऽतिस्थूलउच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ—मेद और मांस ए अत्यन्त बढ़नेसे जिस पुरुषके कूले पेट और स्तन ए थल थल हलें और उसके शरीरकी स्थूलता बढी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह (हुशयारी) न रहै ऐसे मनुष्यको अति स्थूल कहते हैं ।

इति माधवभावार्थबोधिनीमाधुरीटीकायां मेदोनिदानम् ।

कार्श्यनिदानम् ।

प्रसंगवशसैं कार्श्य (क्षीण) रोगका निदान ग्रन्थान्तरसैं लिखते हैं
वातोरूक्षान्नपानानिलंघनंप्रमिताशनं । क्रियातियोगःशो-
कश्चवेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यंरोगोरतिर्नित्यंव्याया-
मोभोजनाल्पता । भीतिर्धनादिचिंताचकार्श्यकारणमीरितं
॥ २ ॥ क्रोधोतिमैथुनंचैवशुक्रव्याधिस्तथैवच । कार्श्यस्यहे-
तवःप्रोक्ताःसमस्तैरपितांत्रिकैः ॥ ३ ॥

अर्थ—कुपित वायू रूखा अन्न (चना कांगुनी सागखिआदि) रूक्षपान (औं-
टाया जलआदि) लंघन थोडा भोजन क्रियातियोग कहिये वमन विरेचनका बहुत
होना शोक वंधुवियोगादिक मूत्र मल आदि वेगोंका रोकना निद्राका रोकना
नियही रोगी रहना सर्वदा अरति होना व्यायाम (दंड कसरत और मार्गका च-
लना आदि श्रम) अति भय धन आदिकी चिन्ता क्रोध अति मैथुन शुक्रव्याधि
(प्रमेहरोगादिक) ए सर्व कार्श्य (क्षीण) होनेके कारण वैद्य कहते हैं ।

कुशमनुष्यके लक्षण

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः ।

अस्थिशोपोतिकृशतःस्थूलपर्वनरोमतः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस्के कूले पेट गरदन और धमनी कहिये नाडीनका जाल ए सब सूख
जाय तथा हडी सूख जाय और पर्व कहिये जोड़ मोटे होंय वह पुरुष कुश (लटा)
कहाना है ।

अतिकृशको वर्जनीय वस्तु
व्यायाममति सौहित्यं क्षुत्पिपासामहौषधं ।

नरुशः सहते तद्वदतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—व्यायाम (दंडकसरत) का करना अति सौहित्य (अच्छी बात) भूख
प्यास उत्कट औषध तथा शीतलता गरमी और मैथुन इन्को कृश मनुष्य नहीं स-
हिसके है इसीसे इनको साग दे ।

अतिकृशके जे रोग होते हैं उन्को कहते हैं—

मोहः कासः क्षयः श्वासगुल्मांशस्युदरणिच ।

भृशं रुजं प्रधावंति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य ज्वरादि रोगसँ कृश होय अथवा वातरूक्षान्नपानादिकसँ
कृश होय और वो कुपथ्य करे तौ इतने रोग होंय जो विदाही और अभिष्यंदी
वस्तु खाइ तौ ग्रीह (तापतिष्ठी) होय और खटाई खाय तौ खांसी होय और अति
मैथुन करै तौ खईका रोग होय और व्यायाम शीतल भोजनपानादिक करै तौ
श्वासरोग होय जो रूखा अन्नपान कडुवा खट्टा भक्षण और शीतल भारी चिकना
आदिका सेवन करे तौ गुल्म (गोला) होय और अर्श (ववासीर) कारक प-
दार्थ सेवनसँ ववासीर होय इसी प्रकार उदररोग संग्रहणी आदि रोग होते हैं अब
कहते हैं कि कोई कृशभी बलवान होय है इसमें क्या हेतु है ।

आधानसमये यस्य शुक्रभागोधिको भवेत् ।

मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स रुजोऽपि महाबलः ॥ ७ ॥

अर्थ—गर्भ रहनेके समय शुक्रका भाग अधिक होय और मेदका भाग थोड़ा
होय तौ मेद थोड़े होनेसँ तो कृश होय और शुक्राधिक्य होनेसँ बलवान होय ।

कस्यचित्स्थूलस्यापि तादृक्चर्ल न दृश्यते तत्र हेतुमाह

मेदसोऽंशोधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् ।

सस्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनोऽविलोक्ष्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—गर्भ रहते समय मेदका भाग अधिक होय और शुक्रका भाग थोड़ा होय
तो वह पुष्टभी है परंतु बलहीन होय है ।

दृष्टान्त

यथापि पीलिकास्वल्पा यथाचवरटीबलात् ।

स्वतश्चतुर्गुणंभारंनीत्वागच्छतिसन्मुखं ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसे पिपीलिका (चैंटी) आप अतिकृश है और खानेकी वस्तु दाल चावल आदि भारीवी है परंतु उनको खींचकर बिलमें लेजातीहै और वरटी (पी-ली मांखी) झींगर आदि आपसे चौछुने भारीवी है परन्तु खींचकर अपने स्थानमें लेजाती है इसी प्रकार बलवान् पुरुष जानना ।

असाध्यकार्यमाह

स्वभावात्कृशकायोयःस्वभावादल्पपावकः ।

स्वभावादबलोयश्चतस्यनास्तिचिकित्सितं ॥ १० ॥

अर्थ—जिसका स्वतः स्वभावसैं कृश शरीर है और जिसकी स्वभावसैं मंदाग्नि है और जो स्वभावसैं बलहीन है उसकी चिकित्सा नहीं है ।

इति कार्श्यरोगनिदानम् ।

उदररोगनिदानम् ।

अग्निका दुष्टहोनां यही उदररोगका विशेषकर्के कारण है

रोगाःसर्वेऽपिमन्देऽग्नौसुतराभ्युदराणिच ।

अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्तेमलसंचयात् ॥ १ ॥

अर्थ—अग्नि मन्द होनेसैं सब रोग होतेहैं और उदर तो विशेषकर्के होयहै कारण यह है कि अग्निमांथं यह त्रिदोषजनक है और अजीर्णसैं मलिन अन्नसैं (विरुद्ध अध्ययनादिक) और मल (दोष तथा पुरीषादिक) इनके संचयसैं उदररोग होयहै । इस जगे उदरशब्दकरके उदरस्थित रोग जानने सो ग्रंथान्तरमें लिखा है ।

उदरकी सम्प्राप्ति

रुध्वास्वेदांशुवाहीनिदोषाःस्रोतांसिसंचिताः ।

प्राणाय्यपानान्संदूष्यजनयंत्युदरंनृणाम् ॥ २ ॥

१ तेषामग्निबलेहीनेकृप्यतिपवनादयः ॥ इति ।

२ तात्स्थितद्वर्मानाम्याचतत्तन्मर्मापनयापिचनत्साहचर्याच्छब्दानांशुतिरेपाचतुर्भिधेति ।

३ अतिमंचिदोषाणां पापकर्मचक्रुर्वा । उदराण्युपजायन्तेमंदाग्नीनांविशेषतः । स्वेदवहानां मंदोमूलं लोमकूपथ ।

४ उदकवहानां स्रोतमां तालुमूलं श्लेग च ।

अर्थ-वातादिदोषं स्वेद (पसीना) बहनेवाली और जलको बहनेवाली नाडीन्के मार्गको रुद्ध (रोक) कर और वे दोष बढ़कर प्राणवायू अग्नि और अपानवायू इन्को अत्यन्त दुष्टकर मनुष्योंके उदररोग उत्पन्न करैहै ॥ उदररोगका पूर्वरूप ॥ सुश्रुतमें लिखाहै-तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षावलीविनाशो जठरे-तुराज्यः । जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौरुजः पादगतश्च शोथः ।

उदरके सामान्यरूप

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता । शोथः सदनमंगा-
नासंगो वातपुरीषयोः ॥ ३ ॥ दाहस्तन्द्राच सर्वेषु जठरेषु भ-
वन्ति हि ।

अर्थ-अफरा चलनेकी शक्तीका नाश दुर्बलता मंदाग्नि सूजन अंगग्लानि वायूका तथा मलका रुकना दाह तन्द्रा ए लक्षण सब उदरमें होतेहैं ।

उदररोगसंख्या

पृथग्दोषैः समस्तैश्च द्वीह बद्धक्षतोदकैः ॥ ४ ॥

संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् भृशु ।

अर्थ-पृथक् दोषोंसे (अर्थात् वात पित्त कफ) सन्निपातसे (सन्निपातोदर) द्वीहोदर १ बद्धोदर १ क्षतोदर १ और जलोदर १ सबमिलायकर ८ भये उन्के लक्षण पृथक् पृथक् कहतेहैं ।

तिनमें वातोदरके लक्षण

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपद्माभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥ कुक्षिपार्श्वो-
दरकटीपृष्ठरूपवर्धभेदनम् । शुष्ककासोऽगमदोऽधोगुरुताम-
लसंग्रहः ॥ ६ ॥ श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्बृद्धिः स-
वत् ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णाशिराततम् ॥ ७ ॥ आध्मा-
तद्वतिवच्छब्दमाहृतं प्रकरोति च । वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विच-
रेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥

अर्थ-वातोदरमें हाथ पैर नाभि और कूख इन्में सूजन होय संधीन्का दूटना तथा कूख पसवाड़े पेट कमर पीठ इन्में पीडा सूखी खांसी अंगोंका दूटना कमरसे नीचे भागमें भारीपना मलका संग्रह होना त्वचा नख नेत्रादिकका काला लाल होना पेट अकस्मात् (निमित्तके बिना) बड़ा होजाय छोटा होजाय मुई जुभाने-

कीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमें चारोंतरफ वारीक कालीशिरा (नाडीन्)सँ व्याप्त होय चुकटी मारनेसँ फूली पखालके समान शब्द होय इस उदरमें वायु चारोंतरफ डोलकर शूल करे तथा गूँजे ।

पित्तोदरके लक्षण

पित्तोदरेज्वरोमूर्च्छादाहस्तृट्कटुकास्यता । भ्रमोतिसारःपीतत्वंत्वगादाबुदरंहरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानद्वंसस्वेदंसोष्मदह्यते । धूमायतेमृदुस्पर्शक्षिप्रपाकंप्रदूयते ॥ १० ॥

अर्थ—पित्तके उदररोगमें ज्वर मूर्च्छा दाह प्यास मुखमें कड़ुआसा भ्रम अतिसार त्वगादिक (नख नेत्र) इन्में पीलापना पेट हरा होय पीली तामेके रंगकी नाडीन्सँ उदर व्याप्त हो पसीना आवै, गरमीसँ सब देहमें दाह होय आंतोंसँ धूआंसा निकलता दीसै हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय ।

कफोदरके लक्षण

श्लेष्मोदरेऽगसदनंस्वापःश्वयंथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशोऽरुचिःश्वासःकासःशुक्लत्वगादिता ॥ ११ ॥ उदरंस्तिमितंस्निग्धंशुक्लराजीततमहत् । चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शगुरुस्थिरम् १२

अर्थ—कफके उदररोगमें हाथ पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जिकड़जाय सूजन होय, अंग भारी होजाय, निद्रा आवै, वमन होयगी ऐसा मालूम होय, अरुचि होय, खांस, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सपेद हों, पेट निश्चल चिकना सपेद नाडीन्सँ व्याप्तहो, इसकी बृद्धी बहुत कालमें होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय, तथा भारी और स्थिर होय ।

सन्निपातोदरके लक्षण

स्त्रियोऽन्नपानंनखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः । यस्मैप्रयच्छंत्यरयोगरांश्चदुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥१३॥ तेनाशुरक्तंकुपिताश्चदोषाःकुर्युःसुघोरंजठरंत्रिलिंगं । तच्छीतवातेभृशदुर्दिनेवाविशोपतःकुप्यतिदह्यतेच ॥१४॥ सचातुरो मूर्च्छति हिप्रसक्तंपांडुःकृशःशुष्यतिसेवयाच । दूष्योदरंकीर्तितमेतदेव

अर्थ—छोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख केश (वार) मल मूत्र आर्चव (रजोदर्शका रुधिर) मिला अन्नपान देय, अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहरमिला मछली तिनका पचा आदि ओंटा हुआ ऐसा जल) और दूषीविष, (मन्दविष) इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर असन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करैहैं; वे शीतकालमें, अथवा शीतल पवन चले उस समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेषकरके कोपको प्राप्त हो, और दाह होय [इसका कारण ये है कि उस समय दूषीविषका कोप होयहै] वो रोगी निरन्तर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, देहका पीला वर्ण तथा कृश होय, और परिश्रम करनेसे शोष होय, तो इस्को दूष्योदर ऐसे कहतेहैं ।

ग्रीहोदरके लक्षण

ग्रीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥ विदाह्यभिष्यंदिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च । ग्रीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ ग्रीहोत्थमेतज्जठरंवदन्ति ॥ १६ ॥ तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र । मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः ॥ १७ ॥

अर्थ—अब ग्रीहोदरके लक्षण कहताहूं तूं सुन । विदाही (वंशकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदी (दध्यादि) अर्थात् स्रोत (छिद्रोक्नेवाली) ऐसे अन्न निरंतर सेवन करनेवाले पुरुषके असंत दुष्ट भए जे रुधिर और कफ बढ़कर ग्रीह (तापतिछी) को बढ़ावै इस उदरको ग्रीहोत्थ उदर कहतेहैं, ये वीर्यतरफ बढ़ताहै इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाताहै, देहमें मंदज्वर होय, मंदाग्नि होय, तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलतेहैं, बलक्षीण होय, अत्यंत पीला वर्ण होय ।

यकृदाल्युदरके लक्षण

सव्यान्यपार्श्वेयकृतिप्रदुष्टे ज्ञेयं यकृदाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥

१ यदुक्तम् जीर्णं विपन्नौषधिभिर्हितं वा दावाग्निना वाऽऽतपशोपितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति इति ।

२ एतदेव सन्निपातोदरं दूष्योदरं कीर्तितं न पुनरधिक इत्यर्थः । रक्तं दूष्यं दूषयित्वा मवीतीति दूष्योदरं किं वा परस्परं दूषयंतीति दोषा एव दूष्यास्तैः कृतमुदरं दूष्योदरम् ।

३ यकृदाल्युदरं दोषैर्भेदयतीति यकृदाल्युदरम् ।

अर्थ—दहने तरफ जो यकृत कहिये कलेजाहै वो दुष्ट कहिये रोगयुक्त होनेसें छीहोदरके समान उदर होय उसको यकृद्वाल्यादर कहतेहैं । दोषोंके यकृत्का भेद होय है इसीसें यकृद्वालि उदर कहतेहैं ।

इसमें दोषोंका संबंध कहतेहैं

उदावर्त्तरुजानाहैमोहत्तृदहनज्वरैः ।

गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्रमलान्क्रमात् ॥ १९ ॥

अर्थ—उदावर्त्त, शूल, अफरा इन्सें वायु, मोह, प्यास, ज्वर इन्से पित्त और भारीपना अरुचि कठिनता इन्सें कफ ऐसे क्रमपूर्वक दोषोंका संबंध जानना ।

बद्धगुदोदरके लक्षण

यस्यांत्रमन्त्रैरुपलेपिभिर्वाबालादमभिर्वापिहितं यथावत् । सं-
चीयते तस्य मलः स दोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥ २० ॥

निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति रुच्छादति चाल्पमल्पम् । ह-
न्नाभिमध्ये परितृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २१ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी आंत उपलेपे कहिये गाढे अन्नकर्के (शाकादिक) अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकड़ेकर्के बद्ध होजाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीके नलीमें होकर जैसे बुहारीसै झारा तृण धूर आदि क्रमसें बढे है, उसी प्रकार बढे, और वह मल बढे कष्टसें गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलें, जब मलका निकलना बंद होजाय तब मल दोषोंकर्के गुदासें ऊपर आवै इसीसें उदर बढे है, अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धी होय इसीसें इस उदरको बद्धगुदोदर कहतेहैं । अथवा गुदाके ऊपर आंतोंको बद्ध होनेसें बद्धगुद कहतेहैं यह (चरक) का मत है ।

क्षतोदरके लक्षण

श्लथंतथान्नोपहितं यदंत्रं भुक्तं भिनत्यागतमन्यथावा । तस्मा-
त्स्त्रुतोऽत्रात्सलिलप्रकाशः स्त्रावः स्त्रवेद्वै गुदतस्तुभूयः ॥ २२ ॥

नाभेरधश्चोदरमेति तृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् । ए-
तत्परिस्त्राव्युदरं प्रदिष्टं

अर्थ—कांटां धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चलाजाय अर्थात् पकाशयमें विलोम (टेढ़ा निरछा) चलाजाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं

काटे अथवा जंभाई अति अशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आंत फटजाय सो (चरकमें) लिखाभीहै उन फटे आंतोंसे गलित पानीके समान स्राव पुनः गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभिके नीचेका भाग बड़े, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पीड़ासे अत्यन्त व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रन्थांतरमें परिप्लावि उदर कहतेहैं और इसीको छिद्रोदर कहतेहैं यह गयदासका मत है ।

जलोदरकी उत्पत्तिसह लक्षण

दकोदरंकीर्तयतोनिबोध ॥ २३ ॥ यःस्नेहपीतोप्यनुवासितोवावांतोविरिक्तोऽप्यथवानिरूढः । पिबेज्जलंशीतलमाशु तस्यस्रोतांसिदूष्यन्तिहितद्वहानि ॥ २४ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापितेषुदकोदरंपूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धमहत्तपरिवृद्धनाभिसमातंतपूर्णमिवांबुनाच ॥ २५ ॥ यथाद्वृत्तिःक्षुभ्यतिकंपतेचशब्दाद्यतेचापिदकोदरंतत् ।

अर्थ—अब जलोदर कैसे होय है उसको कहते हैं जिसे स्नेह (घृततैलादि) पान करा होय, अथवा अनुवासनवस्तिकरी हो, वमन करा हो, अथवा दस्त करे हो, अथवा निरूह वस्तिकरी होय, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवै तब उसकी जल बहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होय है, वे उदक बहनेवाले स्रोत- (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चीकने) होनेसे पूर्ववत् (अर्थात् अब्रस उपस्नेह-न्याय कर्के अर्थात् इन्को बाहर लायकर उदरको उत्पन्न करे) जलोदर होय है उसमें चिकनापन दीखै, ऊंचा होय, नाभिके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पखालमें जल हले है उसी प्रकार हले-गुह गुह शब्द करे, कांपे, इन्को-जलोदर अर्थात् जलघर कहते हैं ।

साध्यासाध्यविचार ।

जन्मनैवोदरंसर्वप्रायःकृच्छ्रतमंविदुः ॥ २६ ॥

बलिनस्तदजातांबुयत्नसाध्यंनवोत्थितम् ।

अर्थ—सर्व प्रकारके उदर जन्मसेही प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं, बलवान् पुरुषके नवीन प्रगट भया हो और उसमें पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसा बड़े यत्नसे साध्य होय, पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसे उदरके लक्षण चरकमें कहे हैं ।

१ शर्करातृणलोष्टास्थिकंठकैरजसंयुतैः । मिथेतान्त्रं यदा मुक्तैर्बभवात्यशनेन वा इति ।

अशोथमरुणाभासंसंज्ञाब्दं नातिभारिकम् ॥ २७ ॥ सदागु-
डगुडायंतं शिराजालगवाक्षितम् । नाभिविष्टभ्यपायौ तु वेगं
कृत्वा प्रणयति ॥ २८ ॥ हृद्वंक्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशं सृजतो पानं नातिमन्दे च पावके ॥ २९ ॥ लोलस्याचि-
रमेवास्ये मूत्रेऽल्पे संहते विशि । अजातोदकमित्येतैर्युक्तं वि-
ज्ञाय लक्षणैः ॥ ३० ॥

जातोदकके लक्षणभी चरकमें, इस प्रकार कहे हैं सो लिखते हैं
यथा

पयः पूर्णाद्वतिरिव क्षोभेऽब्दकरं मृदु । अप्रव्यक्तशिरंशूनं नि-
तान्तमुदरं महत् ॥ ३१ ॥ आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृ-
त्स्रुतं । जातोदकस्य लिंगस्यान्मंदोऽग्निः पांडुतापि च ॥ ३२ ॥

इति

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वसर्वजातोदकं तथा ।

प्रायोभवत्यभावाय छिद्रांत्रचोदरं नृणाम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—बद्धगुदोदर १५ दिवसके पिछाडी असाध्य होय है, उसी प्रकार सव
प्रकारके उदक (पानी) उत्पन्न होनेसे नाशकारक होय है, और छिद्रांत्रोदर ए
प्रायः नाशक होय है । कदाचित् शल्य अथवा शस्त्रचिकित्सा जैसी होनी चाहिये
ऐसी होय तो उदक (पानी) प्रगट भया उदररोग छिद्रांत्र अथवा बद्धगुद
साध्य होय है, ये प्रायः इस पदसे सूचना करी ।

असाध्यलक्षण

शूनाक्षंकुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुचत्वम् ।

बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणंच वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होय, लिंग टेढ़ा होगया हो, पेटकी
लचा गीली तथा पतली हो गयी होय, बल, रुधिर, मांस और अग्नि ए जिस्के
क्षीण होगये हो, ऐसा रोगी त्याज्य है ।

दूसरे असाध्य लक्षण

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ।

विरिक्तंचाप्युदरिणंपूर्यमाणंविवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

इति उदरनिदान

अर्थ-पार्श्वभंग (पसरियामें पीड़ा) अन्नमें अरुचि, शोथ, अतिसार, इन्सै पीडित, और दस्त करानेसैं जिसका पेट फेर पानीसैं भरजाय; ऐसा उदर-रोगीको वैद्य त्याग देय.

इति श्रीदत्तरामकृतमाधुरीटीकायां उदररोगनिदानं समाप्तम् ।

शोथरोगनिदानम् ।

शोथकी संप्राप्ति

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टोदुष्टान्वहिःशिराः ।

नीत्वारुद्धगतिस्तैर्हिकुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ।

सोत्सेधसंहतंशोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ ३ ॥

अर्थ-कुपित भई वायु स्वकारणसैं दुष्ट भये रक्तपित्तकफको बाह्य शिरा (बाहरकी नाडीन्में प्राप्त हो) तब उन्की गति बंद करे इसीसैं वह पवन त्वचा और मांस इनके आश्रयसैं सूजन उत्पन्न करे, वह सूजन ऊंची और कठिन होय, इसको रक्तसहित त्रिदोषोंका संबंध है, अर्थात् सन्निपातात्मक ऐसे कहते हैं । त्वङ्मांससंश्रयम् इस पदसैं व्रणशोथ जो शोथका भेद है सो दिखाया, क्योंकि-व्रणका संभव आठ व्रणवस्तुन्में होनेसैं सो कहाभी है (त्वङ्मांस- शिरास्नायु अस्थिसन्धि कोष्ठे मर्माणि इति अष्टौ व्रणवस्तूनि भवन्ति) इति ॥

सर्वहेतुविशेषैस्तुरूपभेदान्नवात्मकम् ।

दोषैःपृथग्द्वयैःसर्वैरभिधाताद्विषादपि ॥ २ ॥

अर्थ-वो सूजन कारणभेदसैं कार्यभेद होकर ९ नौ प्रकारकी होय है । यथा-अलग अलग दोषोंसैं ३ द्वंद्वज ३ सन्निपातज १ अभिधातज १ और विषसैं १ ऐसे सब मिलकर नौ प्रकारका शोथरोग भया ।

निदान

शुद्धामयाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । द-

ध्याममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिपेवणं च ॥ ३ ॥ अ-

शौस्यचेष्टावपुषोह्यशुद्धिर्मर्माभिघातोविपमाप्रसूतिः । मि-
थ्योपचारःप्रतिकर्मणांचनिजस्यहेतुःश्वयथोःप्रदिष्टः ॥ ४ ॥

अर्थ—वमनआदि ज्वरादिक अभोजन (विगुणभोजन इन्हीं जो कृश और व-
लहीन मनुष्योंके क्षारादिकका सेवन सृजनका कारण होयहै तहां नोन, खटाई,
तीखी, उष्ण, भारी वस्तुमें दही, अपक, मट्टी, निपिद्धसाग, विरुद्ध (क्षीरम-
त्स्यादिक) संयोगजविपसै दूषित भया अन्नके सेवन करनेसे, वचासीर, दंडक-
सरतके न करनेसैं, शोधनके योग्य दोषोंके न शोधनेसैं हृदयादि मर्मोंके दोष ज-
न्मउपघातसैं, कच्चा गर्भपात होना विपमप्रसूति, वमनादि पंचकर्मोंका मिथ्या-
योग ये सर्व दोषज सृजनका कारण कहेहैं ।

पूर्वरूप

तत्पूर्वरूपंक्षवधुःशिरायामोऽग्नौरवम् ॥ ५ ॥

अर्थ—संताप, नसोंकी तननेके समान पीडा, देह भारी ए लक्षण सृजन होने-
वाले पुरुषके होतेहैं ।

सामान्यलक्षण

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वंसोत्सेधमूष्मांचशिरातनुत्वम् ।

सलोमहर्षश्चविवर्णताचसामान्यलिंगंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

अर्थ—अंग भारी हो, चित्तमें स्वस्थता न होना, ऊंजी सृजन, और दाह, नम प-
तली होजाय, रोमांच, और देहका रंग बदल जाय, ये सृजनके सामान्य लक्षण हैं ।

वातजशोथके लक्षण

चलस्तनुत्वक्पुरुषोऽरुणोऽसितःससुप्तिहर्षार्तिथुतोऽनिमित्ततः ।

प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितोदिवावलीस्याञ्छ्वयथुःसमीरणात् ७

अर्थ—वादीसे सृजन चंचल, त्वचा पतली होजाय, कठोर हो, लाल, काली
तथा त्वचा शून्य पड़जाय, भिन्न भिन्न वेदना हो, अथवा रोमांच और पीडा हो,
कदाचित् निमित्तके बिना शांति होजाय उस सृजनके दावनेसैं तत्क्षण ऊपरको
उठ आवैं, दिनमें जोर बहुत करे ।

पित्तजशोथके लक्षण

मृदुःसगंधोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।

यउष्यतेस्पर्शरुगक्षिरागकृतसपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गन्धयुक्त, काली, पीली, और लाल होय, उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ए लक्षण होय दाह होय हाथ लगानेसेँ दूखै, इसीसेँ नेत्र लाल हो, उसमें अत्यन्त दाह तथा पाक होय।

कफजशोथके लक्षण

गुरुःस्थिरःपांडुररोचकान्वितःप्रसेकनिद्रावमिवन्हिमांघकृत् ।

सकृच्छूलजन्मप्रशमोनिपीडितोन्नचोन्नमेद्रात्रिबलीकफात्मकः९

अर्थ—कफकी सूजन भारी, स्थिर, पीली होय है इसके योगसेँ अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मन्दाग्नि ए लक्षण होय तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुतकालमें होय, इसको दवानेसेँ ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता हो।

द्वंद्वज और संनिपातज शोथके लक्षण

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्रुयथुःस्याद्विदोषजः ।

सर्वाकृतिःसन्निपाताच्छोथोव्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

अर्थ—दो दोषोंके लक्षण और कारण एकत्र मिलनेसेँ द्वंद्वजशोथ जाननी और सन्निपातसेँ सूजन होय उसमें वातादिक तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

अभिघातजशोथके लक्षण

अभिघातेनशस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः। हिमानिलोदध्यनि-

लैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥ रसःशूकैश्चसंस्पर्शाच्छ्रुयथुः

स्याद्विसर्पवान् । भृशोष्मालोहिताभासःप्रायशःपित्तलक्षणः१२

अर्थ—काष्ठादिककी चोट लगनेसेँ, शस्त्रादिकसेँ छेदन होनेसेँ, पत्थर आदिसेँ फूटनेसेँ, अथवा घावके होनेसेँ आदिशब्दसेँ लकड़ीआदि प्रहारसेँ शीतल पवन लगनेसेँ, समुद्रकी पवन लगनेसेँ, भिलायेके तेल लगजानेसेँ, और केचकी फलीके स्पर्श होनेसेँ, जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय, उसमें अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेषकर्के इस्सेँ पित्तके लक्षण होते हैं।

विषजशोथके लक्षण

विषजःसविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादंतनखाघाता-

दविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वख-

संकरात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्वरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥

मृदुश्चलोवलंबीचशीघ्रोदाहरुजाकरः ।

अर्थ—विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसें, अथवा मृतनेसें अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादिक) प्राणीनके डाढ़ दांत नख लगनेसें, अथवा सविष प्राणीनका विषा मूत्र शुक्र इनसें भरा, अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगनेसें, अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसें, अथवा संयोगजविषका अंगमें लगनेसें, जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलातीहै वो सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होयहै ।

जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करें उनको कहते हैं

दोषाःश्वयथुमूर्ध्वहिकुर्वंत्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥ पकाश-

यस्थामध्येतुवर्चःस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताःकु-

र्युःसर्वरसंतथा ॥ १६ ॥

अर्थ—आमाशय स्थितदोष ऊपर (उरःस्थानादिकोंमें) सूजनको करे, पकाश-यमें स्थितदोष मध्य (कहिये उर और पकाशय) इन दोनोंके बीचमें सूजन करे, मलस्थानगतदोष नीचेके स्थान (पैरआदि)में सूजन करै, और सर्व देहमें दोष स्थित होनेसें सब देहमें सूजनको करते हैं ।

सूजनके कृच्छ्रादिभेद

योमध्यदेशेऽश्वयथुःसकष्टःसर्वगश्चयः ।

अर्धोऽग्नेऽरिष्टभूतःस्याद्यश्रोर्ध्वपरिसर्पति ॥ १७ ॥

अर्थ—जो सूजन मध्यदेशमें तथा सब देहमें होय सो कष्टसाध्य है, और सूजन नीचेके अंगमें प्रगट हो ऊपरको चढ़े वो असाध्य है ।

असाध्य लक्षण

श्वासःपिपासाल्छर्दिश्चदौर्बल्यंज्वरएवच ।

यस्यचान्नेरुचिर्नास्तिशोथिनंपरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर, ए लक्षण होंय; और जिसकी अन्नमें अरुचि होय, ऐसे सूजनवाले रोगीको वैद्य साग दे ।

अनन्योपद्रवकृतःशोथःपादसमुत्थितः । पुरुपंहन्तिनारीन्तुमु-

खजोगुह्यजोद्वयम् ॥ १९ ॥ नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसा-
ध्यः पुरेरितः ।

इति शोथनिदानम्

अर्थ—अन्यरोगोंके उपद्रवसँ प्रगट न भयी हो ऐसी सूजन पहिले पैरोंमें उत्पन्न हो फिर मुखआदि ऊपरके स्थानोंमें प्राप्त होय, [उसको उलटी सूजन कहते हैं] वह पुरुषका नाश करे, और जो प्रथम मुखपर होयकर पीछे पैरोंपै उतरे वो सूजन स्त्रीको घातक है, और जो प्रथम गुदामें उत्पन्न होकर सब देहमें व्याप्त हो वो स्त्रीपुरुष दोनोंकी नाशक हैं ।

नवीन और उपद्रवरहित जो सूजन होय वह साध्य है और “ अधोंगेरि-
ष्ट संभूत ” इत्यादि श्लोकमें कही हुई सूजन असाध्य है ।

शोथके उपद्रव

छर्दिस्तृष्णारुचिः श्वासोज्वरोऽतीसारएवच ।

सप्तक्रोयंसदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥ २० ॥

अर्थ—छर्दि, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ए सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरकमें लिखा है ।

इति माधुरीटीकाया शोथरोगनिदानम् ।

अंडवृद्धिनिदान ।

सम्प्राप्ति

कुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् । मुष्कोवक्षणतः प्रा-
प्यफलकेशाभिवाहिनीः । प्रपीड्यधमनी र्द्विंदिकरोतिफल-
कोशयोः ॥ १ ॥

अर्थ—कुपित भई अयोगमनशील (नीचे विचरनेवाली) तथा सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाली वायू क्लृप्तमें संचार करती हुई अंडकोश और वक्षण (अंडकोश और जंघाकी संधि) सँ अंडमें आयकर अंडकी वृद्धि और कोश इन्के बढ़नेवाली धमनी (नाडी) को दुष्टकर अंडकी (दोनों अंडकी अथवा एक औरके अंडकी) वृद्धि करै है ।

विषे प्राप्त होय, तथा जिस्में वातके लक्षण कहे वो सब मिलते होंय, वो अंडवृद्धि असाध्य है वर्ध्म अर्थात् वदरोगका निदान ग्रन्थान्तरमें लिखा है यथा ।

वर्ध्मरोगनिदान

अत्यभिष्यंदिगुर्वांमसेवनान्निचयंगतः ॥ ११ ॥ करोतिग्र-
न्थिवच्छोफंदोषोवक्षणसन्धिषु । ज्वरशूलांगदाहांत्यंतवर्ध्म-
मितिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥ यस्यपूर्वफिरंगाख्योरोगोभूत्वाप्र-
शाम्यति । तस्यजंतोर्वर्ध्मरोगमित्युक्तःसुश्रुतादिभिः ॥ १३ ॥
तथोष्णवातजुष्टस्यमेदूव्रणयुतस्यच । तस्यपुंसोवर्ध्मरोगंप्र-
वदन्तिभिषग्वराः ॥ १४ ॥

अर्थ—अभिष्यंदिवस्तुके खानेसैं, भारी अन्नके खानेसैं, कच्चे अन्नके खानेसैं, वृद्धिको प्राप्त भए दोष अथवा अत्यभिष्यंदिगुर्वांम इस जगे अत्यभिष्यंदि-
गुर्वन्नशुष्कपूज्यामिषाशनात् ऐसावी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अ-
न्नके खानेसैं, तथा सूखा और पूज्य कहिये गौ आदिके मांस खानेसैं, दोष
(वात पित्त कफ) कुपित होकर वक्षणकी सन्धिमें अर्थात् वस्तिस्थानके समीप
जिन्को नरे कहतेहैं उनमें सूजनको प्रगट करै, उस सूजनके होनेसैं ज्वर होय,
तथा सूजनमें पीडा होय, अंगोंमें अत्यंत दाह होय, जिस मनुष्यके पहिले फिरंग
(शुजाक)का रोग होकर शांति होगया होय, उसके यह वदका रोग होय है,
अथवा गरमीवाले पुरुषके लिंगमें व्रण (घाव) होय उसके यह वदरोग होय है ।

इति अंडवृद्धिनिदानं समाप्तम् ।

गलगंडनिदान ।

निबद्धःश्वयथुर्यस्यमुष्कवल्लंवतेगले ।

महान्वायदिवाह्रस्त्रोगलगंडंतमादिशेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जिस्के गलेमें अनुबंधयुक्त बड़ी अथवा छोटी अंडकोशके समान सूजन
होकर लटके उसको गलगंड कहते हैं ।

गलगंडकी संप्राप्ति

वातःकफश्चापिगलेप्रदुष्टौमन्यांसमाश्रित्यतथैवभेदः ।

कुर्वन्तिगंडंक्रमशस्त्रिलिंगैःसमन्वितंतंगलगंडमाहुः ॥ २ ॥

अर्थ—गलेमें दुग्धभये वात कफ और उसी प्रकार मेद गलेकी दोनों मन्यानाडीका आश्रय लेकर क्रमसँ आपआपने लक्षणसंयुक्त गंड (गोला) उत्पन्न करे है उसको गलगंडरोग कहते हैं । ये रोग वात कफ और मेद इन कारणोंसँ तीन प्रकारका है ये रोग अपनेही स्वभावसँ पैत्तिक नहीं होय है, जैसेँ चातुर्थिकज्वर अपने प्रभावसँ जंघामें कफका और मस्तकमें वातका प्रथम आताहै इसमेंभी पित्तका नहींहोय है, उसी प्रकार इस रोगमेंभी जानौ ।

वातिकगलगंडके लक्षण

तोदान्वितःकृष्णशिरावनद्धःशोषोऽरुणोवापवनात्मकस्तु ।

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाकोयदृच्छयापाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥

वैरस्यमास्यस्यचतस्यजन्तोर्भवेत्तथातालुगलप्रशोषः ।

अर्थ—वातकी गलगंड, कालीनसोंसँ व्याप्त होय, और उसमें मुईके चुभानेकीसी पीडा होय, उसका रंग काला और लाल होय, तथा कठोर होय, बहुतकालमें बढे, तथा पकै नहीं, और जो पके तो कदाचित् यदृच्छापूर्वक पके, उसरोगीके मुखमें विरसता होय, तथा तालु व गलेमें शोष होय ।

कफजगलगंडके लक्षण

स्थिरःसवर्णोऽगुरुयुक्तःश्लेष्मिणोमहांश्रापिकफात्मकस्तु ॥ ४ ॥

चिराभिवृद्धिंभजतेचिराद्वाप्रपच्यतेमन्दरुजःकदाचित् । मा-

धुर्यमास्यस्यचतस्यजन्तोर्भवेत्तथातालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

अर्थ—कफकी गलगंड स्थिर, त्वचाके रंगके समान वर्ण होय, भारी हो, खुजलि बहुत चले, शीतल और बढी होय है, वह बहुतदिनमें बढे, और बहुत कालमें पकै, पीडा थोडी होय, मुखमें मिठास होय, तथा गलेमें और तालुगलमें कफ लिह-सासा होय ।

मेदजगलगंडके लक्षण

स्निग्धोऽगुरुःपांडुरनिष्ठगंधोमेदोभवःस्वल्परुजोऽतिकंडूः । प्रलं-

बतेऽलाबुवदल्पमूलोदेहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्नि-

ग्धास्यतातस्यभवेच्चजंतोर्गलेऽनुशब्दंकुरुतेचनित्यम् ।

अर्थ—मेदसँ प्रगट गलगंड चिकना होय, भारी, पीलावर्ण, दुर्गन्धयुक्त मंद

पीडा करनेवाला, और अखन्त खुजली चले, वो तुंवीफलके समान लंबा होय, उसकी जड़ छोटी होय, और देहानुरूप क्षय और वृद्धि इन्सै युक्त होय, अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, देहके बढ़नेसँ बढ़जाय, उसका मुख तेल लगा होय ऐसा चिकना होय और बोलतेसमय गलेसँ दोशब्द निकलें ।

असाध्यलक्षण

कृच्छ्राच्छुसन्तंमृदुसर्वगात्रंसंवत्सरातीतमरोचकार्तं ॥ ७ ॥

क्षीणंचवैद्योगलगंडजुष्टंभिन्नस्वरंचापिविवर्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—बड़े कष्टसँ श्वास लेनेवाला, नरम शरीरवाला, जिस्के गलगंड होकर वर्षदिन व्यतीत होगया हो, अरुचिसँ पीडित क्षीण होगया होय, और स्वरभेद-युक्त ऐसा गलगंडपीडित मनुष्यको वैद्य खाग दे ।

इति गलगंडनिदानम् ।

गंडमालानिदान ।

कर्कंधुकोलामलकप्रमाणैःकक्षांसमन्यागलवंक्षणेष्ु ।

मेदःकफाभ्यांचिरमंदपाकैःस्याद्गंडमालाबहुभिस्तुगंडैः ॥ १ ॥

अर्थ—मेद और कफ इन्सँ प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें, और वंक्षण (जानुमेदूतंधि) इन ठिकाने छोटे घेरके बराबर, बड़ेघेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेकप्रकारकी गंड होती है वे बहुत दिनमें होले हौ लेपके उन्को गंडमाला कहते हैं ।

अपचीके लक्षण

तेग्रंथयःकेचिदवाप्तपाकाःस्त्रवन्तिनश्यंतिभवन्तिचान्ये ।

कालानुबंधंचिरमादधातिसैवापचीतिप्रवदंतिकेचित् ॥ २ ॥

अर्थ—अब गंडमालाका भेद अपचीहै उसको कहतेहैं पूर्वोक्त गंडमालाकी गांठ पके नहीं अथवा पाक होनेसँ स्रवे कोई नष्ट होजाय दूसरी नवीन उठे ऐसी पीडा बहुत दिन रहै उसकी कोई अपची ऐसँ कहते हैं ।

असाध्य और साध्य लक्षण

साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वर-

च्छर्दियुतानसाध्या ॥ इत्यपचीनिदानम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अपची रोग साध्य हैं । और उसमें पीनस होय, पसवाडोंमें शूल, खांसी, ज्वर, वमन, ए होय तो वो अपची असाध्य है ।

इति अपचीनिदानम् ।

ग्रंथिनिदानम् ।

वातादयोमांसमसृक्प्रदुष्टाःसंदूष्यमेदश्चतथाशिराश्च ।

वृत्तोन्नतंविग्रथितंतुशोथंकुर्वत्यतोग्रंथिरितिप्रदिष्टः ॥ १ ॥

अर्थ—अत्यन्त दुष्ट भए वातादि दोष, मांस, रुधिर, और मेद, उसी प्रकार शिरा (नस) इन्को दुष्ट कर (इस जगे दुष्टिका अर्थ वृद्धि करना चाहिये क्षयरूप न करना चाहिये कारण इस्का यह है कि क्षीण विकारोंकी सामर्थ्य रोग करनेकी नहीं होती है) गोल, उंची, गांठके समान, अथवा कठिन सूजनको उत्पन्न करे उसको ग्रंथि (गांठ) ऐसे कहते हैं ।

वातजग्रंथिके लक्षणम्

आयम्यतेवृश्चतितुद्यतेचप्रत्यस्यतेमथ्यतिभिद्यतेच ।

कृष्णोगुरुर्बस्तिरिवाततश्चभिन्नःस्त्रवेच्चानिलजोऽस्त्रमच्छम् ॥ २ ॥

अर्थ—वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, मुई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण हो, नरम हो, बस्तिके चोडी होय, और उसके समान चोडी होय, और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले ।

पित्तकी ग्रंथिके लक्षणम्

दंदह्यतेधूम्यतिचूष्यतेचपापच्यतेप्रज्वलतीवचापि ।

रक्तःसपीतोऽप्यथवापिपित्ताद्भिन्नःस्त्रवेदुष्टमतीवचास्त्रम् ॥ ३ ॥

अर्थ—पित्तकी गांठ आगसै भरेके समान अत्यन्त दाहकरे, आंतोंसे धूँआ निकलतासां मालूम हो, चुष्यते कहिये मानों सिंगील गायके कोई चूसे है, खार लगा-नेके सदृश पका मालूम होय, अग्निके समान जलीसी मालूम होय, अस गांठका रंग लाल, अथवा किंचित् पीला होय । और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले ।

कफकी ग्रंथिके लक्षण

शीतोविवर्णोऽल्परुजोतिकंदूःपाषाणवत्सन्नहनोपपन्नः ।

चिराभिवृद्धिश्चकफप्रकोपाद्भिन्नःस्त्रवेच्छुक्कघनंचपूयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण, (कोई किंचित् विवर्ण हो ऐसे कहते हैं) थोड़ी पीड़ा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन बड़ी होय, और चिरकालमें बढ़नेवाली होय फूटनेसे उसमेंसे सपेद गाढ़ी राध निकले ।

मेदजग्रंथिके लक्षण

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिःस्निग्धोमहान्कंदुयुतोऽरुजश्च ।

मेदःकृतोगच्छतिचात्रभिन्नेपिण्यांकसर्पिःप्रतिमंतुमेदः ॥ ५ ॥

अर्थ—मेदकी ग्रंथि शरीरके बढ़नेसे-बढ़े, और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण हो-जाय, चिकनी, बड़ी, खुजलीयुक्त, पीड़ारहित होय है । और जब वो फूटजाय तब उसमेंसे तिलकलकके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले ।

शिराजग्रंथिके लक्षण

व्यायामजातैरबलस्यतैस्तैराक्षिप्यवायुस्तुशिराप्रतानम् ।

संकुच्यसंपीड्यविशोष्यचापिग्रंथिकरोत्युन्नतमाशुवृत्तम् ॥ ६ ॥

अर्थ—निर्वल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुसाय कर ऊंची गांठको शीघ्र प्रगट करे है ।

साध्यासाध्य लक्षण

ग्रंथिःशिराजःसचक्छसाध्योभवेद्यदिस्यात्सरुजश्चलश्च ।

अरुक्सएवाप्यचलोमहांश्चमर्मात्थितश्चापिविवर्जनीयः ॥ ७ ॥

इति ग्रंथिनिदानम्

अर्थ—वह शिरा (कहिये नसकी) गांठ कृच्छ्रसाध्य है, यदि वो पीड़ायुक्त, तथा चंचल होय तो वह गांठ साध्य है । और पीड़ारहित तथा निश्चल बड़ी और मर्म-स्थानमें प्रगट भई होय तो वह असाध्य है, उसको वैद्य त्याग दे ।

इति ग्रंथिनिदान समाप्तम् ।

अर्बुदनिदानम् ।

संप्राप्ति

गात्रप्रदेशैकचिदेवदोषाःसंमूर्च्छितामांसमसृक्प्रदूष्य । वृत्तं स्थिरमंदरुजंमहान्तमनल्पमूलंचिरवृद्धिपाकम् ॥ १ ॥ कुर्वेतिमांसोच्छ्रयमत्यगाधंतदर्बुदंशास्त्रविदोवदन्ति ।

अर्थ—शरीरके किसीभागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्टकर गोल, स्थिर, मंद पीढायुक्त, यह ग्रंथिरोगसे बढी होय है, बढी जिस्की जड होय, बहु कालमें बढनेवाली, तथा पकनेवाली, ऐसी मांसकी गांठ उठे उसको वैद्य अर्बुद ऐसे कहते हैं ।

वातेनपित्तेनकफेनचापिरक्तेनमांसेनचमेदसाच ॥ २ ॥

तज्जायतेतस्यचलक्षणानिग्रंथेःसमानानिसदाभवन्ति ।

अर्थ—वह अर्बुदरोग वादीसैं, कफसैं, पित्तसैं, रुधिरसैं, मांससैं, और मेदसैं, ऐसे छःप्रकारका है । उसके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके सदृश होते हैं ।

रक्तार्बुदके लक्षण

दोषःप्रदुष्टोरुधिरंशिरासुसंकुच्यसंपीड्यंततोऽस्यपाकम् ॥३॥

सास्त्रावमुन्नह्यतिमांसपिंडंमांसांकुरैराचितमाशुवृद्धम् । क-

रोत्यजस्त्रंरुधिरप्रवृद्धिमसाध्यतेतद्गुधिरात्मकन्तु ॥ ४ ॥ र-

क्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेत्सोर्बुदपीडितस्तु ।

अर्थ—दुष्टभए दोष, नसोंमें रहे जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलाको प्रगट करे, वो यत्किंचित् पकनेवाला, तथा कुछ स्राव युक्त हो, और मांसांकुरसैं व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होय है, उसमेंसैं रुधिर बहाकरै यह रक्तार्बुद असाध्य है वो रक्तार्बुद पीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकें पीडित होनेसैं उसका वर्ण पीला होजाय, ए रक्तार्बुदके लक्षण हैं ।

मांसजार्बुदकी संप्राप्ति

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितैर्गेमांसंप्रदुष्टंजनयेद्विशोथं ॥ ५ ॥ अ-

वेदनंस्निग्धमनन्यवर्णमपाकमद्रमोपसमप्रचाल्यम् । प्रदुष्ट-

मांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ ६ ॥ मांसा-
र्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं ।

अर्थ—स्युकाआदिके लगनेसें अंगम पीड़ा होय, उस पीड़ासें दुष्ट भया मांस सो
सूजन उत्पन्न करे, उस सूजनमें पीड़ा नहीं होय, और वो चिकनी, देहके वर्ण
होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन हले नहीं, ऐसी होय है । जिस मनुष्यका
मांस विगडजाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे उसके यह अर्बुदरोग होय
है यह मांसार्बुद असाध्य कहा है कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते है ।

साध्यमें असाध्य प्रकार

साध्येष्वपीमानितुवर्जयेच्च । संप्रसृतं तर्मणियञ्च जा-
तं स्रोतः सुवायञ्च भवेदचाल्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ—साध्यमें भी यह आगेका अर्बुदरोग वर्जित है, स्नाव (क्षरे) और गर्म-
स्थानमें प्रगट भया हो, अथवा नासाआदि स्रोत (मार्ग) में प्रगट भई हो, और
जो स्थिर होय, वो असाध्य है ।

अध्यर्बुदके लक्षण

यज्जायतेऽन्यत्सलुपूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ।

अर्थ—पहिले जिस ठिकानेपर अर्बुद भया होय, उसी ठिकानेपर दूसरा अर्बुद
प्रगट होय, उसको अध्यर्बुद कहते हैं ।

द्विर्बुदके लक्षण

यद्वद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ—एक कालमें दो अर्बुद, अथवा एकके पिछाडी दूसरा अर्बुद क्रमसें प्रगट
होय, उसको द्विर्बुद कहते हैं ये असाध्य है ।

अर्बुद न पकनेका कारण

नपाकमायांतिकफाधिकाद्वाभेदोवहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।

दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेपांसर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

इति गलगंड गंडमाला अपची ग्रन्थि अर्बुद निदानम्

अर्थ—कफ अधिक होनेसें, अथवा विशेषकरके मेद अधिक होनेसें, तथा दो-
षोंके स्थिर होनेसें, अथवा दोषोंके ग्रंथिरूप होनेसें, सर्व प्रकारकी अर्बुद स्वभा-
वसेंही पके नहीं है ।

इति गलगंड गंडमाला अपची ग्रंथि अर्बुद निदानं समाप्तम् ।

श्लीपदनिदानम् ।



संग्राहि-

यःसज्वरोवंक्षणजोभृशार्तिःशोथोनृणांपादगतःक्रमेण ।

तत्श्लीपदस्यात्कर्कणनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपिकेचिदाहुः ॥ १ ॥

अर्थ—जो सूजन प्रथम वंक्षण (रागों) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरों में आवे, और उसके साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक, इन्मेंभी होती है ऐसों कोई कहते हैं ।

वातज श्लीपद

वातजंकृष्णरूक्षंचस्फुटितंतीव्रवेदनम् ।

अनिमित्तरुजंतस्यबहुशोर्ज्वरएवच ॥ २ ॥

अर्थ—वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी, और जिसमें तीव्र पीडा होय, विनाकारणके दूखे, और उसमें ज्वर बहुत होय ।

पित्तज श्लीपद

पित्तजंपीतसंकाशंदाहज्वरयुतंमृदु ।

अर्थ—पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय ।

श्लैष्मिक श्लीपद

श्लैष्मिकंस्निग्धवर्णंचश्वेतंपांडुगुरुस्थिरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सपेद, पीला, भारी, और कठिन होय है ।

असाध्यलक्षण

वल्मीकमिवसंजातंकंटकैरुपचीयते ।

अब्दात्मकमहत्तच्चवर्जनीयंविशेषतः ॥ ४ ॥

अर्थ—सर्पकी बांधीके समान बढीभई और जिसके ऊपर कांटे होंय, ऐसी एक वर्षकी होगईहो, और बढी होय, उसको वैद्य त्याग दे ।

श्लीपदमें कफको प्राधान्य अव्यभिचारकर्क है उसको कहते हैं ।

त्रीण्यप्येतानिजानीयाच्छ्लीपदानिकफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वंचमहत्त्वंचयस्मान्नास्तिविनाकफात् ॥ ५ ॥

अर्थ—ए जो पूर्वोक्त तीनों श्लीपदोंमें कफकी आधिक्यता है, कारण इस्का यह है कि, भारी और महत्त्व ए दोनों कफके विना नहीं होते ।

श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होय है उसको कहते हैं ।

पुराणोदकभूयिष्ठाःसर्वर्तुषुचशीतलाः ।

येदेशास्तेषुजायन्तेश्लीपदानिविशेषतः ॥ ६ ॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें पानी अधिक वर्षे परंतु पृथ्वीके नीचे होनेसैं सूखे नहीं इसीसैं पुराने पानीका संचय (इकट्ठा) होय, और-सर्व ऋतुमें सरदी रहा करै ऐसे जे अनूप (पूरव) आदि श्रेष्ठ उन्में यह श्लीपदरोग विशेषकरके होय है । जांगल देशोंमें अधिका अधिक अंश होय है यासैं उनदेशोंमें जलको पुराणत्व नहीं होय है, और अनूप देशमें गरमी मंद पडनेसैं उष्ण ऋतुमेंभी शीतलता होय है, हाथ कान आदिमें श्लीपद रोगकी शंका होनेसैं दोषोंके कोपद्वारा ज्वरकरके श्लीपदको जान ले ।

असाध्य लक्षण

यच्छ्लेष्मणाहारविहारजातंपुंसःप्रकृत्याचकफात्मकस्य ।

सास्त्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गसंकटुरंश्लेष्मयुतंविवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

इतिश्लीपदनिदानम्

अर्थ—जो श्लीपदकफकारक आहार विहारसैं प्रगटभया, तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसैं प्रगटभया होय, तथा स्त्रावयुक्त तथा जिस दोषसैं प्रगटभया होय, उस दोषके लक्षण उसमें बढगएहोय, और जिसमें खुजली बहुत होय, और कफ-युक्त होय, सो श्लीपदरोगी वैद्यकरके त्याज्य है ।

इति श्लीपदनिदानं समाप्तम् ।

विद्रधिनिदानम् ।



त्वग्रक्तमांसमेदांसिप्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः । दोषाःशोथंशनै-
र्घोरंजनयंत्युच्छ्रिताभृशम् ॥ १ ॥ महाशूलंरूजावंतंवृत्तंवा-
प्यथवायतम् । सविद्रधिरितिख्यातोविज्ञेयःपद्धिधश्चसः॥२॥

पृथग्दोषैः समस्तैश्चक्षतेनाप्यसृजातया । षण्णामपिहितेषां
तुलक्षणंसंप्रचक्षते ॥ ३ ॥

अर्थ—अत्यंतबड़े तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रय करके रहनेवाले वातादि दोष तचा, रुधिर, मांस, और मेद, इन्को दुष्टकर धीरेधीरे भयंकर शोथ उत्पन्न करें, उसकी जड़ हड्डीपर्यंत पहुंच जाय, उत्पत्तिकालमें अत्यन्त पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उसको विद्रधि कहतेहैं पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, क्षत (घाव)से १, और रुधिरसे १, मिलकर छ प्रकारकी विद्रधि होयहै उनछःहों विद्रधिके लक्षण कहते हैं ।

वातजविद्रधिके लक्षण

कृष्णोऽरुणोवाविषमोभृशमत्यर्थवेदनः ।

चित्रोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो विद्रधि काली लाल विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोठीहो, अत्यन्त वेदनायुक्त और उस्का प्रगट होना तथा पाक ये नानाप्रकारका होय, उस्को वातविद्रधि कहते हैं ।

पित्तकी विद्रधिके लक्षण

पक्वोदुंबरसंकाशःश्यावोवाज्वरदाहवान् ।

क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिःपित्तसंभवः ॥ ५ ॥

अर्थ—पित्तकी विद्रधि पके गुलरके समान होय, अथवा कालावर्ण होय, ज्वर, दाह, करनेवाली, उस्का प्रगट और पाक शीघ्र होय ।

कफकी विद्रधिके लक्षण

शरावसदृशःपांडुःशीतःस्निग्धोऽल्पवेदनः ।

चिरोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिःकफसंभवः ॥ ६ ॥

अर्थ—कफकी विद्रधि शराव (मट्टीके शराव) सदृश बड़ी होय, पीलावर्ण, शीतल, चिकनी, अल्पपीडा, होय उस्का-उत्पत्ति और पाक देरमें होयहै ।

पकनेके अनन्तर उन्का स्राव

तनुपीतसिताश्रैषामास्त्रावाःक्रमशःस्मृताः ।

अर्थ—ये तीनप्रकार विद्रधि पकनेके अनन्तर होतेहैं इन्हीं वातादिकोंके क्रमसे पतला, पीला, और सपेद राश निकले ।

सन्निपातकी विद्रधिके लक्षण

नानावर्णरुजास्त्रावोघंटालोविपमोमहान् ॥ ७ ॥

विपमंपच्यतेचापिविद्रधिःसान्निपातिकः ।

अर्थ—सन्निपातकी विद्रधिमें अनेकप्रकारकी पीड़ा, (जैसे तोड़, दाह, खुजली, पीड़ा,) तथा अनेकप्रकारका स्राव (जैसे पतला, पीला, सपेद, स्राव होय) घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय, और ऊपर पतरीहो, अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचा होय, छोटी बड़ी कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय ।

आगंतुजविद्रधिकीं संप्राप्ति

तैस्तेर्भावैरभिहतेक्षतेवाऽपथ्यकारिणः ॥ ८ ॥ क्षतोष्मावा-

युविसृतः सरक्तपित्तमीरयेत् । ज्वरस्तृष्णाचदाहश्रजायन्ते

तस्यदेहिनः ॥ ९ ॥ आगंतुविद्रधिर्ज्ञेयःपित्तविद्रधिलक्षणः ।

अर्थ—तिनतिन भाव कहिये लकड़ी पत्थर डेला आदिका अभिघात (चाट-लगना पिचजाना इत्यादि) होनेसें, अथवा तलवार, तीर, बरछी, इत्यादिक लगनेसें घाव होजानेसें, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुके लक्षण (फेला) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिरसहित पित्तको कोप करै उस पुरुषके ज्वर, प्यास, और दाह होय । और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलने होय, इसको आगंतुज विद्रधि जाननी ।

रक्तजविद्रधिके लक्षण

कृष्णस्फोटानृतःश्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ।

पित्तविद्रधिलिंगस्तुरक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

अर्थ—कालेफोडेनसें व्यास, श्यामवर्ण, दाह, पीड़ा, और ज्वर, ए उसमें तीव्र होय, तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकर्के युक्त होय, इसको रक्त विद्रधि जानना ।

अंतर्विद्रधिके लक्षण

पृथक्संभूयवादोषाःकुपितागुल्मरूपिणम् ।

वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतःकुर्वतिविद्रधिम् ॥ ११ ॥

अर्थ—कुपितभये पृथक् पृथक् अथवा मिलेभए दोष शरीरमें गोलार्के और बाँबीके समान बढी ऐसी विद्रधि उत्पन्न करै ।

विद्रधिके स्थान

गुदेवस्तिमुखेनाभ्यांकुक्षौवंक्षणयोस्तथा । वृक्कयोःप्रीह्यरु-
तिहृदयेक्कोन्निचाप्यथ ॥ १२ ॥ एषामुक्तानिलिंगानिबाह्यवि-
द्रधिलक्षणैः । गुदेवातनिरोधस्तुबस्तौकच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १३ ॥
नाभ्यांहिकातथाऽऽटोपःकुक्षौमारुतकोपनम् । कटिपृष्ठग्रह-
स्तीव्रोवंक्षणोत्थेचविद्रधौ ॥ १४ ॥ वृक्कयोःपार्श्वसंकोचः
प्रीह्युच्छ्वासावरोधनम् । सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रोहृदिकंपञ्चजायते
॥ १५ ॥ श्वासोयकृतिहिकाचक्कोन्निपेपीयतेपयः ।

अर्थ—गुदा, बस्ती, मुख, नाभी, कूख, वंक्षण, वृक्क, (कूखपिंडी प्रीह) य-
कृत (कलेजा) हृदय, क्लोम (प्यासका स्थान) इन ठिकानेपर विद्रधि होयहै,
इन्के लक्षण बाह्य विद्रधिके समान जानने ।

गुदामें—विद्रधि होनेसँ अधोवायुको रोध होय ।

बस्तीमें—अर्थात् मूत्राशयमें होनेसँ कठिनतासे थोडा २ सूते ।

नाभिमें—होनेसँ हिचकी तथा पीडापूर्वक क्लोम होय ।

कूखमें—होनेसँ पवनका कोप होय ।

वंक्षण—में—होनेसँ कमर और पीठका बलपूर्वक जिकड़जाना होय ।

कूखके पिंडमें—होनेसँ पसवाडोंके संकोच होय ।

प्रीहमें—होनेसँ श्वास रुकजाय ।

हृदयमें—होनेसँ सष अंग जिकड़जाय और कंप होय ।

कलेजेमें—होनेसँ श्वास और हिचकी होय ।

क्लोममें—अर्थात् पिपासास्थानमें विद्रधि होनेसँ बारंवार पानी पीनेकी इच्छा
होयहै ।

सावनिर्गम

नाभेरुपरिजाःपक्कायांत्यूर्ध्वमितरेत्वधः ॥ १६ ॥

अधःस्रुतेषुजीवेतुस्रुतेषूर्ध्वनजीवति ।

अर्थ—नाभिके ऊपर जो विद्रधि होय उन्के पकनेसँ जो साव कहिये राध आ-
दिका बहना होय वो मुखके रास्ते होय हैं, और नाभिके नीचे होनेसँ जो साव
होय वो गुदाके मार्गसे होय है, और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधिन्का साव

दोनो मार्गसँ होय, जिन्का साव नीचेके मार्ग हो वो रोगी जीवे, और ऊपरके मार्ग जिस्का साव होय वो रोगी बचे नहीं ।

विद्रधिमें साध्यासाध्य

हृन्नाभिवस्तिवर्ज्यायेतेपुभिन्नेषुबाह्यतः ॥ १७ ॥ जीवेत्क-

दाचित्पुरुषोनेतरेषुकथंचन । साध्याविद्रधयःपंचविवर्ज्यः

सान्निपातिकः । आमपक्कविदग्धत्वंतेषांशोथवदादिशेत् ॥१८॥

अर्थ—हृदय नाभि और वस्ती इन ठिकानेको छोड़कर प्रगट जो विद्रधि (अर्थात् ग्रीह छोम इसादि ठिकाने) बाहर फूटनेसँ कदाचित् पुरुष वचजाय, और ठिकानेपर फूटनेसँ नहीं बचे ।

पहिली पांच विद्रधि साध्य हैं, सन्निपातकी विद्रधि असाध्य है, इन विद्रधी-
नको आम, पक्क, और विदग्ध, ए तीन अवस्था शोथ रोगके समान जाननी चाहियें ।

असाध्यलक्षण

आध्मातंबद्धनिष्यंदंछर्दिहिकातृषान्वितम् ।

रूजाश्वाससमायुक्तंविद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १९ ॥

अर्थ—अफरायुक्त, मूत्ररूक् गया होय, हिचकी, वमन, और प्यास इन्सँ पी-
डित, शूल आस इन्कर्के युक्त, ऐसे मनुष्यके विद्रधि रोग असाध्य होय है ।

इनि माधवभावार्थदीपिकाटीकाया विद्रधिनिदानं समाप्तम् ।

व्रणनिदानम् ।

एकदेशोत्थितःशोथोव्रणानांपूर्वलक्षणम् । षड्विधःस्यात्पृथक्

सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥ १ ॥ शोथाःषडेतेविज्ञेयाःप्रागुक्तैः

शोथलक्षणैः । विशेषःकथ्यतेतेषांपक्कापक्कविनिश्चये ॥ २ ॥

अर्थ—एक ठिकानेपर सूजन उत्पन्न होनेसँ जानेकी इसके व्रण (फोड़ा) होयगा
सो व्रणरोग पृथक् दोषोंसँ ३, सन्निपातसँ १, रुधिरसँ १, और आगंतुज १, ऐसे
मिलकर छः प्रकारका है इन छहों व्रणोंमें जो प्रथम सूजन होय उनके लक्षण
शोथरोग लक्षणके समान जानने, इन्में पक्क (पकना) अपक्क (न पकने) के
विषयमें जो विशेषता है उसको इस जगे कहते हैं ।

व्रणपाक

विषमपच्यतेवातात्पित्तोत्थश्चाचिरंचिरम् ।

कफजःपित्तवच्छोफोरक्तागंतुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

अर्थ—वादीसँ विषम पाक होय अर्थात् कहीं पके कहीं नहीं पके पित्तसँ बहुत जल्दी पके कफका फोड़ा देरमें पके और रुधिरका, तथा आगंतुज फोड़ेका पकना पित्तके समान अर्थात् जल्दी पके हैं ।

कच्चेफोड़ेके लक्षण

मंदोष्मताऽल्पशोथत्वंकाठिन्यंत्वक्स्ववर्णता ।

मंदवेदनताचैवशोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सूजन हाथके छूनेसँ थोड़ी गरमलगे, थोड़ी सूजनहोय, फोड़ेका स्थान कर्रा होय, तथा देहके रंग समान उसका रंग होय, और उसमें पीड़ा मंद होय, ये कच्ची सूजनके लक्षण हैं ।

पच्यमानव्रणके लक्षण

दृश्यतेदहनेनेवक्षारेणेवचपच्यते । पिपीलिकागणेनेवदृश्य-

तेछिद्यतेतथा ॥ ५ ॥ भिद्यतेचैवशस्त्रेणदंडेनेवचताड्यते ।

पीड्यतेपाणिनेवांतः सूचीभिरिवतुच्यते ॥ ६ ॥ शोषश्चो-

षोविवर्णःस्यादंगुल्येवावपाठ्यते । आसनेशयनेस्थानेशा-

तिवृश्चिकविद्धवत् ॥ ७ ॥ नगच्छेदाततःशोथोभवेदाध्मा-

तवस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैवपच्यमानस्यलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस समय व्रणपकनेको होय उस समय ए लक्षण होते हैं, अग्निसँ भरासा फोड़ेका स्थान मालूम हो, खार लगानेकासा चिन मिनावै, चैंटी काटने कीसी पीड़ा होय, वो दोहक करनेके समान तथा शस्त्रसँ फारनेके समान दंड आदिके मारनेके समान, तथा हाथसँ मीढ़नेके समान, तथा भीतरी सुईसँ छेदनेके समान पीड़ा होय और उसमें अत्यंत दाह होय, अग्निसँ सेकनेके समान उसमें वेदना होय, उस फोड़ेका रंग बदल जाय, डंगलीके लगानेसँ उखारने कीसी पीड़ा होय, बैठनेमें सोनेमें खड़े रहनेसे बीछ काटनेकीमी घोर पीड़ा होय, वो पीड़ा कभी शांति नहीं होय, वो सूजन फूली हुई घस्ती (भूत्रस्थान) के सदृश तनीसी होय, उसमें ज्वर प्यास और अरुचि ए लक्षण होते हैं ।

पक्वव्रणके लक्षण

वेदनोपशमःशोथोलोहितोऽल्पोनचोन्नतः । प्रादुर्भावोवली-
नांचतोदःकंडूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ उपद्रवाणांप्रशमोनिघ्नता
स्फुटनंत्वचः । वस्ताविवांबुसंचारःस्याच्छोथेऽगुलिपीडिते
॥ १० ॥ पूयस्यपीडयत्येकमंतमंतेचपीडिते । भक्ताकां-
क्षाभवेच्चैवशोथानांपक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ— व्रणपकनेसें पीडा शांति होजाय, उसकी सूजन तामेंके रंगकी-होय,
और थोड़ी होय, ऊंची न होय, उसमें गुजलट पड़े, सुई चुभानेकीसी पीडा
होय, बारंवार खुजली चले, पित्तदाहादि उपद्रवोंकी शांति हो खुजानेसें उस-
जगै गढेला हो जाय, त्वचा फट जाय, सूजन हाथके दवानेसें जैसे वस्तीके
नीचेका पानी इधर उधर होय, उसी प्रकार राध इधर उधर होय, अन्नमें
इच्छा हो ।

एकदोषसें सूजन उत्पन्न होय उसमें पकनेके समय तीनों
दोषोंका संबन्ध होय है

नर्त्तेऽनिलाद्गुग्गुविनानपित्तंपाकःकफंवापिविनानपूयः ।

तस्माद्विसर्वेपरिपाककालेपचन्तिशोथास्त्रिभिरेवदोषैः ॥१२॥

अर्थ— वादीके विना पीडा नहीं होय, पित्तके विना दाह नहीं होय, और
कफके विना-राध नहीं होय, अर्थात् पकनेके समय तीनों दोषोंके मिलनेसें सब
प्रकारकी सूजन पकती है । रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरोंमें कहे हैं यथा—कफजे-
षुचशोथेषुगंभीरंपाकमेत्यसूक् । पक्वांस्निग्धंततःस्पष्टंयत्रस्यात्क्लिन्न-
शोफता । त्वक्सावर्ण्यरुजोल्पत्वन्धनस्पर्शित्वमश्मवत् । रक्तपाक-
मितिब्रूयात्तंप्राज्ञोमुक्तसंशयः ॥ इस्का अर्थ सुगम है ।

राधननिकालनेसें जो परिणाम होय है उसको दृष्टांत देकर कहते हैं

कक्षंसमासाद्ययथैववन्निर्वाग्वीरितःसंदहतिप्रसह्य ।

तथैवपूयोप्यविनिःसृतोहिमांसंशिराःस्नायुचखादतीह ॥१३॥

अर्थ— फूसके गंजमें लगी हुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे वो फूसको
जलाकर खाक करदे उसी प्रकार व्रणमेंसें राध न निकालनेसें वो राध मांस
शिरा और स्नायु इन्को खाय लेती है ।

आमादि लक्षण ज्ञानसै वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं
आमंविदह्यमानंचसम्यक्पक्वंचलक्षणैः ।

जानीयात्सभवेद्वैद्यःशोषास्तस्करवृत्तयः ॥ १४ ॥

अर्थ—आम (कच्चा) पच्यमान और जो अच्छी रीतिसै पकगया हो, ऐसे व्रणके लक्षण जो वैद्य जाने हैं. उसीको वैद्य जानना चाहिये, बाकीके सब चोर हैं ।

अपक्का छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष.

यश्छिन्नत्याममज्ञानाद्यश्वपक्वमुपेक्षते ।

श्वपचाविवमंतव्यौतावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥

अर्थ—जो अज्ञानसै कच्चे फोडेको पका समझकर फोडे ओर जो पके फोडेको कच्चा समझकर चीरे नहीं, ये दोनों अविचारवान् वैद्य चांडालके समान जानने ।

इति व्रणशोधनिदानम् ।

व्रणनिदान

द्विधाव्रणःपरिज्ञेयःशारीरागन्तुभेदतः ।

दोषैराद्यस्तयोरन्यःशस्त्रादिकृतसंभवः ॥ १ ॥

अर्थ—शरीर और आगतुक इन भेदोंसे व्रण दो प्रकारका है, पहिला शारीर दोषोंके कोपसे होय है, और दूसरा शस्त्रादिककके घावके होनेसै होय है ।

वातिकव्रण

स्तब्धःकठिनसंस्पृशोमन्दस्त्रावोमहारुजः ।

तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसंभवः ॥ २ ॥

अर्थ—वादीसै प्रगट व्रणमें जिकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंसे थोडा साव होय, तथा पीडा बहुत होय तथा मुईके चुभानेकीसी पीडा होय, और उसका रंग काला होय ।

पित्तव्रणके लक्षण

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्टयवदारणैः ।

व्रणंपित्तकृतंविद्याद्गन्धैःस्त्रावैश्वपूतिकैः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, वांस आवै, साव होय, ए पित्तव्रणके लक्षण हैं ।

कफव्रणके लक्षण

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।

पांडुवर्णोऽल्पसंक्लेदीचिरपाकीकफोद्भवः ॥ ४ ॥

अर्थ—कफका स्राव अत्यंत गाढ़ा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्द पीड़ा, पीला रंग, थोड़ा स्रावनेवाला, और बहुत कालमें पके ।

रक्तजद्वंद्वजव्रण

रक्तोरक्तस्रुतीरक्ताद्वित्रिजःस्यात्तदन्वयैः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो रक्तके कोपसे व्रण होय वो रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर स्रवे, एक दोष और रुधिरके संबंधमें जो होय वो द्वंद्व अथवा दो दोष तथा रुधिर इनके मिलनेसे संनिपातका व्रण जानना ।

मुखव्रणके लक्षण

त्वच्चांसजःसुखेदेशेतरुणस्यानुपद्रुतः ।

धीमतोऽभिनवःकालेसुखंसाध्यःसुखव्रणः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो व्रण त्वचा और मांस तथा मर्मरहित स्थानमें उपद्रव रहित होय और जो तरुण तथा ज्ञानी पुरुषके हेमंतशशिरकालमें प्रगट होय, उसको मुखव्रण कहते हैं वो सुखसाध्य है ।

कुच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततःकुच्छ्रोव्रणःस्मृतः ।

सर्वैर्विहीनोविज्ञेयःसोऽसाध्योनिरुपक्रमः ॥ ७ ॥

अर्थ—जो पूर्वश्लोकमें लक्षण कह आये उनमेंसें कुछ लक्षण थोड़े होनेसें व्रण कुच्छ्रसाध्य होय है और गुणरहित होय वो असाध्य है उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ।

दुष्टव्रणकेलक्षण

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्त्राव्युत्संगीचिरस्थितिः ।

दुष्टव्रणोऽतिगंधादिःशुद्धलिंगविपर्ययः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस्मेंसें दुर्गंधयुक्त रास और सड़ा भया रुधिर बहे जो ऊपर ऊंचा तथा भीतरसें पोलाहो, बहुत दिन रहनेवाला होय, उसको दुष्टव्रण कहते हैं वो शुद्धलिंगके विपरीत होय है ।

शुद्धव्रणके लक्षण

जिह्वातलाभोऽतिमृदुःश्लक्ष्णःस्निग्धोऽल्पवेदनः ।

सुव्यवस्थोनिरास्रावःशुद्धोव्रणइतिस्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोड़ी पीड़ायुत, भले प्रकारका कहिये ऊंचा आदि जो दुष्ट व्रणादिकमें लक्षण कहे वो न होय, दोष रक्तादिस्रावरहित होय उसको शुद्ध व्रण जानना ।

भरनेवाले व्रणके लक्षण

कपोतवर्णप्रतिमायस्यांताःक्लेदवर्जिताः ।

स्थिराश्चपिटिकावंतोरोहतीतितमादिशेत् ॥ १० ॥

अर्थ—जिस्का घाव कबूतरके रंग सदृश होय, और जिस्में क्लेद न बहता होय और घाव स्थिर हो, जिस्में फुंसीसी मालूम हों, उसको वैद्य जानेकी यह व्रण (घाव) भरनेवाला है ।

जो व्रणभरगयाहो उसके लक्षण

रूढवर्त्मानमग्रंथिमशूनमरुजंव्रणम् ।

त्वक्सवर्णसमतलंसम्यग्रूढंतमादिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस्का मार्ग भरगया होय, गांठ बंधी होय, सूजन और पीड़ा जिस्में होय नहीं, त्वचाके समान वर्ण होगयाहो, घावका गढेला भरकर बराबर होगया हो, वो व्रण उत्तम भरा जानना ।

व्याधि विशेषकर्के व्रण कृच्छ्रसाध्य होयहैं सो कहते हैं

कुष्ठिनाविषज्जुष्टानांशोषिणामधुमेहिनाम् ।

व्रणाःकृच्छ्रेणसिद्ध्यंतियेषांचापिव्रणोव्रणाः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोठीपुरुष, विषवाला पुरुष, खईरोगवाला पुरुष, मधुमेही पुरुष, ऐसेन्का व्रण बड़े कष्टसँ साध्य होय है और जिस्के पहले व्रणमें व्रण प्रगट होय, उसके ये व्रण कष्टसाध्य होय है ।

साध्यासाध्य लक्षण

वसामेदोऽथमज्जानंमस्तुलुंगचयःस्रवेत् ।

आगन्तुजोव्रणःसिद्ध्येन्नसिद्ध्येदोपसंभवः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस व्रणमेंसें चर्वी, भेद, मज्जा, और वस्तिस्नेह, ए वहे वो व्रण आगंतुज होय तो साध्य है. और दोषकृत होय तो साध्य नहीं होय ।

असाध्यव्रणके लक्षण

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ।

सुगंधादिव्यगंधाश्चसुमूर्पूर्णाव्रणाःस्मृताः ॥ १४ ॥

अर्थ—मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चन्दन, और चंपाके फूलके समान अथवा चमत्कारी पारिजाति आदि फूल कीसी गंध जिस व्रणमें से आवै, वो व्रण मरनेवाले रोगीके जानना ।

दूसरे असाध्य लक्षण

येचमर्मस्वसंभूताभवन्त्यत्यर्थवेदनाः । दह्यन्तेचान्तरत्यर्थ

बहिःशीताश्चेव्रणाः ॥ १५ ॥ दह्यन्तेबहिरत्यर्थभवन्त्यंतश्च

शीतलाः । प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ १६ ॥

प्रवृद्धपूयरुधिराव्रणायेषांचमर्मसु । क्रियाभिःसम्यगारब्धान

सिद्ध्यन्तिचयेव्रणाः ॥ १७ ॥ वर्जयेदेवतान्वैद्यःसंरक्षन्नात्मनोयशः ।

अर्थ—जे व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भए हों, और उन्में असंत पीडा होय. वे, तथा जिस जिस व्रणके भीतर दाह होय, और बाहर शीतल होय, वे अथवा बाहर दाह होय और भीतर शीतलता होय. वे, तथा जिन्में बल, मांस इन्का क्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि, इन्सें असंत पीडित होय, ऐसे अथवा जे व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भए हों, उन्मेंसे राध, रुधिर, बहुत बहे, वे, अथवा जिन व्रणोंकी अच्छी चिकित्सा करनेसें भी अच्छे न होय, ऐसे व्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य साग दे ।

व्रणरोगमें अपथ्य

व्रणेश्वयधुरायासात्सचरागश्चजागरात् ।

तौचरुक्चदिवास्वापान्ताश्चमृत्युश्चमैथुनात् ॥ १८ ॥

अर्थ—परिश्रम करनेसें व्रणमें सूजन होती है, और जागनेसें लल्लोही होती है और दिनमें सोनेसें सूजनपर लाली आयकर पीडा होती है और मैथुन करनेसें सूजन लाली पीडा होकर मृत्यु होय ।

इति श्रीमाधवभावार्थबोधिनीमाधुरीमापाटीकायांशारीरव्रणनिदानं समाप्तम् ।

आगंतुव्रणनिदान ।



नानाधारामुखैःशस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।

भवंतिनानारुतथोव्रणास्तास्तान्निबोधमे ॥ १ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसें, अनेक प्रकारकी आकृति (स्वरूप) के व्रण होते हैं उनको कहता हूँ ।

संख्यासंग्राहि

छिन्नंभिन्नंतथाविद्धंक्षतंपिच्चितमेवच ।

घृष्टमाहुस्तथाषष्ठेतेषांवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित, और छटा घृष्ट, ऐसे आगंतु व्रण छः प्रकारके होते हैं उनके लक्षण कहता हूँ ।

छिन्नके लक्षण

तिर्यक्छिन्नऋजुर्वापियोव्रणस्त्वायतोभवेत् ।

गात्रस्यपातनंतद्विच्छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ—जो व्रण तिरच्छा, सरल, (सीधा) अथवा लंबा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं ।

भिन्नके लक्षण

शक्तिकुंतेषुखट्वाग्रविपाणैराशयोहतः ।

यत्किंचित्स्रवतेतद्विभिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—बच्छीं, भाला, वाण, तरवारके अग्रभाग विपाण (दांत सींग) इनसें आशय (कोष्ठ) को वेधकर थोडासा रुधिर श्रवे (निकले) उसको भिन्न कहते हैं ।

कोष्ठके लक्षण

स्थानान्यामाग्निपक्वानांमूत्रस्यरुधिरस्यच ।

हृदुंदुकःफुफुसश्चकोष्ठइत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

अर्थ—आमाशय, अध्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, कलेजा, छीह, हृदय, मलाशय और फुफुस इन स्थानोंकी कोष्ठसंज्ञा है ।

इन भेदोंके लक्षण

तस्मिन्भिन्नेरक्तपूर्णेज्वरोदाहश्चजायते । सूत्रमार्गगुदास्ये-
भ्योरक्तघ्राणाच्चगच्छति ॥ ६ ॥ सूच्छाश्वासतृपाध्मानमभ-
क्तच्छन्दएवच । विण्मूत्रवातसंगश्चस्वेदास्त्रावोऽक्षिरक्तता
॥ ७ ॥ लोहगंधित्वमास्यस्यगात्रदौर्गध्यमेवच । हृच्छूलं
पार्श्वयोश्चापिविशेषंचात्रमेशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ—वो कोष्ठ भिन्न होकर रुधिरसँ भरजावे तब ज्वर दाह होय है, सूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाक इन्मेंसँ रुधिर बहै, सूच्छा, श्वास, प्यास, पेटका फूलना, अन्नमें अरुचि, मलमूत्र, अधोवायु इन्का अवरोध, पसीना बहुत आवै, नेत्रमें लाली, मुखमें लोहेकीसी वास आवै, अंगोंमें दुर्गंधि, हृदय और पसवाडोंमें शूल ये लक्षण होते हैं इन्सँ जो विशेष लक्षण हैं उनको मोसे सुन ।

आमाशयस्थितरक्तके लक्षण

आमाशयस्थेरुधिरेरुधिरंच्छर्दयत्यपि ।

आध्मानमतिमात्रंचशूलंचभृशदारुणम् ॥ ९ ॥

अर्थ—आमाशयमें रुधिरका संचय होनेसँ रुधिरकी वमन, पेट बहुत फूले और अत्यंत भयंकर शूल होय ।

पक्वाशयस्थके लक्षण

पक्वाशयगतेचापिरुजागौरवमेवच ।

अधःकायेविशेषेणशीतताचभवेदिह ॥ १० ॥

अर्थ—पक्वाशयमें रुधिरका संचय होनेसँ शूल, देहमें भारीपना, और क-
मरसँ लेकर नीचेके भागमें शीतलता होय है ।

विद्धव्रणके लक्षण

सूक्ष्मास्यशल्यभिहतंयदंगंत्वाशयंविना ।

उचुंडितंनिर्गतंवातद्विद्धमितिनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसँ आशय विना जे अंग हैं
उन्में वेध होनेसँ तुंडित (कहिये उन्मेंसँ वो शस्त्र न निकला होय) निर्गत क-
हिये (शल्य निकल गया हो) उसको विद्धव्रण कहते हैं ।

क्षतके लक्षण

नातिच्छिन्ननातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।

विषमव्रणमंगेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसमें अंग अतिच्छिन्न, तथा अतिभिन्न न भया हो, और दोनोंके लक्षण मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बाँका होय, उसको क्षतव्रण कहते हैं ।

पिच्छितके लक्षण

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतांगतम् ।

सास्थितत्पिच्छितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना-किवार आदिसँ इनके योगसँ पिच जाय, तथा मज्जा रुधिरकर्कें युक्त होय, (घाव न होय) उसको पिच्छितव्रण कहते हैं ।

घृष्टके लक्षण

घर्षणादभिघाताद्वा यदंगं विगतत्वचम् ।

ऊषास्त्रावान्वितं तद्विघृष्टमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—कठिन वस्त्र आदिको घर्षण (घिसने) सँ, चोटके लगनेसँ, जिस अंगको ऊपरकी त्वचा जाती रहै, तथा आगके समान गरम रुधिर बुचाय, उसको घृष्ट ऐसे कहते हैं ।

सशल्यव्रणके लक्षण

शावंसशोथं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।

मृदू व्रतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १५ ॥

अर्थ—जो व्रण नीला, सूजनयुक्त, मरोरीनसँ व्याप्त होय और बारबार उन्मेंसँ रुधिर बहै और नरम होकर ऊपर बुबुलेके समान उठा भया जिसका मांस होय, उस व्रणको सशल्य है ऐसे जानना चाहिये ।

कोष्ठभेदलक्षण

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा ।

कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

अर्थ—त्वचाकी संधी कहिये शिरा, मांस, नस, हड्डी इनकी सन्धीको वेधकर, अथवा शिरा आदिको छोड़ जो शल्य कोष्ठमें रहे है, उससँ आगे कहे भए लक्षण होते हैं ।

असाध्यकोष्ठभेद

तत्रांतर्लोहितं पांडुशीतपादकराननम् ।

शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्वंद्वं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस्का रुधिर आंतोंमें संचित होय, (अर्थात् बाहर नहीं बहे) और जो पीला वर्ण जिस्के हाथ पैर शीतल होय, और जो शीतल श्वासको छोड़े, जिस्के लाल नेत्र होंय, तथा अनाह कहिये (पेट फूलना)—ऐसे रोगीको वैद्य साग देय ।

मांस शिरा स्नायु अस्थि और संधि इन्मर्मोंमें

चोट लगनेके सामान्यलक्षण

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानि रथोष्णता च । स्त्र-
स्तांगतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥ १८ ॥

मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत् सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव । दशा-
र्द्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ १९ ॥

अर्थ—भ्रम, अनर्थभाषण, गिरना, इन्द्री और मन इन्को मोह, हाथ पैरका फैलाना, ग्लानि, उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका चढ़ना, वात-जन्य तीव्र पीडा, मांसका धोया हुआ पानी पैसा रुधिर बहे, सर्व इन्द्री विकल होंय, (अर्थात् सब इन्द्रीन्का व्यापार बंद होजाय) ये लक्षण मांस आदि पांच मर्मविद्ध होनेसँ होते हैं ।

मर्मरहितशिराविद्धके लक्षण -

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्त्रवेत्तक्ष्णजश्च वायुः ।

करोति रोगान् विधान्यथोक्ताञ्छिरासु विद्धास्वथ वाक्षतासु ॥ २० ॥

अर्थ—शिरा कहिये (नाडी) विधजाय, अथवा शिरामें धाव होजाय, उसमेंसँ इन्द्रगोप (वीरबहुट्टी) कीड़ाके समान लाल तथा पुष्कल रुधिर स्रवे, तथा रक्तक्षय होनेसँ वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके (आक्षेपकादि) रोग उत्पन्न करे हैं ।

स्नायुविद्धके लक्षण -

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च ।

चिराद्गणोरोहतियस्य चापितं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २१ ॥

अर्थ—कुबडापना, शरीरमें ग्लानि, काम करनेमें असामर्थ्यपना, बहुत पीडा और जिस्का व्रण बहुत दिनमें भरे, उसकी स्नायु विद्ध भई ऐसे जाने ।

संधिविद्धके लक्षण

शोथाभिवृद्धिस्तुमुलारुजश्वलक्षयःपर्वसुभेदशोथौ ।

क्षतेषुसंधिष्वचलाचलेषुस्यात्सर्वकर्मोपरमश्रुलिंगम् ॥ २२ ॥

अर्थ—चल अथवा अचल संधीका वेध होनेमें सूजन बढे, पीडा बहुत होय, शक्तिका नाश होय, संधिमें भेदके समान पीडा होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे परंतु उसमें उपराम होय ।

हड्डी विधगईहो उसके लक्षण

घोरारुजोयस्यनिशादिनेपुसर्वास्ववस्थामुचनैतिशांतिम् ।

भिपग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धंपुरुषंव्यवस्येत् ॥ २३ ॥

अर्थ—जिसपुरुषके रातदिन घोर पीडा होय, जाग्रतादि तीनों अवस्थामें शांति होय नहीं, उसके अस्थि (हड्डी) विधी है ऐसों श्रेष्ठ वैद्य जाने ।

मर्मरहितशिरादिकोंके विद्धलक्षणकहनेकें शिरादिमर्म-

विद्धलक्षणोंका हवाल देते हैं

यथास्वमेतानिविभावयेनुलिंगानिमर्मस्वभिताडितेषु ।

अर्थ—मर्मके ठिकाने चोटके लगनेमें ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये तुशब्दसँ लक्षण और सामान्यलक्षण होते हैं ऐसे जानना ।

मांसमर्मके लक्षण नहीं कहे उन्को कहते हैं

पांडुर्विवर्णःस्पृशितंनवेत्तियोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात् ॥ २४ ॥

अर्थ—जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है, उसका पीला वर्ण देहका विवर्ण होय और स्पर्शका ज्ञान न होय ।

सर्व व्रणके उपद्रव

विसर्पःपक्षघातश्चशिरास्तम्भोपतानकः । मोहोन्मादव्रणरु-

जाज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः ॥ २५ ॥ कासश्छर्दिर्तीसारोहिक्का

श्वातःसर्वेषुधुः । पोडशोपद्रवाःप्रोक्ताव्रणानांव्रणचिन्तकैः ॥ २६ ॥

अर्थ—विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तम्भ, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणकी

पीडा, प्यास, इजुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप-ये
व्रणरोगके सोलह उपद्रव व्रणरोगके जाननेवालोंने कहे हैं ।

इति श्रीमाधवार्थदीपिकायां सद्योव्रणनिदानम् ।

भग्ननिदान ।

भग्न दोप्रकारका है एक सव्रण और दूसरा व्रणरहित
इन्मेंसे व्रणको कहकर व्रणरहितको कहते हैं
भग्नसमासाद्विविधं हुताशकडिचसंधौचहितत्रसंधौ ।

अर्थ—हे अग्निवेश कांडभंग, और संधिभंग मिलकर संक्षेपसे भग्नरोग दो प्र-
कारका है ।

संधिभंगके लक्षण

उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितचतिर्यक्विक्षिप्तमधश्चोढा ॥ १ ॥

अर्थ—तहां संधिस्थानका भग्नरोग छः प्रकार है उनके नाम कहते हैं। उत्पिष्ट,
विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त, और अधःक्षिप्त, भग्ननाम दूटनेका है।

संधिभंगके सामान्यलक्षण

प्रसारणाकुंचनवर्तनोग्रासस्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।

सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गं

अर्थ—फैलातेसमय, सकोरनेके समय, नीचे करनेसे घोर पीडा होय और
स्पर्श सहा न जाय, ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण हैं ।

उत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् । विशेषतो रात्रिभवारुजाच

अर्थ—उत्पिष्टमें संधिके चारों ओर सूजन होय, और रात्रिमें पीडा बहुत होय,
संधीके हाड दोनों आपसमें घिसे उसको (उत्पिष्ट ऐसे कहते हैं) ।

विश्लिष्टजंतौ चरुजाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रात्रिमें पीडा ए होकर सर्व कालमें अ-
त्यन्त पीडा होय और उत्पिष्टकी अपेक्षा इतने लक्षण (विश्लिष्टमें) विशेष होते
हैं अर्थात् संधि शिथिल मात्र होय इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गलेटा होजाय ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः

अर्थ—विवर्तित संधिमें दोनों तरफके हाड संधीसँ पलटजाय तब असंत पीडा इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करै ।

तिर्यग्गतेतीव्ररुजोभवन्ति

अर्थ—हड्डीके तिरछे हटनेसँ पीडा बंधुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढ़ी होजाय ।

क्षिप्तेऽतिशूलंविषमारुगस्थनौ ।

अर्थ—संधिहड्डी एक ऊपरको हटजाय तो असन्त पीडा होय, और हाडोंमें कमजास्ती पीडा होय, इस जगे एक हड्डीकी क्रियासँ, अथवा दोनों हड्डीकी क्रिया-कर्के, दोनों हाड परस्पर समीपसे दूर होजाय हैं ।

क्षिप्तेत्वधोरुग्विघटश्चसंधेः ।

अर्थ—संधिकी हड्डी एक नीचेको हटजाय तो पीडा होय और संधीकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधीके हाड परस्पर दूर होय परंतु किंचित् नीचेको गमन करे ।

अब कांडभग्नको कहते हैं

कांडित्वतःकर्कटकश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चित्तमस्थिछल्लिका ।

कांडिषुभग्नत्वतिपातितंचमज्जागतंचस्फुटितंचवक्रं ॥ ४ ॥

छिन्नं द्विधा द्वादशधापिकांडे ।

अर्थ—कांडभग्न बारह प्रकारका है १ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ विचूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिछल्लिका, ६ कांडभग्न, ७ अतिपातित, ८ मज्जागत, ९ स्फुटित, १० वक्र और दो प्रकारके छिन्न ।

१ कर्कटक—अर्थात् हाड दोनों औरसे दबकर बीचमें ऊंचासा होय ।

२ अश्वकर्ण—घोडाके कानके समान जो हाड होजाय ।

३ विचूर्णित—झुरकट होगया हो वो शब्दसँ अथवा स्पर्शसँ जाना जाय ।

४ पिच्चित—पिचा भया हाड ।

५ अस्थिछल्लिका—हाडका कोई भाग छिलकाके समान उखडकर रहे है सो ।

६ कांडभग्न—हड्डीका कांड टूटना ।

७ अतिपात—सब हाड टूटे सो ।

८ मज्जागत—हड्डीके अवयव मज्जामें प्रवेशकर मज्जाको बाहर निकाले ।

९ स्फुटित—जिस हड्डीके बहुत टुकडा हो जाय ।

१० वक्र—हड्डी तिरछी होजाय बोभी भग्नमें गिनी जाती है ।

११ छिन्न—२ वारीक वारीक बहुतसे टुकड़ा होजाय सो और दूसरा एक और-से टूटकर दूसरी तरफ निकले है ।

कांडभग्नके सामान्यलक्षण

स्वस्तांगताशोथरुजातिवृद्धिः । संपीड्यमानेभवतीहशब्दः
स्पर्शासहस्यंदनतोदशूलाः ॥ ५ ॥ सर्वास्ववस्थानुनशर्म-
लामोभग्नस्यकांडेखलुचिन्हमेतत् ॥ ६ ॥

अर्थ—अंगोंमें शिथिलता, सूजन, घोर पीडा, जिसस्थानकी हड्डी टूटी होय उस जगे पीडाके साथ शब्द होय, हाथके लगानेसे सहा न जाय, हड्डी फडके, मुई छेदनेकीसी पीडा होय, और शूल होय, कभी चैन न पड़े, कांड इस शब्द-से नलक, कपाल, बलय, तरुण, और कूचक, इन पांच प्रकारकी हड्डींका संग्रह होय है कांडभग्नके १२ वारों भेदोंसे अधिक भेद होते हैं उन्को कहते हैं ।

भग्नंतुकांडेबहुधाप्रयातिसमासतोनामभिरवतुल्यम् ।

अर्थ—कांडोंमें अनेक प्रकारके भंग होते हैं, सो जिसजिस ठिकाने जैसी आ-कृतीका होय, उसका उसी प्रकारका नाम कहना चाहिये ।

कष्टसाध्य

अल्पादिनोनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ।

उपद्रवैर्वाजुष्टस्यभग्नं कच्छेणसिद्ध्यति ॥ ७ ॥

अर्थ—थोड़ा खानेवाला, और जिसकी इन्द्री स्वाधीन न होय, वातप्रकृतिवा-लेकी, ज्वरादि उपद्रव संयुक्त, ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेसे बड़े कष्टसे साध्य होय है ।

असाध्यलक्षण

भिन्नंकपालंकव्यांतुसंधिमुक्तंतथाच्युतम् ।

जघनंप्रतिपिष्टंचवर्जयेत्तुविचक्षणः ॥ ८ ॥

अर्थ—कमरकी कर्पाल हड्डी टूटगई हो, अथवा संधिके पासकी हड्डी हटगई हो अथवा स्थानसे छूटगई हो, और जंघाकी हड्डीका चूर हो गया हो, ऐसे रोगीको वैद्य साग दे ।

तथा असाध्यलक्षण

असंश्लिष्टकपालंचललाटेचूर्णितंचयत् ।

भग्नस्तनान्तरेष्टृष्टेशंखेभूर्ध्रिचवर्जयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ—ललाटकी हड्डीके टुकड़ा टुकड़ा हो, परस्पर दूर होजाय, जुड़नेके कामके न रहें, अथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख (कनपटी)की हड्डी स्तककी हड्डी टूट गईहो उसको वैद्य त्याग देय ।

सावधानता न करनेसे असाध्यता दिखाते हैं

सम्यक्संधितमप्यस्तिदुर्निक्षेपनिबंधनात् ।

संक्षोभाद्वापियद्वच्छेद्विक्रियांतञ्चवर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ—हड्डी भलेप्रकार जुड़वी गईहो उसको अच्छी रीतिसँ न राखें, अथवा अच्छी रीतिसँ बांधे नहीं, अथवा उसमें किसीका धक्का लगनेसे फेर जैसेका तैसा हो जाता है और यह साध्य नहीं होय इसको वैद्य त्याग दे ।

अस्थिविशेषकर्के भग्नविशेष कहते हैं

तरुणास्थीनिनम्यन्तेभिद्यन्तेनलकानिच ।

कपालानिविभज्यन्तेस्फुटन्तिरुचकानिच ॥ ११ ॥

अर्थ—तरुण हड्डी नव जातीहै, याटेदी होजाय, नलका हड्डी चिर जाती है, कपालास्थी फूटकर टुक टुक होजाय, रुचकास्थी (दंतादिक) हड्डी टुकड़ा होकर गिरपरे ।

इति भग्ननिदानं समाप्तम् ।

नाडीव्रणनिदानसंप्राप्ति ।



यःशोधमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञोयोवाव्रणंप्रचुरंपूयमसाधुवृ-
त्तः । अभ्यन्तरंप्रविशतिप्रविदार्थतस्यस्थानानिपूर्वविहिता-
निततःसपूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्वातिरिप्यतेतुना-
डीवयद्वहतितेनमतातुनाडी ।

अर्थ—जो मूर्ख मनुष्य पकेहुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे, किंवा व-
हुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा करदे, तब वो वदीहुई राध पूर्वोक्त त्वच्चासादिक
स्थानमें जायकर उनको भेद कर वो बहुत भीतरी पहुँचजाय, तब एक मार्ग कर
उसमें वह राध नाडीके समान वहे, इसीसे इसको नाडीव्रण (नाम्मर) कहते हैं ।

संख्यारूपसंप्राप्ति

दोषैस्त्रिभिर्भवतिसापृथगेकशश्चसंमूर्छितैरपिचशल्यनिमित्त-
तोऽन्या ॥ २ ॥

अर्थ—पृथक् पृथक् दोषोंसे ३ सन्निपातसे १ और शल्यसे १ ऐसे नाडीव्रण पांच प्रकारका हैं ।

वातनाडीव्रणके लक्षण

तत्रानिलात्पुरुषसूक्ष्ममुखीसशूलाफेनानुविद्धमधिकंस्त्रव-
तिक्षपासु ।

अर्थ—वादीसै नाडीव्रणका मुख रूखा, तथा छोटा होय, और शूल होय, उसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रमें अधिक स्रवे ।

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण

पित्तात्तुट्ज्वरकरीपरिदाहयुक्तापीतंस्त्रवत्यधिकमुष्णमहःसु-
चापि ॥ ३ ॥

अर्थ—पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमेंसे पीले रंगका, और बहुत गरम राध स्रवे, और दिनमें स्राव अधिक होय ।

कफजनाडीव्रणके लक्षण

ज्ञेयाकफाद्बहुधनार्जुनपिच्छिलास्त्रास्तब्धासकंदुररुजारजनी-
प्रवृद्धा ।

अर्थ—कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले खुजली चले, रातमें स्राव बहुत होय ।

संनिपातजनाडीव्रणके लक्षण

दाहज्वरश्चसनंमूर्च्छनवक्त्रशोषायास्याभवन्तिविहितानिचल-
क्षणानि ॥ ४ ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात्घोरा-
मसुक्षयकरीमिवकालरात्रिम् ।

अर्थ—जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना, और पूर्वोक्त लक्षण होय, उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना यह भयंकर प्राण-
नाश करनेवाली कालरात्रीके समान जाननी ।

शल्यजनाडी

नष्टकथंचिदनुमार्गमुदीरितेषुस्थानेषुशल्यमचिरेणगतिकरो-
ति ॥ ५ ॥ साफेनिलंमथितमुष्णमसृग्विमिश्रंस्त्रावंकरोति
सहसासरुजंचनित्यम् ।

अर्थ—किसीप्रकारसे शल्य (कंटकादि) उक्त स्थानमें पहुँचकर टूट जाय, तो नाडीव्रणके उत्पन्न करै उस नाडीव्रणमेंसे द्वाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके स-
मान गरम नित्य राखे वहै, तथा पीडा होय ।

साध्यासाध्य लक्षण

नाडीत्रिदोषप्रभवानसिद्धचेच्छेषाश्चतस्रःखलुयत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

अर्थ—त्रिदोषजन्य नाडीव्रण साध्य नहीं होय, बाकीके चार नाडीव्रण यत्न
करनेसे साध्य होते हैं ।

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकाया नाडीव्रणरोगनिदानम् ।

भगंदरनिदानम् ।



शुदस्यङ्गुलेक्षेत्रेपार्श्वतःपिटिकार्तिकृत् ।

भिन्नोभगन्दरोद्भेयःसत्त्वपंचविधोमतः ॥ १ ॥

अर्थ—शुदाके समीप दो अंगुल उंची पिछाडी एक पिटिका (फूँसी) होय,
उसमें बहुत पीडा होय, और वह पिटिका फूटजाय उसको भगंदररोग कहते हैं
(सुश्रुतने) इसकी निरुक्ति इस प्रकार करी है । यथा शुदभगवस्तिदाप्ररणात्
भगंदर इति भगवद् इति जगे शुदावाचक है सो (भोजने) कहावी है (भगं
परिसमंताच्च शुदवस्तिस्तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मात् ज्ञेयो भ-
गंदरः) इति यह भगंदररोग पांच प्रकारका है यह संख्या कहना केवल रक्तज
द्वंद्वज भगंदर संभावनानिवारणार्थ जानना इसके पूर्वरूप ग्रंथान्तरीसे लिखते हैं ।

पूर्वरूप

कटीकपालनिस्तोददाहकंदूरुजादयः ।

भवन्तिपूर्वरूपाणिभविष्यतिभगंदरे ॥ २ ॥

अर्थ—कमरमें कपालास्थीमें छुईसी चुभे, दाह होय, खुजली चले, पीडा होय,

ये लक्षण जब भगंदर होनहार होय है तब होते हैं इस जगेवी कपालास्थी पूर्वोक्त जाननी, अर्थात् जो नाडीत्रणमें कहि आये हैं ।

शतपोनकके लक्षण

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशेपिडिकां करोति या ।

उपेक्षणात्पाकमुपैतिदारुणं रुजाचभिन्नारुणं फेनवाहिनी ॥ ३ ॥

तत्रागमोमूत्रपुरीषरेतसां त्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ।

अर्थ—कपेले और रुखे पदार्थ खानेसँ वायु अत्यंत कुपित होकर गुदास्थानमें जो पिटिका (फुंसी) प्रगट करे, उनकी उपेक्षा करनेमें वे फुंसी पके और फूट जाय तब पीडा होय, तथा लाल झाग मिली राध बहे, तथा उसमें अनेक छिद्र हो जाय, उन छिद्रोंमें होकर मूत्र, मल, और रेत (शुक्र) बहे, चालनी-केसै अनेक छिद्र होंय इसी कारण इस रोगका शतपोनक ऐसे कहते हैं शतपोनक नाम संस्कृतमें चलनीका है ।

उष्णशिरोधरके लक्षण

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तापिडिकां गुदाश्रिताम् ।

तदाशुपाकाहिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्णशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तकारक पदार्थ खानेसँ कुपित भया जो पित्त सो गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करें, वो शीघ्र पककर उनमेंसँ गरम राध बहे, ये पिटिका (फुंसी) ऊंटकी नाडके समान होय इसीसँ इस्को उष्णशिरोधर नाम कहते हैं ।

परिस्त्रावी भगंदरके लक्षण

कंडूयनो घनस्त्रावीकठिनो मन्दवेदनः ।

श्वेतावभासः कफजः परिस्त्रावी भगंदरः ॥ ५ ॥

अर्थ—कफसँ प्रगट भया भगंदर उसमें खुजली चले, तथा उसमेंसँ गाढी राध बहे, तथा वो पिटिका कठिन होय, उसमें पीडा थोड़ी होय, उन्का वर्ण सफेद होय, उसको परिस्त्रावी भगंदर कहत है ।

शंखुकावर्तके लक्षण

बहुवर्णरुजास्त्रावाः पिडिका गोस्तनोपमाः ।

शंखुकावर्तवन्नाडी शंखुकावर्तकोमतः ॥ ६ ॥

अर्थ—जिस्में गौके थनके समान अनेक पिढका होंय, उन्का रंग, पीडा और स्वाव, अनेक प्रकारका होय, और व्रण शंखके आँटेके समान, गोल होय, इस्को शंखकावर्त्त कहते हैं ।

उन्मार्गिभगंदरके लक्षण

क्षताद्रतिःपायुगताविवर्धतेह्युपेक्षणात्स्युःकृमयोविदार्यते ।

प्रकुर्वतेमार्गमनेकधामुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गिभगंदरंवदेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—गुदामें कांटे आदिके लगनेसँ क्षत (घाव) हो जाय, उस घावकी उपेक्षा करनेसँ उसमें कृमि पडजाय, वो कृमि उस क्षतको विदारण करै, ऐसे वो घाव गुदापर्यंत बढकर पडुंछे तथा कृमि उसमें अनेक मुख करलेवें, इस्को उन्मार्गि भगंदर कहते हैं ।

साध्यासाध्य लक्षण

घोराःसाधयितुंदुःखाःसर्वएवभगंदराः ।

तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थःक्षतजश्चविशेषतः ॥ ८ ॥

अर्थ—सब भगंदर दुःसाध्य हैं तिन्मेंभी त्रिदोषका भगंदर असाध्य है, और क्षतज विशेषकर्के असाध्य है ।

असाध्यके लक्षण

वातमूत्रपुरीषाणिकृमयःशुक्रमेवच ।

भगंदरात्प्रस्रवन्तिनाशयन्तितमातुरम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जिस भगंदरमेंसँ अधोवायु, मूत्र, विष्टा, कृमि, और वीज, बहे उस रोगीका नाश होय ।

इति भगंदरनिदानं समाप्तम् ।

उपदंशनिदानम् ।

कारण

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा ।

योनिप्रदोषाच्चभवन्तिशिश्नेपंचोपदंशाविविधोपचारैः ॥ १ ॥

अर्थ—हाथकी चोट लगनेसँ, नख दांतके लगनेसँ, अच्छी रीतिसँ न धोनेसँ,

अत्यन्त स्त्रीसंगके करनेसे, अथवा योनिके-दोषसे, (अर्थात् दीर्घ करे वाल जिस्के ऊपर होय) अथवा खारी गरम जलके धोनेसे, ब्रह्मचर्यवाली स्त्रीसे गमन करनेसे, इत्यादि कारणोंसे, लिंगमें उपदंश (गर्भोका रोग) होय है वो पांच प्रकारका है ।

वातोपदंशके लक्षण

सतोदभेदस्फुरणैःसकृष्णैःस्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ।

अर्थ—लिंगेन्द्रीके ऊपर काले फोडा उठें, उन्में चोटनेकीसी पीडा होय, तो-डनेकीसी पीडा होय, और स्फुरण ए लक्षण वातोपदंशके जानने ।

पित्तोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण

पीतैर्बहुक्लेदयुतैःसादहैःपित्तेनरक्तात्पिशितावभासैः ॥ २ ॥

अर्थ—पित्तके उपदंशकर्के पीले रंगके फोडे होते हैं उन्मेंसे पानी बहुत बहै, दाह होय, रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडा होय ।

कफोपदंशके लक्षण

सकंदुरैःशोथयुतैर्महद्भिःशुक्लैर्धनस्त्रावयुतैःकफेन ।

अर्थ—कफके उपदंशकर्के सपेद मोठे फोडा होय, उन्में खुजली चले, सूजन होय, और गाढी राध बहै ।

सन्निपातोपदंशके लक्षण

नानाविधस्त्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्त्राव होय, पीडा होय, यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है ।

असाध्य लक्षण

विशीर्णमांसंकुमिभिःप्रजग्धंमुष्कावशेषपरिवर्जयेत्तु ।

अर्थ—जिस उपदंश कर्के लिंगका मांस गल गया हो, और कुमि लिंगको खाय जावै, केवल अंडकोश मात्र रहिजाय, उसको वैद्य साग दे ।

असाध्य लक्षण

संजातमात्रेणकरोतिमूढःक्रियानरोयोविषयेप्रसक्तः । काले-

नशोथकृमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नोभ्रियतेसतेन ॥ ४ ॥

अर्थ—उपदंशके होतेही जो मूर्ख मनुष्य विषयमें आसक्त होकर इस्का उ-

पचार नहीं करे, उसका लिंग थोड़े दिनमें सूजन और कीड़े पड़े और उसमें दाह और पाकवी होय, पीछे वो गलजाय ऐसा रोगी मर जाय ।

लिंगवर्त्तिके लक्षण

अंकुरैरिवसंधातैरुपर्युपरिसंस्थितैः । क्रमेणजायतेवर्त्तिस्ता-
 अचूडशिखोपमा ॥ ५ ॥ कोशस्याभ्यन्तरेसंधौसर्वसंधिगता-
 पिवा । लिंगवर्त्तिरितिव्याताल्लिंगार्शइतिचापरे ॥ ६ ॥ कु-
 लत्थाकृतयःकेचित्केचित्पद्मदलोपमाः । मेढ्रसंधौनृणांकेचि-
 त्केचित्सर्वाश्रयाःस्मृताः ॥ ७ ॥ रुजादाहार्त्तिबहुलास्तृष्णा-
 तोदसमन्विताः । स्त्रीणांपूंसांचजायंतेद्वुपदंशाःसुदारुणाः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुरगाकी चोटीके समान लिंगके ऊपर मांसके अंकुर एकके ऊपर एक प्रगट होय कोशकी भीतरकी मणिमें अथवा सर्व संधीन्में तो इस रोगको लिंग-वर्त्ति ऐसे कहते हैं और कोई लिंगार्श कहते हैं यह त्रिदोषजन्य है इसमें मांसके अंकुर कुल्थीके समान, और कोई पद्मदलके समान, किसीके अंडकोशकी संधीमें किसीके सर्व आश्रयमें होते हैं पीडा, दाह, बहुत होय, प्यास नोचनेकीसी पीडा होय, स्त्री और पुरुषोंके यह उपदंश घोर पीडाकारक होते इसमें (कुलित्थाकृ-तयः) यहाँसिं लेकर (स्त्रीणांपूंसांचजायन्ते) यहाँतक पाठ छेपक है माधवका नहीं और स्त्रीन्केभी गरमीका रोग होय है, यह मत सुश्रुतका है परन्तु यह आप पाठ नहीं है ।

इति उपदगनिदान समाप्तम् ।

फिरंगरोगनिदानम् ।

उपदंशरोगकाही भेद फिरंगरोग है उसको ग्रन्थान्तरमें लिखने हैं
 फिरंगशब्दकी निरुक्ति

फिरंगसंज्ञकेदेशेबाहुल्येनैपयद्भवेत् ।

तस्मात्फिरंगइत्युक्तोव्याधिव्याधिविशारदैः ॥ १ ॥

अर्थ—फिरंगीन्के देशमें यह रोग बहुधाकर्के होय है, इसीसे वैद्य इसको फिरंग-रोग कहते हैं ।

विप्रकृष्टनिदानम्

गंधरोगफिरंगोयंजायतेदेहिनांध्रुवम् । फिरंगिणेतिसंसर्गात्
फिरंगिण्याप्रसंगतः । भवेत्तलक्षयेत्तेषालक्षणैर्भिषजावरः ॥ २ ॥

अर्थ—गंधरोग यह फिरंगरोग है सो मनुष्योंके अंग्रेजोंके संसर्गसे, अथवा फिरंगिणी (मीम)के प्रसंग करनेसे होय है, इस्को इस्के जो आगे लक्षण कहेंगे उनसे जाने ।

रूपमाह

फिरंगस्त्रिविधोज्ञेयोबाह्यआभ्यन्तरस्तथा ।

बहिरन्तर्भवश्चापितेषालिंगानिचब्रुवे ॥ ३ ॥

अर्थ—फिरंग रोग तीन प्रकारका १ बाहर होय, २ भीतर होय है, और तीसरा बाहर भीतर दोनों स्थानमें होय है उनके लक्षण कहता हूं ।

तत्रबाह्यःफिरंगःस्याद्विस्फोटसदृशाल्परूक् ।

स्फुटितोव्रणवद्वेद्यःसुखसाध्योपिसस्मृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां बाहरका फिरंग रोग फोडाके समान थोड़ी पीड़ा कर्ता होय है, और फोडेके समानही फूटे है यह सुखसाध्य है ।

संधिष्वाभ्यन्तरःसस्याद्भुभयोर्लक्षणैर्युतः ।

कष्टदोऽतिचिरस्थायीकष्टसाध्यतमश्चसः ॥ ५ ॥

अर्थ—और जो फिरंग सन्धिष्के भीतर होय, अथवा दोनो बाहर और भीतरकी फिरंगके लक्षण मिलते होंय, वो अतिकष्ट देनेवाली बहुत कालतक रहनेवाली कष्टसाध्य है ।

फिरंगरोगके उपद्रव

कादर्थ्यबलक्षयोनासाभंगोवन्हेश्चमंदता ।

अस्थिदोषोऽस्थिवक्रत्वंफिरंगोपद्रवाअमी ॥ ६ ॥

अर्थ—देह कुश होजाय, बलनाश होजाय, नाक बैठ जाय, अग्नि मंद होजाय, हड्डी सूखे, तथा हड्डी टेढ़ी होजाय, ए फिरंगके उपद्रव हैं ।

साध्यासाध्य कष्टसाध्य

बहिर्भवोभवेत्साध्यो नूतनोनिरुपद्रवः । आभ्यन्तरस्तुकष्टे-

नसाध्यः स्यादयमामयः ॥ १५ ॥ बहिरंतर्भवोजीर्णः क्षी-

णस्योपद्रवैर्युतः । बोध्यो व्याधिरसाध्यो यमित्यूचुर्मुनयः पुरा १६

अर्थ—जो फिरंग बाहर होय, नया, और उपद्रव रहित होय, वो साध्य है और भीतर होय वो कष्टसाध्य है और जो बाहर भीतर दोनों ठिकाने पर होय, तथा पुराना पढगया, और उपद्रवयुक्त होय, वो फिरंग रोग असाध्य है फिरंग यह रोग वातका भेद जानना चाहिये यह सुजाक नामसे प्रसिद्ध है ।

इति फिरंगरोगनिदानं समाप्तम् ।

शूकदोषनिदान ।

अक्रमाच्छेफसोवृद्धियोऽभिवाञ्छतिमूढधीः ।

व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

अर्थ—जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्तक्रमके बिना लिंगको मोटा करा चाहे, वो विषकृमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे (अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे) उसके १८ प्रकारके शूकजरोग होंगे हैं ।

सर्षपिकाके लक्षण

गौरसर्षपसंस्त्याना शूकदुर्भग्नहेतुका ।

पिटिकाश्लेष्मवाताभ्यांज्ञेया सर्षपिका च सा ॥ २ ॥

अर्थ—दुष्टजल जंतुका दुष्टरीतिसे लेप करनेसे, कफवात कुपित होकर सपेद सरसोंके समान जो पिटिका (फुंसी) होय उसको सर्षपिका कहते हैं ।

अष्टीलाके लक्षण

कठिनाविषमैर्भुगैर्वायुनाष्टीलिका भवेत् ।

अर्थ—अमसक्त शूकोके लेपसे वायू कुपित होकर करड़ी निहाईके समान पिटिका होय और विषम कहै कोई छोटी और कोई बड़ी और भुग्न कहे टेढ़े ऐसे शूक कहिये मांसांकुरनसे व्याप्त होय इस्को अष्टीला कहे हैं ।

ग्रथितके लक्षण

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥

अर्थ—निरंतर शूललेप करनेसे लिंगेन्द्रीके ऊपर गाँठ पैदा होय, उसको अस्थित कहते हैं ।

कुम्भिकाके लक्षण

कुम्भिकारक्तपित्तोत्थाजांबवास्थिनिभाऽशुभा ।

अर्थ—रक्तपित्तसै जामनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उसको कुम्भिका ऐसे कहते हैं ।

अलजीके लक्षण

तुल्यजांत्वलर्जीविद्याद्यथाप्रोक्तंविचक्षणैः ॥ ४ ॥

अर्थ—यह पिटिका प्रमेह पिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोडान्से व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण पूर्वोक्त पिटिकाकेसे होय हैं ।

मृदितके लक्षण

मृदितंपीडितंयत्तुसंरब्धंवातकोपतः ।

अर्थ—शूल पीडा होनेके अनंतर लिंगको हाथोंसे मीडनेसे, अथवा दावनेसे वायूके कोपसे लिंग सूज जाय ।

समूढपिटिकाके लक्षण

पाणिभ्यांभृशसंमूढेसंमूढपिटिकाभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—लेप करनेके अनंतर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजावै, तब एक मूढ (विनाशुखकी) पिटिका होय उसको संमूढ-पिटिका कहते हैं ।

अवमंथके लक्षण

दीर्घाबह्व्यश्चपिटिकादीर्यन्तेमध्यतस्तुयाः ।

सोऽवमंथःकफासृग्भ्यांविदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

अर्थ—कफरक्तसै लंबी और अनेक तथा बीच बीचमें फूटी भई ऐसी जो पिटिका लिंगमें होय, उनके होनेसे रोमांच और पीडा होय इस रोगको अवमंथ ऐसे कहते हैं ।

पुष्करिकाके लक्षण

पिचशोणितसंभूतापिटिकापिडिकाचिता ।

पद्मकर्णिकसंस्थानाज्ञेयापुष्करिकाचसा ॥ ७ ॥

अर्थ—पित्तरक्तसै उत्पन्न भई पिटिका उसके चारोंतरफ अनेक छोटी छोटी फुंसी होंय, और वो कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुंसी होंय, उसको पुष्करिका ऐसे कहते हैं ।

स्पर्शहानिके लक्षण

स्पर्शहानितुजनयेच्छोणितंशूकदूषितम् ।

अर्थ—शूकका लेप करनेसँ रहित दूषित होकर लचाका स्पर्शज्ञानको नष्ट करै ।

उत्तमाके लक्षण

मुद्गमाषोद्गमारक्तारक्तपित्तोद्गवाश्रयाः ॥ ८ ॥

व्याधिरेषोत्तमानामशूकाजीर्णनिमित्तजः ।

अर्थ—शूकका बारंवार लेप करनेसँ रक्तपित्त कुपित होकर मूंग उरदके समान लाल फुंसी लिंगेन्द्रिपिं होंय उसको उत्तमा कहते हैं यह अजीर्णके कारण होती हैं ।

शतपोनकके लक्षण

छिद्रैरण्मुखैर्लिंगंचितंयस्यसमंततः ॥ ९ ॥

वातशोणितजोव्याधिर्विज्ञेयःशतपोनकः ।

अर्थ—जिस पुरुषके लिंगमें अनेक वारीक छिद्र होजाय, यह व्याधि वातशोणितसँ प्रगट इस्को शतपोनक कहते हैं ।

त्वक्पाकके लक्षण

वातपित्तकृतोयस्तुत्वक्पाकोज्वरदाहवान् ॥ १० ॥

अर्थ—वातपित्तसँ लिंगकी त्वचा पक जाय, और उसमें ज्वर दाह होय है ।

शोणितार्बुदके लक्षण

कृष्णैःस्फोटैःसरक्ताभिःपिटिकाभिर्निपीडितम् ।

यस्यवास्तुरुजाचोग्राज्ञेयंतच्छोणितार्बुदम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी लिंगेन्द्रिकी ऊपर काले लाल फोडा उत्पन्न होंय, तथा उनमें पीडा होय, उसको शोणितार्बुद कहते हैं ।

मांसार्बुदके लक्षण

मांसदोषेणजानीयाद्वुदंमांससंभवम्

अर्थ—मांस दुष्ट होनेसँ मांसार्बुद प्रगट होय है ।

मांसपाकके लक्षण

शीर्यन्तेयस्यमांसानियस्यसर्वाश्चवेदनाः ॥ १२ ॥

विद्यात्तमांसपाकंतुसर्वदोषकृतंभिषक् ।

अर्थ—जिसकी इन्द्रीका मांस गलजाय, और अनेक प्रकारकी पीड़ा हों,
(यह व्याधि त्रिदोषज है) इस व्याधीको मांसपाक कहते हैं ।

विद्रधिके लक्षण

विद्रधिसन्निपातेनयथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थ—विद्रधि निदानमें जो सन्निपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं वोही यहां वि-
द्रधिशूकके लक्षण जानने ।

तिलकालकके लक्षण

कृष्णानिचित्राप्यथवाशूकानिसविषाणितु । पातितानिपचं-
त्याशुमेढ्रनिरवशेषतः ॥ १४ ॥ कालानिभूत्वामांसानिशी-
र्यन्तेयस्यदेहिनः । सन्निपातसमुत्थास्तुतान्विद्यात्तिलकाल-
कान् ॥ १५ ॥

अर्थ—काले अथवा चित्रविचित्र रंगकेसे विष शूकोंके लेप करनेसे तत्काल
सर्व लिंग पकजाय, तथा सब मांस तिलके सदृश काला होकर गलजाय, इस
त्रिदोषोत्पन्न व्याधीको तिलकालक ऐसे कहते हैं ।

असाध्यशूकदोषके लक्षण

तत्रमांसारुदंयञ्चमांसपाकश्चयःस्मृतः ।

विद्रधिश्चनसिद्ध्यन्तिचेचस्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—तिस शूकदोषमें मांसारुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये
चार असाध्य हैं ।

इति श्रीमाधवभावाथदीपिकायां माथुरीभापाटीकायां शूकदोषनिदानम् ।

कुष्ठनिदान ।



विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरूणिच । भजतामागताच्छ-

दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममतिसंतापमति-
भुक्त्वानिषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान्क्रमंमुक्त्वानि-
षेविणाम् ॥ २ ॥ घर्मश्रमभयार्त्तानाद्भुतंशीताबुसेविणाम् ।
अजीर्णाध्यशनानांचपंचकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नद-
धिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नति-
लक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायंचाप्यजीर्णेऽन्नेनिद्रांच
भजतांदिवा । विप्रान्गुरुन्धर्षयतांपापकर्मचकुर्वताम् ॥ ५ ॥
वातादयस्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमंबुच । दूषयंतिसकुष्ठानांस-
प्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥ ६ ॥ अतःकुष्ठानिजायंतेसप्तचैकादशैवच ।

अर्थ—विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसैं, रक्के वेगको रोकनेसैं, और अन्य व्रेग कहिये मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसैं, भोजनकर्के असंत व्यायाम (दंडकसरत) अथवा अतिसंताप (सूर्य-का ताप) सहनेसैं, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवन उक्तक्रम छोड-कर सेवन करनेसैं, पसीना, श्रम और भय इन्सैं पीडित होय, और उसी स-मय शीतल जल पीवे इस कारणसैं, अजीर्ण अन्न भक्षण करनेसैं, तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसैं, वमन, विरेचन, निरुहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंच-कर्मकेकरते समय अपथ्य करनेसैं, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा, प-दार्थके सेवन करनेसैं, उडद, यूरी, मिष्टान्न, (लड्डू, खजला, फेनी आदि) तिल, दूध, गुड इनके खानेसैं, अन्नके पचेविना स्त्रीसंग करनेसैं, तथा दिनमें सोनेसैं, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसैं, पापकर्मके आचरण करनेसैं, ऐसे पुरुषोंके वातादिक तीनों दोष, त्वचा, रुधिर, मांस, और जल इन्को दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोड) उत्पन्न करै, कुष्ठ होनेके वातादि तीनों दोष, और त्व-चादि दूष्य, ये सात पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं इनसैंही अठारे प्रकारके कुष्ठ होते हैं तिन्में सात महाकुष्ठ, और ग्यारे क्षुद्र कुष्ठ हैं ।

कुष्ठोंको त्रिदोषजत्वभी होनेसे दोषाधिक्यसैं वो सातप्रकारके है सो कहते हैं ।

कुष्ठानिसप्तधादोषैःपृथग्द्वंद्वैःसमागतैः ॥ ७ ॥

सर्वेष्वपित्रिदोषेषुव्यपदेशोऽधिकोमतः ।

अर्थ—पृथक् पृथक् दोषोंकर्के ३, द्वंद्वज ३, और सन्निपातसे १ सब मिलकर

सात कुष्ठ भए सब कुष्ठ त्रिदोष होनेपरभी जो दोष अधिक होय उसीसे व्यवहार करना चाहिये, अर्थात् जिस दोषके लक्षण मिलें उसको उसी दोषका कुष्ठ जानना जैसे 'वातेन कुष्ठं कापालं' अर्थात् वाताधिक्य होनेसे कापाल कुष्ठ होय है ।

कुष्ठके पूर्वरूप

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता ॥ ८॥ दाहःकंडूस्त्व
चिस्वापस्तोदःकोष्ठोन्नतिःक्लमः । व्रणानामधिकंगूलंशीघ्रो-
त्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ ९ ॥ रूढानामपिरूक्षत्वंनिमित्तेऽल्पेपि
कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजःकाष्ण्यंकुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥

अर्थ—जिस ठिकाने कुष्ठ होनहार होय उस जगे हाथोंसे चिकना मालूम होय, अथवा खरदरा मालूम होय, उस ठिकाने पसीना आवे अथवा नहीं आवे, तथा उस ठिकानेका वर्ण पलट जाय, दाह होय, खुजली चले, त्वचाको स्पर्श मालूम न होय, नोचनेकीसी पीडा होय, विपलमांसीके काटनेके सदृश चकत्ता उठे, परिश्रम करेविना देहमें श्रम होय, व्रणमें पीडा अधिक होय, उनफोडोंकी उत्पत्ति शीघ्रहोकर बहुत दिवसपर्यंत रहे, जब फोडा भरनेको होय, तब रुखे रहें उनका थोड़े निमित्त होनेसे कोप होय, रोमांच होय, और रुधिर काला पड़ जाय, ए कुष्ठहोनेके पूर्वरूप होते हैं ।

सप्तमहाकुष्ठोंके लक्षण

कृष्णारुणकपालाभयद्रूक्षंपरुपंतनु ।

कापालंतोदवहुलंतत्कुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥ ११ ॥

अर्थ—कापालकुष्ठ जो काले, तथा लाल, खीपडाके सदृश, रुखे, कठोर, पतले, ऐसे त्वचावाले तथा नोचनेकीसी पीडायुक्त होय, वे दुश्चिकित्स्य हैं अर्थात् वे चिकित्साकरनेमें कठिन है । इसको कपालकुष्ठ कहते हैं ।

औदुंबरकुष्ठके लक्षण

रुग्दाहरागंकडूभिःपरीतंलोमपिंजरम् ।

उदुंबरफलाभासंकुष्ठमौदुंबरवंदेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—औदुंबरकुष्ठ यह शूल, दाह, लाल और खुजली इन्हीं व्याप्त होय, इसमें बाल कपिल वर्णके होय, तथा ये गूलरफलके समान होय है ।

मंडलकुष्ठके लक्षण

श्वेतरक्तस्थिरस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमंडलम् ।

कृच्छ्रमन्येनसंयुक्तंकुष्ठमंडलमुच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—मंडलकुष्ठ सपेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिस्का आकार मंडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसँ मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ कष्टसाध्य है ।

ऋष्यजिह्वकुष्ठलक्षण

कर्कशंरक्तपर्यंतमन्तःश्यावंसवेदनम् ।

यद्वक्षजिह्वासंस्थानभृक्षजिह्वंतदुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—ऋष्यजिह्वकुष्ठ कठोर, अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे, तथा रीछकी जीभके समान होय है ।

पुंडरीककुष्ठके लक्षण

सश्वेतरक्तपर्यंतपुंडरीकदलोपमम् ।

सोत्सेधंचसरागंचपुंडरीकंप्रचक्षते ॥ १५ ॥

अर्थ—पुंडरीककुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सपेद होय, और उसके अंतभाग लाल होय, यत्किंचित् ऊंचा निकल आवै, और मध्यमें थोडा लाल होय है ।

सिध्मकुष्ठके लक्षण

श्वेतंताम्रंचतनुयद्रजोघृष्टंविमुंचति ।

प्रायेणोरसितत्सिध्ममलांबुकुसुमोपमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सिध्मलक्षण सपेद, लाल, पतला, खुजानेसँ भूसीसी उडे, यह विषोपकरके छातीमें होय है और घीयाके फूलके आकार होय ।

काकणकुष्ठके लक्षण

यत्काकणंतिकावर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।

त्रिदोषलिङ्गंतत्कुष्ठंकाकणंनैवसिद्ध्यति ॥ १७ ॥

अर्थ—काकणकुष्ठ जो चिरमिडिके समान लाल, अर्थात् बीचमें काला होय, और ओरपास लाल होय, अथवा बीचमें लाल होय, और ओरपास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिस्में तीनों दोषोंके लक्षण मिलने हों, यह कुष्ठ अच्छा नहीं होय ।

ग्यारैष्ट्रकुष्ठोंके लक्षण

अस्वेदनं महावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।

तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ १८ ॥

अर्थ—चर्मकुष्ठ पसीनारहित, मोठी जगे व्यापनेवाला, मछलीकी त्वचा-समान अर्थात् अन्नकके पत्रसमान गोल गोल होय, और जिसका चर्म हाथीके चर्मसमान मोठा और कठोर होय, उसको चर्मकुष्ठ कहते हैं ।

किटिभकुष्ठके लक्षण

श्यावं किणखरस्पर्शपरुषं किटिभं स्मृतम् ।

अर्थ—किटिभकुष्ठ नीलवर्ण, व्रणकी चटकेसमान कठोर स्पर्श मालूम होय और परुष कहिये रूक्ष होय ।

वैपादिककुष्ठके लक्षण

वैपादिकं पाणिपादस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ १९ ॥

अर्थ—वैपादिक जिसमें हाथकी हतेली और पैरके तरवा फटजाय, और पीडा बहुत होय, इस विपादिकाको विवाई नहीं जानना क्योंकि विवाई केवल पैरमेंही होती है, और विवाईको शास्त्रमें पाददारी कहते हैं, और विपादिकामें हाथ पैरोंमें फुंसी श्यामरंगकी होय हैं, और वे फुंसी चुचाती है, तथा खुजाती है, इसीसे पाददारी भिन्न, और विपादिका भिन्न है ।

अलसकुष्ठके लक्षण

कंडू मद्भिः सरागैश्च गंडैरलसकंचितम् ।

अर्थ—अलसकुष्ठ इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय, और जिसमें पिडका-पिचिके समान बहुत होय, और लाल होय, इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तीकी शंका करते हैं ।

दद्रुमंडलकुष्ठके लक्षण

सकंदूरागपिटिकं दद्रुमंडलमुद्भूतम् ॥ २० ॥

अर्थ—दद्रुमंडलकुष्ठ इसमें खुजली होय, लाल होय, और फोडा होय, और ये ऊंचे उठ आवै, मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय, इसीसे इसको दद्रुमंडल कहते हैं ।

चर्मदलकुष्ठके लक्षण

रक्तसमूलं कंडू मत्स्फोटं यद्वलयत्यपि ।

तच्चर्मदलमारव्यातमस्पर्शासहमुच्यते ॥ २१ ॥

अर्थ-चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडान्से व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय, इसमें त्वचा फटजाय ।

पामाकुष्ठके लक्षण

सूक्ष्माबह्वधःपीडकाःस्त्रावत्यःपामेत्युक्ताःकंडुमत्यःसदाहाः ।

अर्थ-पामाकुष्ठ जो पिटिक छोटी और बहुत होय, उन्मेंसे स्राव होय, तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ।

कच्छकुष्ठके लक्षण

सैवस्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेताज्ञेयापाण्योःकच्छुरुग्रास्फिजोश्च ॥ २२ ॥

अर्थ-कच्छकुष्ठ वोही पामा मोठे फोडान्के तथा तीव्रदाहयुक्त होय, और हाथोंमें होय, उसको कच्छ कहते हैं । उग्रा यह कमरमें होय है ।

विस्फोटककुष्ठके लक्षण

स्फोटाःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः ।

अर्थ-विस्फोटक जो फोडा काले वा लाल रंगके होंय और जिन्की त्वचा पतली होय, उसको विस्फोटक कहते हैं ।

शतारुकुष्ठके लक्षण

रक्तंदयावंसदाहार्चिशतारुस्याद्बहुव्रणम् ॥ २३ ॥

अर्थ-शतारु जो लाल होय, श्याम होय, जलन-होय, शूल हो, तथा जिसमें अनेक फोडा होंय, उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ।

विचर्चिकाके लक्षण

सकंडूःपिटिकाश्यावाबहुस्त्रावाविचर्चिका ।

अर्थ-विचर्चिका खुजली युक्त, काले रंगकी जो फुंसी (माताके समान) होय, तथा उन्मेंसे स्राव बहुत होय, उसको विचर्चिका कहते हैं ।

चर्म कुष्ठसे लेकर विचर्चिका कुष्ठ पर्यन्त १२ कुष्ठ होते हैं और पीछे क्षुद्र कुष्ठ ११ कहे हैं ऐसी कोई शंका करै उसके निमित्त कहते हैं विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकर अर्थात् विपादिका होय हैं ऐसे कहनेसे संख्या नहीं बढे इस विषयमें (भोजका) यह मत है ।

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण

खरंदयावारुणंरूक्षंवातात्कुष्ठंसवेदनम् ॥ २४ ॥

पित्तात्प्रकुपितं दाहरांगस्त्रावान्वितं स्मृतम् ।

कफात्क्लेदिघनं स्निग्धं संकंडू शैत्यगौरवम् ॥ २५ ॥

द्विलिंगं द्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ।

अर्थ—वायूके योगसे कुष्ठ खरदरा, कालेरंगका, अथवा लालवर्ण, रुखा, और पीड़ायुक्त, ऐसा होय है ।

पित्तके योगसे कुपित कुष्ठमें दाह, लाली, और स्त्रावयुक्त होय है ।

कफके योगसे क्लेदयुक्त, सघन, चिकना, खुजलीयुक्त, शीतल, और भारी ऐसा होय है ।

द्वज कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं ।

सान्निपातिक कुष्ठमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं ।

रसादिसप्तधातुगतकुष्ठोंके क्रमसे लक्षण

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमग्रेषु कुष्ठेषु रौक्ष्यं च जायते ॥ २६ ॥

त्वक्स्वापोरोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ।

अर्थ—रसधातुगत कुष्ठ होनेसे अंगका वर्ण पलटजाय है, अंग रुखा होय, त्वचा शून्य होय, रोमांच हों, और पसीना बहुत आवै ।

रक्तगतकुष्ठके लक्षण

कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ २७ ॥

अर्थ—कुष्ठरक्त गत होनेसे खुजली, और राध बहुत होय ।

मांसगतकुष्ठके लक्षण

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कर्कश्यं पिडिकोद्भ्रमः ।

तोदःस्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २८ ॥

अर्थ—मांसगतकुष्ठ होनेसे मुख बहुत सूखे, अंगमें कर्कशपना होय, देहमें कुंसी पैदा होय, सुई नोचनेकीसी पीड़ा होय, फोड़ा होय, वे बहुत दिन रहें ।

मेदोगतकुष्ठके लक्षण

कौण्यं गतिक्षयोऽगानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।

भेदः स्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २९ ॥

अर्थ—कौण्य कहै हाथ गिरपड़े, चलनेकी शक्ति मारी जाय, इड फूटन होय, घाव फैल जाय, और पूर्वोक्त लक्षण (रसरक्त मांसगत कुष्ठके लक्षण) हों ।

अस्थिमज्जागतकुष्ठके लक्षण

नासाभंगोऽक्षिरागश्चक्षतेषुकुमिसंभवः ।

स्वरोपघातश्चभवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३० ॥

अर्थ—अस्थि (हड्डी) और मज्जागतकुष्ठ होनेसे नाक गिरपरे, नेत्र लाल होंय, घावमें कीड़ा पड जाय, स्वर बैठ जाय, ए लक्षण होंय ।

शुक्रार्चवगतकुष्ठके लक्षण

दंपत्योःकुष्ठबाहुल्याद्दुष्टोणितशुक्रयोः ।

यदपत्यंतयोर्जातंज्ञेयंतदपिकुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिस स्त्री पुरुषोंके रुधिर शुक्र कुष्ठाधिक्यसँ दुष्ट होय, उस दुष्ट वीर्य और रजसँ प्रगट भई जो संतान सोभी कोढी होती है इस जगे दुष्ट भए शुक्र और आर्चर्व सर्वथा बीजत्व नष्ट न होनेसे संतानके करनेवाले होते हैं, और जीव संक्रमण कालमें कदाचित् बीज दुष्ट होय तो, विपके कीड़ाके न्याय करके संतान प्रगट होती है, अर्थात् जैसे विप प्राणीनके प्राणका नाश कहै परंतु उसमेंभी विपका कीड़ा प्रगट होता है, और वो उससे नहीं मरता है यह वाग्भट्टका मत है ।

साध्यादिभेद

साध्यत्वग्रक्तमांसस्थंवातश्लेष्माधिकंचयत् । मेदसिद्धं द्वजं

याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३२ ॥ कृमिहृल्लासमन्दा-

ग्निसंयुक्तं यच्चिदोषजम् । अभिन्नं प्रसृतांगं चरत्तनेत्रं हतस्वरम्

॥ ३३ ॥ पंचकर्मगुणातीतं कुष्ठं हंतीह कुष्ठिनम् ।

अर्थ—रस रुधिर मांस इन धातुके पर्यन्त गए जे कुष्ठ, वो साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होंय वोभी साध्य है और मेदोधातुगत कुष्ठ तथा द्वंद्वज कुष्ठ याप्य जानना मज्जा अस्थि इन दोनों धातुमें कुष्ठ पहुँच गयाहो, तथा जो शुक्र गतहो वो कुष्ठ असाध्य है तथा जिस कुष्ठमें कृमि, वमन, मन्दाग्नि, इनके युक्त होय तथा त्रिदोषज होय, वो असाध्य है जो कुष्ठ फूटकर बहने लगे, तथा जिस कुष्ठमें रोगीके नेत्र लाल होंय, अथवा स्वर बैठ गया होय, और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके होंय नहीं, ऐसा रोगी मरजाय ।

कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण

वातेन कुष्ठं कापालं पिच्छेनौदुंबरं कफात् ॥ ३४ ॥ मंडलाख्यं

विचर्चीचक्रुष्याख्यंवातपित्तजम् । चर्मैककुष्ठंकिटिभंसिध्मा-
लसविपादिकाः ॥ ३५ ॥ वातश्लेष्मोद्भवाःश्लेष्मपित्ताद्बु-
शतारुषी । पुंडरीकंसविस्फोटंपामाचर्मदलंतथा ॥ ३६ ॥
सर्वैःस्यात्काकणंपूर्वत्रिकंददुःसकाकणा । पुंडरीकर्ण्यजिह्वे
चमहाकुष्ठानिसप्ततु ॥ ३७ ॥

अर्थ—वादीसे कपाल कुष्ठ, पित्तस औदुंबर, कफसे मंडल, और विचर्चिका, वातपित्तसै, ऋष्यजिह्व वात कफसे, चर्म कुष्ठ, किटिभ, सिध्म, आलस, और वि-
पादिका, कफपित्तसे, ददु शतारु, पुंडरीक, विस्फोटक, पामा चर्मदल, त्रिदोषसे
काकणकुष्ठ होय है पहिले तीन (कपाल, उदुंबर, और मंडल) ददु, काकण,
पुंडरीक, और ऋष्यजिह्व, ए सात महाकुष्ठ जानने ।

किलासनिदान

कुष्ठैकसंभवंश्वित्रं किलासंचारुणं भवेत् ।

निर्दिष्टमपरिस्त्रावित्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—कुष्ठ होनेके जो कारण (विरुद्धभोजन पापकर्मादि) कोहेहैं उन्हीं का-
रणसैं श्वित्र (सपेद कोढ़) और किलास (लाल कोढ़) ये होते हैं इन्में साव नहीं
होय, तथा ये तीन धातूनका आश्रय करके रहते हैं, (अर्थात् तीन दोष और
रुधिर मांस तथा मेद) इन्का आश्रय करके रहेहैं ।

वातादिभेदसैं उनके लक्षण

वाताद्रूक्षारुणंपित्तात्ताम्रंकमलपत्रवत् । सदाहंरोमविध्वंसि

कफाच्छ्वेतंघनंगुरु ॥ ३९ ॥ सकंदुरंक्रमाद्रक्तमांसमेदस्सुचा-

दिशेत् । वर्णनैवेद्वगुभयंकच्छ्रंतश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—वादीसै रूक्ष और लाल होय, पित्तसैं लाल कमलपत्रके समान लाल
होय, और उसमें दाह होय, उसके ऊपरके वाल गिरपड़े कफके योगसैं वो कोढ़
सपेद, गाढा, और भारी उसमें खुजली चले इसी क्रमसैं रुधिर मांस और मेद-
काभी ठिकाना जानना अर्थात् दोष रक्ताश्रित होनेसैं लाल, मांसाश्रित होनेसैं
ताम्रके रंग, और मेदाश्रित होनेसैं सपेद किलास होय है ।

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण

अशुक्लरोमाबहलमसंश्लिष्टमथोनवम् ।

अनग्निदग्धजंसाध्यंश्चित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥

अर्थ—जिस चित्र कोढके ऊपरके बाल सपेद न भएहों, तथा जे पतले होकर आपसमें मिलि नहीं, तथा नवीन हों तथा अग्निदग्ध न होय, वो चित्रकोढ साध्य जानना, यासै विपरीत असाध्य जानना ।

किलासके असाध्य लक्षण

गुह्यपाणितलोष्ठेषुजातमप्यचिरंतनम् ।

वर्जनीयंविशेषेणकिलासंसिद्धिमिच्छता ॥ ४२ ॥

अर्थ—गुदास्थानमें, हातोंमें, पैरोंके तलवाओंमें, होठोंमें, प्रगट भया किलास कुष्ठ, थोडे दिनका होय, तोभी यश मिलनेकी इच्छावाला वैद्य छोड दे ।

सांसर्गिकरोग

प्रसंगाद्वात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् । सहशय्यासना-

च्चापिवस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४३ ॥ कुष्ठंज्वरश्चशोषश्चनेत्रा-

भिष्यन्दएवच । औपसर्गिकरोगाश्चसंक्रामन्तिनरान्नरम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—मैथुनादि प्रसंगसें, अथवा शरीके स्पर्शसें, श्वासके लगनेसें, साथ बैठकर एक पात्रमें भोजन करनेसें, एक साथ एक सैया (पलंग) पर सोनेसें, तथा एक साथ मिलकर बैठनेसे, पास रहनेसे, धारण करे वस्त्रको धारण करनेसे, सूंघे पुष्पको सूंघनेसें, अथवा पहरी हुई मालाको धारण करनेसे, लगाये हुए चंदनमेंसें लगानेसें, कोढ, ज्वर, धातुशोष, (अर्थात् खईका रोग) नेत्ररोग, (आंख दूखना) और औपसर्गिक रोग कहिये शीतलादिक, और भूतोपसर्गादिक, ये संक्रामिक रोग, एक पुरुषसे उडकर दूसरे मनुष्यके होजाते हैं इसीसे पूर्वोक्त रोगियो प्रसंगादिक न करै ।

यथा

म्रियतेयदिकुष्ठेनपुनर्जातस्यतद्भवेत् ।

नातोनिन्द्यतरोगोगोयथाकुष्ठंप्रकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—कुष्ठरोगी मरेतौ फेर उसके दूसरे जन्ममें यह दुष्ट रोग होय है इसीसें इस कुष्ठ रोगके समान और दूसरा निन्द्य रोग नहीं हैं कुष्ठरोगकी निरुक्ति 'कुत्सितं तिष्ठतीति कुष्ठं' । कुष्ठं भेषजरोगयोरिति हैमः ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाधुरप्रणीतमाधवभावार्थदीपिका माधुरीभाषाटीकाया

कुष्ठरोगनिदानं समाप्तिमगमत् ।

शीतपित्तनिदानसंप्राप्ति ।



शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौकफमारुतौ ।

पित्तेनसहसंभूयबहिरंतर्विसर्पतः ॥ १ ॥

अर्थ—शीतलपवनके लगनेसे कफ वायू दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर (रक्ता-
दिकोंमें) और बाहर त्वचामें बिचरे ।

पूर्वरूप

पिपासारुचिह्लासमोहसादांगौरवम् ।

रक्तलोचनतातेषांपूर्वरूपस्थलक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—प्यास, अरुचि, शुक्लमेंसे पाणी गिरना, अंगगलने, और भारीहोना,
नेत्रमें लाली, ये पूर्वरूप शीतपित्तके जानने ।

उदरके लक्षण

वरटीदष्टसंस्थानःशोथःसंजायतेबहिः । सकंदूस्तोदबहुल-

श्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥ उदरदमितितंतंविद्याच्छीतपित्त-

मथापरे ।

अर्थ—वरटी (ततैया)के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ता होजाय,
उन्में खुजली चले, और सूई चुभाने कीसी पीडा होय, इसके संयोगसे वमन,
संताप, और दाह होय, इसरोगको उदर कहते हैं कोई इसको शीतपित्त कहते
हैं इसको लौकिकमें पित्ति कहते हैं इसमें खुजली होय है, सो कफसे जानना,
चोंटनी वादीसे होय है और ओकारी संताप और दाह ए पित्तसे होते हैं ऐसे
जानना ।

वाताधिकंशीतपित्तमुदरदस्तुकफाधिकः ॥ ४ ॥

अर्थ—शीतपित्तमें वात प्रधान, तथा उदर कफप्रधान जानना ।

उदरका दूसरा धर्म

सोत्संगैश्चसरगैश्चकंदूमज्जिश्चमंडलैः ।

शौशिरःकफजोव्याधिरुदरदःपरिकीर्तितः ॥ ५ ॥

अर्थ—सरदीसे कफका कोप होकर अंगके ऊपर लाल लाल चकत्ता उठे,

उन्में खुजली बहुत चले, और वे मंडलके आकार गोल हों, बीचमें कुछ नीचे और पास ऊंचे होंय, इस रोगको उदर कहते हैं ।

कोठके लक्षण

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः । मंडलानिसकंडू-
निरागवंतिबहूनिच ॥ ६ ॥ उत्कोठःस्तानुबंधश्चकोठइत्य-
भिधीयते ।

अर्थ—वमनकारक औषध सेवन करनेसे, अच्छी रीतिसँ वमन न होनेसे, पित्त और कफ कुपित होनेसे अथवा स्वतः वमनके वेग आये भयेको रोकनेसे, देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठे, उन्में खुजली चले, इस रोगको उत्कोठ कहते हैं और यह बारंवार होय, और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश होजाय उसको कोठ कहते हैं ।

इति माधवभाषाटीकायां शीतपित्तउदरकोठनिदानं समाप्तम् ।

अम्लपित्तनिदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजोविदग्धम् ।

पित्तंस्वहेतूपचितंपुरायत्तदम्लपित्तंप्रवदंतिर्संतः ॥ १ ॥

अर्थ—विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढ़ाने-वाला, ऐसा अन्नपानके सेवन करनेसे वर्षादि ऋतुमें जलौपधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचितभया पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं ।

अम्लपित्तके लक्षण

अविपाककृमोत्क्लेदतिकांम्लोद्धारगौरवैः ।

हृत्कंठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तंवदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अर्थ—अन्नका न पचना, बिना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, क-डुवी, तथा खट्टी डकार आवै, देह भारी रहै, हृदय और कंठमें दाह होय, अ-रुचि होय, ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त वैद्य जाने ।

अम्लपित्त दोषकारका एक ऊर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत उसमें प्रथम
अधोगतके लक्षण

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारिप्रयात्यधोवाविविधप्रकारम् ।

हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरंकदाचित् ॥ ३ ॥

अर्थ—अम्लपित्त अधोगत होनेसे प्यास, दाह, मोह, (इन्द्रियमनोमोह) मूर्च्छा, भ्रम, मोह, सूखी रह, मँदाग्नि, कोठ कानमें पसीना देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काले लाल दुर्गंधियुक्त अनेक वर्णके पित्त गिरें ।

ऊर्ध्वगतअम्लपित्त

वातंहरिर्पीतकनीलकृष्णमारुतारक्तोभवतीवचास्त्रम् । मां-
सोदकाभंत्वतिपिच्छिलाच्छश्लेष्मानुयातंविविधंरसेन ॥ ४ ॥

भुक्तेविदग्धेत्यथवाप्यभुक्तेकरोतितित्ताम्लवर्मिकदाचित् । उ-
द्गारमेवंविधमेवकंठेहृत्कुक्षिदाहंशिरसोरुजंच ॥ ५ ॥

अर्थ—ऊर्ध्वगत पित्तसैं हरे, पीले, नीले, काले, तामेके रंगके, लाल, असंत खट्टा, मांस धोये हुए जलके समान असंत गाढ़ा, स्वच्छ, कफमिश्रित, खारी, कसेला, आदिसंयुक्त ऐसे पित्त गिरें कभी कभी भोजन करा अन्न विदग्धभाव-
स्थाको प्राप्त होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कटुई खट्टी ऐसी वमन होय, तथा ऐसीही डकार आवैं, कंठ, कूख, और हृदय, इन्में दाह होय, माथा दूखे ।

कफपित्तजन्यअम्लपित्तके लक्षण

करचरणदाहमौष्ण्यमहतीमरुचिंज्वरंचकफपित्तम् ।

जनयतिकण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

अर्थ—हाथपैरोंमें दाह, अंगोंमें गरमी, अन्नमें अरुचि, ज्वर, कंठ (खुजली) रुधिरके बिगडनेसैं देहमें मंडल हों, सैंकडों पिडिका, और अविपाकादि अनेक उपद्रव, ए लक्षण कफपित्तसे होते हैं ।

साध्यासाध्यविचार

रोगोऽयमम्लपित्ताख्योयत्नात्संसाध्यतेनवः ।

चिरोत्थितोभवेद्याप्यःकृच्छ्रसाध्यःसकस्यचित् ॥ ७ ॥

अर्थ—यह अम्लपित्तरोग नया होयतो यत्न करनेसैं साध्य होय, और बहुत

दिनका होयतो याप्य जानना, और जो अपथ्य भोजन करनेवाला पुरुष है उसके यह अम्लपित्तरोग कृच्छ्रसाध्य होय है ।

अम्लपित्तमें केवल वायुका और वातकफका संसर्ग होय है सो कहते हैं

सानिलंसानिलकफंसकफंतञ्चलक्षयेत् ।

दोषलिङ्गेनमतिमान्भिषज्जोहकरंहितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वातयुक्त, अम्लपित्त, वातकफयुक्त अम्लपित्त, और कफयुक्त अम्लपित्त, ऐसे तीन प्रकारके अम्लपित्त बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने कारण इस्का यह है कि उर्ध्वगत, अम्लपित्तमें छर्दि (रह) रोगका भास होय है, और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होय हैं, इसीसँ वैद्यको मोह होय है इसीसे वैद्यको इस रोगकी सूक्ष्म रीतिसँ परीक्षा करनी चाहिये ।

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।

तमसोदर्शनविभ्रमविमोहहर्षाश्चवातयुते ॥ ९ ॥

अर्थ—वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमिचिमा (चैदी काटनेसँ प्रगट खुजलीके समान) देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अंधकार दीप्त, भ्रांति होना, इन्द्रियमनको मोह, रोमांच खड़े हों, ये लक्षण होते हैं ।

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः ।

दहनबलसादकंङ्कुर्निद्राचिन्हंकफानुगते ॥ १० ॥

अर्थ—कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके डेला गिरें, शरीरका अत्यंत जडपना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख कफसँ लिहसा रहै, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली, और निद्रा, ए लक्षण होते हैं ।

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

उभयमिदमेवचिन्हंमारुतकफसंभवेभवत्यम्ले ।

अर्थ—वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं ।

कफपित्तके लक्षण

अमोमूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यंचक्षिरोरुजः ।

प्रसेकोमुखमाधुर्यश्लेष्मपित्तस्यलक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ—भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकपीडा, मुखसे पानी बहना, मुखमें मिठास, ए कफपित्तयुक्त अम्लपित्तके लक्षण हैं ।

इति भाषाटीकायां अम्लपित्तनिदानं समाप्तम् ।

विसर्पनिदानम् ।

इस्की निदानपूर्वक संख्या रूप संप्राप्ति और निरुक्ति
लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः ।

विसर्पःसप्तधाज्ञेयःसर्वतःपरिसर्पणात् ॥ १ ॥

अर्थ—खारी, खट्टा, कडुवा, गरम, आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प रोग होय है, वो सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं सो (चर्कमें) लिखावी है ।

सर्व प्रकारके विसर्प रक्तादिक चार दूष्य और
वातादि तीन दोष इन्से होय हैं सो कहते हैं

रक्तंलसीकात्वद्भासंदूष्यंदोषास्त्रयोमलाः ।

विसर्पणांसमुत्पत्तौविज्ञेयाःसप्तधातवः ॥ २ ॥

अर्थ—रुधिर, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वातादि तीन दोष, ए सात धातु विसर्पके उत्पन्न होनेके कारण हैं ।

वातविसर्पके लक्षण

तत्रवातात्प्रीसर्पोवातज्वरसमाकृतिः ।

शोफस्फुरणानिस्तोदभेदपामार्तिहर्षवान् ॥ ३ ॥

अर्थ—वादीसे विसर्प जो होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं, तथा उसमें सूजन, फरकना, नोचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों, तथा वो विसर्प लंबा होय है ।

पित्तविसर्पके लक्षण

पित्ताद्भुतगतिःपित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ।

१ त्रिविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः । परिसर्पोथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥ इति ।

अर्थ—पित्तकी विसर्पकी गति शीघ्र होय, अर्थात् वो जल्दी फैल जायं तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हैं तथा अत्यंत लाल होय ।

कफविसर्पके लक्षण

कफात्कंडूयुतःस्निग्धःकफज्वरसमानरुक् ॥ ४ ॥

अर्थ—कफकी विसर्पमें खुजली बहुत होय, तथा चिकनी होय, और उसमें कफ ज्वरकीसी पीड़ा करे ।

सन्निपातविसर्पके लक्षण

सन्निपातसमुत्थश्चसर्वरूपसमन्वितः ।

अर्थ—सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहैं सो सब हांय ।

अग्निविसर्पके लक्षण

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृद्ध्रमैः ॥ ५ ॥ अस्थिभे-
दाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः । करोतिसर्वमंगंचदीप्तांगारा-
वकीर्णवत् ॥ ६ ॥ यथंदेशंविसर्पश्चविसर्पतिभवेच्चसः । शां-
तांगारासितोनीलोरक्तोवाऽशूपचीयते ॥ ७ ॥ अग्निदग्ध-
वस्फोटैःशीघ्रगत्वाहुतंचसः । मर्मानुसारीविसर्पःस्याद्वा-
तोऽतिबलस्ततः ॥ ८ ॥ व्यथेतांगंहरेत्संज्ञानिद्रांचश्वासमी-
रयेत् । हिक्कांचसततोवस्थामीदृशींलभतेनरः ॥ ९ ॥ क-
चिच्छर्मारतियस्तोभूमिशय्यासनादिषु । चेष्टमानस्ततः
क्लिष्टोमनोदेहसमुद्भवाम् ॥ १० ॥ दुर्बोधामश्रुतेनिद्रांसो-
ऽग्निविसर्प उच्यते ।

अर्थ—वातपित्तसै प्रगट विसर्प, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भौर, हृदफूटन, मंदाग्नि, अंधकारदर्शन, अन्नद्वेष, इन लक्षणकर्के संयुक्त होय, इसके सं-
योगसै सर्व शरीर अंगारनसै भरासा मालूम होय जिस जिस ठिकाने वो विस-
र्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्नि रहित अंगारके समान काला, नीला, लाल,
होकर शीघ्र सूजे, आगसे फूँकेके समान ऊपर फफोला हांय, और उस विसर्पकी
शीघ्र गति होनेसै जल्दी हृदयमें जायकर, मर्मानुसारी विसर्प होय, अथवा वो
अत्यन्त बलवान् होय, अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इन्का नाश

होय, श्वास बढ़ावै, तथा हिचकी उत्पन्न करै, ऐसी मनुष्यकी अवस्था होय अ-
स्वस्थ होनेके कारण धरती, सेज, आसन, इत्यादिकोंमें सुख होय नहीं, हलने
चलनेसँ क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसँ उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा
(मरणरूपी निद्रा)को प्राप्त होय, इस रोगको (अग्निविसर्प) ऐसे
कहते हैं ।

ग्रंथिविसर्पके लक्षण

कफेनरुद्धः पवनोभित्वा तंबहुधा कफम् ॥ ११ ॥ रक्तंच वृद्ध-
रक्तस्य त्वक्क्षिरास्त्रायुर्मांसगम् । दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थू-
लखरात्मनाम् ॥ १२ ॥ ग्रंथीनां कुरुते मालारक्तानां तीव्ररु-
ग्ज्वराम् । श्वासकासातिसारास्य शोषहिक्कावभिभ्रमैः ॥ १३ ॥
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छागर्भगाग्निसदनैर्युतम् । इत्ययं ग्रंथिवीसर्पः क-
फमारुतकोपजः ॥ १४ ॥

अर्थ—स्वेदसँ कृपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर
अथवा बढे भए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, नाडी और मांस इन्में प्राप्तहो, और
इन्को दुष्टकर लंबी, छोटी, गील, मोठी, खरदरी, लाल, गांठोंकी माला प्रगत करै
उन गांठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खासी, अतिसार, मुखमें पपड़ी
परे हिचकी, वमन, भ्रमता, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना,
मंदाग्नि, ये लक्षण होते हैं इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं यह कफ वायुके
कोपसे उत्पन्न होयहै इस्को सुश्रुतमें अपची कहते हैं ।

कर्दमविसर्पके लक्षण

कफपित्ताज्ज्वरस्तंभो निद्रातंद्राशिरोरुजः । अंगावसादविक्षे-
पप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १५ ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थनापिपा-
संद्रियगौरवम् । आमोपवेशनं लेपः स्रोतसांसविसर्पति ॥ १६ ॥
प्रायेणामाशयं गृण्णन्नैकदेशं न चातिरुक् । पिंडकैरिव कीर्णो-
त्तिपीतलोहितपांडुरैः ॥ १७ ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभोम-
लिनः शोफवानुगुरुः । गंभीरपाकः प्राज्योष्मास्पष्टः क्लिन्नो-
ऽवदीर्यते ॥ १८ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्त्रायुशिरागणः ।
शवगंधिचवीसर्पकर्दमारुह्यमुशंति तम् ॥ १९ ॥

अर्थ—कफपित्तसै ज्वर, अंगोंका जिकड़ना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंग-ग्लानि, हाथ पैरोंका पटकना, वक्काद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हड्ढू-टन, प्यास, इन्द्रीन्का जकड़ना, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों (छिद्रों)में कफका लेप, इसादि लक्षण होते हैं तथा वो विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमें पीडा थोड़ी होय, उसमें सर्वत्र पीली ताम्रके रंगकी, सपेद रंगकी पिडका होय तथा वो विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलिन, सूजन-युक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उन्में घोरदाह हो, और वो दवानेसे तत्क्षण गीली होजाय, तथा वो फटजाय, तथा कीचके समान होकर उसका मांस गल जाय, उसमें शिरा नाडी (नस) ए दीखने लगे, उसमें मुर्दाकीसी वांस आवै, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते हैं ।

क्षतजविसर्पके लक्षण

बाह्यहेतोःक्षतात्कुक्ष्यःसरक्तं पित्तमीरयन् । विसर्पमारुतःकु-
र्यात्कुलित्थसदृशैश्चितम् ॥ २० ॥ स्फोटैःशोथज्वररुजा-
दाहाढ्यं दयावशोणितम् ।

अर्थ—बाह्यकारण कर्के क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वो रु-धिर सहित पित्तको व्रणमें भासकर विसर्परोग उत्पन्न कर, उसमें कुल्थीके समान स्यामवर्णके फोडा होते हैं, सूजनहो, ज्वर होय, और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले, इस विसर्पको पित्तविसर्पके अन्तर्गत जाननेसे संख्यामें विरुद्ध नहीं पड़े अन्यथा संख्या बढ़जाती है यह भोजका मत है ।

उपद्रव

ज्वरातिसारवमथुस्तृणमांसदरणंक्रमः ॥ २१ ॥

अरोचकाविपाकौचविसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्वर, अतिसार, वमन, प्यास, मांसका गलना, अनायास, श्रम, अ-रुचि अन्न न पचना, ये विसर्प रोगके उपद्रव हैं ।

साध्यासाध्य लक्षण

सिध्यन्तिवातकफपित्तकृताविसर्पाः सर्वात्मकःकफकृत-
श्चनसिद्धिमेति । पित्तात्मकौऽजनवपुश्चभवेदसाध्यः कृ-
च्छ्राश्चमर्मसुभवंतिहिसर्वएव ॥ २३ ॥

अर्थ—वात पित्त कफ इन्हीं प्रगट जो विसर्प सो साध्य होय है सन्निपातज, और क्षतज, विसर्प साध्य नहीं होय पित्तसे प्रगट भई विसर्प जिसका काजलके समान अंग होय वो असाध्य, और जो विसर्प मर्म ठिकानेपर होय, वो सब कष्ट-साध्य होय हैं ।

इति श्रीमाधुरीभाषाटीकायां विसर्पनिदानम् ।

विस्फोटनिदानम् ।

लक्षण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च । त-
थर्तुदोषेणविपर्ययेणकुप्यन्तिदोषाःपवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्व-
चमाश्रित्यतेरक्तमांसास्थीनिप्रदूष्यच । घोरान्कुर्वन्तिविस्फो-
टान्सर्वान्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

अर्थ—कडुआ, खट्टा, तीखा, (मरिचादि) गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन, और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अति-योग, अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे, वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर मांस और हड्डी इन्को दूषित कर भयंकर वि-स्फोट (फोडा) उत्पन्न करें उनके प्रगट होनेके पूर्व घोरज्वर होय है ।

विस्फोटस्वरूप

अग्निदग्धनिभाःस्फोटाःसज्वरारक्तपित्तजाः ।

क्वचित्सर्वत्रवादेहेविस्फोटाःइतितेस्मृताः ॥ ३ ॥

अर्थ—रक्तपित्तसँ प्रगट भए ऐसे अग्निके पजरेके समान, फोडा अंगमें कि-सीएक ठिकाने अथवा सब देहमें होय हैं उनके होनेसँ ज्वर होय, उन्को विस्फोट ऐसे कहतेहैं इस रोगमेंभी वातका अनुबंध होय है सो भोजन कहा है ।

वातविस्फोटके लक्षण

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठज्वरतृट्पर्वभेदनम् ।

१ यदाह भोजः—यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि । अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुतः सर्व देहगान् । सज्वरान् सपरीदाहान् विद्याद्विस्फोटकास्तु तानिति ।

सुकृष्णवर्णताचेतिवातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधीन्में पीडा, फोडान्का वर्ण काला होय, ये वातविस्फोटके लक्षण हैं ।

पित्तविस्फोटके लक्षण

ज्वरदाहरुजास्त्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।

पीतलोहितवर्णचपित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्वर, दाह पीडा, साव, फोडान्का पकना, प्यास, देह पीली हो, अथवा लाल होय, ए पित्तविस्फोटके लक्षण हैं ।

कफविस्फोटके लक्षण

छर्द्यरोचकजाड्यानि कंडूकाठिन्यपांडुताः ।

अवदेनश्चिरात्पाकीसविस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, जडता, तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले, और उनमें पीडा होय नहीं, और वे बहुत कालमें पके, यह विस्फोट कफका जानना ।

कफपित्तात्मक विस्फोट

कंडूदाहोज्वरश्छर्दिरेतैस्तुकफपैत्तिकः ।

अर्थ—खुजली, दाह, ज्वर, और वमन, इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोट जानना ।

वातपित्तात्मकके लक्षण

वातपित्तकृतोयस्तुकुरुतेतीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

अर्थ—वातपित्तके विस्फोटमें तीव्र पीडा होती है ।

कफवातात्मकके लक्षण

कंडूस्तेमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ।

अर्थ—खुजली, गीलापना, भारीपना, इन लक्षणोंसे कफवातका विस्फोट जानना ।

सन्निपातविस्फोटके लक्षण

मध्येनिस्त्रोन्नतोंऽत्तेचकठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥ ८ ॥ दाहरा-
गतृषामोहछर्दिमूर्च्छारुजोज्वरः । प्रलापोवेपथुस्तंद्रासोऽसा-
ध्यश्चन्निदोषजः ॥ ९ ॥

अर्थ—जो फोडा बीचमें नीचा होय, और ओरपाससँ ऊँचा होय, कठिन, कुछ पका होय है, तथा जिसके योगसँ दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तन्द्रा, ये लक्षण होते हैं वो सन्निपातका विस्फोट असाध्य हैं ।

रक्तजविस्फोटके लक्षण

रक्तारक्तसमुत्थानागुंजाफलनिभास्तथा । वेदितव्यास्तुरक्ते-

नपैत्तिकेनचहेतुना । नतेसिद्धिसमायांति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १० ॥

अर्थ—रुधिरसँ प्रगट भया विस्फोट तामेंके रंगका गुंजा (चिरमिटि)के समान लाल, वो रुधिरके दुष्ट होनेसँ अथवा पित्तके दुष्ट होनेसँ होय है, इसमें सँ-कड़ों अनुभवकरी औषधके करनेसँबी साध्य नहीं होय ।

साध्यासाध्यविचार

एकदोषोत्थितःसाध्यःकृच्छ्रात्साध्योद्विदोषतः ।

सर्वरूपान्वितोघोरस्त्वसाध्योभूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

अर्थ—एकदोषसँ प्रगट भया जो विस्फोट वो साध्य है, द्विदोषका कष्ट साध्य है, और सर्व लक्षणयुक्त होय सो भयंकर तथा जिसमें उपद्रव बहुत होय वो विस्फोट असाध्य है ।

उपद्रव

हिक्काश्वासोऽरुचिस्तृष्णाअंगसादोद्विद्व्यथा ।

विसर्पज्वरदृष्टासाविस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १२ ॥

अर्थ—हिचकी, श्वास, अरुचि, प्यास, अंगग्लानि, हृदेमें पीडा, विसर्परोग, ज्वर, वमन ये विस्फोटके उपद्रव जानना ।

इति विस्फोटनिदानं समाप्तम् ।

मसूरिकानिदानम् ।



कारण और संप्राप्ति

कटुम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दुष्टनिष्पावशाका-
दिप्रदुष्टपवनौदकैः ॥ १ ॥ क्रुद्धग्रहेक्षणाद्वापिदेहेदोषाःसमु-

द्वताः । जनयन्तिशरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेनसंगताः ॥ २ ॥ मसू-
राकृतिसंस्थानाःपिडिकाःस्युर्मसूरिकाः ।

अर्थ—कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिबीबीज उरद गुंग) आदि शाक, वि-
बेल फूल आदिसँ मिला पवन, तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना, इन
सबकारणोंकरके शरीरमें वातादिदोष क्लृप्तहोकर दुष्टे रुधिरमें मिलकर मसूरके
समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करे, उनको मसूरिका (माता) ऐसँ कहते
हैं । दुष्टरक्तेन संगता इस पदके धरनेसे रुधिरका कटु अम्लादि हेतुकरके वि-
शेषकोप दिखाया, इसीसँ ग्रन्थांतरोंमें लिखावी है ।

मसूरिकाके पूर्वरूप

तासांपूर्वज्वरःकंदूर्गात्रिभंगोऽरुचिभ्रमः ॥ ३ ॥

त्वचिशोफःसवैवर्ण्येनेत्ररागस्तथैवच ।

अर्थ—तिसमाता (शीतला) के पूर्व ज्वर होय है, खुजली चले, देहमें फूटनी
होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण
पलटजाय, नेत्र लाल होय, ए शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ।

वातकी मसूरिकाके लक्षण

स्फोटाःऋणारुणारूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः ॥ ४ ॥ कठिना-
श्चिरपाकाश्चभवन्त्यनिलसंभवाः । संध्यस्थिपर्वणांभेदःकासः-
कंपोऽरतिःक्लमः ॥ ५ ॥ शोपस्ताल्वोष्ठजिह्वानांतृष्णाचारु-
चिसंयुता ।

अर्थ—वातमसूरिकाके फोडा काले, लाल, और रूक्ष, होतेहैं उनमें तीव्र पीडा
होय, कठिन होय, शीघ्र पकें नहीं, इसके योगसँ संधिहाड और पर्वोंमें फोडने-
कीसी पीडा होय, सांसी, कंप, चित्त स्थिर न हो, बिना परिश्रमके श्रम होय,
तालुआ, होठ, और जीभ, ए सूखने लगे, प्यास, अरुचि, ए लक्षण होते हैं ।

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण

रक्ताःपीताःसिताःस्फोटाःसदाहास्तीव्रवेदनाः ॥ ६ ॥ भवं-

१ पित्तं शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम् । तदाकरोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम् ॥
मसूरमुद्गमापाणा तुल्याः कालोपमा इति । मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ताधिका नृधैरिनि ॥

त्यचिरपाकाश्चपित्तकोपसमुद्भवाः । विद्भेदश्चांगमर्दश्चदाह-
स्तृष्णाऽरुचिस्तथा ॥ ७ ॥ मुखपाकोऽक्षिपाकश्चज्वरस्ती-
क्ष्णःसुदारुणः ।

अर्थ—पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सपेद होय है उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय, और ये शीतला शीघ्र पके, इसके योगसै मल पतला होय, अंग दूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक, और नेत्रपाक होय ज्वर तीव्र हो ए लक्षण होय ।

रक्तजमसूरिकाके लक्षण

रक्तजायांभवंत्येतेविकाराःपित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

अर्थ—रक्तजमसूरिकामें पित्तजमसूरिकाके लक्षण होते हैं ।

कफजमसूरिकाके लक्षण

कफप्रसेकःस्तैमित्यंशिरोरुग्गात्रगौरवम् । हृल्लासःसारुचि-
र्निद्रातंद्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥ श्वेताःस्निग्धाभृशंस्थूलाः
कंदूरामंदवेदनाः । मसूरिकाःकफोत्थाश्चचिरपाकाःप्रकी-
र्तिताः ॥ १० ॥

अर्थ—कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता, तथा भारीपना, मस्तकमें शूल, वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, ये होय, और फोडा, सपेद चिकने अत्यंत मोटे होय इन्में खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय, और वे बहुत दिनमें पकें ।

त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णामध्येनिन्नामहारुजः ।

चिरपाकाःपूतिस्त्रावाःप्रभूताःसर्वदोषजाः ॥ ११ ॥

अर्थ—त्रिदोषज मसूरिकाके फोडा नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होय, उन्में पीडा अत्यंत होय, तथा वे बहुत दिनमें पकें, और उन्मेंसे दुर्गंधयुक्त स्राव होय, वे फोडा सर्व दोषके बहुत होय हैं ।

चर्मपिट्ठका

कंठरोधोऽरुचिस्तंद्राप्रलापारतिसंयुताः ।

दुश्चिकित्स्याःसमुद्दिष्टाःपिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

अर्थ-जिसफोडाके होनेसे कंठ रुकजाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप, चैन न पडना ये लक्षण होते हैं जिन्की औषधि नहीं होसकै ऐसी चर्मसंज्ञक पिडका जाननी ।

रोमांतिक

रोमकूपोन्नतिसमारागिण्यःकफपित्तजाः ।

कासारोचकसंयुक्तारोमांत्याज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

अर्थ-कफ पित्तसै केशोंके (वालोंके) छिद्रके समान बारीक, और लाल, ऐसी मसूरिका होय इनके होनेसे खांसी, अरुचि होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय, इन्को रोमांच (कसूमीमाता) ऐसे कहते हैं ।

रसादि सप्तधानु

रसगतमसूरिकान्के लक्षण

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्चमसूरिकाः ।

स्वल्पदोषाःप्रजायन्तेभिन्नास्तोयंस्त्रवंतिच ॥ १४ ॥

अर्थ-रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हो, इनके फूटनेसे पानी बहै, यह त्वग्गत मसूरिका है कारण इस्का यह है कि दोष स्वल्प है ।

रक्तगतमसूरिकाके लक्षण

रक्तस्थालोहिताकाराःशीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।

साध्यानात्यर्थदुष्टास्तुभिन्नारक्तंस्त्रवंतिच ॥ १५ ॥

अर्थ-रुधिरगत मसूरिका तामेके रंगकी, जलदी पकनेवाली होती हैं उनके ऊपरली त्वचा पतली होय है, यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं होय और इस्के फूटनेसे इस्मेंसे रुधिर निकले ।

मांसगतके लक्षण

मांसस्थाःकठिनास्निग्धाभिरपाकास्तनुत्वचः ।

गात्रगूलोऽरतिःकंडूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ १६ ॥

अर्थ-मांसस्थ मसूरिका कठिन, चिकनी, होय है ये बहुत दिनमें पके तथा इस्की त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा दाह और प्यास ए लक्षण होते हैं ।

मेदोगतके लक्षण

मेदोजामंडलाकारामृदवःकिंचिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च

स्थूलाःकृष्णाःसवेदनाः । संमोहारतिसंतापाःकश्चिदाभ्योवि-
निस्तरेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—भेदोगतमसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम कुछ ऊंची मोटी तथा काली होय है, इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्री मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप, ए लक्षण होते हैं इस मसूरिकासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा इसमें यह दिखाया कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है ।-

अस्थिमज्जागतके लक्षण

अस्थिगात्रसमारूढाश्चिपिटाःकिंचिदुन्नताः । मज्जोत्थाभृश-
संमोहवेदनारतिसंयुताः ॥ १८ ॥ छिंदंतिमर्मधामानिप्रा-
णानाशुहरंतिताः । भ्रमरेणेवविद्वानिभवंत्यस्थीनिसर्वतः॥१९॥

अर्थ—अस्थिमज्जागतमसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होय है, असन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ए होते हैं तिन मर्मस्थानोंके भेदकर्के शीघ्र प्राणहरण करे इसके होनेसे सर्व हड्डीमें भोंराके काटनेके समान पीडा होय है ।

शुक्रगतके लक्षण

पक्वाभाःपिडिकाःस्निग्धाःश्लक्षणाश्चात्यर्थवेदनाः । स्तौमित्या-
रतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ २० ॥ शुक्रजायामसू-
र्यांतुलक्षणानिभवंतिच । निर्दिष्टंकेवलंचिह्नंदृश्यतेनतुजी-
वितम् ॥ २१ ॥

अर्थ—शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी, अलग अलग होय है इन्में असंत पीडा होय, इनके होनेसे गीलापना अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ए लक्षण होते हैं रोगी वचै ऐसे इसमें कोई लक्षण नहीं दीखे इसीसे इसको असाध्य जानना ।

सप्तधातुगतमसूरिकाके दोषके संबंधसे लक्षण कहते हैं
दोषमिश्रास्तुसप्तैताद्रष्टव्यादोषलक्षणैः ।

अर्थ—ये सप्तधातुगतमसूरिका वातादिकोंके लक्षणोंके तिन दोषोंके मिश्रित प्रगट भई जाननी ।

धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौनकौन साध्य है सो कहते हैं
त्वग्गतारक्तजाश्चैवपित्तजाःश्लेष्मजास्तथा ॥ २२ ॥ पित्त-
श्लेष्मकृताश्चैवसुखसाध्यामसूरिकाः । एताविनापिक्रियया
प्रशाम्यन्तिशरीरिणाम् ॥ २३ ॥

अर्थ—रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य
है ए औषधके विनाभी शांति होय हैं ।

कष्टसाध्य

वातजावातपित्तोत्थावातश्लेष्मकृताश्चयाः ।

कृच्छ्रसाध्यामतास्तास्तुयत्नादेताउपाचरेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—वातज, वातपित्तज, वातकफज, मसूरिका कष्टसाध्य हैं इनकी यत्नपूर्-
वक चिकित्सा करै ।

असाध्यमसूरिकाके लक्षण

असाध्याःसन्निपातोत्थास्तासांवक्ष्यामिलक्षणम् । प्रवालंस-
दृशाःकाश्चित्काश्चिजंबूफलोपमाः ॥ २५ ॥ लोहजालसमाः
काश्चिदतसीफलसन्निभाः । आसांबहुविधावर्णजायन्तेदो-
षभेदतः ॥ २६ ॥

अर्थ—सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं उनके लक्षण कहताहूं, कोई मुंगाके
समान लाल होय, कोई जामनके समान, और कोई लोहजालके समान, तथा
अलसीके बीजके समान होय हैं दोषोंके भेदकके इनके अनेकप्रकारके रंग होते हैं ।

सर्वमसूरिकाके अवस्थाविशेषकके लक्षण

कासोहिक्काथमोहश्चज्वरस्तीव्रःसुदारुणः । प्रलापारतिमू-
र्च्छाश्चतृष्णादाहोऽतिधूर्णताः ॥ २७ ॥ मुखेनप्रस्त्रवेद्वक्तंत-
थाघ्राणेनचक्षुपा । कंठेधुर्धुरकंकट्वाश्वसित्यत्यर्थदारुणम्
॥ २८ ॥ मसूरिकाभिभूतोयोभृशंघ्राणेननिःश्वसेत् । सभृ-
शंत्यजतिप्राणान्तृष्णार्तोवायुदूषितः ॥ २९ ॥

अर्थ—खोसी, हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, असंतोष, मूर्च्छा, प्यास,
दाह, नेत्र टेढ़े, तिरछे, बोंके फटेने ए लक्षण होते हैं मुख, नाक और नेत्र इनके

मार्ग होकर रुधिर गिरे, कंठमें घरघर शब्द होय, और भयंकर श्वास ले, जो मसूरिकापीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय, वो पुरुष वायु और तृपा इन्हीं पीडित होत संते तत्काल प्राण त्याग करे ।

मसूरिकाके उपद्रव

मसूरिकातिशोथः स्यात्कूर्परेमणिबंधके ।

तथांसफलकेवापिदुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३० ॥

अर्थ—मसूरिका(शीतला)के अंतमें कूर्पर पहुंचा, तथा कंधा, इन्में सूजन होय (इस्के व्यवहारमें गुरु ऐसे कहते हैं) यह चिकित्सा करनेमें कठिन है ।

इति श्रीमाधुरीभाषाटीकायां मसूरिकानिदानं समाप्तम्

क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अजगल्लिका

स्निग्धासवर्णाग्रथितानीरुजामुद्रसन्निभा ।

कफवातोत्थिताज्ञेयाबालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

अर्थ—बालककै कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णके समान वर्ण होय, गाँठ-सी बंधी, रुजा(पीडा)रहित, तथा भ्रूंगके सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं ।

यवप्रख्याके लक्षण

यवाकारासुकठिनाग्रथितामांससंश्रिता ।

पिडिकाश्लेष्मवाताभ्यांयवप्रख्येतिचोच्यते ॥ २ ॥

अर्थ—कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गाँठके सदृश मांसमिश्रित, जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं भोजके मतसे इस्को (अंघालजी कहते हैं) ।

अंघालजी

घनामवक्रांपिटिकामुन्नतांपरिमंडलम् ।

अंघालजीमल्पपूयांतांविद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

१ श्लेष्मानिली श्रितौ स्नायुं पिडिकां पित्तमंडलम् । दुष्टौ जनयतो वक्रामल्पपूयामकण्डुरा-
म् । आमोदुस्तरसंकाशां विद्यादन्त्रालजीं तु ताम् ।

अर्थ—कफवातसँ प्रगट कठिन जिस्में मुख न हो, तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय, तथा जिस्के चारों और मंडलाकार हो, और जिस्में राध थोड़ी होय, उसको अंधालजी ऐसे कहते हैं ।

विवृतापिडिकाके लक्षण

विवृतास्यामहादाहंपक्रोदुंबरसन्निभाम् ।

परिमंडलापित्तकृतांविवृतानामतांविदुः ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तके योगसँ फटे मुखकी, असन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारों और बल पड़ी हुई, जो पिडिका होय उसको विवृता ऐसे कहते हैं ।

कच्छपिकाके लक्षण

ग्रथिताःपंचबाषड्वादारुणाःकच्छपोन्नताः ।

कफानिलाभ्यांपिडिकाज्ञेयाकच्छपिकाबुधैः ॥ ५ ॥

अर्थ—कफ वायूसँ प्रगट गाँठ बंधी, पाँच, अथवा छः, कठिन कछुआके पीठके समान ऊंची जो पिडिका होय उसको कच्छपिका ऐसे कहते हैं ।

वल्मीकपिडिकाके लक्षण

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशेसंधौगलेवात्रिभिरेवदोषैः । ग्रंथिःस-

वल्मीकवदक्रियाणांजातःक्रमेणैवगतःप्रवृद्धिम् ॥ ६ ॥ मु-

खैरनेकैःस्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पतिचोन्नताग्रैः । वल्मीक-

माहुर्भिषजोविकारंनिष्प्रत्यनीकंचिरजंविशेषात् ॥ ७ ॥

अर्थ—कंठ, कंधा, कूख, हाथ, पैर, संधि, गला इनठिकाने तीनों दोषोंसँ सर्पकी -वांवीके समान गाँठ होय, उसका उपाय न करै तब वो धीरेधीरे बढ़ै, उसमें अनेकगुल होजाय, उनमेंसे साव होय, नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह गुलके ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैलजाय, इस रोगको वैद्य वल्मीक ऐसे कहते हैं इसके ऊपर औषधी उपचार नहीं चलै और पुराने होनेसे विशेष असाध्य जाननी ।

इन्द्रवृद्धाके लक्षण

पद्मकर्णिकवन्मध्येपिडिकाभिःसमाचिताम् ।

इंद्रवृद्धांतुतांविद्याद्वातपित्तोत्थितांभिषक् ॥ ८ ॥

अर्थ—कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडका होय, उसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसी होंय, उसको इन्द्रवृद्धा ऐसे कहते हैं यह वातपित्तसँ उत्पन्न होयहै ।

गर्दभिकाके लक्षण

मंडलंवृत्तमुत्सन्नसरक्तपिटिकाचितम् ।

रुजाकर्णीगर्दभिकांतांविद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—वातपित्तसँ प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोडानसै व्याप्त ऐसा मंडल होय, वो बहुत दूखे, उसको गर्दभिका ऐसे कहते हैं ।

पाषाणगर्दभलक्षण

वातश्लेष्मसमुद्भूतःश्वयथुर्हनुसंधिजः ।

स्थिरोमंदरुजःस्निग्धोज्ञेयःपाषाणगर्दभः ॥ १० ॥

अर्थ—वातकफसँ ठोड़ीकी संधिमें कठिन, मंद पीडा करनेवाली, चिकनी, ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ ऐसे कहते हैं ।

पनसिका

कर्णस्याभ्यन्तरेजातांपिडिकामुग्रवेदनाम् ।

स्थिरापनसिकांतांतुविद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥

अर्थ—कानके भीतर वात पित्त कफसँ जो फुंसी उग्रवेदनासहित प्रगट होय, और वह स्थिर होय, उसको पनसिका कहते हैं ।

जालगर्दभके लक्षण

विसर्पवत्सर्पितयःशोथस्तनुरपाकवान् ।

दाहज्वरकरःपित्तात्सज्ञेयोजालगर्दभः ॥ १२ ॥

अर्थ—पित्तसँ विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली पतली, तथा कुछ पकनेवाली, ऐसी सूजन होय उसमें दाह होय, और ज्वर होय, इसको जालगर्दभ कहते हैं कोई आचारी कहते हैं कि इसमें पकता नहीं होय यथा ।

१ कफवातौ प्रकुपितौ मांसमाश्रित्य कर्णयोः । समन्ततः परिस्तब्धां कुरुतः पिडिकां स्थिराम् ॥ विपमां दाहसंयुक्तां विद्यात्पनसिकान्तु ताम् ।

२ पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयन्ति त्वगाश्रिताः । श्यावं रक्तं तनुं शोथमपाकं बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम् । विसर्पमाहुस्तं व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥

इरिवेष्टिकाके लक्षण

पिडिकामुत्तमांगस्थावृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।

सर्वात्मिकांसर्वलिङ्गाजानीयादिरिवेष्टिकाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—त्रिदोषसँ प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रि-
दोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको इरिवेष्टिका कहते हैं ।

कक्षा(कखलाई)के लक्षण

बाहुकक्षांसपार्श्वेषुकृष्णस्फोटांसवेदनाम् ।

पित्तकोपसमुद्भूतांकक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—बाहु (श्रुजा) की जड़ कंधा और पसवाड़े इन ठिकाने पित्त कुपित
होकर काले फोडान्में व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको कक्षा
वा कखलाई कहते हैं ।

गंधनाम्नीके लक्षण

एकामेतादृशीदृष्ट्वापिडिकांस्फोटसन्निभाम् ।

त्वग्गतांपित्तकोपेनगंधनाम्नीप्रचक्षते ॥ १५ ॥

अर्थ—पित्तके कोपसँ जो एक पिडिका फोडाके समान बड़ी त्वचाके भीतर
होय, उसको गंधनाम्नी ऐसे कहते हैं ।

अग्निरोहिणी (काली कुंसी)

कक्षाभागेषुयेस्फोटाजार्थतेमांसदारुणाः । अंतर्दाहज्वरक-

रादीप्तपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वाद्दशाहाद्वापक्षाद्वा

हन्तिमानवम् । तामग्निरोहिणींविद्यादसाध्यांसान्निपातिकीम् १७

अर्थ—कांखके आसपास मांसके विदारणकरनेवाले जो फोडा होते हैं तिस-
कके अंतर्दाह होय, तथा ज्वर होय, वो फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल
होंय, इन फोडान्में वायु अधिक होनेसँ सात दिन, पित्ताधिकसँ बारें दिन, और
कफाधिकसँ ५ दिनमें, रोगी मरे यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका
असाध्य है यह कठिन है ।

चिप्यके लक्षण

नखमांसमधिष्ठायवातःपित्तंचवेहिनाम् ।

कुर्वातेदाहपाकौचतंव्याधिचिप्यमादिशेत् ॥ १८ ॥

तदेवाल्पतरैर्दोषैःकुनखंपरुषंवदेत् ।

अर्थ—वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह, और पाकको करे, इस रोगको चिप्य ऐसे कहते हैं यह अल्प दोषोंसे होय तो इस्को कुनख कहते हैं ।

अनुशयके लक्षण

गंभीरामल्पसरंभांसवर्णामुपरिस्थिताम् ।

पादस्यानुशयीतातुविद्यादंतःप्रपाकिनीम् ॥ १९ ॥

अर्थ—पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय, उस्को अनुशयी ऐसे कहते हैं ।

विदारिकाके लक्षण

विदारीकंदवट्टाकक्षावंक्षणसंधिषु ।

विदारिकाभवेद्रक्तासर्वजासर्वलक्षणा ॥ २० ॥

अर्थ—विदारी कंदके समान गोल, कांसमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तामेके रंगकीसी होय, उस्को विदारिका ऐसे कहते हैं यह सन्निपातसे होय है अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

शर्करा

प्राप्यमांसंशिरास्त्रायूःश्लेष्मामेदस्तथानिलः । ग्रंथिकरोत्य-

सौभिक्षोमधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २१ ॥ स्रवत्यास्त्रावमनिल-

स्तत्रवृद्धिगतःपुनः । मांसंविशोष्यग्रथितांशर्करांजनयेत्ततः ॥ २२ ॥

अर्थ—कफ मेद और वायु ये मांस शिरा और स्त्रायु इन्में प्राप्त हो गांठ बांधते हैं, जब वो फूटे तब उसमेंसे सहत, घृत, चर्बी, इन्के समान स्राव हो तिसर्कके वायु पुनः बढ़कर मांसको सुखाय उस्की धारीक खिचीसी गांठ करे, उस्को शर्करा कहते हैं ।

शर्करावृद्धके लक्षण

दुर्गंधिक्लिन्नमत्यर्थनानावर्णततःशिराः ।

सृजंतिरक्तंसहसातद्विद्याच्छर्करावृद्धम् ॥ २३ ॥

अर्थ—शर्करा होनेके अनन्तर नाडीसे दुर्गंध छेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका

(घृत, मेद, और वसा, इनके वर्णका) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं परंतु भोजने शर्करार्बुदको शर्करारोगके अंतर्गत कहा है ।

पाददारीके लक्षण

परिक्रमणशीलस्यवायुरत्यर्थरूक्षयोः ।

पादयोःकुरुतेदारीसरुजांतलसंश्रिताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस पुरुषको बहुत चलना पड़े है उसके पैर वायूके योगसे अत्यंत रूक्ष होकर पैरोंके तलुओं विदीर्ण कर दे (फाडदे) उसको पाददारी कहते हैं अर्थात् बिषाई कहते हैं विपादिका कुछ फटे नहीं है, फूट निकले है, यह इन्में भेद जानना ।

कदर (ठेक)के लक्षण

शर्करोन्मथितेपादेक्षतेवाकंटकादिभिः ।

ग्रंथिःकोलवदुत्सन्नोजायतेकदरंतुतत् ॥ २५ ॥

अर्थ—पैरोंमें कंकर छिदनेसे अथवा कांटे लगनेसे वेरके समान ऊंची गांठ प्रगट होय, उसको कदर अर्थात् ठेक कहते हैं अथवा 'ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो' इस जगे 'ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो' पैसाबी पाठ है अर्थात् कीलके समान जो गांठ होय, उसको कदर- कहते हैं यह कदररोग हाथोंमेंभी होय है सो भोजने लिखावी है ।

अलस (खारुआ)के लक्षण

क्लिन्नांगुल्यंतरौपादौकंदूदाहरुजान्वितौ ।

दुष्टकर्मसंस्पर्शादलसंतंविभावयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—दुष्ट-कीचमें डोलनेसे, (वर्षाआदिका पानी और सड़ी कीचमें डोलनेसे) पैरोंकी उंगली गीली रहनेसे, उंगलियोंके बीचमें (सपेद सपेद चकत्ता होजाय) उन्में खुजली, दाह, और गीलापन होय, तथा पीडा होय, उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं यह कफरक्तके दोषसे होता है ।

इंद्रलस (चार्ई)के लक्षण

रोमकूपानुगंपिचंवातेनसहमूर्च्छितम् । प्रच्यावयतिरोमाणि

१ तमेव भिन्नदुर्गंधं घृतमेदोनिभं गिराः । स्रवंति स्नावमनिगं तदा स्याच्छर्करार्बुदम् ॥ १ ॥

२ हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं स्थिरं । मासकील जनयतः कुपितौ कफमारुतौ ॥ १ ॥
सशल्पमिव त देशं मन्यते तेन पीडितं । शर्कराकदर केचिन्मन्यते वातकंटकम् ॥ इति ।

ततःश्लेष्मासशोणितः ॥ २७ ॥ रुणद्धिरोमकूपांस्तुततोऽन्ये-
षामसंभवः । तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं प्राहुश्चाचेतिचापरे ॥ २८ ॥

अर्थ—पित्त वादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् वालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्य स्थानके बाल झड़ने लगें, पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये वालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोकदे, उससे फेर बाल नहीं ऊगें, इस रोगको इन्द्रलुप्त खालित्य चाचा (चार्च) कहते हैं यह रोग स्त्रीके नहीं होय, कारण इसका यह है कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता रहै है और निकलता रहै है, इसीसँ वो रोमकूपोंको नहीं रोके है, सो विदेहाचार्यने लिखावी है और इसी रोगके खालित्य और रुद्धा कहते है सो भोजने लिखा है परंतु कार्तिकाचार्य कहता है कि इन्द्रलुप्त रोग मूछ, डाढीमें होय है और खालित्यरोग सिरमें होय है और रुद्धारोग पीडासहित होय है ।

दारुणकके लक्षण

दारुणाकंदुसरूक्षाकेशभूमिःप्रपच्यते ।

कफमारुतकोपेनविद्याद्वारुणकंतुतम् ॥ २९ ॥

अर्थ—कफवायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होंय, तथा बारीक फुंसी होकर पकें, उसको दारुणक ऐसे कहते हैं कफवातके कोपसे यह रोग होय है इसका कारण यह है कि विना पित्तके पाक नहीं होय, सो विदेहने कहावी है ।

अरूपिकाके लक्षण

अरूपिबहुवक्राणिबहुक्लेदानिमूर्धनि ।

कफासृक्कमिकोपेननृणांविद्यादरूपिकाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—रुधिर कफ और कृमि इनके कोपसँ माथेमें बहुत फुंसी होजाय, उन्मेंसे चेष विशेष निकरे और क्लेदयुक्त होंय इन फुंसीको अथवा व्रणोंको अरूपिका कहते हैं ।

१ अत्यंतसुकुमाराणां रजोदुष्टं स्रवंति च । अव्यायामवता यस्मात्तस्मान्न खलतिःस्त्रियाः ॥ १ ॥ इति ।

२ यदत्र पटलाभासं सरजस्कं शिरस्त्वचि । परुषं जायते जंतोस्तस्य रूपं विशेषतः ॥ १ ॥ तोदैः समन्वितं वानसकण्डु गौरवं कफात् । सपिपासं सदाहार्तिरागं पित्तास्रजं तथा ॥ २ ॥

पलित(सपेदबाल)के लक्षण

क्रोधशोकश्रमकृतःशरीरोष्माशिरोगतः ।

पित्तचक्रेक्षान्पचतिपलितंतेनजायते ॥ ३१ ॥

अर्थ—क्रोध शोक और श्रमके करनेसे, उत्पन्न भई जो शरीर ऊष्मा (गरमी) और पित्त से मस्तकमें जायकर वालोंको पकाय दे, अर्थात् सपेद करदे उसकर्के यह पलितरोग होय है पलित रोगपर मधुकोशटीकाकारने तथा भावप्रकाशने शास्त्रार्थ लिखा है ।

मुखदूषिकाके लक्षण

शाल्मलीकंटकप्रख्याःकफमारुतकोपजाः ।

जायन्तेपिडिकायूनांविज्ञेयामुखदूषिकाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—कफवायुके कोपसै सेमरके कांटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुंसी होंय, उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं इनके होनेसे मुख बुरा होजाता है ।

पद्मिनीकंटकके लक्षण

कंटकैराचितंतृत्तमंडलंपाण्डुकण्डुरम् ।

पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यंकफवातजम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—कमलके कांटेके समान कांटे चारों और युक्त हो, गोल पीले रंगका, खुजली जिस्मे चलती होय, ऐसा एक मंडल होय, उसको पद्मिनीकंटक ऐसे कहते हैं यह कफवायुसे होय है ।

जंतुमणि (लहसन)के लक्षण

सममुत्सन्नमरुजंमंडलंकफरक्तजम् ।

सहजंलक्ष्मचैकेषालक्ष्योजंतुमणिःस्मृतः ॥ ३४ ॥

अर्थ—कफरक्तसै जन्मसैंही मगट भई समान, तथा कुछ ऊंचा, जिस्में पीड़ा होय नहीं, ऐसा गोल मंडलके समान देहमें चिन्ह होय, उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसे कहते हैं यह स्त्रीपुरुषोंके अंगभेदकर्के शुभाशुभ फलदायक है ।

माष (मस्ता)के लक्षण

अवेदनंस्थिरंचैवयस्मिन्गात्रेप्रदृश्यते ।

मापवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—वादीसै शरीरके ऊपर उड़दके समान काला, पीडारहित, खिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय, उसको माष (मस्सा) ऐसैं कहते हैं इस श्लोकमें जो चकार है उससै कफमेदसेभी मस्से होते हैं यह दिखाया सो (ओर्जने) कहावी है ।

तिलकालक (तिल)के लक्षण

कृष्णानितिलमात्राणिनीरुजानिसमानिच ।

वातपित्तकफोत्सेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—वात पित्त कफके कोपसै काले तिलके समान पीडारहित त्वचासै मिल ऐसे अंगमें दाग होय उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं (वात पित्त कफोत्सेकात्) इस पाठमें वात पित्त हेतुककें कफका शोष होय है उसीसे तिल होते हैं पस्तु चरकके मतसै पित्त रुधिरके शोष होनेसै तिल होते हैं । यस्य पित्तं प्रकुपितं शोणितं प्राप्य शुष्यति । तिलकः पित्तपका व्यंगा नीलिका चास्य जायते ॥ इस वचनसै वातवी रुधिरको शोषण करै है अन्य ग्रंथमें वात पित्त कफ ए तीनों रुधिरको शोषण करै हैं ।

यथा

मारुतःपित्तमादायकफरक्तसमाश्रितः ।

चिनोतितिलमात्राणित्वचितेतिलकालकाः ॥ ३७ ॥ इति ।

न्यच्छके लक्षण

महद्वायदिवाऽत्यल्पंशवंवायदिवासितम् ।

नीरुजंमण्डलंगात्रेन्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

अर्थ—गुत्तके बिना अन्य स्थानमें शरीरके ऊपर बड़ा, अथवा छोटा, काला, अथवा सपेद, और पीडारहित दाग होय, उसको न्यच्छ कहते हैं येवी व्यंगका भेद है ।

व्यंग (झाड़)के लक्षण

क्रोधायासप्रकुपितोवायुःपित्तेनसंयुतः । मुखमागत्यसहसा

१ वानेरिते त्वचि यदा दूष्यते कफमेदसी । श्लेष्मं मृदुसवर्णं च कुरुते मापकं वदेत् ॥ १ ॥

मण्डलं विसृजत्यतः ॥ ३९ ॥ नीरुजंतनुकंशावंमुखे व्यंगं तमा-
दिशेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—क्रोध और श्रम इन्सै कुपित भया वायू सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे, वो दूखे नहीं वो पतला तथा श्यामवर्ण होय, उसको व्यंग ऐसे कहते हैं ।

नीलिकाके लक्षण -

कृष्णमेवंगुणंगात्रे मुखे वानीलिकां विदुः ॥ ४१ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय अथवा मुखपर होय-उसको नीलिका कहते हैं भोजने इस जगे नीलिकागात्र ऐसा कहा है अर्थात् सर्व देह नीली होय है ।

परिवर्तिकाके लक्षण

मर्दनात्पीडनाद्वापितथैवाप्यभिघाततः । मेदूचर्मयदावायुर्भ-
जते सर्वतश्चरन् ॥ ४२ ॥ तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्मपरिवर्तते ।
मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते ॥ ४३ ॥ सवेदनं सदा-
हंचपाकंचत्रजतिक्वचित् । परिवर्तिकातितां विद्यात्सरुजां वात-
संभवाम् ॥ ४४ ॥ सकंदूःकठिनावापिसैव श्लेष्मसमुत्थिता ।

अर्थ—लिंगको मर्दन करनेसे, अथवा रगड़नेसे उसी प्रकार लिंगमें किसी प्र-
कारकी चोट लगनेसे, व्यानवायू कुपित होकर उसके चर्ममें प्रवेश कर सर्वत्र वि-
चरे, उस समय वातसंस्पर्श हेतु कर्के लिंगकी चर्म पृथक् होजाय, और शिशका
कोश सूजकर मणीके नीचे गाँठके समान होकर लटके, उसमें पीडा होय, दाह
होय, और कभी कभी वो पकजाय, इस पीडाको परिवर्तिका कहते हैं यह
वातसे होय है और जो कफसे होय तौ उसमें खुजली तथा कठिनता होय ।

अवपाटिकाके लक्षण

अल्पीयः स्वांयदाहर्षाद्बलाद्बल्लेत्स्त्रियं नरः ॥ ४५ ॥ हस्ताभि-
घातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् । मर्दनात्पीडनाद्वापिशुक्र-

१ मारुतः क्रोधहर्षाभ्यामूर्ध्वगो मुखमाश्रितः । पित्तेन सहसंयुक्तः करोति वदनत्वचि ॥ १ ॥
नीरुजंतनुकं श्यावं व्यंगं तमिति निर्दिशेत् । कृष्णमेव त्वकं गात्रे नीलिकां तां विनिर्दिशेत् ॥ इति ।

वेगविघाततः ॥ ४६ ॥ यस्यावपाट्यतेचर्मताविद्यादवपाटि-
काम् ।

अर्थ—जिसकी योनिका छिद्र वारीक होय, ऐसी स्त्रीसँ बलपूर्वक मैथुन करनेसे अथवा हाथके अभिघातसे (चोटसे) बलसे लिंगके चामको उलटनेसँ, अथवा मीडनेसँ, अथवा जोरपूर्वक दावनेसँ, अथवा शुकके वेगको धारण करनेसँ, उस पुरुषके लिंगकी चाम फटजाय, इस पीडाके अवपाटिका कहते हैं यह अव-पाटिका रोगमें तीनो दोषोंके लक्षण पृथक् पृथक् होते हैं यह (मर्त भोजका है)

निरुद्धप्रकाशके लक्षण

वातोपसृष्टेमेद्रेतुचर्मसंश्रयतेमणिम् ॥ ४७ ॥ मणिश्चर्मोप-
नद्धस्तुमूत्रस्रोतोरुणद्धिच । निरुद्धप्रकाशे तस्मिन्मन्दधारमवे-
दनम् ॥ ४८ ॥ मूत्रप्रवर्ततेजंतोर्मणिर्विब्रीयतेनच । निरु-
द्धप्रकाशविद्यात्सरुजंवातसंभवम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—वायुके योगसँ लिंग पीडित होनेसँ चामडी सूजकर मणिभागमें प्राप्त होय, वो मणि चर्मके संकोच होनेसे मूत्रके मार्गको रोके तब मूत्रका रोध होय, तब उस पुरुषका मूत्र ठहर ठहरकर निकले, परन्तु पीडा नहीं होय, और मणी बाहर नहीं निकले, इस रोगयुक्त वातजन्य पीडाको निरुद्धप्रकाश कहते हैं चर्मके संकोच होनेको निरुद्ध कहते हैं, और मूत्रकी धार मन्द निकलनेको प्रकाश कहते हैं अवेदनम् यह जो मूलमें पाठ है इस जगे कोई (सवेदनम्) ऐसा कहते हैं । भोज आचारीके मतसँ कहते हैं सो भोजसंहितामें लिखाही है ।

सनिरुद्धगुदके लक्षण

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतोगुदसंस्थितः । निरुणद्धिमहास्रोतः-

१ मर्दनादभिघाताद्वा कन्यायोनिप्रपीडनात् । लक्ष्यते यदि मेदस्य वर्णभेदैर्विवक्षितम् ॥ १ ॥
अवपाटिकेति तां विद्यात् पृथग्दोषैः समन्विताम् । वाताग्लायरुर(?)जक्षाशूलानस्रोदकारणी ।
पित्तात्सदाहा रक्ताद्वा दाह पक्वकी कठिना क्षिग्धा कण्डूनल्यन्तवेदनी(?) ॥ १ ॥

२ मेद्वान्ते चर्मणि यदा मारुतः कुपितो भृशम् । द्वारं निरुणद्धि शनैः प्रकाशं च मुहुर्म-
वेत् ॥ १ ॥ शूलं मूत्रं यत्र कृच्छ्रात्प्रकाशान्तु यदा भवेत् । वातोपसृष्टमेदं च मणिर्न च विदीर्यते ।
निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधिं विद्यात् सुदारुणम् ।

सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५० ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कच्छ्रेण पुरीषं
तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—मल्यूनादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर, महा-
श्रोत्र (गुदा) का अवरोध करै, और वो द्वारको छोटा करै, पीछे मार्ग छोटा हो-
नेसे उस पुरुषका मल बड़े कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको सन्निरुद्ध-
गुद कहते हैं इस रोगमें भी निरुद्धप्रकाशके समान चर्मका संकोच होनेसे सन्निरुद्ध-
गुद होय है, अर्थात् अपानवायुके रुकनेसे पुरीष (मल) का अनिर्गम होय है ।

अहिपूतनाके लक्षण

शालन्मूत्रसमायुक्तेऽधौ तेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वा स्नाप्य-
माने वा कंदूरक्तकफोद्भवा ॥ ५२ ॥ ततः कंदूयनात् क्षिप्रं स्फो-
टाः स्त्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणैर्धौ रंतं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—बालकके मलपूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे, अथवा पसीना
आनेसे तथा धोनेके अनंतर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय, तदनन्तर खु-
जानेसे शीघ्र फोड़ा उत्पन्न होय, और उससे स्राव होय, पीछे ये सब मिलकर
इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे । इससे अहिपूतन कहते हैं यह रोग बहुधा
बाल लोम (छोटे छोटे रोम) में होय है । भोजन कहता है कि यह रोग दुष्ट स्तन्य-
पान अर्थात् माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होय है ।

वृषणकच्छूके लक्षण

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः । यदा प्रच्छिद्यते स्वे
दात्कंदूः संजायते तदा ॥ ५४ ॥ कंदूयनात् ततः क्षिप्रं स्फोटाः
स्त्रावश्च जायते । प्रादुर्बृषणकच्छूतां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका
मल अंडकोशोंमें संचित होय, पीछे वो पसीना आनेसे गीला होय, तब अंडको-
शोंमें घोर पीड़ा होय, और खुजानेसे तत्काल फोड़ा होय, पीछे वो फोड़ा स्रवकर
आपसमें मिलजाते हैं, कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं ।

१ दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च । कण्डूदाहरणावद्भिः पीडकैश्च समाचिता ॥ अ-
हिपूतना संभवति यथादोषश्च दारुणा ॥ इति ॥

शुद्धभ्रंशके लक्षण

प्रवाहणातिसाराभ्यानिर्गच्छतिगुदंबहिः ।

रूक्षदुर्बलदेहस्यगुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुन्धन) तथा अतीसार हेतुकर्के गुदा बाहर निकल आवै, अर्थात् काँच बाहर निकल आवै उस रोगको शुद्धभ्रंश रोग कहते हैं इस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है।

सूकरदंष्ट्रके लक्षण

सदाहोरेक्तपर्यंतस्त्वक्पाकीतीव्रवेदनः ।

कंडूमान्ज्वरकारीचसस्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥ ५७ ॥

अर्थ—दाहयुक्त चारों ओर लाल होय, जिस्की त्वचा पकनेवाली होय, तीव्र पीड़ा युक्त, खुजलीसंयुक्त, तथा ज्वर करनेवाली, ऐसी सूजन अथवा व्रण होय उसको सूकरदंष्ट्र अर्थात् वराहदाढ कहते हैं।

इति श्रीदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभार्यदीपिकाभाषामाथुरीटीकायां क्षुद्ररोगनिदानम् ।

मुखरोगनिदानम् ।

संख्या

दंतेष्वष्टावोष्ठयोश्चमूलेषुदशपंचच । नवतालुनिजिह्वायांपं-

चसप्तदशामयाः ॥ १ ॥ कंठेत्रयःसर्वसराएकषष्टिचतुःपरे ।

अर्थ—दंतारोग ८, होठके रोग ८, दंतमूलके रोग १५, तालुएके रोग ९, जिह्वाके ५, कंठके रोग १७, और सर्व सर्वसर ३, ऐसे सब मिलकर पैसट ६५, मुखरोग हैं ये श्लोक माधवके नहीं हैं। भोज संहिताके हैं।

तिनमें ८ होठके रोगकी संप्राप्ति

अनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात् ।

मुखमध्येगदान्कुर्युःक्रुद्धादोषाःकफोत्तराः ॥ २ ॥

अर्थ—जलसंचारी प्राणीनके मांस, दूध, दही, उरद आदि पदार्थके सेवन करनेसे कुपित भए कफादिक दोषसो मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं।

वातिकओष्ठरोगके लक्षण

कर्कशौपरुषोस्तब्धौकृष्णौतीव्ररुजान्वितौ ।

दाह्येतेपरिपाठ्येतेओष्ठौमारुतकोपतः ॥ ३ ॥

अर्थ—बादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले, होते हैं उन्में तीव्र पीडा होय, वो दो ठुकडाके समान होजाय तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाय ।

पैत्तिकके लक्षण

चीयतेपिडिकाभिस्तुसरुजाभिःसमंततः ।

सदाहपाकपिडिकौपीताभासौचपित्ततः ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तसै होठमें चारों और फुंसीनसै प्राप्त हो, उन्में पीडा होय, तथा पकजावै, और पीलेसै दीखें । इसमें जो दाह और पाक कहैहैं सो विशेषताके सूचक हैं ।

श्लैष्मिकके लक्षण

सवर्णाभिस्तुचीयेतेपिडिकाभिरवेदनौ ।

भवतस्तुकफादोष्ठौपिच्छिलौशीतलौगुरू ॥ ५ ॥

अर्थ—कफसै होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सीसै व्याप्त होंय, कुछ दृक्, तथा मलाईके समान चिकने, और शीतल, तथा भारी होंय ।

सन्निपातिकके लक्षण

सकृत्कृष्णौसकृत्पीतौसकृच्छेत्तौतथैवच ।

सन्निपातेनविज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ ॥ ६ ॥

अर्थ—सन्निपातसै होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सपेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सीनसै व्याप्त होय ।

रक्तजके लक्षण

स्वर्जरीफलवर्णाभिःपिडिकाभिर्निपीडितौ ।

रक्तोपसृष्टौरुधिरंस्ववतःशोणितप्रभौ ॥ ७ ॥

अर्थ—रुधिरसै होठमें खजूरफलके वर्णकी फुंसी होय, उन्मेंसै रुधिर गिरै, तथा वो होठ रुधिरके समान लाल होंय ।

मांसजके लक्षण

मांसदुष्टौगुरुस्थूलौमांसपिंडवदुद्गतौ ।

जन्तवश्चात्रमूर्च्छतिनरस्योभयतोमुखम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मांस दुष्ट होनेसे होठ जड़ (भारी) मोटे होते हैं, मांसपिंडके समान ऊंचे होंय, इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होठोंमें, अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीड़े पड़जावें ।

मेदोजके लक्षण

सर्पिर्मंडप्रतीकाशौमेदसाकंदुरौगुरू ।

स्वच्छंस्फटिकसंकाशमास्त्रावंस्त्रवतोभृशम् ॥ ९ ॥

तयोर्व्रणोनसंरोहेन्मृदुत्वंचनगच्छति ।

अर्थ—मेदसै होठ घृतके ज्ञाग समान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होय तथा उन्मेंसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय इसमें भया व्रण भरे नहीं है तथा उसमें मृदुता नहीं रहै ।

अभिघातजके लक्षण

ओष्ठौपर्यवदीर्येतेपीड्येतेचाभिघाततः ।

ग्रथितौचतदास्यातांकंडूक्केदसमन्वितौ ॥ १० ॥

अर्थ—अभिघातसै (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिरजाय, पीड़ा होय, उसमें गांठ होजाय तथा उनमें खुजली चलतेसमय पीव वहै, कोई कहते हैं कि अभिघातके ओष्ठ रोगमें केवल ऊपरका होठ फटता है इस रोगमेंभी कफ पित्त सहायक जानने, सो भोजने कहावी है ।

दंतमूलगत १५ रोग

शीतादके लक्षण

शोणितंदन्तवेष्टेभ्योयस्याकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनिस्रु-

ष्णानिप्रक्लेदीनिमृदूनिच ॥ ११ ॥ दंतमांसानिशीर्यन्तेपचं-

तिचपरस्परम् । शीतादोनामसव्याधिःकफशोणितसंभवः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस्के मसूढेनमेंसे अकस्मात् रुधिर बहे, और दांतोका मांस दुर्गन्धयुक्त काला पीवसहित तथा नरम होकर गिरे, और एक दांतका मसूढा पकनेसे वो दूसरे मसूढेको पकावे, यह कफ रुधिरसै प्रगट व्याधिको शीतादनाम कहते हैं ।

१ क्षतावमिहतौ चापि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ ॥ भवतः सपरिस्त्रावौ कफरक्तप्रदूषिताविति । वा-
तजः केवलः स्वकारणकुपितः अत्र तु वायुः अभिघाताल्लभ्यते ॥

दन्तपुष्पुटके लक्षण

दंतयोस्त्रिषुवायस्यश्वयथुर्जायतेमहान् ।

दंतपुष्पुटकोनामसव्याधिःकफरक्तजः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिसके दो अथवा तीन दांतकी जड़में महान सूजन होय, उसको दंत-पुष्पुटनाम कहते हैं यह व्याधि कफरक्तसे होती है, परन्तु आगे जो सौषिररोग कहेंगे उससे यह भिन्न है ।

दंतवेष्टके लक्षण

स्त्रवन्तिपूर्यंरुधिरंचलादंताभवन्तिच ।

दंतवेष्टःसविज्ञेयोदुष्टशोणितसंभवः ॥ १४ ॥

अर्थ—रुधिर दुष्ट होनेसे दांतोंमेंसे रुधिर तथा राख बहे, तथा दांत हलने लगे, उसको दंतवेष्टरोग कहते हैं ।

सौषिरके लक्षण

श्वयथुर्दन्तमूलेषुरुजावान्कफरक्तजः ।

लालास्रावीसविज्ञेयःसौषिरोनामनामतः ॥ १५ ॥

अर्थ—कफ रुधिरसे दांतोंकी जड़में सूजन होय, उसमें पीडा होय, और स्राव होय, उसको सौषिर रोग कहते हैं पूर्वोक्त दंतपुष्पुटमें पीडा और स्राव नहीं होय है इसीसे यह पृथक् है ।

महासौषिरके लक्षण

दन्ताश्चलन्तिवेष्टेभ्यस्तालुचाप्यवदीर्यते ।

यस्मिन्सर्वतोव्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस त्रिदोष व्याधिकके मसूढेके समीपसे दांत हलैं, और तालुमें छिद्र पडजाय, चकारसे दांत और होठभी फटजाय उसको महासौषिररोग कहते हैं यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारवाले हैं सो भोजने कहाभी है परन्तु गदाधर कहता है सौषिरमें जो भोजने लक्षण कहे हैं सो होंय तो उसीको महासौषिर कहते हैं ।

परिदरके लक्षण

दंतमांसानिशीर्यन्तेयस्मिन्ध्रीव्यतिचाप्यसृक् ।

१ सदाहो दंतमूलेषु श्लोथः पित्तं कफानिलात् । जातः कफं क्षययति क्षीणे तस्मिन्सशोणि-
तम् ॥ विट्पद्मनिश दंतांस्ताल्बोष्ठमपि दारयेत् । महासौषिरमित्येतत्सप्तरात्राजिह्वसूत्र ॥

पित्तासृक्कफजोव्याधिर्ज्ञेयःपरिदरोहिसः ॥ १७ ॥

अर्थ—इस रोगकर्के दांतोंका मांस बिखर जाय, और थूकनेसे रुधिर गिरे, इस व्याधिको परिदर कहते हैं यह रोग पित्तरुधिरकफसँ होय है ।

उपकुशके लक्षण

वेष्टेषुदाहःपाकश्चताभ्यांदन्ताश्चलन्तिच । अवाक्कृताःप्रस्रवं-
तिशोणितमन्दवेदनाः ॥ १८ ॥ आध्मायन्तेस्त्रुतेरक्तेमुखेपू-
तिश्चजायते । यस्मिन्नुपकुशोनामपित्तरक्तकृतोगदः ॥ १९ ॥

अर्थ—जिस्के मसूढेमें दाहहोकर पाक और दांत हलने लगें, मसूढेके घि-
सनेसे रुधिर मंद पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फेर मसूढे
फूल आवैं, और मुखमें वांस आवै, इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ।

वैदर्भके लक्षण

घृष्टेषुदन्तमूलेपुसरम्भोजायतेमहान् ।

भवन्तिचपलादन्ताःसवैदर्भोऽभिघातजः ॥ २० ॥

अर्थ—मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय, और दांत हलने लगें, उसको वैदर्भ-
रोग कहते हैं यह रोग चोटके लगनेसे होय है ।

खल्लीवर्धनके लक्षण

मारुतेनाधिकोदन्तोजायतेतीव्रवेदनः ।

खल्लीवर्धनसंज्ञोवैजातेरुक्चप्रशाम्यति ॥ २१ ॥

अर्थ—वादीके योगसँ दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे, उससमय पीडा होय,
जब वो दांत ऊगआवै तब पीडा शांत होय, उसको खल्लीवर्धन कहते हैं ।

करालके लक्षण

शनैःशनैःप्रकुरुतेवायुर्दन्तसमाश्रितः ।

करालान्विकटान्दन्तान्करालोनचसिद्धयति ॥ २२ ॥

अर्थ—वादी धीरेधीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको ढेढे तिरछे करे, उसको
कराल रोग कहते हैं यह रोग साध्य नहीं होय ।

अधिमांसके लक्षण

हानव्येपश्चिमेदन्तेमहाऽशोथोमहारुजः ।

लालास्रावीकफकृतोविज्ञेयोह्यधिमांसकः ॥ २३ ॥

अर्थ—जिस्के पीछेकी ढाढके नीचे अर्थात् मसूढ़ेमें बहुत सूजन होय, और घोर पीडा होय, तथा लार बहुत बहे, उसको अधिमांसक कहते हैं यह कफके कोपसे होय है ।

नाडीव्रणके लक्षण

दन्तमूलगतानाज्यःपंचज्ञेयायथेरिताः ॥ २४ ॥

अर्थ—नाडीव्रणनिदानमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात, और आगंतुज, ऐसे पांच प्रकारके जो नाडीव्रण कहे हैं वे दंतमूल (मसूढ़ेमें) होते हैं पहिले ११ और ५ नाडीव्रण ऐसे मिलकर १६ दंतमूल (मसूढ़ेके) रोग होते हैं परन्तु क-रालरोग सुश्रुतके मतसे अधिक है तथापि संग्रहकारने अपने ग्रंथमें लिखा है इ-सीसे हमनेभी यहां लिखदीना है ये पांच नाडीव्रण शालाक्यसिद्धान्तके मतसे संख्यापूरणार्थ माधवाचार्यने लिखी है ।

दंतरोग ८ लिख्यते

दालनके लक्षण

दीर्यमाणेष्विवरुजायस्यदन्तेषुजायते ।

दालनोनामसव्याधिःसदागतिनिमित्तजः ॥ २५ ॥

अर्थ—जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहतेहैं यह रोग वादीसे होय है ।

कुमिदंतकके लक्षण

कृष्णच्छिद्रश्चलस्त्रावीससंरम्भोमहारुजः ।

अनिमित्तरुजोवातात्सज्ञेयःकुमिदन्तकः ॥ २६ ॥

अर्थ—वादीके योगसे दांतोंमें काले छिद्र पडजाय, तथा हलने लगें, उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाला और कारणविना दूखनेवाले ऐसा होय, उसको कुमिदंतरोग कहते हैं यहां दांतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसे कुमि (कीडा) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं ।

भंजनकके लक्षण

वक्रंवक्रंभवेद्यस्यदन्तभंगश्चजायते ।

कफवातरुतोव्याधिःसभंजनकसंज्ञितः ॥ २७ ॥

अर्थ—जिस व्याधिकर्के मुख टेढा होकर दांत फूटने लगें व्याधि कफवातकर्के होय है दांत भंगकारी दोषके प्रभावसे मुखवी टेढा होय है ।

दंतहर्षके लक्षण

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहाद्विजाः ।

पित्तमारुतकोपेनदन्तहर्षःसनामतः ॥ २८ ॥

अर्थ—दांत शीतल, रूक्ष, खटाई, इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो नहीं सहि सके, उसको दंतहर्ष कहते हैं यह रोग पित्तवायुके कोपसे होय है, इस रोगको वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी)को नहीं सहि सके, यह व्याधिका स्वभाव है इस जगे दूसरा जो पाठान्तर है वो नीचे लिखें हैं ।

दंतशर्कराके लक्षण

मलोदन्तगतोयस्तुपित्तमारुतशोणितः ।

शर्करेवखरस्पर्शासाज्ञेयादन्तशर्करा ॥ २९ ॥

अर्थ—दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दंतशर्करा ऐसे कहते हैं इस श्लोकमें 'सादंतानां गुणहरा' ऐसाभी पाठ है इसका यह अर्थ हुआ कि दांतोंके गुण शुद्ध और दृढादि उनको दूर करै ।

कपालिकाके लक्षण

कपालेष्विवदीर्णेषुदन्तानांसैवशर्करा ।

कपालिकेतिसाज्ञेयासदादंतविनाशिनी ॥ ३० ॥

अर्थ—कपाल कहिये मट्टीके घड़ा आदिके जैसे टूक होय हैं ऐसे दांत मलकरके सहित होजाय, तो उसी पूर्वोक्त दंतशर्कराको कपालिका ऐसे कहते हैं यह रोग दांतोंका सदा नाश कर्त्ता है ।

श्यावदंतके लक्षण

योऽसृङ्मिश्रेणपित्तेनदग्धोदंतस्त्वशेषतः ।

श्यावतांनीलतांवापिगतःसश्यावदंतकः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो दांत रुधिरसै मिले, पित्तसै जलेके समान सब काले होजाय, उनको श्यावदंत कहते हैं ।

हनुमोक्षके लक्षण

वातेनतैस्तैर्भावैस्तुहनुसंधिर्विसंहतः ।

१ शीतमुष्णं च दग्नाः सहते स्पर्शनं न च । यस्य दंतं च हर्षेतु विद्यात् पित्तसमीरणात् ॥

हनुमोक्षइतिज्ञेयोव्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—बादीके योगसें तिस तिस अभिघातादिककर्के हनुसंधी (ठोड़ी)में चोट लगनेसें दांत चलायमान होजाय, उसको हनुमोक्ष कहते हैं ॥ इसके लक्षण अर्दित-रोग जो वातव्याधिमें कहिआये हैं उस प्रकारके होंय, सुश्रुतने इस रोगको दांतोंके समीप होनेसें दंतरोग कहा है, परंतु संग्रहकारने मुख्य दंतरोग न होनेसें नहीं लिखा । इसको संग्रहकारने भोजके कहेअनुसार वातव्याधिमें लिखा है इसीसे हनुमोक्षरोगका पाठ किसी पुस्तकमें लिखाहै और किसीमें नहीं लिखा ।

जिह्वागत ५ रोग

जिह्वाऽनिलेनस्फुटिताप्रसुप्ताभवेच्चशाकच्छदनप्रकाशा ।

अर्थ—बादीसें जीभ फटीसी, प्रसुप्त (रसका ज्ञान जातारहे) और पर्वतीवृ-क्षके पत्रसमान काटियुक्त खरदरी हो ।

पित्तजके लक्षण

पित्तेनपीतापरिदह्यतेचदीर्घैःसरक्तैरपिकंटकैश्च ॥ ३३ ॥

अर्थ—पित्तसें जीभ पीली हो, उसमें दाह होय, उसमें छंवे छंवे तामेके समान कांटे होंय, इस रोगको लौकिकमें जाली कहते हैं अथवा जोड़ी कहते हैं ।

कफजके लक्षण

कफेनगुर्वीबहलाचिताचमांसोच्छ्रयैःशाल्मलिकंटकाभैः ॥ ३४ ॥

- अर्थ—कफसें जीभ मोठी भाँपी होय है और उसमें सेमरकेसे कांटके समान मांसके अंकुर होंय ।

अल्लासके लक्षण

जिह्वातलेयःश्वयथुःप्रगाढःसोऽल्लाससंज्ञःकफरक्तमूर्तिः ।

जिह्वासुस्तंभयतिप्रवृद्धोमूलेचजिह्वाभृशमेतिपाकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जीभके नीचे कफ रुधिरसें प्रगाढ ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अल्लास कहते हैं उसके बढनेसे स्तंभ होय, तथा जीभके मूलमें सूजन होय, यह रोग असाध्य है ।

उपजिह्वाके लक्षण

जिह्वाग्ररूपःश्वयथुःसजिह्वामुन्नम्यजातःकफरक्तमूर्तिः ।

लालाकरःकण्डयुतःसचोषःसातूपजिह्वाकथिताभिपग्भिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कफरुधिरसें जिह्वाग्रके समान (जैसा जीभका आगेका भाग होय है)

ऐसी सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय, उसके योगसै लार बहुत वहै, और उसमें खुजली चले, तथा दाह होय, दाह इसमें रक्तपित्तका कारण पित्त है उससे होय है, इस रोगको वैद्य उपजिब्हा ऐसे कहते हैं ।

तालुगत ९ रोग

कंठशुंडीके लक्षण

श्लेष्मासृग्भ्यांतालुमूलात्प्रवृद्धोदीर्घःशोथोध्मातवस्तिप्रकाशः ।

तृष्णाकासश्वासकृत्तंवदन्तिव्याधिर्वैद्याःकंठशुंडीतिनाम्ना ॥३७॥

अर्थ—कफरुधिरसैं तालुके मूलमें फूलीवस्तीके समान भारी सूजन होय, इसके प्रभावसे प्यास, खँसी, श्वास, ए होते हैं इस रोगको वैद्य कंठशुंडी कहते हैं ।

तुंडकेरीके लक्षण

शोथःशूलस्तोददाहप्रपाकीप्रागुक्ताभ्यांतुंडिकेरीमतातु ।

अर्थ—कफरक्तसैं तालुमें वन कपासके फलके समान सूजन होय, और उसमें पीडा, मुईके छेदनेकासा दुःख, और दाह होकर पके, उसको तुंडकेरी कहते हैं ।

अध्रुवके लक्षण

शोथःस्तब्धोलोहितस्तालुदेशेरक्तोज्ञेयःसोऽध्रुवोरुग्ज्वरश्च ॥ ३८ ॥

अर्थ—रुधिरसैं तालुमें लाल स्तब्ध (लठर) ऐसी सूजन होय, उसमें पीडा और ज्वर होय, उसको अध्रुव ऐसे कहते हैं ।

कच्छपके लक्षण

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मारोगोज्ञेयःकच्छपःश्लेष्मणावा ।

अर्थ—कफसैं तालुमें कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय, उसमें पीडा थोड़ी होय, वह शीघ्र बढे नहीं, उसको कच्छपरोग कहते हैं ।

अर्बुदके लक्षण

पद्माकारंतालुमध्येतुशोथंविद्याद्रक्तादर्बुदंप्रोक्तलिंगम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—रुधिरसैं तालुमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय, इसके लक्षण अर्बुदनिदानमें जो रक्तार्बुदके कहे हैं उसके प्रमाण जानने ।

मांससंघातके लक्षण

दुष्टमांसंनिरुजंतालुमध्येकफाच्छूनमांससंघातमाहुः ।

अर्थ—कफकर्म तालुपमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय, और वो दूखे नहीं, उसको मांससंघात कहते हैं ।

तालुपुष्पुटके लक्षण

नीरुक्स्थायीकोलमात्रःकफात्स्यान्मेदोयुक्तःपुष्पुटस्तालुदेशे ॥४०॥

अर्थ—मेदयुक्त कफकर्म तालुपमें पीडारहित और स्थिर तथा वेरके समान सूजन होय, उसको तालुपुष्पुट ऐसे कहते हैं ।

तालुशोषके लक्षण

शोषोऽत्यर्थदीर्यतेचापितालुश्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च ।

अर्थ—बादीसै तालु अत्यंत सूखकर फटजाय, तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते हैं ।

तालुपाकके लक्षण

पित्तंक्षुर्यात्पाकमत्यर्थधोरंतालुन्येवंतालुपाकंवदन्ति ॥ ४१ ॥

अर्थ—पित्त क्षुपितहोकर तालुपमें असंत भयंकर पाक (पकी फुंसी) उत्पन्न करे, उसको तालुपाक कहते हैं ।

कंठगत १७ रोग

तिन्मे पांच रोहिणीकी सामान्य संभाषि

गलेऽनिलःपित्तकफौचमूर्छितौप्रदूष्यमांसंचतथैवशोणितम् ।

गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्व्याधिरयंहिरोहिणी ॥ ४२ ॥

अर्थ—गलेमें वायु पित्त और कफ ए दुष्ट होकर मांसको तथा रुधिरको दूषित कर गलेमें अंकुर (कांटे) उत्पन्न करे हैं, उनसै गला रुकजाय, यह रोहिणी-नाम व्याधि प्राणनाशक है सब रोहिणी सन्निपातसै प्रगट होती हैं उत्कर्षके वास्ते वात आदिका व्यपदेश है इन सबका असाध्यत्व भोजने पृथक् पृथक् लिखा है ।

वातजाके लक्षण

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तुमांसांकुराःकंठनिरोधनाय ।

सारोहिणीवातरुताप्रदिष्टावातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥४३॥

अर्थ—जीभके चारों और असंतवेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय, उनमें कंठका अवरोध होय, तथा कंप, विनाम, स्तंभादि वातके उपद्रव होंय ।

१ सद्यस्त्रिदोषजोहतिव्याहत् श्लेष्मसमुद्भवा । पचाहातिपत्तमंभृता ममाहान्यवनोऽतिवर्ति ॥

पित्तजाके लक्षण

क्षिप्रोद्वेगमाक्षिप्रविदाहपाकातीव्रज्वरापित्तनिमित्तजाता ।

अर्थ—पित्तसै प्रगट भई रोहिणी शीघ्र बढे, तथा शीघ्रही पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय ।

कफजाके लक्षण

स्त्रोतोनिरोधिन्यपिमन्दपाकास्थिरांकुरायाकफसंभवासा ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो रोहिणी कंठके मार्गको रोध करे (रोकदे) तथा हौले हौले पके, तथा जिस्के अंकुर कठिन होय, वो कफजन्य जाननी ।

त्रिदोषजाके लक्षण

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्यात्रिदोषलिंगात्रितयोत्थितासा ।

अर्थ—त्रिदोषसै उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी (जिस्में राध बहुत हो) तिसै औषधीका प्रभाव नहीं चले, और तीन दोषोंके लक्षणोंसै युक्त होय, यह तत्काल प्राणोंका हरण करे ।

रक्तजाके लक्षण

स्फोटैश्चितापित्तसमानलिंगासाध्याप्रदिष्टारुधिरात्मकातु ॥ ४५ ॥

अर्थ—रुधिरकी रोहिणी पित्तरुहिणीके समान जाननी, तथा फोडान्से व्याप्त होय, यह साध्य है ।

कंठशालूकके लक्षण

कोलास्थिमात्राकफसंभवोयोग्रंथिर्गलेकंटकशूकभूतः ।

खरःस्थिरःशस्त्रनिपातसाध्यस्तंकंठशालूकमितिब्रुवन्ति ॥ ४६ ॥

अर्थ—कफसै गलेमें वेरकी गुठलीसमान गांठ होय, उसमें बारीक कांटे होय, तथा खरदरी और कठिन होय, यह रोग शस्त्रोंसै साध्य होय इस रोगको कंठ-शालूकरोग कहते हैं ।

अधिजिह्वके लक्षण

जिह्वाग्ररूपःश्वयथुःकफानुजिह्वोपरिष्ठादपिरक्तमिश्रात् ।

ज्ञेयोऽधिजिह्वःखलुरोगएपविवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—रक्तमिश्रित कफसै जीभके अग्रभागसदृश जीभमें सूजन होय, इसको अधिजिह्व कहते हैं । यह पकनेसै असाध्य जानना ।

बल्यके लक्षण

बलासएवायतमुन्नतंचग्रंथिकरोत्यन्नगतिनिवार्य ।

तंसर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यविवर्जनीयंवल्यंवदन्ति ॥ ४८ ॥

अर्थ—कफसँ जंची और लंबी ऐसी गांठ कंठमें उत्पन्न होय उसके योगसँ कंठमें ग्रास गस्सा उतरे नहीं, तथा उसमें कोई उपाय नहीं चले, इस रोगको बल्य कहते हैं इसको वैद्य त्याग देय ।

बलासके लक्षण

गलेतुशोथंकुरुतःप्रवृद्धौश्लेष्मानिलौश्वासरुजोपपन्नम् ।

मर्मच्छिदंदुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञंनिपुणाविकारम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—कुपित भए जो कफवायू सो गलेमें सूजन उत्पन्न करे उससे श्वास होय, तथा कंठ सूखे, इस मर्मभेद करनेवाली दुस्तर व्याधिको वैद्य बलास ऐसे कहते हैं ।

एकदृढके लक्षण

वृत्तोज्ज्वलतोऽतःश्वयथुःसदाहःसकंदुरोऽपाक्यमृदुगुरुश्च ।

नाभैकवृंदःपरिकीर्तितोऽसौव्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः॥५०॥

अर्थ—गलेमें गोल, जंची किंचित् दाहयुक्त खुजानेवाली ऐसी सूजन होय, वह किंचित् पके, और कुछ नरम होय, तथा भारी होय, इसका नाम एकवृन्द है यह व्याधि कफरक्तसँ होय है ।

द्वन्द्वके लक्षण

समुन्नतंवृत्तममंददाहंतीव्रज्वरंवृंदमुदाहरंति ।

तंचापिपित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदंपवनात्मकंतु ॥ ५१ ॥

अर्थ—गलेमें जंची गोल तीव्र दाह तथा ज्वरयुक्त जो सूजन होय, उसको वृन्द कहते हैं येवी रक्तपित्तके कोपसँ होय है इसमें वायूके संबंध होनेसँ घुईके चोटनेकी पीडा होय * शंका— क्यौंजी कंठके १७ रोग कहे हैं और द्वन्द्वको मिलायकर अठारे रोग हुए तो कहिये कि सतरे संख्यामें भेद हुआ * उत्तर— तुमने कहा सो ठीक है, परंतु तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकद्वन्द्वकाही भेद द्वन्द्वरोग जानना, ऐसे मानेसे संख्यामें विरोध नहीं पड़े। यद्यपि एकवृन्द कफरक्तज है और द्वन्द्वरोग पित्तरक्तज कहा है, तथापि जैसे द्वन्द्वका चोटनी होने-

कर्के वातात्मकत्व कहा है, तो वी एकवृन्दकी अवस्थाविशेष होनेसे वृन्दको एक-वृन्दके साथ ग्रहण करा है, जैसे कामलाके लक्षणसे भिन्नबी है तथापि हलीयक कामलाकाही भेद जानना, और भोजनेवी इसकी एक वृन्दकाही भेद कहा है, गदाधर कहता है कि छंदानुरोधके निमित्त एकवृन्द शब्दके एकशब्दका लोपकर वृंदशब्दही मूलमें धरा यासे वृन्द और एकवृन्द ए दोनों एकही हैं ।

शतघ्नीके लक्षण

वर्तिर्धनाकंठनिरोधिनीयाचिताऽतिमात्रं पिङ्गितप्ररोहैः ।

अनेकरुक्प्राणहरीत्रिदोषाज्ज्ञेयाशतघ्नीनुशतघ्नीरूपा ॥ ५२ ॥

अर्थ—कंठमें लंबी और कठिन सृजन होय, उसकर्के कंठ रुकजाय, और उस सृजन ऊपर मांसके अंकुर बहुत होंय, तथा उसमें तोद (चोटनी) दाह, खुजली आदि अनेक वेदना होंय, यह प्राण हरनेवाली सृजनको शतघ्नी (लंबे तथा कांटे लंबे जिस्में होंय ऐसे शस्त्र) के समान होय इसीसे इस रोगको यह संज्ञा दीनी है ।

गिलायुके लक्षण

ग्रंथिर्गलेत्वामलकास्थिमात्रःस्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः ।

संलक्ष्यतेसक्तमिवाशनंचसशस्त्रसाध्यस्तुगिलायुसंज्ञः ॥ ५२ ॥

अर्थ—कफरक्तके कोपसे गलेमें आंवलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न होवे, वह गांठ कठिन मंदपीडावाली हो, इसके होनेसे अन्न गलेमें अटकतासा मानूम देवे, यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रसे काटनेसे साध्य होवे इसको गिलायु कहते हैं ।

गलविद्रधि के लक्षण

सर्वगलं व्याप्य समुत्थितोयःशोथोरुजःसंतिचयत्रसर्वाः ।

ससर्वदोषोगलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यःखलुसर्वजस्य ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो सृजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्व प्रकारकी पीडा होय, वह विद्रधिनिदानमें जो त्रिदोषकी विद्रधि कही है उसके समान गलविद्रधि-के लक्षण जानने ।

गलाय के लक्षण

शोथोमहान्नजलावरोधीतीव्रज्वरोवायुगतेनिहन्ता ।

कफेनजातोरुधिरान्वितेन गले गलोघः परिकीर्त्यतेसौ ॥ ५५ ॥

१ श्लेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्दं विभावयेत् । तुल्यस्थानाकानि वृन्दोऽवृन्दोऽन्तरात्कपित्तजः ॥ १ ॥ इति ॥

अर्थ—रक्तयुक्त कफसें गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसें कंठमें अन्नज-लका अवरोध (रोकवट) होय, तथा वायुका संचार होय नहीं, इसको वैद्य गलौघ कहते हैं।

स्वरघ्नके लक्षण

यस्ताम्यमानःश्वसितिप्रसक्तंभिन्नस्वरःशुष्कविमुक्तकंठः ।

कफोपदिग्धेष्वनिलायतेषुज्ञेयःसरोगःस्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वायुका मार्ग कफसें लिप्त होनेसे बार बार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोड़े, अथवा मूर्च्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसको भिन्न स्वर होय, कंठ सूखे, और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन नहो, अर्थात् थोड़ाभी अन्न खाया हो तथापि कंठसे नीचे न उतरे, इस वातजरोगको स्वरघ्न कहते हैं।

मांसतानके लक्षण

प्रतानवान्यःश्वयथुःसुकष्टोगलोपरोधंकुरुतेक्रमेण ।

समांसतानेतिबिभर्तिसंज्ञांप्राणप्रणुत्सर्वरुतोविकारः ॥ ५७ ॥

अर्थ—जो सूजन गलेमें उत्पन्न होकर क्रमसें फैलकर गलेको रोक ले तब बहुत कष्ट हो, इस त्रिदोष विकारको मांसतान कहते हैं यह विकराल रोग प्राणोंका नाश करनेवाला है।

विदारीके लक्षण

सदाहृतोदंश्वयथुंसुतीव्रमन्तर्गलेपूतिविशीर्णमांसं ।

पित्तेनविद्याद्वदनेविदारींपार्श्वेविदोषात्सतुयेनज्ञेते ॥ ५८ ॥

अर्थ—पित्तसे गलेमें सूजन होवै तिसकरके दाह होय, चवक होय, तथा दुर्गन्धियुक्त सड़ा मांस गिरे, और रोगी जिस करवट सोवै उसी तर्फ वह रोग होता है, मांसके विदारण करनेसे विदारी कहलाता है।

मुखपाक

सर्वसर (मुखपाक मुखआना) तीन प्रकारका है

वातजके लक्षण

स्फोटैःसतोदैर्वदनंसमंताद्यस्याचितंसर्वसरःसवातात् ।

अर्थ—वादीके योगसें मुखमें सर्वत्र छाले होजाय, और वह चिनभिनावै, मुख जिन्हा गला होंठ मसूड़े दांत और तालु इन सबमें व्याप्ति होनेसे, इस रोगको सर्वसर कहते हैं।

पित्तजके लक्षण

रक्तैःसदाहैःपिडकैःसपीतैर्यस्याचितंचापिसपित्तकोपात् ॥ ५९ ॥

अर्थ—पित्तसें मुखमें छाल तथा पीले छाले होंय, और दाह होवै ।

कफजके लक्षण

अवेदनैःकण्डुयुतैःसवर्णैर्यस्याचितंचापिसवैकफेन ॥ ६० ॥

अर्थ—कफसें मुखमें मंदपीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय ।

असाध्यमुखरोगके लक्षण

ओष्ठप्रकोपेवर्ज्याःस्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः । दंतमूलेषुवर्ज्यौ

तुत्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥ ६१ ॥ दंतेषुनचसिध्यन्तिदयावदा-

लनभंजनाः । जिह्वातलेष्वलासश्चतालव्येष्वर्बुदंतथा ।

॥ ६२ ॥ स्वरघ्नोवलयोवृन्दोबलासश्चविदारिका । गलौघो

मांसतानश्चशतघ्नीरोहिणीगले ॥ ६३ ॥ असाध्याःकीर्तिता

ह्येतेरोगानवदशैवतु । तेषुचापिक्रियावैद्यःप्रत्याख्यायसमा-

चरेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—ओष्ठरोग (होठके रोगोंमें) मांसज, रक्तज, और त्रिदोषज, असाध्य हैं । मसूडोंके रोगोंमें सन्निपात, नाडी, और सौषिर और दांतोंके रोगोंमें श्याव, दा-
लन, और भंजन, जिह्वाके रोगोंमें अलास और तालुएके रोगोंमें अर्बुद, तथा
गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, श-
तघ्नी, और रोहिणी, ये उन्नीस रोग असाध्य हैं इनपर चिकित्सा करनेवाले वै-
द्यको प्रत्याख्यान (औषधि) न देनी ये ती मृत्यु निश्चय होय और देवेतौ क-
दाचित् वचनी जाय है ऐसे विचार कर औषधी देनी चाहिये ।

इति मुखरोगनिदानं समाप्तम् ॥

कर्णरोगनिदानम् ।

कर्णशूलके लक्षण

समीरणःश्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समंततःशूलमतीवकर्णयोः ।

करोतिदोषैश्चयथास्वमावृतःसकर्णशूलःकथितोदुरासदः ॥ १ ॥

अर्थ—कानमें वायु दोषोंकरके (कफ पित्त रुधिरसे) आवृत होकर कानोंमें उलटी फिरे, तब असंत शूल (दरद) होय, इस रोगको कर्णशूल कहते हैं यह रोग कष्टसाध्य है। कर्णशूलके उपद्रव विदेहने इस प्रकार लिखे हैं “सूच्छादाहो ज्वरःकासःक्लमोथवमथुस्तथा । उपद्रवाःकर्णशूलेभवंत्येतेभविष्यतः ॥ इति ” इसका अर्थ सुगम है।

कर्णनादके लक्षण

कर्णस्रोतःस्थितेवातेऽगृणोतिविविधान्स्वरान् ।

भेरीमृदंगशंखानांकर्णनादःसञ्ज्यते ॥ २ ॥

अर्थ—वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग, और शंख इनके शब्द सुनाई देवे, इस रोगको कर्णनाद कहते हैं।

बाधिर्य (बहरा) के लक्षण

यदाशब्दबहंवायुःस्रोतआवृत्यतिष्ठति ।

शुद्धश्लेष्मान्वितोवापिबाधिर्येतेनजायते ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस समय केवल वायु, अथवा कफयुक्त वायु शब्दबहानेवाली नाडियोंमें स्थित होय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देय, अर्थात् बहरा होजाय।

कर्णद्वेडके लक्षण

वायुःपित्तादिभिर्युक्तोवेणुघोषसमंस्वनम् ।

करोतिकर्णयोःद्वेडंकर्णद्वेडःसञ्ज्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायु कानोंमें वेणु (बंसी) का शब्द सुनाई देताहै उसको कर्णद्वेड कहते हैं।

कर्णस्त्रावके लक्षण

शिरोभिघातादथवानिमज्जतांजलेंप्रपाकादथवापिविद्रधेः ।

स्त्रवेद्विपूर्यश्रवणोऽनिलार्दितःसकर्णसंस्त्रावइतिप्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

अर्थ—शिरमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे, अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे, वायु कुपितहोकर कानोंसे राशि बहे उसको कर्णस्त्राव कहते हैं।

कर्णकंडूके लक्षण

मारुतःकफसंयुक्तःकर्णकंडूकरोतिच ।

अर्थ—कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है ।

कर्णगूथके लक्षण

पित्तोष्मशोषितःश्लेष्माजायतेकर्णगूथकः ॥ ६ ॥

अर्थ—पित्तकी गरमीसे कफ सूखकर कानमें मैल जमे, उसको कर्णगूथ कहते हैं ।

कर्णप्रतिनाहके लक्षण

सकर्णगूथोद्रवतांयदागतोविलायितोग्राणमुखंप्रपद्यते । त-

दासकर्णप्रतिनाहसंज्ञितोभवेद्विकारःशिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

अर्थ—वही कानका मैल पतला होनेसे, अथवा स्नेह स्वेदादिकोंकरके पतला होकर मुख और नाकमें प्राप्ति होय, तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं, इस रोगसे अर्द्धशिर (आधासीसी) का विकार होता है ।

कृमिकर्णके लक्षण

यदातुमूर्च्छत्यथवापिजंतवःसृजन्त्यपत्यान्यथवापिमक्षिकाः ।

तदंजनत्वाच्छ्रवणोनिरुच्यतेभिषग्भिराद्यैःकृमिकर्णकोगदः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस समय कानमें कीड़े पड़जाय, अथवा मक्खी अंडा धरें, तब कृमि-लक्षणकरके इस रोगको कृमिकर्ण कहते हैं ।

कानमें पतंगादिकीड़ा धसनेके लक्षण

पतंगाःशतपद्यश्चकर्णस्त्रोतःप्रविश्यहि । अरतिंव्याकुलत्वंच

भृशंकुर्वन्तिवेदनाम् ॥ ९ ॥ कर्णोनिस्तुद्यतेतस्यतथाफुरफु-

रायते । कीटेचरतिरुक्तीव्रानिस्पन्देमन्दवेदना ॥ १० ॥

अर्थ—पतंग, कनखजूरा, गिजाई, आदि कानमें धसनेसे, वेचैनी होय, जीव व्याकुल होय, और कानमें पीड़ा होय, तथा कानमें नोचनेकीसी पीड़ा होय, और वह कीड़ा कानके भीतर फडके, और फिरे, उस समय घोर पीड़ा होय, और जब वह वन्द हो तब पीड़ा वन्द होवे ।

द्विविधकर्णविद्रधिके लक्षण

क्षताभिघातप्रभवस्तुविद्रधिर्भवेत्तथादोषकृतोऽपरःपुनः । स-

रक्तपीतारुणरक्तमास्त्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

अर्थ—कानमें खुजानेसे ब्रण होजाय, अथवा चोट लगनेसे कानमें ब्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादिदोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है, जब वह फूटे तब उसमेंसे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होवै, धूआंसा निकलता मालूम होवै, दाह होवै, चूसनेकीसी पीडा होवै ।

कर्णपाकके लक्षण

कर्णपाकस्तुपित्तेनकोथविकेदकृद्भवेत् ।

कर्णेविद्रधिपाकाद्वाजायतेचांबुपूरणात् ।

अर्थ—पित्तेसे अथवा कान पकनेसे अथवा कानमें पानी जानेसे कर्णपाक रोग होवे उसकरके कान सड़जावे और गीला रहे ।

पूतिकर्णके लक्षण

पूर्यस्त्रवतिवापूतिसङ्गेयःपूतिकर्णकः ।

अर्थ—जिसके कानमें राध निकले, वा वास आवै, उसको पूतिकर्ण कहते हैं ।

कर्णशोथ कर्णार्बुदकर्णाशका हवाल देते हैं

कर्णशोथार्बुदाशीसिजानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

अर्थ—कानकी सूजन कानका अर्बुद, और कानकी अर्श (बवासीर) ये रोग होय तो इनके लक्षण उसी उसी निदानके द्वारा जानने, कुछ थोड़ेसे यहां लिख-भी देते हैं । कर्णशोथ चार प्रकारकी है, वात पित्त कफ रक्तजके भेदसे इसी प्रकार कर्णाश कानकी बवासीरभी चारही प्रकारकी हैं, चारसे विशेष शोथ अर्शका होना असंभव है यासे चारही हैं ।

कर्णार्बुदरोग सात प्रकारका है वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदा, और शिरा, इनके भेदसे अब कहते हैं कि कर्णरोग मुश्रुतके मतसे २८ प्रकारका है परन्तु चरकके मतसे चारही हैं उनको कहते हैं ।

वातजके लक्षण

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषःस्त्रावस्तनुश्चाश्रवणंचवातात् ।

अर्थ—बांदीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूखजाय, पतला स्त्राव होय, सुनाई नहीं देवे, अर्थात् बहरा होजाय ।

पित्तजके लक्षण

शोथःसरागोदरणंविदाहःसपीतपूतिस्त्रवणंचपित्तात् ॥ १४ ॥

अर्थ—पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा होजाय, तथा किंचित् पीला दुर्गन्धयुक्त स्राव होय ।

कफजके लक्षण

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्लास्निग्धास्रुतिःश्लेष्मभवेतिरूक्च ।

अर्थ—कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय ।

सन्निपातजके लक्षण

सर्वाणिरूपाणिचसन्निपातात्स्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

अर्थ—सन्निपातसे सब लक्षण होंय, स्राव होंय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्राव होय ।

कर्णपालीके रोग

कर्णशोथके लक्षण

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टेसहसापिप्रवर्धिते ।

कर्णशोथोभवेत्पाल्यांसरुजःपरिपोटवान् ॥ १६ ॥

अर्थ—सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढावै तो कानकी पालीमें (लौरमें) सूजन होकर फूलजावै और दूखे ।

परिपोटके लक्षण

कृष्णारुणनिभःस्तब्धःसवातात्परिपोटकः ॥ १७ ॥

अर्थ—वादीसे काला लाल और कठिन ऐसा फूल जाय, उसको परिपोटक कहते हैं ।

उत्पातके लक्षण

गुर्वाभरणसंयोगात्ताण्डवाद्धर्पणादपि । शोथःपाल्यांभवे-

च्छद्यावोदाहपाकरुजान्वितः ॥ १८ ॥ रक्तोवारक्तपित्ताभ्या-

मुत्पातःसगदोमतः ।

अर्थ—कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, अथवा चोटके लगनेसे, अथवा कानको खींचनेसे, रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालीमें हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय उसमें दाह होवै, पीडा होवै, और रक्त वहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं ।

उन्मथकके लक्षण

कर्णबलाद्वर्धयतःपाल्यावायुःप्रकुप्यति ॥ १९ ॥ सकफंशु-
ह्यकुरुतेसशोफंस्तब्धवेदनं । उन्मथकःसकण्डूकोविकारःक-
फवातजः ॥ २० ॥

अर्थ—कानको बलपूर्वक बढ़ानेसे पालीमें (लौरमें) वायु कुपितहोकर क-
फको संग लेकर कठिन तथा मंद पीढायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली
चले, इस कफवातजन्यविकारको उन्मथक कहते हैं ।

दुःखवर्द्धनके लक्षण

संवर्ध्यमानेदुर्विद्धेकण्डूदाहरुजान्वितः ।

शोफोभवतिपाकश्चत्रिदोषोदुःखवर्द्धनः ॥ २१ ॥

अर्थ—दुष्टरीतिकरके कानको छेदनेसे, तथा बढ़ानेसे, खुजली दाह पीडा-
युक्त ऐसी सूजन होय, वह पकजाय उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं ।

परिलेहीके लक्षण

कफासृक्कृमिसंभूतःसविसर्पन्नितस्ततः ।

लिहेच्चशङ्कुलींपालींपरिलेहीत्यसौस्मृतः ॥ २२ ॥

अर्थ—कफ रक्त कृमिसे उत्पन्न भया तथा सर्वत्र विचरनेवाली ऐसी जो
सूजन कानकी पालीमें होय, वो कानकी पालीको खाय जाय, अर्थात् उसका
मांस क्षरणे लगे, इसको परिलेही कहते हैं ।

इति भावार्थदीपिकामाधुरीभाषाटीकायां कर्णरोगनिदानं समाप्तम् ॥

नासारोगनिदानम् ।



पीनसके लक्षण

आनह्यतेयस्यविशुष्यतेचप्रक्लिद्यतेधूप्यतिचैवनासा । नवे-
नियोगंधरसांश्चजन्तुर्छुष्ट्व्यवस्येत्सतुपीनसेन ॥ १ ॥ तं
चानिलश्लेष्मभवंविकारंब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गं ।

अर्थ—जिसकी नाक रुकजाय, वात शोषित कफसे नाक भीतरसे सूखीसी
रहे, गीली रहे, धुआंसा निकले, जिसकी नाकमें सुगंधि दुर्गंध मिष्ट रसादिककी

गंधि मालूम नहो, उसके पीनस प्रगट भई जाननी, इस वातजन्य विकारको प्र-
तिश्याय (पीनस) कहते हैं ।

पूतिनस्यके लक्षण

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलेसंमूर्छितोयस्यसमीरणस्तु । निरे-
तिपूतिर्मुखनासिकाभ्यांतंपूतिनस्यंप्रवदंतिरोगं ॥ २ ॥

अर्थ—गले और तालुवेमें दुष्टभया पित्तरक्तादि दोषकरके वायु मिश्रित हो-
कर नाक और मुखके मार्गोंमें दुर्गंधि निकले, इस रोगको पूतिनस्य क-
हते हैं ।

नासापाकके लक्षण

घ्राणाश्रितंपित्तमरूपिकुर्याद्यस्मिन्विकारेवलवांश्चपाकः ।

तन्नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्रेदकोथावथवापियत्र ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुंसी प्रगट करे, और नाक भीत-
रसे पकजाय, उसको नासिकापाक कहते हैं इसमें नाकमें राध बहे ।

पूयरक्तके लक्षण

दोषैर्विदग्धैरथवापिजन्तोर्ललाटदेशेभिहतस्यतैस्तैः ।

नासास्त्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रंतंपूयरक्तंप्रवदन्तिरोगम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दोष दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोटलगनेसे नाकमेंसे राध बहे, और रु-
धिर बहे, इस रोगको पूयरक्त कहते हैं ।

क्षवथु (छोंक)के लक्षण

घ्राणाश्रितेमर्मणिसंप्रदुष्टोयस्यानिलोनासिकयानिरेति ।

कफानुयातोवहुशोऽतिशब्दंतरोगमाहुःक्षवथुंविधिज्ञाः ॥ ५ ॥

अर्थ—नामिकाश्रित मर्मके (शृंगाटकमर्म)के विषे वायु दुष्ट होकर कफ
सहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाड़े, उसको क्षवथु (छोंक) कहते हैं ।

आगंतुजक्षवथुके लक्षण

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतोवाभावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।

सूत्रादिभिर्वातरुणास्थिमर्मण्युद्धाटितेऽन्यक्षवथुनिरेति ॥ ६ ॥

अर्थ—तीखे राई आदि पदार्थ खानेसे, अथवा कटुवात्तानेसे, मिरच आदि
तीखी वस्तुओंके ग्रंथनेसे, मूर्त्यक देखनेसे, अथवा कपड़ेकी बत्ती घनाकर नाकमें

तरुणास्थि मर्म (फणामर्म)में लगानेसे, आगंतुज क्षवधु (छींक) आतीहै आ-
गंतुज और दोषज छींक एकही है ।

अंशयुके लक्षण

प्रभ्रदयतेनासिकयाहियस्यसांद्रोविदग्धोलवणःकफश्च ।

प्राक्संचितोमूर्धनिसूर्यतसेतंभ्रंशथुंव्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

अर्थ—सूर्यकी गरमीककेँ मस्तक तप्त होनेसे पूर्वसंचित भया विदग्ध गाढा
खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधिको अंशधुरोग कहते हैं ।

दीप्तके लक्षण

घ्राणेभृशंदाहसमन्वितेतुविनिश्चरेद्धूमइवेहवायुः ।

नानाप्रदीप्तेवचयस्यजंतोर्व्याधितुतं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

अर्थ—नाक असन्त दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धूआँके सदृश विचरे, और
नाक प्रदीप्त होवे अर्थात् गरम होवे इस रोगको दीप्त कहते हैं ।

प्रतिनाहके लक्षण

उच्छ्वासमार्गतुकफःसवातोरुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

अर्थ—वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छी री-
तिसे चले नहीं, इसको प्रतिनाह कहते हैं ।

नासास्त्रावके लक्षण

घ्राणाद्धनःपीतसितस्तनुर्वादोषःस्ववेत्स्त्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

अर्थ—नाकसे गाढा पीला अथवा सफेद पतला दोष (कफ) सवे, उसको
स्त्राव कहते हैं ।

नासापरिशोथके लक्षण

घ्राणाश्रितेस्रोतसिमारुतेनगाढंप्रतसेपरिशोषितेच ।

लुब्ध्राच्छुस्तेदूर्ध्वमधश्चजंतुर्यस्मिन्सनासापरिशोषउक्तः ॥ १० ॥

अर्थ—वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूखजाय, तब मनुष्य बड़े
कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं ।

चिकित्साभेदार्यपीनसके आमपकके लक्षण

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्त्रावस्तनुःस्वरः । क्षामःष्ठीवेत्तथा-

ऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥ आमलिंगान्वितःश्लेष्मा

घनश्चाप्सुनिमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्चपक्वपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, नासिकासे गरम गरम जलका झरना, आवाज कुछ मन्दी हो, और शरीरका कुश होना, बार बार थूकना, यह आम- (कच्चे) पीनसके लक्षण हैं और जिस्में इसी पूर्वोक्त आम पीनसकेभी लक्षण हों और कफ गाढ़ा हो गया हो, और जलमें गेरनेसे डूबजाय, और मुखसे साफ आवाज निकले, और मुखका रंग (रुहानी) अच्छा होय, तो जानना कि यह पीनस पक गया है ।

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः । प्र-

जागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतोमैथुनबाष्पशोषैः ॥ १३ ॥

संस्त्यानदोपेशिरसिप्रवृद्धोवायुःप्रतिश्यायमुदीरयेच्च ।

अर्थ—वेगोंके रोकनेसे, अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे, रज (धूल)के नासिकाके भीतर जानेसे असंत भाषण (असंत पढ़ने)से, और असंत गुस्सा करनेसे, तथा ऋतुविपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होनेसे, शिरोभिताप अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें शिरसे असन्त धूपसेवन करनेसे, रात्रिमें जागनेसे, दिनमें विशेष सोनेसे, और शीत पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे, इसी तरह कोहरके खानेसे, असन्त मैथुन करनेसे, पसीना अथवा आंसुओंके रुकनेसे, शिरमें दोष इकट्ठे हों फिर वायु वृद्धिगत होकर प्रतिश्याय रोग पीनस उत्पन्न करे ये कारण सद्योजनक अर्थात् तत्काल पीनस करनेवाले हैं ।

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान

चयंगतामूर्द्धनिमारुतादयःपृथक्समस्ताश्रतथैवशोणितम् ॥ १४ ॥

प्रकुप्यमानाविविधैःप्रकोपनैस्ततःप्रतिश्यायकराभवन्ति ।

अर्थ—मस्तकमें पृथक् वातादि दोष तथा सर्व दोष उसी प्रकार रुधिर-संचय होकर अनेक प्रकारके कारणोंसे (बलवानसे बैर करना दिवास्वापादि) कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करें ।

पूर्वरूपके लक्षण

क्षवप्रवृत्तिःशिरसोऽतिपूर्णतास्तम्भोऽगमर्दःपरिहृष्टरोमता ।

उपद्रवाश्चाप्यपरेष्टथग्विधानृणांप्रतिश्यायपुरःसराःस्मृताः ॥१६॥

अर्थ—छींकका आना, मस्तकका भारी होना, अंगोंका जिकड़जाना, तथा अंगोंका टूटना, रोमांच अवसंयसे आदिले और धूमादिक (१) तत्काल होनेवाले उपद्रव होंय तब पीनस होनेहार होती है तब ये लक्षण होते हैं ।

वातिकप्रतिश्यायके लक्षण

आनद्धापिहितानासातनुस्त्रावप्रसेकिनी । गलताल्वोष्ठशोषश्च
निस्तोदःशंखयोरपि ॥ १७ ॥ भवेत्स्वरोपघातश्चप्रतिश्याये-
ऽनिलात्मजे ।

अर्थ—जिसकी नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय, और उममेंमें पतला पानी निकले, गला तालु होठ ये सूखजाय, और कनपटी दृखे, गला ब-
जजाय, ये वातके पीनसके लक्षण हैं ।

पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण

उष्णःसपीतकःस्त्रावोघ्राणात्स्त्रवतिपैत्तिके ॥ १८ ॥ कृशोति-
पाण्डुःसन्तप्तोभवेदुष्णाभिपीडितः । सधूममार्गिसहसावम-
तीवचनासया ॥ १९ ॥

अर्थ—जिसकी नाकसे दाह और पीला स्त्राव होवे, वह मनुष्य कृश और पीला
होजाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अधिके समान धुआं निकले, यह पित्तकी
पीनसके लक्षण हैं ।

श्लेष्मिकके लक्षण

घ्राणात्कफःकफकृतेश्वेतःपीतःस्त्रवेद्वहुः । शुक्लावभासःशूना-
क्षोभवेद्गुरुशिरानरः ॥ २० ॥ कंठताल्वोष्ठशिरसांकण्डूभिर्मि-
पीडितः ।

अर्थ—नाकसे सफेद पीला बहून कफ गिरे, उमकी देह सफेद होजाय, नेत्रोंके
ऊपर मूजन होय, और मस्तक भारी रहे, और गला तालु होठ और शिर इनमें
पुजली विशेष चले, ये कफकी पीनसके लक्षण हैं ।

१ पूर्वव्याणि इत्यने प्रतिश्याये भिन्नानि । उपद्रवाश्चाप्यपरेष्टथग्विधानृणांप्रतिश्यायपुरःसराःस्मृताः ॥ १६ ॥
स्वसां सुगन्धाय, भिरस्यापूरण तथा ॥

सन्निपातके लक्षण

भूत्वाभूत्वाप्रतिश्यायोयस्याकस्मान्निवर्त्तते ॥ २१ ॥

सपक्वोवाप्यपक्वोवास्तुसर्वभवःस्मृतः ॥ २२ ॥

अर्थ—जिसकी नाकमें पूर्वोक्त कहे सो सर्व लक्षण मिलें, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा बिना पके नष्ट होजाय, उसको सन्निपातकी पीनस कहते हैं यह विदेह आचार्यके मतसे असाध्य है ।

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण

प्रक्लिद्यतेपुनर्नासापुनश्चपरिशुष्यति । पुनरानह्यतेचापिपु-
नर्विघ्नीयतेतथा ॥ २३ ॥ निश्वासोवातिदुर्गंधोनोरोगंधनवे-

त्तिच । एवंदुष्टप्रतिश्यायंजानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वारंवार जिसकी नाक झटा करे, और सूखजाय, और नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवै, नाक रुकजाय, और फिर खुलजाय, श्वास लेनेमें बाध आवै, तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान जाता रहे, ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्टप्रतिश्याय कहते हैं यह कष्टसे साध्य होती है यह पीनस पांच पीनसोंके अंतर्गत जाननी इनकाही भेद है यह छठी नहीं है ।

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण

रक्तजेतुप्रतिश्यायेरक्तस्त्रावःप्रवर्तते । ताम्राक्षश्चभवेजंतुरुरो-
घातप्रपीडितः ॥ २५ ॥ दुर्गंधाच्छ्वासवदनोगंधानपिनवेत्तिसः २६

अर्थ—रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होंय, उरःक्षतकी पीडा के सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें बाध आवै, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय, उरःक्षतके लक्षण ग्रन्थान्तरमें लिखे हैं सो जानने, किसी पुस्तकमें 'पित्तप्रतिश्यायकृतौलिङ्गैश्चापिसमन्वितः' ऐसा पाठ है इसका अर्थ यह है कि जिसमें पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हों ।

असाध्यलक्षण

सर्वेवप्रतिश्यायानरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टतांयान्तिकाले-

१ नृणां दुष्टप्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिध्यति इति विदेहः ॥

२ उरःक्षतं गुरुस्तब्धः पूतिकर्णकफो रसः । सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघातः सपीनसः ॥

अत्र पित्तप्रतिश्यायलिङ्गान्यपि बोद्धव्यानि तुल्यान् पित्तरक्तयोः ॥

नतदाऽसाध्याभवंति च ॥२७॥ मूर्च्छितिक्रमयश्चात्रश्वेताःस्नि-

ग्धास्तथाऽणवः । कृमिजोयःशिरोरोगस्तुल्यतेनास्यलक्षणम् २८

अर्थ—सर्व पीनस औषधी न करनेसे असाध्य होती हैं, इसमें नाकमें कीड़ा पड़जाय वो कृमि सफेद चिकने और चारीक होते हैं, कृमिज शिरोरोगोंके सदृश लक्षण होंय, कृमिज शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आये हैं ।

प्रतिश्याय और विकारोंकोभी करता है उनको कहते हैं

बाधिर्यमाद्यमघ्रत्वंधोरांश्चनयनामयान् ।

शोथाग्रिसादकासादीन्वृद्धाःकुर्वन्तिपीनसाः ॥ २९ ॥

अर्थ—पीनस बढ़नेसे बहरा होजाय, मंद दीखे, वास आवे नहीं, भयंकर नेत्ररोग होय, सूजन मंदाग्रि खांसी इत्यादि विकार होते हैं, मृश्रुतमें नासिकाके ३१ रोग कहेहैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १५ रोग कहे हैं बाकी १६ रोगोंको संख्या पूर्णके वास्ते लिखते हैं ।

अर्बुदंसप्तधाशोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ।

चतुर्विधंरक्तपित्तमुक्तंघ्राणेऽपितद्विदुः ॥ ३० ॥

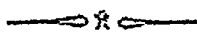
अर्थ—सात प्रकारका अर्बुद रोग, चार प्रकारके शोथ (सूजन) चार प्रकारका अर्श, और चार प्रकारके रक्तपित्त, ये पूर्वोक्त कहे रोग माल्ट होते हैं ।

वात पित्त कफ रुधिर मांस मेदकरके छः हुए और सातवा ग्राह्यान्वय गिद्धांतके मतसे सन्निपातका ऐसे सात प्रकारका अर्बुदरोग हुआ ।

वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चार प्रकारकी सूजन भट तथा वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चारही प्रकारकी अर्श (बवासीर) और चारही प्रकारका रक्त, रक्तपित्तकी समानतासे एकही जानना, पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्याय पर्यंत १५ भए और अर्बुदादि १६ हुए, ऐसे सव मिलकर नासिकारोग ३१ हुए ।

इति श्रीमाधवार्थदीपिकामाधुरीमापाटीकायां नासिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥

नेत्ररोगनिदानम् ।



कारण

उष्णाभितप्तस्यजलप्रवेशाद्दरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । स्वे-

दाद्रजोधूमनिषेवणाच्चछर्देर्विघाताद्मनातियोगात् ॥ १ ॥

द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्चविण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च । प्रस-
क्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥

तथाऋतूनांचविपर्ययेणक्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च । बाष्प-
ग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्चनेत्रे विकारान्जनयंतिदोषाः ॥ ३ ॥

अर्थ—गरमीसे तप्तहोकर जलमें प्रवेश (स्नानादि करना ऐसा करनेसे शी-
तलतामें शरीर व्याप्त होकर शरीरको गरमी ऊपर चढ़कर नेत्रके तेजको पराभव
करनेसे नेत्ररोग उत्पन्न होता है) दूरकी वस्तुको देखनेसे, दिनमें सोना, और
रात्रिमें जागनेसे नेत्रमें पसीना जानेसे, अथवा वाफ लगनेसे, अथवा नेत्रोंमें धूल
जानेसे अथवा धूँआ जानेसे वमनके वेगको रोकनेसे अथवा बहुत वमन (रह)
होनेसे पतले अन्नपानके असंत सेवन करनेसे विष्टा मूत्र और अधोवायु इनके
वेगको धीरे धीरे निग्रह (कहिये वेग धारण करनेसे) निरंतर रुदन करनेसे, शो-
कसे कोपसे मस्तकमें चोट लगनेसे, अति मद्यपान करनेसे, उसी प्रकार ऋतुके
विपर्यय (अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें शीतकाल) होनेसे, क्लेश कहिये
कामादिक दुःख उससे अभिघात कहिये दुःख होनेसे, अति मैथुन करनेसे, अशु-
पातका वेग धारण करनेसे, और सूक्ष्म पदार्थके अवलोकन करनेसे वातादिदोष
नेत्रोंमें रोग पैदा करते हैं सुश्रुतमें नेत्ररोगकी संप्राप्ति इस प्रकार लिखी है ।

यथा

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः ।

जायन्तेनेत्रभागेषुरोगाःपरमदारुणाः ॥ ४ ॥

अर्थ—कुपित हुए वातादिदोष नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्ति हो नेत्रोंका भाग व्याप्त
करनेसे उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होता है, ये वात पित्त कफ रुधिर सञ्चिपात
और आगंतु इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग ७६ हैं ।

नेत्ररोगका प्रायः अभिष्यंद (नेत्रआना) होता है

इसीसे प्रथम उसको कहते हैं

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।

प्रायेणजायतेधोरःसर्वनेत्रामयाकरः ॥ ५ ॥

अर्थ—वात पित्त कफ और रुधिर इनसे चार प्रकारका अभिष्यन्द रोग होता

है, इसकी पीड़ा नष्ट नहीं होय, तथा यह अभिष्यन्दरोग सर्व नेत्ररोगोंका (अधिमंथादिक उत्पत्तिस्थान जानना सो सुश्रुतमें लिखा है इस रोगको भाषामें नेत्र दूखना कहते हैं अथवा आंखआई कहते हैं) ।

वाताभिष्यंदके लक्षण

निस्तोदनस्तंभनरोमहर्षसंधर्षपारुष्यशिरोभितापाः ।

विशुष्कभावःशिशिराश्रुताचवाताभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ—वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभानेकीसी पीड़ा हो, नेत्रोंका स्तम्भन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटकें, तथा रुक्ष होय मस्तकमें पीड़ा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे, परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वो शीतल हो ।

पित्ताभिष्यंदके लक्षण

दाहप्रपाकौशिशिराभिनन्दाधूमायनंबाष्पसमुच्छ्रयश्च ।

उष्णाश्रुतापीतकनेत्रताचपित्ताभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ७ ॥

अर्थ—पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पकजाय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले, अथवा नेत्रोंमें धुआं-जानेकीसी पीड़ा हो, तथा नेत्रोंसे अश्रु (आंसू) बहुत पड़ें, और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पड़ें ।

कफजाभिष्यंदके लक्षण

उष्णाभिनन्दागुरुताक्षिशोथःकण्डूपदेहावतिशीतताच ।

स्त्रावोबहुःपिच्छिलएवचापिकफाभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ८ ॥

अर्थ—कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो, (अर्थात् नेत्रमेंसे कसा मालूम हो,) तथा नेत्र भारी हों, सूजन हो, खुजली चले, कीचड़से नेत्र दूषित हों, और शीतल हों, उनमेंसे स्राव होय, सो गाढ़ा और बहुत होय ।

रक्तजाभिष्यंदके लक्षण

ताम्राश्रुतालोहितनेत्रताचराज्यःसमंतादतिलोहिताश्च ।

पित्तस्यलिंगानिचयानितानिरक्ताभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ९ ॥

अर्थ—रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल हों और नेत्रोंमें

औरपासरे खासी लाल लाल दीखें, और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वो सब लक्षण इसमें होवें ।

अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति होती है सो कहते हैं

वृद्धैरेतैरभिष्यंदैर्नराणामक्रियावताम् ।

तावंतस्त्वधिमंथाःस्युर्नयनेतीव्रवेदनाः ॥ १० ॥

अर्थ—इस अभिष्यंदमें औषधोपचार न करनेसे यह बढ़कर उतनेही (चार) अभिष्यंदरोग नेत्रोंमें प्रगट होय, इससे नेत्रोंमें तीव्र पीडा होय, यह अधिमंथके सामान्य लक्षण हैं वेदनाशब्द इस जगह व्यथामात्रका वाचक है इससे यह प्रगट हुआ कि वातके अभिष्यंदसे वातिक अधिमंथ प्रगट होय उसमें तीव्र वातज सर्व निस्तोदादि पीढायुक्त होय, इसी प्रकार पित्तकेसे, कफकेसे, रुधिरकेसे, पित्त कफ रुधिरके अधिमंथ स्वलक्षणकरके जानने ।

दूसरे सामान्य लक्षण

उत्पाद्यतइवात्यर्थनेत्रनिर्मथ्यतेतथा ।

शिरसोऽर्द्धचतर्विद्यादधिमंथंस्वलक्षणैः ॥ ११ ॥

अर्थ—आधे शिरमें उपाढनेकीसी पीडा होय, अथवा तोढनेकीसी, तथा मथनेकीसी पीडा हो, व्याधिके प्रभावसे आधे शिरमें पीडा हो, इसे अधिमंथ कहते हैं । इनके लक्षण वातज अभिष्यंदके समान जानने ।

दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण

हन्यादृष्टिंश्चैष्मिकःसप्तरात्राद्योऽधीमंथोरक्तजःपंचरात्रात् ।

षड्रात्राद्वावातिकोवैनिहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकःसद्यएव ॥ १२ ॥

अर्थ—कफका अधिमंथ सातदिनमें दृष्टिका नाश करे, रक्तज अधिमंथ पांच दिनमें, वातिक अधिमंथ छः दिनमें, और पैत्तिक अधिमंथ मिथ्योपचारसे तत्काल (तीनदिनमें) दृष्टिका नाश करे, (अर्थात् आंख जाती रहे) इस जगह जो कालकी अवधि कहीहै सो व्याधिके स्वभावसे तथा लंघन प्रलेपादि क्रियाकरके तथा अंजननिषेधके निमित्त कहा है ।

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण

उदीर्णवेदननेत्ररागोद्रेकसमन्वितम् ।

वर्षनिस्तोदगूलाश्रुयुक्तमामान्वितंविदुः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस नेत्ररोगमें पीडा विशेष होय, लाली बहुत होकर चमका चले, तथा उसमें घर्ष (रेत गिरनेसे जैसी पीडा होती है वैसी) पीडा होय, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, शूलसा चले, और स्नावयुक्त होवे, उन नेत्रोंको आम-युक्त जानना । अंजन लगानेसे तथा हलका अब खानेसे ये लक्षण कहे हैं ।

निरामके लक्षण

मन्दवेदनताकण्डूःसंरम्भाश्रुप्रशान्तता ।

प्रसन्नवर्णताचाक्ष्णोःसंपक्वदोषमादिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—नेत्रोंमें पीडा कम होवे, खुजली चले, सूजन मंद होय, आंसुओंका गिरना बंद होय, नेत्रोंका वर्ण स्वच्छ होय, ये दोष पक्व होनेके लक्षण हैं ।

शोथसहितनेत्रपाकके लक्षण

कण्डूपदेहाश्रुयुतःपक्वोदुंबरसन्निभः ।

संरम्भीपच्यतेयस्तुनेत्रपाकःसशोफजः ॥ १५ ॥

शोथहीनानिलिंगानिनेत्रपाकेत्वशोथजे ।

अर्थ—नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाय, उनमें आंसु बहें, और पक्व गूलरके समान लाल होंय, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं और शोथ (सूजन)के बिना जो नेत्रपाक होय उसमें शोथको छोड़कर सब लक्षण होंय, यह व्याधि त्रिदोषजन्य जाननी ।

हताधिमंथके लक्षण

उपेक्षणादक्षियदाऽधिमंथोवातात्मकःसादयतिप्रसह्य ।

रुजाभिरुग्राभिरसाध्यएषहताधिमंथःखलुनेत्ररोगः ॥ १६ ॥

अर्थ—वातज अधिमंथको उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको मुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोड़ (सुईके चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय, यह हताधि-मंथनामक नेत्ररोग असाध्य है इसी रोगको विदेह दृष्टशुक्लेषण कहता है अथवा दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोषभी जानना यही सुश्रुतकोभी मते है इसरोगसे नेत्र सूखे कमलके समान होजाते हैं ।

१ अंतर्गतः शिराणा तु यदा तिष्ठति मारुतः । स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति ॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मथानिव मारुतः । नयनं निर्वमत्याशु शूलतोदादिमंथनैः ॥

२ अंतःशिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन् । हताधिमंथं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्वृधाः ॥ इति विदेहः ॥ अथवा शोष्येदक्ष्णोः क्षीणात्तेजोबलादयम् ॥ तत्पद्ममिव संशुष्कं सवदेदितिलोचनम् ॥

वातपर्ययके लक्षण

वारंवारंचपर्येतिभ्रुवौनेत्रेचमारुतः ।

रुजश्चविविधास्तीव्राःसज्ञेयोवातपर्ययः ॥ १७ ॥

अर्थ—वायु क्रमसे कभीकभी भृकुटीमें प्राप्त हो और कभीकभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेकप्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातपर्यय कहते हैं ।

शुष्काभिपाकके लक्षण

यत्कूणितंदारुणरूक्षवर्त्मसंदह्यतेचाविलदर्शनंच ।

सुदारुणयत्प्रतिबाधनेचशुष्काक्षिपाकोपहतंतदक्षि ॥ १८ ॥

अर्थ—जो नेत्र खुले नहीं अर्थात् संकुचित होजाय, जिनकी बाफणी कठिण और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नहीं, जो खोल-नेमें बहुत दुःख होय, उन नेत्रोंको शुष्काभिपाकनामक रोगसे पीडित जानना । यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है सो करालार्चार्थने लिखा है ।

अन्यतोवातके लक्षण

यस्यावदूकर्णशिरोहनुस्थोमन्यागतोवाप्यनिलोऽन्यतोवा ।

कुर्याद्भुजैवैभ्रुविलोचनेचतमन्यतोवातमुदाहरंति ॥ १९ ॥

अर्थ—घाटी (घार) कान, मस्तक, ठोडी, मन्या नाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भृकुटी (भोंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे इस रोगको अन्यतोवातरोग कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीडा करे, इसीसे इसको अन्यतोवातरोग कहते हैं सो विदेहका मतभी है ।

अम्लाध्युषितके लक्षण

श्यावंलोहितपर्यन्तंसर्वचाक्षिप्रपच्यते ।

सदाहशोर्यसास्त्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ २० ॥

अर्थ—मध्यमें कुछ नीलवर्ण, और आस पास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पकजाय, और उन्में पीले रंगकी फुंसी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे, यह रोग अम्ल (खटाई आदि खानेसे होता है, सुश्रुतके मतसे यह रोग पित्तसे होता है) इसको अम्लाध्युषित कहते हैं ।

१ कूणितः खरवर्मासिकृच्छ्रोन्मीलाविलक्षणम् । सदाहमासुजोवातच्छुष्कपाकान्वितं वदेत् ॥

२ मन्यानामन्तरे वायुरुक्षितः पृष्ठतोपि वा । करोति भेदं निस्तोदं शंखं चाक्ष्णोः स्रवस्तथा ॥ तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ इति ॥

शिरोत्पातके लक्षण

अवेदनावापिसवेदनाचायस्याक्षिराज्योहिभवंतिताम्राः ।

मुहुर्विरज्यंतिचयाःसदादृग्वाधिःशिरोत्पातइतिप्रदिष्टः ॥२१॥

अर्थ—जिसकी नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित ताँबेके समान लाल रंगकी होजाय, और वह बराबर अधिकाधिक (जियादासे जियादा) लाल होजाय, इस रोगको शिरोत्पात (सबलबाधु) कहते हैं । यह रोग रक्तजन्य है ।

शिराहर्षके लक्षण

मोहाच्छिरोत्पातउपेक्षितस्तुजायेतरागस्तुशिराप्रहर्षः ।

ताम्राक्षमस्त्रवतिप्रगाढंतथानशक्नोत्यभिवीक्षितुंच ॥ २२॥

अर्थ—अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबल) बाधुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् इ-लाज न करनेसे शिराप्रहर्षरोग होता है उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें, और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखलाई न देवे ।

इति सर्वगता रोगाः ।

अब नेत्रोंके काले रंगमें होनेवाले रोग कहते हैं

सत्रणशुक्रलक्षण

निमग्नरूपंतुभवेद्विकृष्णेसूच्येवविद्वंप्रतिभातियद्वै ।

स्त्रावंस्त्रवेदुष्णमतीवयच्चतत्सत्रणंशुक्रमुदाहरंति ॥ २३ ॥

अर्थ—नेत्रके कालेभागमें शुक्रकहिये फूलसा होजाय, और वह भीतरसे ग-डासा होजाय उसमें सुई चुभानेकीसी पीडा होवे, तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको सत्रणशुक्र कहते हैं इसमें पीडा बहुत होतीहै, क्षतमें पीडा होना ठीकहीहै और नेत्रसरीखे मुकुमार ठिकानेपर तो विशेष पीडा होती है ऐसं भोजविदेहादिकोंका मत है ।

सत्रणशुक्रके साध्यासाध्यलक्षण

दृष्टेःसमीपेनभवेत्तुयत्तुनचावगाढंनचसंस्त्रवेद्वि ।

अवेदनंवानचयुग्मशुक्रंतत्सिद्धिमायातिकदाचिदेव ॥ २४ ॥

अर्थ—जो शुक्र (फूल) दृष्टीके समीप होय नहीं, और एक त्वचामें हो, बहुत सवे (झरे) नहीं, जिसमें पीडा न होय, और एकही स्थानमें दो बूंद (फूल) न होय, ऐसा शुक्र कदाचिद् अच्छाभी होजाय परन्तु इनसे विपरीत लक्षण द-

छीके समीप होना दूसरी त्वचामें होय बहुत सवे पीडा होय एक स्थानमें दो बूंद होय यह शुक्र अच्छा नहीं होय ।

अव्रणशुक्रलक्षण

स्यन्दात्मिकं कृष्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।

वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ २५ ॥

अर्थ—अभिष्यन्दसे उत्पन्न होकर नेत्रोंके काले भागमें चोप (कहिये सींग तुमड़ीकी पीडा) युक्त, शंख चन्द्र कुन्दपुष्प इनके समान सफेद आकाशके समान पतला ऐसा जो व्रणरहित शुक्र होय, उसको सुखसाध्य कहते हैं ।

अव्रणशुक्र अवस्थाविशेषकरके साध्य होय है सो कहते हैं.

गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं वापि वदन्ति कृच्छ्रं ।

अर्थ—जो शुक्र गंभीर हो अर्थात् दो तीन त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटा हो उसको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ।

अव्रण अवस्थाभेदकरके असाध्य होता है उसको कहते हैं

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वाचलं शिरासूक्ष्ममदृष्टि कृच्छ्रं ॥ २६ ॥

द्विवृत्तं तलोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ।

अर्थ—जो शुक्रके बीचका मांस गिरजाय, इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला होजाय, अथवा इसके विपरीत कहिये पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिरान्करके व्याप्त हो, वारीक होगया हो, दृष्टि नाश करनेवाला (यह ' दृष्टेः समीपे न भवेत् ' इसका उलटा है) दो पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र हो ऐसेको वैद्य त्याग दे ।

दूसरे असाध्य लक्षण

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रेयस्मिन् भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रं ॥ २७ ॥

तदप्यसाध्यं प्रवदंतिकेचिदन्यच्च यत्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसके नेत्रोंसे गरम अश्रुपात (आंसू) गिरकर पिडिका उत्पन्न होवे (दो पटलमें शुक्र जानेसे ये लक्षण होते हैं) तथा जिसमें मूंगके बराबर शुक्र होवे ऐसा नेत्रका शुक्र असाध्य है और जो तीतरके पंखके समान (कहिये काले रंगका) होवे, उसकोभी कोई कोई असाध्य कहते हैं ।

अक्षिपाकाख्यके लक्षण

श्वेतःसमाक्रामतिसर्वतोहिदोषेणयस्यासितमण्डलन्तु ।

तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकंसर्वात्मकंवर्जयितव्यमाहुः ॥ २९ ॥

अर्थ—नेत्रके कृष्णभागमें दोषोंके योगसे चारों और सफेद (शुक्ल) फैल जावै यह सन्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्य है ऐसे कहा है ।

अजकाजातके लक्षण

अजापुरीषप्रतिमोरुजावान्सलोहितोलोहितपिच्छिलाश्रुः ।

विगृह्यकृष्णंप्रपयोऽभ्युपैतितच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ ३० ॥

इति कृष्णजाः

अर्थ—काले भागमें वकरीके शुष्क बिष्टाके समान दूखनेवाला लाल हो, और गाढा कुछ कालेसे आंख बंद, उसको अजकाजात ऐसे जानना चाहिये ।

इति कृष्णजारोगः ॥

दृष्टिके रोग

पहले पटलमें दोष जानेसे उसके लक्षण

प्रथमेपटलेयस्यदोषोदृष्टिव्यवस्थितः ।

अव्यक्तानिचरूपाणिकदाचिदथपश्यति ॥ ३१ ॥

अर्थ—प्रथम पटलमें दोष स्थित होनेसे वह पुरुष अव्यक्तरूप (घटपटादि पदार्थ) देखे । दृष्टिका प्रमाण सुश्रुतमें कहा है ।

यथा

मसूरदलमात्रन्तुपंचभूतप्रसादजम् ।

अर्थ—आधे मसूरदलके समान पंचभूत (पृथ्वी जल तेज वायु आकाशसे) भगद है * शंका—इस श्लोकमें तो मसूरदलके समान लिखा है फिर आधे मसूरके समान ऐसा अर्थ आपने कैसे किया * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह अर्थ हमने निमि आचारीके मतसे लिखा है यथा “ पंचभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्द्धदलोन्मिता ” इति । अब कहते हैं कि मंडल चार हैं सो सुश्रुतमें लिखा है ।

१ अजकाजातकामेद (विदेह) दूसरा कहता है । यथा—कृष्णैरक्ष्णोर्मवेच्छक छगलीविद्ममप्रमं । सांद्रं पिच्छिलरक्तास्त्रित्वगात्वजकोति सा ॥

यथा

तेजोजलाश्रितं बाह्ये ते ष्वन्यत्पि शिताश्रितम् ।

मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थिचापरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रथम पटल रुधिर और जलाश्रित है, दूसरा पटल पिशित (मांस) के आश्रय है, तीसरा पटल (मेद) के आश्रित है, चौथा पटल अस्थि (हड्डी) के आश्रित है, इति । सुश्रुतमें नेत्ररोगके भेद बहुत लिखे हैं ।

द्वितीयपटलस्थितदोषके लक्षण

दृष्टिर्भृशं विव्हलति द्वितीयं पटलं गते । मक्षिकामशकान्केशान्-
जालकानि च पश्यति ॥ ३३ ॥ मण्डलानि पताकाश्च मरी-
चीन्कुण्डलानि च । परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रंतमांसि च ।
॥ ३४ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीप-
स्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ३५ ॥ यत्नवानपि चात्य-
र्थसूचीपाशनं पश्यति ।

अर्थ—दूसरे पटलमें दोषके जानेसे दृष्टि विव्हल हो जाय, (अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय) उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी मच्छर वाल जाली मंडल पताका किरण कुण्डल आदि अनेक प्रकारके जलके समूह वर्षा मेघ (बादल अंधकार ये नहीं दीखें, ये दृष्टि विव्हल होनेसे होते हैं और विषय भ्रान्तिसे दूरकी वस्तु समीप दीखे, और समीपकी दूर दीखे, और अनेक यत्न करनेसे भी सुईका छिद्र न दीखे ।

तृतीयपटलगतदोषके लक्षण

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात् तृतीयं पटलं गते ॥ ३६ ॥ महान्त्यपि च
रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः । कर्णनासाक्षिहीनानि विकृता
नि च पश्यति ॥ ३७ ॥ यथा दोषं चरज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ।
अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३८ ॥ पार्श्वस्थि-
ते पुनर्दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति । समन्ततः स्थिते दोषे संकुला
नीव पश्यति ॥ ३९ ॥ दृष्टिर्मध्यस्थिते दोषे महद्भ्रस्वं च पश्य-

ति । द्विधास्थितेद्विधापश्येद्वहुधावाऽनवस्थिते ॥ ४० ॥ दो-
पेदृष्टिस्थितेत्यिदं वैमन्यतेद्विधा ।

अर्थ—तीसरे पटलमें दोष जानेसे ऊपरकी वस्तु दीखे नीचेकी वस्तु नहीं दीखे, जो वस्तु बड़ी और भव्य होवै वह वस्त्रसे ढकीसी दीखे, कान नाक और नेत्र इनकरके रहित पुरुषोंको देखे, टेढ़े बाँके दीखे, और जिस वातादि दोषका रुधिर मांस भेदादिकोंके सहाय होनेसे उनमें जो दोष बलवान होय उसका जैसा रूप (रंग) होवे उसी प्रकारका दीखै, अर्थात् जिस जिस दोषका जैसा वर्ण होय वैसा दीखे, दोष नीचे स्थित होय तो समीपस्थ वस्तु नहीं दीखे, और ऊपर दोष स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे, और दोष पार्श्व (पस-बाड़)में स्थित होनेसे पसबाड़ेकी वस्तु नहीं दीखे, और दोष दृष्टिमें सर्वत्र स्थित होवै तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखें दृष्टिके मध्यमें दोष जानेसे बड़ी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखें, और दोष अव्यवस्थित (अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे) एक वस्तुके दो टुकड़ेसे दिखलाई दें, दृष्टिगत दोष तिरछे स्थित होनेसे एक वस्तुके दो टुकड़े दिखलाई दें, यह स्वरूपोंका दीखना तीसरे (पटल)से प्रारंभ होता है, सो चिदेहने लिखाभी है ।

चतुर्थपटलगततिमिरलक्षण

तिमिराख्यःसर्वैरोगश्चतुर्थपटलगतः ॥ ४१ ॥ रुणद्धिसर्वतो
दृष्टिलिंगनाशमतःपरं । अस्मिन्नपित्तमोभूतेनातिरूढेमहा-
गदे ॥ ४२ ॥ चन्द्रादित्यौसनक्षत्रावन्तरिक्षेचविद्युतः । नि-
र्मलानिचतेजांसिभ्राजिष्णूनिचपदयति ॥ ४३ ॥

अर्थ—वह तिमिररोग चौथे पटल (परदे)में पहुंचनेसे दृष्टिको चारों औरसे रोक दे, इसको कोई आचारी लिंगनाश कहते हैं और कोई तिमिर कहते हैं, यह अंधकारमय रोग अति बढजाय तब उस मनुष्यको आकाशमें चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विजली, और निर्मलतेजभी यथार्थ नहीं दीखें, तेजके गुंजसे दीखें, लौ-किकमें इस रोगको नजला कहते हैं लिंगनाशकी निरुक्ति ' लिंगयते ज्ञायते इत्य-नेनेति ' ' लिंगमिन्द्रियशक्तिस्तस्य नाशो यस्मिन्निति लिंगनाशः ' अर्थात् जिसक-

१ यथास्व रज्यते दृष्टिदोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थं पटलं प्राप्य मण्डलं त्यजते तुतैः ॥ इति ।

रके जाने सो कहिये लिंग (इन्द्री) उसका नाश जिसमें होय उसको लिंगनाश कहते हैं, और इसी रोगको लौकिकमें मोतियाबिन्दु भी कहते हैं ।

तृतीयपटलाश्रितकाचदोषकी दूसरी संज्ञा

सएवल्लिंगनाशस्तुनीलिकाकाचसंज्ञितः ।

अर्थ-तीसरे पटलगत कांच (मोतियाबिन्दु) की उपेक्षा करनेसे वही फिर चौथे पटलमें पहुँचता है, तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं यह रोग असाध्य है सो निमिआचारी लिखते हैं परन्तु गदाधर आचारी कहते हैं कि विशेषकाचको नीलकाकाच कहते हैं ।

दोषविशेषकरके रूपका दीखना कैसा होता है

तत्रवातेनरूपाणिभ्रमन्तीवहिपश्यति । आविलान्यरूणाभा
निव्याविद्वानीवमानवः ॥ ४२ ॥ पित्तेनादित्यखद्योतशक्र
चापतडिद्वणान् । नृत्यन्तश्चैवशिखिनःसर्वनीलंचपश्यति
॥ ४३ ॥ कफेनपश्येद्रूपाणिस्निग्धानिचसितानिच । सलिल
प्लावितानीवपरिजाड्यानिमानवः ॥ ४४ ॥ पश्येद्रक्तेनरक्ता
नितमांसिविविधानिच । ससितान्यथरुष्णानिपीतान्यपिच
मानवः ॥ ४५ ॥ सन्निपातेनचित्राणिविष्णुतानिचपश्यति ।
बहुधाचद्विधावापिसर्वाण्येवसमंततः ॥ ४६ ॥ हीनांगान्य-
धिकांगानिज्योतीर्ण्यपिचपश्यति ॥

अर्थ-वादीसे रोगीको मलिन, कुछ लाल, तिरछी, और भ्रमती, ऐसी वस्तु दीखे ।

पित्तसे सूर्य, खद्योत, (पटबीजना) इन्द्रधनुष, विजली इनको, और नाचनेवाले मोर, तथा सर्व वस्तु नीली दीखें ।

कफसे चिनकी, और सफेद, तथा पानीमें डबोई हुई निकालनेके समान, और भारी ऐसा रूप दीखे ।

रुधिरसे लाल, और अनेक प्रकारका अंधकार, तथा किंचित सफेद, काली, और पीली ऐसी वस्तु दीखें ।

सन्निपातसे अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एककी अनेक दो अथवा अ-

१ काच इत्येष विजयो याप्यखिपटलस्थितैः । चतुर्थपटलं प्राप्तो लिङ्गनाशः स उच्यते ॥

नेत्र प्रकारके रूप दीर्घ) हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप गोरी देखे, और ज्योतिस्वरूपसे सब पदार्थ दीर्घ ।

पिचसे दूसरे परिम्लायसंज्ञक तिमिर होय है

पिचं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्तजसा ॥ ४७ ॥ पीतादिश
स्तथोदथोतान्नवीनपि स पदयति । विकीर्यमाणान्बद्धोत्तेर्लक्ष-
स्तेजोभिरेव च ॥ ४८ ॥

अर्थ—रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पिचसे परिम्लायरोग होय, इसके योगसे रोगीको दिशा, आकाश, और सूर्य, ए पीले दीर्घ और सर्वत्र सूर्य जगसे दीर्घ तथा दृक्क्षभी तेजस्वरूपसे दीर्घ, परिम्लायि पिचको नील कहते हैं सो सात्यकि ने लिखा है इस रोगको कोई आचारी रक्तपिचसे होता है ऐसे कहते हैं सो भी लिखा है

रागभेदसे लिंगनाशको षड्विधत्व कहते हैं

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिंगनाशमतः परम् । रागोऽरुणो मारुतजः
प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पिचात् । कफात्सितः श्लोभितजः
सरको स मस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ४९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर रागभेदसे छः प्रकारका लिंगनाश होता है, सो इस प्रकार वातजन्य रंग लाल होय है पिचसे म्लायी, पीछा, नीला, अथवा नीलाही रंग होय कफसे सफेद, और रुधिरसे लाल, तथा सब दोषोंसे अनेक प्रकारका रंग होता है ।

वातिकरागके विशेष लक्षण

अरुणं मण्डलं दृष्ट्वा स्थूलकाचारुणप्रभं । परिम्लायिनिरोगे
स्यान्म्लायिनीलं च मण्डलं ॥ ५० ॥ दोषक्षयात्कदाचित्स्या-
त्स्वयन्तत्र प्रदर्शनम् ।

अर्थ—परिम्लायि रोगमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता है, वह म्लान (लाल पीला) अथवा नीला होता है, उसमें दोष घटनेसे कदाचित् देखनेकी शक्ति होय इस जगह दोषशब्दकारके कोई कर्मका ग्रहण करते हैं ।

१ एकमेव तु विज्ञेया नीलाः पिचसमुद्भवा इति ॥

२ निदग्धापि परिम्लायि पित्तरक्तेन सगताम् । तेन पीता दिग्गः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ इति ।

दृष्टिमण्डलगतरागके लक्षण

अरुणमण्डलं वाताच्चंचलंपरुषंतथा ॥ ५१ ॥ पित्तान्मण्ड-
लमानीलं कांस्थ्याभंपीतमेव च । श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शंसकु-
न्देन्दुपाण्डुरं ॥ ५२ ॥ चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवां-
भसः । मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्वि सर्पति ॥ ५३ ॥ प्रवा-
लपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकं । दृष्टिरागो भवेच्चित्रोलिं-
गनाशो त्रिदोषजे ॥ ५४ ॥ यथास्वं दोषलिंगानि सर्वेष्वेव भ-
वंति हि ।

अर्थ—वादीसे दृष्टिमंडल लाल, चंचल, और खरदरां होता है पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला, तथा कांचके समान पीला होवे कफसे भारी, चि-
कना, शंस, कुंदफूलके समान और चन्द्र इनके समान सफेद होय और उसके
नेत्रमें हलनेवाला कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूंदके समान टेढ़ी तिरछी सफेद, बूंद
फैलीसी दिखलाई दे रुधिरसे दृष्टिमंडल भूंगाके समान अथवा लाल कमलके
समान लाल होवे, और त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मंडल होंय, तथा
सर्वदोषोंके लिंगमंडलमें वातादि दोषोंके न्यारे न्यारे लक्षण होंय ।

आगे कहे गये और पीछे कहे ऐसे दृष्टिरोगीकी संख्या

षड्लिंगनाशाः षड्भिमेचरोगा दृष्ट्याश्रयाः पट्चषडेव च स्युः ।

अर्थ—पूर्व कहे लिंगनाश रोग छः, और आगे विदग्धदृष्ट्यादि कहे गए वह
छः ऐसे सब मिलकर बारह दृष्टिरोग होते हैं ।

पित्तविदग्धके लक्षण

पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ।

पीतानिरूपाणि च तेन पश्येत्सर्वे नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पित्त दुष्ट होकर बढ़नेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय, तथा उसके
योगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखें, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध
कहते हैं ।

दिवांधके लक्षण

प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवान पश्येन्न शिषीक्षते सः ।

रात्रौ सशीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपित्तानि पश्येत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-तिसरे पटलमें दोष (पिच) जानेसे, दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रा-
त्रिमें शीतलताके कारण पिच कम होनेसे दीखे ।

कफविदग्धदृष्टिके लक्षण

तथानरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हिमंथने तु ।

अर्थ-इसी प्रकार, कफविदग्ध पुरुषको सफेद रूप दीखे ।

रक्तांश (रतौष) के लक्षण

त्रिष्टुस्थितो यः पटलेषु दोषो न कांध्यमापादयति प्रसह्य ॥ ५८ ॥

दिवाससूर्यानुगृहीतदृष्टिः पदर्थं तुरूपाणि कफात्पभावात् ।

अर्थ-जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वो रक्तांश रतौष उत्पन्न करे, वो
दिवस (दिन) में सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे दिनमें दीखे ।

धूमदर्शिके लक्षण

शोकज्वरायासाक्षिरोमितापरिभ्याहतायस्थनरस्य दृष्टिः ॥ ५९ ॥

धूमांस्तथापश्यति सर्वभावान्सधूमदर्शीति नरः प्रविष्टः ।

अर्थ-शोक, ज्वर, परिश्रम, और मस्तकताप, इन कारणोंसे पिच कृपित
होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होवे, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूमांके रं-
गके दीखें, इस रोगको धूमदर्शी वा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं इसमें दिनको
धूमांके रंगके पदार्थ दीखे इसका कारण यह है कि रात्रिमें पिचका तेज घटनेसे
निर्यल दीखे ।

ह्रस्वदृष्टिके लक्षण

यो ह्रस्वजात्यो दिवसे शुक्लं ह्रस्वानिरूपाणि च तेन पश्येत् ॥ ६० ॥

अर्थ-जो ह्रस्वजात पुरुष होता है उसको दिनमें बड़े पदार्थ छोटे दीखें, इ-
सका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्य गतदोष होता है, यह रोगभी
पिचजन्य है ।

नकुलांध्यके लक्षण

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्नान्कुलस्य यद्वत् ।

चित्राणिरूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो न कुलांध्यसंज्ञः ॥ ६१ ॥

अर्थ-जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिके समान चमके,
वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं ।

गम्भीरदृष्टीके लक्षण

दृष्टिर्विरूपाश्वसनोपसृष्टासंकोचमभ्यन्तरतश्चयाति ।

रुजावगाढंचतमक्षिरोगंगम्भीरकेतिप्रवदंतितज्ज्ञाः ॥ ६२ ॥

अर्थ—जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे, तथा उसमें पीड़ा होवे, उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं ।

आगंतुज लिंगनाशके लक्षण

बाह्यौपुनर्द्वाविहसंप्रदिष्टौनिमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ।

निमित्ततस्तत्रशिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिर्दर्शनःसः ॥ ६३ ॥

अर्थ—अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है, एक निमित्तजन्य, दूसरा अनिमित्तजन्य, तिनमें शिरोभितापकरके (विषष्टक्षके फलसे मिला पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं । इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं ।

अनिमित्तके लक्षण

सुरार्षिगंधर्वमहोरगाणांसन्दर्शनेनापिचभास्करस्य । हन्येतद-

ष्टिर्मनुजस्ययस्यसल्लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥ ६४ ॥ त-

त्राक्षिविस्पृष्टमिवावभातिवैदूर्यवर्णाविमलाचदृष्टिः ।

अर्थ—देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प, और सूर्य, इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय, उसको अनिमित्तल्लिंगनाश कहते हैं, इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं, और दृष्टि वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय अब कहते हैं कि देवादिक भौतिक इंद्रियोंको नहीं विगाड़ें, परन्तु उनकी शक्तिका नाश करते हैं, सो चरकमें लिखा है ।

अर्मरोग (५) प्रकारका है

प्रस्तार्यमतनुस्तीर्णदयावंरक्तनिभंसिते । सश्वेतंमृदुशुक्लार्म

शुक्लेतद्वर्धतेचिरात् ॥ ६५ ॥ पद्माभंमृदुरक्तार्मयन्मांसंची-

यतेसिते । पृथुमृद्वर्धिमांसार्मबहलंचयकृन्निभम् ॥ ६६ ॥

स्थिरंप्रस्तारिमांसाढ्यंशुष्कंस्नाय्वर्मपंचमम् ।

१ देवादयोष्टौ हि महाप्रमावा न दूषयंतः पुरुषस्य देहम् । विशाल्यदृष्ट्यास्तरसा यथैव छाया-
तयोर्दर्पणसूर्यकालौ ॥

अर्थ—नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण, तथा लाल, ऐसा जो मांस बढे उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं ।

शुक्लभागमें सफेद मृदुमांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते हैं ।

कमलके समान लाल तथा मृदु जो मांस बढे उसको रक्तार्म कहते हैं ।

जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ काला लाल) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं ।

जो कठिन तथा फैलनेवाले स्यावरहित मांस बढे, उसको स्नाय्वर्म कहते हैं । विदेहने कहाभी है ।

शुक्तिरोगके लक्षण

श्यावाःस्युःपिशितनिभास्तुबिंदवोयेशुक्त्याभाः

सितिनियताःसशुक्तिसंज्ञः ॥

अर्थ—नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसदुल्य सीपीके समान जो बिंदु होय, उसको शुक्ति कहते हैं ।

अर्जुनके लक्षण

एकोयःशशरुधिरोपमश्चबिन्दुःशुक्लस्थोभवतितदर्जुनंवदंति ॥ ६७ ॥

अर्थ—शुक्लभागमें ससेके रुधिरके समान जो बिन्दु (बुंद) नेत्रमें उत्पन्न होय, उसको अर्जुन कहते हैं ।

पिष्टकके लक्षण

इलेष्ममारुतकोपेनशुक्लेमांससमुन्नतम् ।

पिष्टवत्पिष्टकंविद्धिमलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—कफ वायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा)सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वो मलसे मिले अर्वा (ववासीर)के समान होता है ।

जालके लक्षण

जालाभःकठिनशिरोमहान्सरक्तःसंतानःस्मृतइहजालसंज्ञितस्तु ।

अर्थ—नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस)का समूह जालीके समान होय, और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे, उसको जाल कहते हैं ।

१ प्रस्तारिणोर्भणः स्यात्वं निरुणद्धि यदानिलः । विनास्त्रावे विशुष्यं यत् स्यान्मैतीति तद्विदुः ।

शिराजपिटिकाके लक्षण

शुक्लस्थाःसितपिटिकाःशिरावृतायास्ताब्रूयादसितसमीपजाः

शिराजाः ॥ ६९ ॥

अर्थ—नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त ऐसी सफेद फुंसी होय, उसको शिराजपिटिका कहतेहैं वह कृष्णभागके समीप होती है ।

बलासके लक्षण

कांस्याभोऽमृदुरथवारिबिंदुकल्पोविज्ञेयोनयनसितेबलाससंज्ञः ७०

इतिशुक्लजाः

अर्थ—नेत्रके शुक्लभागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीकी बूंदके समान कुछ ऊंची जो गांठ होय, उसको बलास कहते हैं ।

इति शुक्लजाः

नेत्रकी संधिके रोग

पूयालसके लक्षण

पक्कःशोथःसंधिजोयःसतोदःस्ववेत्पूयंपूतिपूयालसारव्यः ।

अर्थ—नेत्रकी संधिमें सूजन होवै, और पक्कर फूटजाय, उसमेंसे दुर्गंधि और राध वहे, तथा तोद (सूई छेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं ।

उपनाहके लक्षण

ग्रंथिर्नाल्पोद्वष्टिसंधावपाकीकण्डुप्रायोनीरुजस्तूपनाहः ॥ ७१ ॥

अर्थ—नेत्रकी संधिमें बड़ी गांठ होवै, वह थोड़ी पके उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं, उसको उपनाह ऐसे कहते हैं ।

स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण

गत्वासंधीनश्रुमार्गेणदोषाःकुर्युःस्त्रावान्लक्षणैःस्वैरुपेतान् ।

तंहिस्त्रावनेत्रनाडीतिचैकेतस्यालिंगंकीर्तयिष्येचतुर्था ॥ ७२ ॥

अर्थ—वातादि दोष अश्रुमार्गसे संधियोंमें प्राप्त होकर स्वकीयलक्षणयुक्त स्राव उत्पन्न करे, उस स्रावको कोई नेत्रनाडी कहते हैं यह रोग चार प्रकारका है उ-

१ मारुतो पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः । जलत्रिदुरिवोन्मूलो गृहः सकफसंभवः ॥
बलासग्रथितं नाम तं शोफं वृत्तमादिशेत् ॥

सके लक्षण कहते हैं * शंका-क्योंजी वातका स्राव क्यों नहीं कहा * उत्तर-
वातमें स्राव नहीं होता है इसीसे बिदेहने चारही प्रकारके स्राव कहे हैं ।

पाकःसंधौसंस्त्रवेद्यस्तुपूर्यंपूयास्त्रावोऽसौगदःसर्वजस्तु । श्वे-
तंसान्द्रं पिच्छिलं संस्त्रवेद्विशलेष्मास्त्रावोऽसौ विकारो मतस्तु ॥

॥ ७३ ॥ रक्तास्त्रावःशोणिताद्यो विकारःस्त्रवेदुष्णान्तररक्तं प्र-
भूतम् । हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्त्रावःसंस्त्रवेत्संधि-
मध्यात् ॥ ७४ ॥

अर्थ-पूयास्त्राव नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके, तथा उसमेंसे राध बहे,
यह रोग सन्निपातात्मक है ।

श्लेष्मास्त्रव जिसमेंसे सफेद गाढी और चिकनी राध बहे ।

रक्तास्त्राव जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर बहे, उसको रक्तास्त्राव क-
हते हैं ।

पित्तास्त्राव जिसकी संधिसे हलदीके समान पीला गरम जल बहे उसको
वास्त्राव कहते हैं ।

पर्वणी व अलजीके लक्षण

ताम्रातन्वी दाहपाकोपपन्नाज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा ।

जाता सन्धौ शुक्लकृष्णेऽलजी स्थितस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ७५ ॥

अर्थ-नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांवेके समान छोटी गोल जो फूँसी होवै
और वह फूँसी दाहहोकर पके उसको पर्वणी कहते हैं ।

और उसी ठिकाने पूर्वरूपसंयुक्त बड़ी फुन्सी उठे, उसको अलजी कहते हैं ।

पर्वणी और अलजीमें इतनाही अंतर है कि अलजी बड़ी फुन्सी होती है
और पर्वणी छोटी फुन्सी होती है यह बिदेहका मत है ।

कृमिग्रंथीके लक्षण

कृमिग्रंथिर्वर्त्मनःपक्ष्मणश्च कण्डूंकुर्युःकृमयःसंधिजाताः ।

नानारूपावर्त्मशुक्लान्तसंधौ चरन्त्यन्तर्नयनंदूषयन्तः ॥ ७६ ॥

१. सन्निपातात्कफाद्रक्तापित्तास्त्रावोक्षिसंधिषु ॥ इति ।

२. पर्वणीपिडिका तत्र जायते त्वंकुरोपमा । शुक्लकृष्णान्तसंधौ च जनयेद्भोस्तनाकृतिम् । पि-
डकामूर्त्नी तां तु विद्धि तोदाश्रुसंकुलाम् ॥ इति ।

अर्थ—जिसके नेत्रके शुक्रभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे, और नेत्रके पलक और सफेदी भागकी संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे उसको कृमिग्रंथि कहते हैं यह सन्निपातात्मक कहते हैं सो विदेहकाभी मत है ।

वर्तमरोग (मर्मस्थानके)

उत्संगपिडिकाके लक्षण

अभ्यन्तरमुखीताम्राबाह्यतोवर्त्मतश्चया ।

सोत्संगोत्संगपिडिकासर्वजास्थूलकण्डुरा ॥ ७७ ॥

अर्थ—नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुंसी होय, और उसका मुख भीतर होय, वह लाल बड़ी तथा खुजलीसंयुक्त होय, उसको उत्संगपिडिका कहते हैं यह सन्निपातसे होती है । गदार्धर और विदेहके मतसे पलकोंके कोएके बाहरभी यह रोग होता है । च इस श्लोकमें लिखा है उसका यह प्रयोजन है कि इस जगहभी गुंकीके अंडेकासा रससाव जानना ।

कुंभिकाके लक्षण

वर्त्मातेपिडकाध्माताभिद्यंतेचस्त्रवंतिच ।

कुंभीकबीजसदृशाःकुंभीकाःसन्निपातजाः ॥ ७८ ॥

अर्थ—पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुंसी होय, वह पककर फूट-जाय, और फूटकर वहे, उसको कुंभिका कहते हैं । कोई आचारी कहते हैं कि कच्छदेशमें दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है ।

पोथकी लक्षण

स्त्राविण्यःकण्डुरागुर्व्योरक्तसर्पसन्निभाः ।

रुजावंत्यश्चपिडिकाःपोथक्यइतिकीर्त्तिताः ॥ ७९ ॥

अर्थ—जिसके कोएमें लाल सरसोंके समान रुधिर सावहो, खुजलीसंयुक्त भारी तथा पीडासंयुक्त फुंसी होय, उसको पोथकी कहते हैं ।

१ ततः पूयमसृक्क्षणाः पतन्ति क्रमयस्तथा । लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः ॥ कृमि-ग्रंथि तु तं विद्यादेहिनां नेत्रदूषणम् ॥ इति ।

२ वर्त्मोत्संगादधो जंतोः सन्निपातात्प्रजायते । अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते ॥ पिडकापिडकामिश्र चितान्याभिः समंततः । उत्संगपिडकानाम काठिना मंदवेदना ॥ इति ।

वर्त्मशर्कराके लक्षण

पिडिकायास्वरास्थूलसूक्ष्माभिरभिसंवृता ॥

वर्त्मस्थाशर्करानामसरोगोवर्त्मदूषकः ॥ ८० ॥

अर्थ—जिसके कोणमें जो पिडका कठिन और बड़ी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुंसियोंसे व्याप्त होय, उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं इससे कोण विगड़ जाते हैं ।

अशोवर्त्मके लक्षण

उर्वारुबीजप्रतिमाःपिडिकामंदवेदनाः ।

श्लक्षणाःस्वराश्ववर्त्मस्थास्तदशोवर्त्मकीर्त्यते ॥ ८१ ॥

अर्थ—ककड़ीके बीजके बराबर मंद पीडा पृथक् पृथक् कठिन ऐसी फुंसी कोणमें उठें, उसको अशोवर्त्म कहते हैं । निमि (विदेह) के मतसे यह सन्निपातात्मक हैं ।

शुष्कार्शके लक्षण

दीर्घाङ्कुरःस्वरःस्तब्धोऽदारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।

व्याधिरेषोऽतिविख्यातःशुष्कार्शोनामनामतः ॥ ८२ ॥

अर्थ—नेत्रके कोणमें लंबे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे जो मांसाङ्कुर होंय उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं यहभी सन्निपातज है ।

अंजनाके लक्षण

दाहतोदवतीताम्नापिडिकावर्त्मसंभवा ।

मृद्वीमंदरुजासूक्ष्माज्ञेयासांऽजननामिका ॥ ८३ ॥

अर्थ—दाह तोद (चोंटनी) संयुक्त लाल, नरम, छोटी, मंद पीडाकरनेवाली, ऐसी फुंसी नेत्रके कोणमें होय; उसको अंजना कहते हैं, यहभी सन्निपातज है ।

बहलवर्त्मके लक्षण

वर्त्मोपचीयतेयस्यपिडिकाभिःसमंततः ।

सवर्णाभिःस्थिराभिश्चविद्याद्वहलवर्त्मतत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जिसके नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुंसीन्हीं व्याप्त होय, उसको बहलवर्त्मरोग कहते हैं येभी सन्निपातज है ।

१ वीरुजा कठिना वर्त्मापक्षान्तर्बाह्यतोपि वा । पिडिका सन्निपातेन तदशोवर्त्म कीर्त्यते ॥ इति

वर्त्मबंधके लक्षण

कण्डूमताऽल्पतोदेनवर्त्मशोथेनयोनरः ।

नसंप्रच्छादयेदक्षियत्रासौवर्त्मबंधकः ॥ ८५ ॥

अर्थ—जिसके नेत्रके कोर्योंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे, उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे, इस रोगको वर्त्मबंधक कहते हैं इस सूजनमें खुजली चले तथा तोद (चोटनी) होय यह रोग त्रिदोषज है ।

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण

मृद्वल्पवेदनंताम्रयद्वर्त्मसममेवच ।

अकस्माच्चभवेद्रक्तंक्लिष्टवर्तमेतितद्विदुः ॥ ८६ ॥

अर्थ—नेत्रके नीचे ऊपरके दोनों कोए नरम अल्प पीडा ताविके वर्ण होकर अकस्मात लाल होजाय, तो इस रोगको क्लिष्टवर्त्मरोग कहते हैं यह रोग कफरक्तज है, यही मत विदेहका है ।

वर्त्मकर्दमके लक्षण

क्लिष्टंपुनःपित्तयुतंशोणितंविदेह्यदा ।

तदक्लिन्नत्वमापन्नमुच्यतेवर्त्मकर्दमः ॥ ८७ ॥

अर्थ—क्लिष्टवर्त्म फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे, तब वह दही दूध माखनके समान ग्रीला होजाय, अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक हैं ।

श्याववर्त्मके लक्षण

वर्त्मयद्वाह्यतोऽतश्चश्यावंशूनंसवेदनम् ।

तदाहुःश्याववर्तमेतिवर्त्मरोगविशारदाः ॥ ८८ ॥

अर्थ—जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन होय, तथा पीडा होय, उसको वर्त्मरोगके जाननेवाले श्याववर्त्म कहते हैं यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है विदेहने लिखाभी है ।

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण

अरुजंबाह्यतःशूनंवर्त्मयस्यनरस्यहि ।

१ श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसमतः समं ॥ वधूजीवनिमं वर्त्म क्लिष्टमांसं तदुच्यते ॥

२ दुष्टं श्लेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा ॥ अग्निदग्धनिमं श्यावं श्याववर्तमेति तद्विदुः ॥ इति ।

प्रक्लिन्नवर्त्मतद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमंततः ॥ ८९ ॥

अर्थ—जो कोये अल्पपीडा तथा वाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्ति हो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं यह कफज विकार है ।

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण

यस्यधौतान्यधौतानिसंबध्यंतेपुनःपुनः ।

वर्त्मान्यपरिपक्वानिविद्यादक्लिन्नवर्त्मतत् ॥ ९० ॥

अर्थ—जिसके नेत्रके पलक धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे बारंवार चिपक जावें, कोए पककर राधसे नहीं (चिकटें) तो इस रोगको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं, इस रोगको विदेह पिछायाया कहता हैं ।

वातहतवर्त्मके लक्षण

विमुक्तसंधिनिश्रेष्ठं वर्त्म यस्य न मील्यते ।

एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९१ ॥

अर्थ—जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् हों, तथा जिसके पलकमिचें और खुलें नहीं, ऐसे नेत्रके कोए मिलें नहीं उसको वातहतवर्त्म शालाक्यसिद्धांत-वाला कहता है ।

अर्बुदके लक्षण

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।

आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंबितम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—नेत्रके कोएके भीतर गोल मंदवेदनायुक्त कुछ लाल जल्दी बढ़नेवाली ऐसी जो गांठ होय, उसको अर्बुद कहते हैं यहभी सन्निपातज है ।

निमेषके लक्षण

निमेषिणीः शिरावायुः प्रविष्टो वर्त्म संश्रयः ।

प्रचालयति वर्त्मानि निमेषनामतां विदुः ॥ ९३ ॥

अर्थ—वर्त्माश्रित (कोएमें स्थित) जो वायु, सो निमेष (कहिये पलकके उ-घाडने रुंदनेवाली नस)में प्रवेश होकर बारंवार पलकोंको चलायमान करे, उ-सको निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं विदेहनेमी लिखा है यह रोगभी सन्निपातज है ।

१ निमेषिणीः शिरावायुः प्रविश्य न्यवतिष्ठते । अल्यर्थं चलते वर्त्म निमेषः स न सिध्यति ॥

शोणितार्शके लक्षण

वर्त्मस्थोयोविवर्द्धेतलोहितोऽमृदुरंकुरः ।

तद्रक्तजंशोणितार्शश्छिन्नंछिन्नंप्रवर्द्धते ॥ ९४ ॥

अर्थ—रुधिरके संबंधसे नेत्रके कोएके भीतरभागमें लाल तथा नरम अंकुर बढे, उसको शोणितार्श कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है, इस रक्तज व्याधिको विदेह आचारी असाध्य कहते हैं ।

लगणके लक्षण

अपाकीकठिनःस्थूलोग्रंथिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।

सकण्डूःपिच्छिलःकोलसंस्थानोलगणस्तुसः ॥ ९५ ॥

अर्थ—नेत्रके कोएमें वेरके समान बढी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गांठ होय, उसको लगण कहते हैं । यह रोग कफजन्य है, इसमें पीडा और पकना नहीं होय ।

विसवर्त्मके लक्षण

त्रयोदोषाबहिःशोथंकुर्युश्छिद्राणिवर्त्मनोः ।

प्रस्त्रवत्यंतरुदकंबिसवद्विसवर्त्मतत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको मुजाय देवें, तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंसे कमलतंतूके समान भीतरसे पानी धारे, इस रोगको विसवर्त्म कहते हैं ।

कुंचनके लक्षण

वाताद्यावर्त्मसंकोचंजनयंति यदामलाः ।

तदाद्रष्टुंनशक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ ९७ ॥

अर्थ—वातादिदोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें, तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं देख सके, इस रोगको कुंचन कृच्छ्रोन्मीलन कहते हैं यह रोग सुश्रुताचारीने नहीं लिखा माधवाचारीनेही लिखा है ।

पक्ष्मकोपके लक्षण

प्रचालितानिवातेन पक्ष्माप्यक्षिविशंति हि । घृष्यंत्यक्षिमुहु-

१ वायुः शोणितमादाय क्षिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्यंकुरं ताम्रं वर्त्म निच्छिन्नरोहणम् ॥
तच्छोणितार्शोऽसाध्यः स्याद्रक्तास्त्राव्यय रक्तजम् ॥

क्षयेणकृमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्त्तनंतवातार्धावभेदकशंखकैः ।

अर्थ—वात पित्त कफ इनसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १, क्षयसे १, कृमिसे १, सूर्यावर्त्त १, अनन्तवात १, अर्धावभेदक १, और शंखक १, सब मिलकर ११ प्रकारके शिरोरोग (मस्तकशूल) होते हैं ।

वातजके लक्षण

यस्यानिमित्तं शिरसोरुजश्च भवन्ति तीव्रानि शिवातिमात्रम् ।

बन्धोपतापैः प्रज्ञामश्च यत्र शिरोभितापः सप्तमीरणेन ॥ २ ॥

अर्थ—जिसका मस्तक अकस्मात् दृखे, और रात्रिमें विशेष दृखे, बांधनेसे अथवा सेकनेसे शांति हो, उसको वातज शिरोरोग जानना चाहिये ।

पित्तिकके लक्षण

यस्योष्णमंगारचितंतथैव भवेच्छिरोदह्यति वाऽक्षिनासा ।

शीतेन रात्रौ च भवेच्छूलमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसका मस्तक अंगारसे तपाएके समान गरम होवे, और नाकमें दाह होय, शीतल पदार्थसे; किंवा रात्रिमें शान्ति होय, उस मस्तकशूलको पित्त-कोपका जानना ।

श्लेष्मिकके लक्षण

शिरोभवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरुप्रतिस्तब्धमथोहिमंच ।

शूनाक्षिकूटं वदनंच यस्य शिरोभितापः सकफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसका मस्तक भीतरमें कफकरके लिप्त (लुहसासा) होवे, भारी बंधामा और शीतल होवे, तथा नेत्र मुजाकर मुखको मुजाय देवे, इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना चाहिये । (शूनाक्षिकूटं) इस जगह कोई (शूलाक्षिकूटं) ऐसा पाठ कहते हैं इसका अर्थ यह है कि मस्तकमें मंद शूल होय शीघ्र मुगमम् ।

सन्निपातिकके लक्षण

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवन्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—त्रिदोषमें उत्पन्न मन्मरोगमें नीनों दाँपोंके सब लक्षण होते हैं ।

रक्तजके लक्षण

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पृशसिहत्वं शिरसो भवेच्च ।

अर्थ—रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृतमस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं, तथा मस्तकका स्पर्श सहा नहींजाय, यह विशेष होता है ।

क्षयजके लक्षण

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ॥ ६ ॥

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् । सं-

स्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

अर्थ—मस्तकके रुधिर वसा कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल होता है, छींक बहुत आवें, मस्तक गरम होवे, तथा उसमें स्वेदन वमन धूमपान नस्य और रुधिर निकलना ये उपद्रव करनेसे यह मस्तकशूल होता है, इसको क्षयज मस्तकशूल कहते हैं ।

कृमिजके लक्षण

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीवचांतः ।

घ्राणाच्च गच्छेद्बुधिरसंपूर्य शिरोभितापः कृमिभिः सघोरः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसके मस्तकमें टांकीके तोड़नेकीसी पीड़ा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक पोखाकर पोला करदेवें, तथा मस्तक भीतरसे फटके, तथा नाकमें रुधिर राख और कीड़ा पढ़ें यह कृमिजरोग बड़ा भयंकर है ।

सूर्यावर्चके लक्षण

सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढा । विवर्द्ध-

ते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ९ ॥ शीतेन शान्-

तिलभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाद्वा । सर्वात्मकं कष्ट-

तमं विकारं सूर्यापवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १० ॥

अर्थ—सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय, और जैसे जैसे सूर्य बढे तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भृकुटी (भोंह) इनमें दो प्रहर दिन चढ़े तक बढता जाय, और सूर्यके साथ बढकर फिर जैसे जैसे सूर्य अस्त होय तैसे तैसे पीड़ा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय, इस साभिपातिक विकारको सूर्यावर्च कहते हैं ।

अनंतवातके लक्षण

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यासंपीड्य गाढं सरुजांसुतीव्रां । कुर्व-

तिसाक्षिभ्रुविशंखदेशेस्थितिकरोत्याशुविशेषतस्तु ॥ ११ ॥

गंडस्यपार्श्वेचकरोतिकंपंहनुग्रहंलोचनजांश्वरोगान् । अनन्त-

वातंतमुदाहरन्तिदोषत्रयोत्थंशिरसोविकारं ॥ १२ ॥

अर्थ—तीनों दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर मन्यानाडीको पीडित कर नेत्र, भोंह, कनपटी, इनमें घोर पीडा करें तथा गंडस्थल और पसवाड़ेमें पीडा कंप होय, ठोड़ी जकड़ जाय, नेत्ररोग होय, इस त्रिदोषजन्य मस्नकरोगको अनन्तवात कहतेहैं (सुश्रुत) ने अनन्तवातरोगको छोड़कर मस्तकरोग १० ही कहे हैं ।

अर्धावभेदक (आधासीसी) के लक्षण

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः । वेगसंधारणाया-

सव्यायामैःकुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥ केवलःसकफोवाद्द्विगृही-

त्वाशिरसोवली । मन्याभ्रुशंखकर्णाभिललोटेर्धेतिवेदना-

म् ॥ १४ ॥ शस्त्रारणिनिभांकुर्यात्तीव्रांसोऽर्धावभेदकः । न-

यनंवाथवाश्रोत्रमतिवृद्धोविनाशयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—रूखे अन्नसे, अन्नन्त भोजन, अध्यशन (भोजनके उपर भोजन) पूर्व-दिशाकी पवन सेवन करनेसे, वर्षसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे, इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्नकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भृकुटी, कन-पटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूसरे, कुल्हाडीसे घाव करने-कीसी अथवा अरणी (आंच निकालनेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्धावभेदक 'आधासीसी' कहते हैं यह रोग जब बहुत बढ़जाताहै तब एक औरके कानसे बहरापन होजाता है, अथवा एक औरकी आंख मारी-जाती है जिस औरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं । सुश्रुतने इस रोगको त्रिदोषत्र कहा है ।

शंखकके लक्षण

पित्तरक्तानिलादुष्टाःशंखदेशेविस्मृच्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागं

हिशोथंकुर्वन्तिदारुणं ॥ १६ ॥ सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्या-

१ स्यादुत्तमागं रुजतेर्द्धमात्रं संनादभेदभ्रममोहभूलैः । पक्षाङ्गाहादयवाप्यकस्मात्स्यादर्द्धभेदे त्रितयाद्वयवस्येत् ॥

शुगलंतथा । त्रिरात्राज्जीवितंहन्तिशंखकोनामनामतः॥१७॥

त्र्यहाज्जीवतिभैषज्यंप्रत्याख्यायास्यकारयेत् ।

अर्थ—दुष्ट भए जो पित्त रक्त और वायु सो (इस जगह कफकोभी दुष्ट हुआ जानना यह सुश्रुतने कहा है) विशेष बढ़कर नेत्रोंमें भर्यकर सूजन उत्पन्न करें और इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय, तथा नेत्र लाल बहुत हों, और यह विषके वेगके समान बढ़कर गलेमें जाकर गलेको रोकदे, इस शंखकरोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय, इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषधि पहुंचनेसे रोगी बचे, परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना ।

इति शिरोरोगनिदानम् ॥

प्रदररोगनिदानम् ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्विभ्रमप्रपातादतिमैथुनाच्च । याना-
तिशोकादतिकर्षणाच्चभाराभिघाताच्छयनादिवाच ॥ १ ॥
तंश्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारंप्रदरंवदन्ति ।

अर्थ—विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) मद्य, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अतिगमन, (चलना) अतिशोक, उपवासादिककरके कर्शन, (अर्थात् व्रतके करनेसे सूखजाना) भारके बहनेसे, (अर्थात् भारी वस्तु उठाकर चलनेसे) काष्ठ कहिये लकड़ीआदिके लगनेसे, दिनमें सोनेसे, इन कारणोंसे कफ पित्त वायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका प्रदररोग होता है ।

प्रदररोगके सामान्यरूप

असृग्दरंभवेत्सर्वसांगमर्दसवेदनम् ॥ २ ॥

अर्थ—सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथपैरोंमें पीडा होती है ।

उपद्रवके लक्षण

तस्यातिवृद्धौदौर्वल्यंश्रमोमूर्च्छामदस्तृषा ।

दाहःप्रलापःपांडुत्वंतंद्रारोगाश्चवातजाः ॥ ३ ॥

अर्थ—जब यह प्रदर बहुत बढ़जाता है तब दुर्बलता होय, थकजाय, मूर्च्छा

आवै, मस्तपन, प्यास, दाह, प्रलाप (बकना) देह पीला होजाय, तन्द्रा और वातजरोग (आक्षेप अपतान कंपादिक होते हैं ।

श्लैष्मिकके लक्षण

आमंसपिच्छंप्रतिमंसपाण्डुपुलाकतोयप्रतिमंकफात्तु ।

अर्थ—कफसे आमरस (कच्चारस) संयुक्त चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्याव होय, इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ।

पैत्तिकके लक्षण

सपीतनीलासितरक्तमुष्णंपित्तार्त्तियुक्तंभृशवेगिपित्तात् ॥ ४ ॥

अर्थ—किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर वहे, उसमें पित्तके दाह चिमचिमादि पीडा होंय, तथा उसका वेग असन्त होय ।

वातिकके लक्षण

रूक्षारुणंफेनिलमल्पमल्पंवातार्त्तिवातात्पिडितोदकाभं ।

अर्थ—वातसे रूक्ष लाल झागसंयुक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा थोडा प्रदर वहे, उसमें वादीके (आक्षेपकादि) पीडा होती हैं ।

त्रिदोषजके लक्षण

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णमज्जाप्रकाशंकुणपंत्रिदोषम् ।

तच्चाप्यसाध्यंप्रवदंतितज्ज्ञानतत्रकुर्वीतभिषक्चिकित्साम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जो प्रदर शहद, घृत हरिताल, और मज्जा, इनके रंगके समान तथा मुर्दाकीसी दुर्गन्धयुक्त होय, इसको त्रिदोषजप्रदर जानना यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करें ।

विशुद्धार्चवके लक्षण

मासान्निःपिच्छदाहार्तिपंचरात्रानुबन्धिच । नैवातिबहुलंना-

ल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥ शशासृक्प्रतिमंयच्चयद्वालाक्षा-

रसोपमम् ॥ तदार्तवंशंसन्तिथच्चाप्सुनविरज्यते ॥ ७ ॥

इतिप्रदरनिदानम्

अर्थ—जो आर्चव (रजोदर्शनका रुधिर) चिकना नहीं होवे, तथा जिसमें दाह शूलदिक नहीं तथा जिसका अनुबन्ध महीनामें पांच दिवस पर्यन्त होय तथा बहुत न निकले, और थोडाभी न होय, (मध्यम प्रमाणका होय) उसको शुद्धार्तव

जानना चाहिये और जो आर्चव शशके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे, और जिसका रंगा कपडा जलमें डालनेसे वर्ण नहीं पलटे, उसको शुद्ध आर्चव कहते हैं ।

इति प्रदररोगनिदानं समाप्तम् ।

योनिव्यापत्तिनिदानम्



विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे । मिथ्याचरेण ताः स्त्री-
णां प्रदुष्टेनार्चवेन च ॥ १ ॥ जायंते बीजदोषाश्च दैवाश्च शृणु-
ताः पृथक् ।

अर्थ—रोगसंग्रहमें योनिके बीस रोग हैं वह मिथ्या आहार और मिथ्या वि-
हारकरके तथा दुष्ट आर्चव (रुधिर) से, बीजदोषसे, और दैवकी इच्छासे स्त्री-
योंके होते हैं उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं सुनो ।

साफेनिलमुदावृत्तारजःकृच्छ्रेण मुंचति ॥ २ ॥ वंध्यांनष्टार्त-
वां विद्याद्विभ्रुतानित्यवेदनाम् । परिभ्रुतायां भवति ग्राम्यधर्मे-
ण रुग्भृशं ॥ ३ ॥ वातलाकर्कशास्तब्धाशूलनिस्तोदपीडि-
ता । चतसृष्वपि चाद्यासु भवंत्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस योनीसे झागमिला रुधिर बड़े कष्टसे बड़े उसको उदावृत्ता-
योनि कहते हैं, और जिसका आर्चव नष्ट हो उसको वंध्या कहते हैं, जिसके
निरन्तर पीडा हो उसको विभ्रुता कहते हैं जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा
होय उसको परिभ्रुता कहते हैं, जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त
होवे उसको वातला कहते हैं स्वस्वलक्षणसंयुक्त पित्तला श्लेष्मला योनिभी
जाननी चाहियें, और पहले जो चार योनि (उदावृत्ता, वंध्या, विभ्रुता, परिभ्रुता)
कहीं हैं इनमें वातकी पीडा होती है, और वातलामें वातकी पीडा विशेष होती है ।

सदाहंक्षीयते रक्तं यस्याः सालोहितक्षया । सवातमुद्धमे द्वीजं
वामिनी रजसान्वितम् ॥ ५ ॥ प्रस्रंसिनी भ्रंशते तु क्षोभिता दुः-
प्रजायिनी । स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥ ६ ॥

अत्यर्थपित्तलायोनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपिचा-
द्यासुपित्तलिङ्गोच्छ्रयोभवेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं, जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर बहें उसको वामनी कहते हैं, जो योनि स्थान-
भ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं जिसमें अंग बाहर निकल आवे और यह विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होय है जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं, जो योनि अत्यन्त दाह पाक (पकना) और ज्वर इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय, उसको पित्तला कहते हैं, इनमें पहली चार (र-
क्तक्षया वामनी प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी) इनमें पित्तके लक्षण अधिक होते हैं, और पित्तलामें पित्तके विशेष लक्षण होते हैं और पित्तलामें जो ज्वर, दाह, पाक, कहे हैं सो उपलक्षणमात्र हैं अर्थात् इसमें नीला पीला सफेद आर्तव बहता है ये जानना सो तन्त्रान्तरोंमें लिखा है ।

अत्यानन्दानसन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति । कर्णिन्यां कर्णि-
कायो नौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ८ ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वपुरु-
षादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विंदति ॥ ९ ॥
श्लेष्मलापिच्छिलायोनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला । चतसृष्व-
पिचाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयोभवेत् ॥ १० ॥

अर्थ—जो योनि अतिमैथुनसेभी संतोषको प्राप्त न होवे, उसको अत्यानन्दा कहते हैं, जिसमें कफ रुधिरकरके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) होय उसको कर्णिनी कहते हैं, जो योनि थोड़े मैथुनसे लिंगसे पहले स्त्रवे उसको चरण कहते हैं, अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहलेही द्रवीभूत होकर वीर्यको ग्रहण नहीं करे जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणायोनि कहते हैं यह कफ जनित है ।

१ व्यापल्लवणकट्वलक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत् । दाहपाकज्वरोष्णार्तिनीलपीतसिता भवेत् ॥

यवनशास्त्रानुसारेण स्त्रीरोगाः ।

रिहमृगर्भाऽऽशयस्तस्य हारं स्रियुल्लिमाजतः ॥ वारिदस्तवयाविष्वा हेतवः प्रतिबंधकः
॥ १ ॥ तत्रापि द्विविधः सादे माद्वीति परिकीर्तितः ॥ तत्र योग प्रतीकारं तत्र वैद्यः समाचरेत्

स्त्राव और पातके लक्षण

आचतुर्थात्ततोमासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ।

ततःस्थिरशरीरःस्यात्पातःपंचमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

अर्थ—पांचवे मास पर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्त्राव कहते हैं, और चौथे महीनासे लेकर पांचवें छठे महीने पर स्त्राव, और शरीरब-
ननेपर निकले उसे पात कहते हैं ।

गर्भ अकालमें कैसे गिरे इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टान्त

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैःपक्रंदुमादिवफलंपततिक्षणेन ।

॥ २ ॥ गर्भे रिहमकोष्ठस्या सौदी संगमवर्तिनी ॥ गिल्लत्सौदत्तदहेज हिर्कत् चापि भृशं
भवेत् ॥ ३ ॥ संभवेरिवकतदेर आमदन् हैज एव च ॥ दाहामविश्व जैत्यत्वं लिंगानिर्देश इ-
त्यसौ ॥ ४ ॥ यकस्तत्संभवेमुष्मिन्वरांगे शोषणं रजः ॥ सूक्ष्मं प्रवर्त्तते शीतं परं सौदाप्रको-
पजं ॥ ५ ॥ रत्तुवत् प्रभवेत्त्वस्मिन्मैलानरिहमुद्भवेत् ॥ हेइद्रारहेजनामेयंगर्भस्थितिघातका
॥ ६ ॥ कदाचिदैवयोगेन सम्भवेद्गर्भलक्षणम् ॥ मासत्रयोत्तरं पातो रूतवत्संगतो ध्रुवं ॥ ७ ॥
मनीते नाशयेनैव विशेषित्येन संयुता ॥ सुरतावसरे तत्र वेदना विम्लक्रद्भवेत् ॥ ८ ॥ संभोगान-
न्तरं नारी वेगादुत्तिष्ठते हुतं ॥ रिहमुखात् मनीयातो बहिरेवस्मवेत्पुनः ॥ ९ ॥ अकरत् बन्ध्य-
त्वमाख्यातं मपुनः स्याद्विपग्वरैः ॥ परीक्षणीय सद्ग्रीवा प्रतिकाय यथायथम् ॥ १० ॥ मनी-
हैजक्षिपेदप्सुभिन्नाभिज च संतरेत् ॥ दूषितं तद्विजानीयात् तहन् शीनन दोषल ॥ ११ ॥
रिहमुहुष्ममयो दोषः प्रदराख्या दृढारुज ॥ औषधीकीचवदनी द्विविधां विदधात्ययं ॥ १२ ॥
कस्याश्चिदंगनायास्तु प्रसवे संकटं भवेत् ॥ अष्टमान्मासतस्तस्यै क्षीरं पातुं दिशेद्विषक् ॥ १३ ॥
परिपाकाऽनुकृपं तद्रजसोद्रेककृज च ॥ तद्विकृत्वारिहं दर्दं भवेदुष्णेन वारिणा ॥ जरायुसुखं-
धेन मृतिभ्रूणस्य योदरे ॥ जनीनमोत तत्प्रोक्त गूल्य तुल्यं विघातकृत् ॥ १४ ॥ अचलं जडवत्ति-
ष्ठेनार्यसाक्षयकारकम् ॥ इर्जाजस्तस्य कर्त्तव्यो वनिताशर्मणे शनैः ॥ १५ ॥ हिमहस्तपदं
तस्याः शीतबाधा भवेद्दृश ॥ मन्दाभिर्बलहानिश्चानुत्साहः श्वाससम्भवः ॥ १६ ॥ व्यथागर्भा-
शयस्था तु मैथुनाऽतिशयात्तथा ॥ भवेद्गर्भोविकाराच्च प्रसूतेः प्रागनन्तरम् ॥ १७ ॥ दुष्टोपारो-
दुखारोस्याऽऽमभ्रूण पातयेत्यधः ॥ समग्रविग्रहाभावमकालेपि च कल्पयेत् ॥ १८ ॥ द्रव-
तवा सूतमममुख्यं इतिस्का भ्रान्तिरेव च ॥ अचलौ द्वौ दृढाऽऽभावो भवेद्गर्भसमाकृति ॥ १९ ॥
प्रदरोन्यः समाख्यातोऽसमयेर्वाक्स्वमांसतः ॥ हैजजारी भवद्द्रक्तपीतवर्णं विमिश्रितं ॥ २० ॥ अ-
न्तर्मुखो व्रणोघोर सतानिरिहमस्मृतः ॥ कर्ककोकारः कठोरः स्याच्छ्रेयतः सचिरतनात् ॥ २१ ॥ अन्ये-
ऽन्यत्रविकारास्य तन्केयाखिन्नकोपजत् ॥ तर्कियतचापि तवई विधेया विविधाऽगदैः ॥ २२ ॥ इति (१)

(१) एते श्लोकाः शुद्धा वा अशुद्धा वेति न शक्ता विवेक्तुं वयम् ॥

अर्थ—अभिघात (चोट) विषमाशन (विषमभोजन) पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोटलगनेसे क्षणभरमें गिरजाता है, इसी-प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है ।

प्रसूत होतेसमय मूढगर्भ कैसे होता है उसके लक्षण

मूढःकरोतिपवनःखलुमूढगर्भमूलंचयोनिजठरादिभुमूत्रसंगम् ॥१२

अर्थ—मूढ (कुंठितगति) वायु गर्भकों मूढ (टेढा) करदे, और योनि तथा पेट इनमें शूल उत्पन्न करै, तथा मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकरे)

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गती

भुग्नोऽनिलेनविगुणेनततःसगर्भःसंख्यामतीत्यबहुधासमुपै-
तियोनिम् । द्वारंनिरुध्यशिरसाजठरेणकश्चित्कश्चिच्छरीरप-
रिर्वर्चितकुञ्जदेहः ॥१३॥ एकेनकश्चिदपरस्तुभुजद्वयेनतिर्यग्ग-
तोभवतिकश्चिदवाङ्मुखोन्यः । पार्श्वप्रवृत्तगतिरेतितथैवक-
श्चिदित्यष्टधागतिरियं हिपराचतुर्धा ॥१४॥ संकीलकःप्रतिखुर-
रःपरिघोऽथबीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैःशिरसाचयोनिम् । संगी
चयोभवतिकीलकवत्सकीलोद्वयैःखुरैःप्रतिखुरःसहिकायसं-
गी ॥१५॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराःसचबीजकारव्योयोनौस्थितः
सपरिघःपरिघेणतुल्यः ॥१६॥

अर्थ—विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकारकें योनिके द्वारमें आयकर अडजाय है, उसकी आठ प्रकारकी संज्ञा है, सो इस प्रकार है १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्दकर देय है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक देय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे, ५ कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोक दे, ७ और कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय, वह योनिके द्वारको रोक दे ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक दे-य, इस प्रकार मूढगर्भके आठ लक्षण हैं*दूसरी चार प्रकारकी गति और होती हैं उनको कहते हैं १ संकील, २ प्रतिखुर, ३ परिघ, ४ बीज, इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तकसे योनिके कीलके समान रोक दे, उसको संकीलक

कहते हैं जिस गर्भके हाथ पैर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर यो-
निके भीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं जो गर्भ दोनों हाथ और म-
स्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक कहते हैं और जो परिघ (आगड) के
समान योनिमें गर्भ अटक जाय उसको परिघ कहते हैं ।

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण

अपविद्धाशिरायातुशीतांगीनिरपत्रपा ।

नीलोद्धतशिराहन्तिसागर्भसचतांतथा ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस गर्भिणीका मस्तक नीचेको हो जाय, देह शीतल होय तथा लज्जा
जाती रहे, और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा (नस) उठ खड़ी होय, तो
वह गर्भिणी उस गर्भको, और गर्भ गर्भिणीको अन्योन्य नाश करते हैं ।

मृतकगर्भके लक्षण

गर्भस्यन्दनमावीनांप्रणाशःश्यावपाण्डुता ।

भवेदुच्छ्वासपूतिस्वशून्यतांतमृतेशिशौ ॥ १८ ॥

अर्थ—गर्भ हले चले नहीं, प्रसव वेदना (पीडा) बंद होजाय, देह हरी नीली
होय, और जिसकी श्वासमें दुर्गंध आवे, और पेटके भीतर सूजन होय, अर्थात्
पेटमें आंतोंके फूलनेसे पेट सूज जाय, ये गर्भमें बालक मरजाय उसके लक्षण हैं ।

गर्भमरणहेतु

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैःप्रपीडितः ।

गर्भोव्यापद्यतेकुक्षौव्याधिभिश्चप्रपीडितः ॥ १९ ॥

अर्थ—माताके मानसिक तथा आगतुक दुःखसे, अथवा रोगांसे गर्भकी पीडा
होय, वो बालक गर्भाशयमें मर जाय ।

गर्भिणीके दूसरे असाध्य लक्षण

योनिसंवरणसंगःकुक्षौमक्कल्लमेवच ।

हन्युःस्त्रियंमूढगर्भैर्यथोक्ताश्राप्युपद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ—बायुके योगसे योनि का संकोच, गर्भका अटकना, और मक्कल्ल शून्य
(वातरक्तकी पीडा) तथा आशेषक, खोसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वो गर्भि-

णी वचे नहीं, अथवा, योनिस्वैरण नाम रोग ग्रन्थान्तरोंमें लिखाहै सो होय ।

इति योनिव्यापत्तिनिदानं समाप्तम् ।

सूतिकारोगनिदानम्

अंगमर्दोज्वरःकंपःपिपासागुरुगात्रता ।

शोथःशूलातिसारौचसूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

अर्थ—अंगोंका दूटना, ज्वरहो, कंप, प्यास, अंगोंका भारी होना, सूजन, तथा शूल, और अतिसार, ये सूतिकारोगके लक्षण होते हैं ।

प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।

सूतिकायाश्चयेरोगाजायन्तेदारुणास्तुते ॥ २ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके बालक प्रगट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचारकरनेसे अथवा संक्लेश (कहिये दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे, अथवा संक्लेश कहिये अत्यंत कोप)के करनेसे, अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिक करनेसे, प्रसूतिरोग होताहै वह घोर दुःखदायक है ।

लक्षण

ज्वरातिसारशोथाश्चशूलानाहबलक्षयाः । तन्द्रारुचिप्रसेका-

द्याःकफवातामयोद्भवाः ॥३॥ कृच्छ्रसाध्याहितेरोगाःक्षीणमां-

सबलाग्रितः । तेसर्वेसूतिकानाम्नारोगास्तेचाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा, और बलक्षय, तथा कफ वातजन्यरोगसे उत्पन्नहोनेवाले तन्द्रा अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना इसादि

(१) वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरं ॥ अल्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्यां योनिमार्गजः ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृति ॥ कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरतर्गतोनिः ॥ निरुणद्ध्याश्रयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थित ॥ निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चागु विपद्यते ॥ विपन्नशूनसर्वाङ्गः सर्वाप्येवायनानि च ॥ उच्छ्वासरुद्धहृदया नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनिस्वैरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते ॥ अंतकप्रतिगं घोरं नारभेत्तु चिकित्सितं ॥ इति ॥

विकार, अशक्तता, तथा अग्नि मंदहोनेसे कृच्छ्रसाध्य होता है । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं । इन सबमें एक रोग प्रधान होता है बाकीके उपद्रवरूप कहलाते हैं ।

इति सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

स्तनरोगनिदानम् ।

सक्षीरौवाप्यदुग्धौवादोषःप्राप्यस्तनौस्त्रियः। प्रदूष्यमांसरुधि-
रेस्तनरोगायकल्पते ॥ १ ॥ पंचानामपितेषांहिरक्तजंविद्रधिं
विना ॥ लक्षणानिसमानानिबाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

अर्थ—वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्ति हो मांस रक्तको दुष्टकरके स्तनरोग उत्पन्न करें स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगंतुजके भेदसे पांच प्रकारका है इन पांचोंके लक्षण रक्तविद्रधिको खागकर बाह्यविद्रधिके समान होतेहैं सो विद्रधिनिदान जो पीछे कह आए हैं उससे जान लेना चाहिये ।

इति स्तनरोगनिदानं ।

स्तन्य (दूध) रोग

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैःप्रदूषितम् ।

क्षीरंधात्र्याःकुमारस्यनानारोगायकल्पते ॥ ३ ॥

अर्थ—गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नसे दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करें उस दुष्ट दूधसे बालकके नानाप्रकारके रोग होते हैं ।

वातादिकसे दूषितदूधके लक्षण

कषायंसलिलश्लविस्तन्यंमारुतदूषितम् । कटुम्ललवणपीत-
राजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ ४ ॥ कफदुष्टंघनंतोयेनिमज्जतिसु-
पिच्छिलम् । द्विलिंगंद्वंद्वजंविद्यात्सर्वलिंगंत्रिदोषजम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जो दुग्ध कसैला अथवा पानीके ऊपर तैरनेवाला होय, उसको वान-दूषित जानना तथा जो कडुआ, सड़ा, और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत होवें उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध सघन चिकनासा होवे

और पानीमें डालनेसे नीचेको बैठ जाय, उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये। दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिले उसे द्वंद्वज जाने और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलें उसे त्रिदोषदूषित जानें।

शुद्ध दूधके लक्षण

अदुष्टंचाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवतिपाण्डुरम् ।

मधुरंचाविवर्णंचतत्प्रसन्नंविनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो दूध पानीमें डालनेसे मिलजाय, तथा जो दूध कुछ पीला हो और मीठा होकर बे रंगका नही उसको शुद्ध जानना। अब कहते हैं कि स्त्रियोंके दूध दीखे नहीं परंतु होता है क्यों कि बालक पिया करते हैं इस बातको शुक्र वीर्यका दृष्टान्तदेकर कहते हैं।

इति स्तन्यरोगनिदानम्

विशंस्तेष्वपिगात्रेषुयथाशुक्रंनदृश्यते ।

सर्वदेहाश्रितत्वाच्चशुक्रलक्षणमुच्यते ॥ ७ ॥

स्तन्यमुच्यत इति शेषः

अर्थ—जैसे सर्व पुरुषोंके देहमें व्याप्तभी परन्तु देहके काटनेसेभी शुक्र दीखता नहीं है, उसी प्रकार सर्व स्त्रियोंके देहाश्रित जो दुग्ध है सोभी नहीं दीखता है, परन्तु निःसन्देह है सही।

तदेवचेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि । शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्चप्रवर्तते ॥ ८ ॥ सुप्रसन्नमनस्त्वेवहर्षणेहेतुरुच्यते ।

आहाररसयोनित्वादेवंस्तन्यमपिस्त्रियाः ॥ ९ ॥ तदेवाऽपत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणाच्चशरीरस्यशुक्रवत्संप्रवर्तते ॥ १० ॥ स्नेहोनिरन्तरस्तत्प्रसवेहेतुरुच्यते ।

अर्थ—बोही शुक्र इष्ट (मिय) स्त्रीके देखनेसे, उसका स्मरण (याद) करनेसे, उसकी वाणी सुननेसे, और स्पर्श (आलिंगन) से भया जो आनन्द उस आनन्दसे प्राप्त होय है इस जगह मनका प्रसन्न होना यही आनन्दका कारण है, शुक्रकी उत्पत्ति आहारसे होती है, सोई हेतु स्तन्य(दूध)का जानना, अर्थात् दूधभी जब स्त्री अपने बालकका स्पर्श करे, देखे, उसका स्मरण करे तथा बाल-

कको गोदमें लेनेसे दूध शुद्धके सदृश बढ़ता है इस जगहभी दूधके उतरनेमें स्नेह (प्यार) ही कारण है। यह श्लोक संगृहीत है।

इति श्रीपण्डितदत्तरामप्रणीतमाधवभार्यदीपिकामाथुरीटीकासमाप्ता ।

बालरोगनिदानम् ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः ।

स्वास्थ्यं ताम्ब्यामदुष्टान्ब्यां दुष्टान्ब्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

अर्थ—दूध पीनेवाला, और अन्न खानेवाला और दूध अन्न दोनों खानेवाला, ऐसे तीन प्रकारका बालक होता है यदि वोही अन्न दुष्ट न होय तो बालक निरोगा रहे, और वे दोनों दुष्ट होंय तो अनेक रोग प्रगट होते हैं।

वातदूषितदूधके रोग

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ।

क्षामस्वरः कृशांगः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥

अर्थ—जो बालक वातदूषितदूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं, उसका शब्द क्षीण होजाय, शरीर कुश होय, और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे।

पित्तदूषितदूधके लक्षण

स्विन्नोभिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।

तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे, उसके पसीना आवे मल पतल होजाय, कामलारोग होय, तथा पित्तके औरभी रोग होंय (प्यासका लगना सर्वांगमें दाह आदि अनेक) रोग होय।

कफदूषितदूधके लक्षण

कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ।

निद्रार्दितो जडः भूतः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय, (निद्रा आवे अंग भारी होय सूजन होय वमन होय खुजली चले)।

बालकोंकी अंतर्गत पीडा जाननेकी उपाय
 शिशोस्तीव्रामतीत्रांचरोदनाल्लक्षयेद्भुजं । सयंस्पृशेद्भृशंदेशं
 यत्रचस्पर्शनाक्षमः ॥ ५ ॥ तत्रविद्याद्भुजंमूर्ध्निरुजंचाक्षिनि-
 मीलनात् । कोष्ठेविबन्धवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः ॥ ६ ॥ आ-
 ध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि । बस्तौगुह्येचविण्मूत्रसंगो-
 त्रासदिगीक्षणैः ॥ ७ ॥ स्त्रोतांस्यंगानिसंधींश्चपश्येद्यत्नान्मु-
 हुर्मुहुः ।

अर्थ—बालकोंके रुदन (रोने)से, उसके थोड़ी-वा बहुत पीडा जाननी, व
 बालक जिस ठिकाने बारंवार हाथ लगावे उस ठिकाने और जिस जगह और
 हाथको न लगाने दे उस ठिकाने उसके पीडा जानना चाहिये नेत्रोंके मुँदनेसे,
 मस्तकपीडा जाने मलावरोध, वमन, स्तन (छातीको) चवाना, तथा पेटका गुं-
 जना, पेटका फूलना, तथा पेटका उछलना, इन लक्षणोंसे बालकके पेटमें पीडा
 जाननी मलमूत्रके रुकने, तथा डरनेसे, और सर्वत्र देखनेसे, इन लक्षणोंसे उ-
 सकी वस्ती (भूत्रस्थान) और गुदामें पीडा जाननी वैद्य बालकके स्त्रोत (नाक,
 गुह्य, कान आदिछिद्रों)को, हाथ पैरसे आदिले अवयवों और संधीयोंको वा-
 रंवार देखे तो रोगका यथार्थज्ञान होय ।

द्वंद्वज और सन्निपातजदूषितदुग्धके रोग
 द्विलिंगद्वंद्वजंविद्यात्सर्वलिंगात्रिदोषजे ।

अर्थ—पूर्वोक्त जो वातादिदूषित दुग्धके लक्षण कहेहैं उनमें दो दोषके लक्षण
 मिलनेसे द्वंद्वज रोग जानना, और त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे सन्निपातका रोग
 जानना, ये श्लोक प्रसिद्ध हैं माधवका नहीं है ।

कुकूणकके लक्षण

कुकूणकःक्षीरदोषाच्छिञ्जानामेववर्त्मनि ॥ ८ ॥ जायतेतेन
 नेत्रंचकण्डूरंचस्त्रवेन्मुहुः । शिशुःकुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावि-
 धर्षणम् ॥ ९ ॥ शक्तोनार्कप्रभाद्रंघ्नवर्त्मोन्मीलनक्षमः ।

अर्थ—कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होताहै, इस रोगके होनेसे
 बालकके नेत्र खुजावें, और पानी वहे, नेत्रोंमें कीचड़ आनेसे वो ललाट नेत्र
 और नाकको रगड़े, धूपके सामने देखा न जाय, उसके नेत्र खुलें नहीं, इसको

लौकिकमें कोथलाव कहते हैं यह रोग बालकोंकेही होता है सो वाग्मद्वयें लिखा है ।

पारिगर्भिकके लक्षण

मातुःकुमारोगर्भिण्याःस्तनंप्रायःपिवन्नपि ॥ १० ॥ कासा-
ग्निसादवमथुतंद्राकादर्यारुचिभ्रमैः । युज्यतेकोष्ठतृद्व्याचत-
माहुःपारिगर्भिकम् ॥ ११ ॥ रोगंपरिभवाख्यंचदद्यात्तत्राग्नि-
दीपनम् ।

अर्थ—बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे उसके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, अरुचि, कुशता, और भ्रम ये होंय और उसके पेटकी दृढ़ि होय, इस रोगको वैद्यगण पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं । इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देनी चाहिये ।

तालुकंटकके लक्षण

तालुमसिकफःकुद्वःकुरुतेतालुकंटकम् ॥ १२ ॥ तेनतालु-
प्रदेशस्यनिम्नतासूर्ध्विजायते । तालुपातःस्तनद्वेषःकृच्छ्रा-
त्पानंशकृद्भवम् ॥ १३ ॥ तृडक्षिकंठास्यरुजाग्रीवाधुर्धरतावभिः ।

अर्थ—तालुके मांसमें कफ क्लृप्तहोकर तालुकंटके रोगको करै, उसके होनेसे तालुका ऊपरका भाग नीचा होजाय, तथा भीतरसे बालकका तालुआ विध-
जाय, इसीसे बालक स्तन (छाती)को नहीं दबै, और पीवेभीतो बड़े कष्टसे पीवे, पतला मल होजाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इनमें पीडा होय, नार गिर पड़े, और जो दूध पीवे उसे डाल दे ।

महापञ्चविसर्पके लक्षण

विसर्पस्तुशिशोःप्राणनाशनोवस्तिशीर्षजः ॥ १४ ॥ पद्मव-
र्णोमहापद्मोरोगोदोषत्रयोद्भवः । शंखाभ्यांहृदयंयातिहृद-
याद्वागुदंजलेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—बालकोंके जो मस्तक और वस्ती (मूत्रस्थान)में विसर्प होय, वो बालककी प्राणनाशक जाननी, जो विसर्प लाल कमलके पत्रके समान लाल हो

(१) कुक्कूणकः गिशोरेव दीनोत्पत्तिनिमित्तजः ।

है यह महापद्मरोग त्रिदोषज है । यह कनपटोमें उत्पन्न होकर हृदयपर्यंत जाय है, अथवा हृदयमें होकर गुदापर्यंत जाता है ।

और विकार जो बालकोंके होते हैं उनको कहते हैं ।

क्षुद्ररोगेचकथितेअजगल्यहिपूतने । ज्वराद्याव्याधयःसर्वेम-
हतायेपुरेरिताः ॥ १६ ॥ बालदेहेपितेतद्वद्विज्ञेयाःकुशलैः
सदा ।

अर्थ—क्षुद्ररोगनिदानमें जो अजगल्ली और अहिपूतना कही हैं सो, और ज्वरादिक सर्व रोग जो बड़े मनुष्योंके होते हैं अर्थात् जिनरोगोंको पूर्वकहि आए हैं वो सब रोग बालकोंकी देहमेंभी होते हैं, ऐसे कुशल वैद्योंको जानना चाहिये ।

सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण

क्षणादुद्विजतेबालःक्षणात्रस्यतिरोदिति ॥ १७ ॥ नखैर्दन्तै-
र्दारयतिधात्रीमात्मानमेवच । ऊर्ध्वनिरीक्षतेदन्तान्खादे-
त्कूजतिजृम्भते ॥ १८ ॥ भ्रुवौक्षिपतिदंतोष्ठंफेनंवमतिचा-
सकृत् । क्षामोऽतिनिशिजागर्तिशूनांगोभिन्नविट्स्वरः ॥ १९ ॥
मांसशोणितगन्धश्चनचाश्चातियथापुरा । सामान्यग्रहजु-
ष्टानालक्षणंसमुदाहृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—कभी क्षणभरमें बालक विव्हल होजाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जंमाई लेय, भ्रुव (भोंह)को तिरछी करे, दांतोंसे होठोंको खाय, बारंवार मुससे झाग ढाळे, वो अत्यन्त क्षीण होय, रात्रमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय, स्वर वैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मांसकीसी वास आवै, जितना पहले खाता होय उतना नहीं खाय, ये सामान्य ग्रह व्याप्त बाल-
कके लक्षण हैं अब कहते हैं कि स्कंदादिक ग्रह पूजाके अर्थ बालकोंको मारें हैं सो चरकमें लिखा है ।

(१) धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टोपचाराच्छ्रौचभ्रंशान्मंगलाचारहीनान् ॥ क्लिष्टांस्तांस्तांस्तजि-
तांस्तादितान्श्च पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥ इति ॥

स्कन्दग्रहगृहीतवालकके लक्षण

एकनेत्रस्यगात्रस्यस्त्रावःस्थंदनकंपनम् । अर्द्धदृष्ट्यानिरीक्षे-
तवकास्योरक्तगंधिकः ॥ २१ ॥ दंतान्खादतिविस्त्रस्तःस्तन्यं

नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानांरोदनंचाल्पमेवच ॥ २२ ॥

अर्थ—वालकके एक नेत्रसें पानी गिरे, और अंगमें स्त्राव (कहिये पसीना)
वहे, एक औरका अंग फडके, तथा थर थर कांपे, वो वालक आधी दृष्टिसे
देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे, वो वालक दांतोंको चबावै,
अंग सिथिल होजाय, स्तनको नहीं पीवै; और थोडा रोवे, यह स्कन्दग्रह
लगे वालकके लक्षण हैं । इस जगह स्कन्दग्रहकरके शिवजीके प्रगट करे जो ग्रह
हैं उनमेंसे श्री शिवपुत्र स्वामीकार्तिकका ग्रहण न करना चाहिये ।

स्कंदापस्मारके लक्षण

नष्टसंज्ञोवमेत्फेनंसंज्ञावानतिरोदिति ।

पूयशोणितगन्धित्वंस्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २३ ॥

अर्थ—वालक वेमुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होसहो तब रोवे, उसकी
देहमें रुधिरकीसी दुर्गंध आवै, इन लक्षणोंकरके स्कन्दापस्मारके लक्षण
जानने ।

शकुनिग्रहके लक्षण

स्वस्तांगोभयचकितोविहंगगन्धिःसंस्त्रावव्रणपरिपीडितःसम-
न्तात् । स्फोटैश्चप्रचिततनुःसदाहपाकैर्विज्ञेयोभवतिशिशुः
क्षतःशकुन्या ॥ २४ ॥

अर्थ—शकुनीग्रहसे पीडित वालकके अंग सिथिल होंय, भयसे चकित
होय, उसके अंगमें पसीके अंगके समान वास आवै, घाव होकर उसमेंसे लस
वहे, सर्व अंगोंमें फोडा उत्पन्न होंय और वो पकें तथा दाह होय ।

रेवतीग्रहका लक्षण

ब्रणैःस्फोटैश्चितंगात्रंपंकगंधमस्रक्स्त्रवेत् ।

भिन्नवर्चाज्वरोदाहीरेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २५ ॥

(१) तदुक्तं हिरण्याक्षेण । सस्त्रावो दाहपाकाचैश्चितस्फोटैर्भयान्वितः । संस्त्रावो विस्त्रगंधः
स्याच्छकुन्या पीडितः शिशुः ॥

अर्थ—रेवती ग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोड़ा होंय, उनमेंसे रुधिर बहे, उसमें कीचकीसी वास आवै, दस्त होंय, ज्वर होंय, अंगमें दाह होय ।

पूतनाग्रहके लक्षण

अतिसारोज्वरस्तृष्णातिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।

नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नःस्वस्तःपूतनयाशिशुः ॥ २६ ॥

अर्थ—पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढ़ी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल होजाय, ये लक्षण होते हैं ।

अंधपूतनाग्रहके लक्षण

छर्दिःकासोज्वरस्तृष्णावसागंधोऽतिरोदनम् ।

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्चअंधपूतनयाभवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—अंधपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंधि, बहुत रोना, स्तन्य (छाती)को मुखसे दावे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं ।

शीतपूतनाग्रहके लक्षण

वेपतेकासतेक्षीणोनेत्ररोगोविगंधिता ।

छर्द्यतीसारयुक्तश्चशीतपूतनयाशिशुः ॥ २८ ॥

अर्थ—शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी क्रांति क्षीण होजाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवै, वमन होय, और दस्त होंय ।

मुखमंडिकाग्रहके लक्षण

प्रसन्नवर्णवदनःशिराभिरिवसंवृतः ।

मूत्रगन्धिश्चबव्हाशीमुखमण्डिकयाभवेत् ॥ २९ ॥

अर्थ—मुखमंडिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी क्रांति सुंदर होय, और देहकी क्रांति श्रेष्ठ होय, शिरानमें बंधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवै, यह बालक बहुत भक्षण करे ।

नैगमेयग्रहके लक्षण

छर्दिस्यन्दनकंठास्यशोपमूर्च्छाविगन्धिताः ।

ऊर्ध्वपश्येदशेदन्तान्नैगमेयग्रहंवदेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूच्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दां-
तोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी वाधा जाननी ।

इति बालरोगनिदानम्

विषरोगनिदानम् ।

स्थावरजंगमंचैवद्विविधंविषमुच्यते ।

मूलात्मकंतदाद्यस्यात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ १ ॥

अर्थ-विष दो प्रकारका है स्थावर, और जंगम, तथा मूलात्मक स्थावर, और
सर्पादिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष कहता है ।

दशाधिष्ठानमाद्यन्तुद्वितीयंषोडशाश्रयम् ।

अर्थ-आद्य अर्थात् स्थावर विष दसजगह रहता है, और जंगम विष सोलह
जगह रहता है ।

मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वक्क्षीरंसारएवच । निर्यासाधातवश्चैवक-

न्दश्चदशमःस्मृतः ॥ २ ॥

अर्थ-जड़, पात, फल, फूल, छाल, दूध, रस, गोंद, धातु, और कंद ये
दश स्थावर विष हैं । तहां मूलविष आठ, छीतक, अश्वमार, गुंज, मुगंध, गर्गर,
ककरघाट, विबुच्छिस्ता, और विजिया, ये हैं ।

विषपत्रिका, लम्बावर, दारुक, करम्भ, महाकरम्भ, ये पांच पत्रविष हैं ।

कुसुद्वी, वेणुका, करम्भ, महाकरम्भ, कर्काटक, रेणुक, खद्योतक, चमरी,
श्वगन्धा, सर्पघाति, नन्दन, सारपाकिनी, ये बारह फलविष हैं ।

पत्र, कंदव, वल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ, ये पांच पुष्पविष हैं ।

अंत्रपाचक, कर्तरीय, सौरीय, ककरघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक, ये सात
त्वचारसके (गोंद) के विष हैं ।

कुसुद्वी, स्नुही, जालक्षीरी, ये तीन दूधके विष हैं ।

फेणाश्मभस्म, ओर हरिताल, ये धातुविष हैं ।

कालकूट, वत्सनाभ, सर्पपक, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृंगीविष,
प्रपौडरीक, मूलक, हालाहल, महाविष, कर्कट, ये तेरह कंदविष हैं ।

सब मिलकर स्थावर विष पचवन हैं ।

विषस्य स्थानम्

जंगमस्यविषस्योक्तान्यधिष्ठानानिपोडश ।

समासेनमयायानिविस्तरस्तेषुवक्ष्यते ॥ ३ ॥

अर्थ—जंगम विषके स्थान सोलह हैं, सो मैंने संक्षेपसे कहे हैं । अब विस्तारसे कहता हूं दृष्टि, श्वास, दांत, नख, मूत्र, विष्ठा, शुक्र, लार, आर्तव, मुख, संदंश, विशद्वित, (पादना) गुदा, हड्डी, पित्त, शूकशव, ये सोलह स्थान हैं ।

तहां दृष्टि, निश्वास, विष दिव्य है, सो दिव्य सर्पादिकका जानना भीम विष, दंष्ट्राविष है ।

विलाव, कुत्ता, वन्दर, मगर, मेंढक, मच्छी, जलगोधिका, शंबुक, (शीप) पंचालक, छिपकरी, मोहारकी मक्खी, पीली मक्खी, ततैया, इनसे आदि छे ये जनावर दंष्ट्रा और नख विषवाले हैं ।

चिपिट, पिच्छटक, कपाय, वासिक, सर्पप, वासिक, तोटववर्च, कोडकौटिल्यक, इन जनावरोंके विष्ठा, और मूत्रमें विष होता है ।

इनको लोकप्रसिद्धि नामसे जानना ।

मूंसेके शुक्रमें विष होता है, मकड़ी आदि जो कीट हैं सो लूना कहाते हैं । इनके लार, मूत्र, विष्ठा, मुख, नख, शुक्र, आर्तव, इनमें विष होता है ।

विच्छ, विश्वंभर, ततैया, राजिलमछलि, चिटिंग, समुद्रका विच्छ, इनकी पूंछमें जो कांटा होता है उसमें विष होता है ।

चित्रशिर, शरावकुर्दि, शतदारुक, आदि मेदक, शारिका मुख, मुखदंशक, इनके मूत्रपुरीषमें विष जानना ।

मक्खी, कणव, जोख, इनके मुख और काटनेमें विष है ।

विषसे मरे हुएकी हड्डी, सर्पकी हड्डी, विपियल मछली, इनकी हड्डीमें विष है । शकुलीनामकी मछली, रक्तराजी, और चरकी नामकी मछली इनके पित्तमें विष है ।

मूक्ष्मतुंड, चेंदी बहर, कनखजूरा, शूक, मोंरा, तोता, इनके तुण्ड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है ।

कीट, और सर्प, इनके मरे देहमें विष है ।

और जिनकी गणना यहां नहीं की उनको मुख संदंश वालोंमें जानना ये जंगमविष हैं ।

जंगमविषके सामान्यलक्षण

निद्रातन्द्राक्लमंदाहमपाकंरोमहर्षणम् ।

शोथंचैवातिसारंचकुरुतेजंगमंविषम् ॥ १ ॥

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, अन्नका न पचना, रोमांच, शोथ, और अतिसार, ये लक्षण जंगमविषके हैं ।

इति जंगमविषसामान्यलक्षणम्

स्थावरविषके सामान्यलक्षण

स्थावरन्तुज्वरंहिकादन्तहर्षगलग्रहम् ।

फेनच्छर्दयरुचिश्वासंमूर्च्छांचकुरुतेभृशम् ॥ ३ ॥

अर्थ—स्थावरविषसे ज्वर, हिचकी, दांतोंका घिसना, गलेका घिरना, हा-
गसे मिली रद, अरुचि, श्वास और अत्यंत मूर्च्छा, ये लक्षण होते हैं ।

राजा किंवा कोई दूसरा बड़ा सेठसाहुकार जिसको समीपके रहने-

वाले किसी नोकर चाकरने विषमिलाकर अन्न दिया हो उस

विषदेनेवालेके हूँदनेके निमित्त कुछ लक्षण कहताहूँ

इंगितज्ञोमनुष्याणांवाक्चेष्टामुखवैकृतैः । जानीयाद्विपदा-

तारमेतैर्लिङ्गैश्चबुद्धिमान् ॥ ४ ॥ नददात्युत्तरंष्ट्रोविवक्षु-

र्मोहमेतिच । अपार्थबहुसंकीर्णभाषतेचापिमूढवत् ॥ ५ ॥

हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यर्गुलींवल्लिखेन्महीम् । वेपथुश्चास्य

भवतित्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ६ ॥ विवर्णवक्ताक्षामश्नस्वैः

किंचिच्छिनत्यपि । आलभेतासनंदीनःकरेणचक्षिरोरुहम्

॥ ७ ॥ वर्त्ततेविपरीतंचविषदाताविचेतनः ।

अर्थ—मनुष्यके अभिप्राय जाननेवाले वैद्यको बोलने चालने तथा मुसक्री
चेष्टा इनसे, तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणोंसे विषके देनेवाले मनुष्यको
बुद्धिमान जान ले । सो इस प्रकार, जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो
वो उत्तर न दे, और जब बोले तब मोहको प्राप्त हो, अर्थात् धवड़ा जावे । तथा
कदाचित् बोलेभी तो निरर्थक और बहुत अस्पष्ट बोले, तथा अकस्मात् हंसे,
हाथकी जंगली चटकावे, पृथ्वीमें रेखा काढे, भयसे कांपे, और डरकर चारों

और बारबार सबकी तर्फ देखे, मुखकी चेष्टा जाती रहै, और काला होजाय, नखोंसे कुछ तिनका आदि तोड़े, गरीबके समान एकही स्थानपर बैठ रहै, माथेपर हाथ फेरे; बारबार इधर उधर डोलकर बैठ जाय, उसका चित्त ठिकाने न रहे, तथा उसका चित्त भागनेको चाहे, ये लक्षण विष देनेवालेके जानने । और येही लक्षण घोर अपराध करनेवालेके राजा जान लेवे ।

मूलादिविषोंके लक्षण

उद्वेष्टनंमूलविषैःप्रलापोमोहएवच । जृम्भणंविषणंश्वासो
मोहःपत्रविषेणतु ॥ ८ ॥ मुखशोथःफलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष-
वच । भवत्युपविषैश्छर्दिराध्मानंश्वासएवच ॥ ९ ॥ त्व-
क्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्तिहि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्य-
शिरोरुक्कफसंस्त्रवाः ॥ १० ॥ फेनागमःक्षीरविषैर्विड्भेदो
गुरुजिह्वाता । हृत्पीडनंधातुविषैर्मूर्च्छादाहश्चतालुनि ॥ ११ ॥
प्रायेणकालघातीनिविषाण्येतानिनिर्दिशेत् ।

अर्थ—मूलविषसे रोगीके हाथ पैरोंमें पीडा, और मोह हाँवै ।

पत्रविषसे—जंभाई, कंप, श्वास, और मोह होवे ।

फलविषसे—मुखपर मृजन, दाह, अन्नमें अरुचि हो ।

पुष्पविषसे—वमन, अफरा, और श्वास होवे ।

छाल रस गोंद इनसें मुखमें दुर्गन्धि, अंगमें खरदरापन, मस्तकशूल, और मुखके मार्ग कफ गिर ।

दुग्धविषसे—मुखमें झाग आवें, दस्त होंय, और जीभ जकड़ जावे ।

धातुविषसे—हृदयमें पीडा होय, मूर्च्छा आवै, तालुमें दाह होय, ये सब विष बहुधाकरके कालान्तर मारनेवाले होते हैं ।

विषलिप्तशस्त्रहतके लक्षण.

सद्यःक्षतंपच्यतेतस्यजन्तोःस्त्रवेद्रक्तंपच्यतेचाप्यभीक्ष्णम् ।

कृष्णीभूतंक्लिन्नमत्यर्थपूतिक्षतान्मांसंशीर्यतेयस्यचापि ॥ १२ ॥

तृष्णांमूर्च्छाज्वरदाहोचयस्यदिग्धाहतंमनुजंतंव्यवस्येत् । लिं-

गान्येतान्येवकुर्यादमित्रैर्ब्रणेदिपयस्यदत्तंप्रमादात् ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका जखम तत्काल पकजावै, तथा उसमें रुधिर बहै, और

वारंवार पके, तथा उसजखममेंसे काला सड़ा दुर्गंधियुक्त ऐसा मांस निकले, तथा जिसमें प्यास, मूच्छा, ज्वर, दाह, ये होवें उसके विषमें बुझे वा लिप्त शस्त्रकी जखम लगी जानना चाहिये ।

शत्रूओंने कपटकरके जिसके व्रणमें विष डाल दिया हो उसकेभी यही लक्षण हैं ।

स्थावरविषको कहकर जंगममें सर्पविष ये अतितीक्ष्ण

हैं इसीसे प्रथम सर्पोंकी जात कहते हैं

वातपित्तकफात्मानोभोगिमण्डलिराजिलाः ।

यथाक्रमं समाख्याताद्ब्रह्मन्तराद्ब्रह्मरूपिणः ॥ १४ ॥

अर्थ—भोगी मंडली और राजिल, ये सर्प अनुक्रमसे वात, पित्त, कफ प्रकृति हैं । और जे अंतर अर्थात् जो दो जातिके सर्प और सर्पणीसे प्रगट है वे अंतर कहाते हैं । उनकी प्रकृति द्वंद्व है अर्थात् जिस जिस प्रकारके सर्प सर्पणीसे प्रगट उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी होती हैं । जिनके मस्तकपर चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक, (सतिया) अंकुश, इनका चिन्ह हो; और जिनका फण कर्छीके समान चौड़ा हो, और जलदी चलनेवाले हों, उनको भोगी अथवा राजिल सर्प कहते हैं । और जो अनेक प्रकारके चकत्तोसे चित्रविचित्रहों, तथा मोटे और मंद चलनेवाले, तथा अधि और सूर्यकासा प्रकाश जिनका, उनको मंडली सर्प कहते हैं ।

और जो चिकने और अनेकप्रकारकी रेखा उनके ऊपर नीचे विद्यमान हों, उनको राजिल सर्प कहते हैं । इनसर्पोंकी चार जाती हैं । तिन्में मोती, चांदी, सुवर्णकीसी प्रभा होवै, और जो नम्र तथा जिनकी देहमें सुगंध आवै, वो ब्राह्मण जातिके सर्प हैं । और जिनका स्वच्छवर्ण, क्रोधी, और जिनके मस्तकपर सूर्यचन्द्रके समान तथा छत्रका तथा कमलका चिन्ह होवै, वो क्षत्री जातिके सर्प हैं । काले और हीराके समान तथा लोहेके वर्ण हों, और जिनकी धुआं और कचूतरके समान प्रभा हो, वो वैश्यजातिके सर्प हैं । जिनकी देह मैसा, चीतिके समान हो, और जिनकी लचा कठोर हो, तथा अनेक प्रकारका जिनका वर्ण हो, वो शूद्रजातिके सर्प हैं । राजिके पिछिले प्रहरमें राजिलजातिके सर्प विचरते हैं । और राजिके पहले तीन पहरोंमें मंडली जातिके सर्प विचरते हैं । और दिनमें दर्वीकर जातिके सर्प बहुधा विचरते हैं । इनमें दर्वीकर जातिके सर्प तरुण हैं, और मंडली जातिके वृद्ध, और राजिल जातिके मध्यम अवस्थाके हैं ।

इतनी जातिके सर्प निर्विष जानने । जो नौला सँहत हैं, और बालक, तथा जलसे ताडित हैं, और कुश, वृद्ध, तथा जिनकी कांचली छूट रही हो और डर रहे हों, ऐसे सर्प विषरहित होते हैं ।

अब सर्पोंके भेद कहते है

तहां प्रथम दर्वाकर सर्पोंके भेद कहते हैं । कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेत, कपोत, बलाहक, महासर्प, शंखपाल, लोहिताक्ष, गवेधुक, परिसर्प, खंड-फण, ककुदपन्न, महापन्न, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुंडरीक, भ्रुकुटीमुख, विष्किर, पुष्पाभिकीर्ण, गिरिसर्प, ऋतुसर्प, श्वेतोदर, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष ये दर्वाकर जातिके सर्प हैं ।

आदर्शमंडल, श्वेतमंडल, रक्तमंडल, चित्रमंडल, प्रसूत, रोध्रपुष्प, मिलिंदक, गोनस, वृद्धगोनस, पनस, महापनस, वेणुपन्नक, शिशुक, वधु, कषाय, कल्लुष, पारावत, हस्ताभरण, चित्रक, एणीपद, ये मंडलीजातिके सर्प हैं ।

पुंडरीक, राजचित्र, अंशुलराजि, विंदुराजि, कर्दमक, तृणशोपक, संसर्पक, श्वेतहनु, दर्भपुष्प, चक्रक, गोधूमक, किकसाद, ये राजिलजातिके सर्प हैं ।

शुलगोली, शूकपन्न, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतीरथ, क्षीरिक, पुष्पक, अहिपतानक, अंधाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय, इतने सर्प हीन-विष जानने ।

अब कहतेहैं कि द्व्यंतर (वर्णसंकर) सर्पभी तीन प्रकारके हैं । माकुली, पोटगल, स्निग्धराजि, ।

तहां कृष्णसर्पजातिकी सर्पिणी और गोनसजातिके सर्पसे जो सर्प प्रगट हो वो माकुली कहाता है ।

इसी प्रकार राजिल और गोनसीजातिके सर्पिणी सर्पसे जो प्रगट सो पोटगलकसर्प कहाता है ।

इसी प्रकार कृष्णसर्प और राजमती जातिकी सर्पिणीसे प्रगट हुए सर्पको स्निग्धराजि कहते हैं ।

तहां अकुली सर्पमें पिताकासा विष (जहर) होय है और पोटगल स्निग्धराजि इन दोनोंमें माताकासा विष होता है । इन तीनोंके विपरीततासे दिव्येलक, लोध्रपुष्पक, राजचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेष्टितक, इन सात जातिके सर्प प्रगट होते हैं ।

इनमेंभी प्रथमके तीन सर्पोंमें राजिल सर्पोंकासा विष होता है, और शेषोंमें मंडली सर्पोंकासा जानना ऐसे सब मिलकर अस्ती प्रकारके सर्प हैं । इनमेंभी जि-

नके नेत्र, जीभ, मुख, शिर बड़े हों वो पुरुष जानने । और छोटे हों वो स्त्री जाननी, और जिनमें दोनों स्त्री पुरुषके लक्षण मिलते हों, तथा मंद विषवाले क्रोधरहित हों उनको नपुंसक जानना ।

भोगिप्रभृतिसर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण ,

दंशोभोगिकृतःकृष्णःसर्ववातविकारकृत् । पीतोमण्डलिजः

शोथोमृदुःपित्तविकारवान् ॥ १५ ॥ राजिलोत्थोभवेदंशः

स्थिरशोथश्चपिच्छिलः । पाण्डुःस्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्ले-

ष्मविकारवान् ॥ १६ ॥

अर्थ—भोगी अथवा राजिल (दर्बीकर) सर्पके काटनेसे काटनेकी ठौर काली हो, और सर्व वातके विकार करे इसके सुश्रुतमें (१) बहुत अवगुण लिखे हैं (मंडली) सर्पके काटनेकी ठौर पीली सूजनयुक्त और नरम और पित्तके विकार करे और (राजिल) का दंश , चिकना पीले रंगका वा गाढा तथा उसकी सूजन कठोर होय, उसमें गाढा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफविकार हों ये लक्षण राजिल-सर्प काटनेके हैं ।

विशिष्टदेशमें तथा विशिष्टनक्षत्रमें काटनेके असाध्य लक्षण

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासुचतुष्पथेषु ।

याम्येचदष्टाःपरिवर्जनीयाःक्षेशिरामर्मसुयेचदष्टाः ॥ १७ ॥

अर्थ—पीपलके वृक्षके नीचे, देवताओंके मंदिरमें, मसानमें, वंवाई, संध्याकाल (प्रात और सायंकालकी संधि) चौराहेमें, भरणीनक्षत्रमें, (चकारसे आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, कृत्तिका, इन नक्षत्रोंमें) और शिरानाडीके मर्ममें, सर्पके काटनेसे मनुष्य बचे नहीं ।

गर्मी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण

दर्वीकराणांविषमाशुहन्तिसर्वाणिचोष्णेद्विगुणीभवन्ति ।

अर्थ—दर्वीकर (नाग) का विष तत्काल प्राणनाश करे, और सर्व विष गर्मीके योगसे दुगुना जोर करते हैं ।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषुबालेषुवृद्धेषुबुक्षितेषु ।

क्षीणक्षतेमेहिनिष्ठुष्टुष्टेरूक्षेऽबलेगर्भवतीषुचापि ॥ १८ ॥

अर्थ—अजीर्ण पित्त और सूर्यकी घाम इनसे पीडित, बालक, वृद्ध, भूखा,

शीण होगया हो, उरःक्षती, प्रमेहवाला, कोडी, रुखा, निर्वल, और गर्भिणी, इनको सर्पके काटनेसे तत्काल मृत्यु हो ।

सर्पके काटेके असाध्य लक्षण

शस्त्रक्षतेयस्यनरक्तमस्तिराज्योलताभिश्चनसम्भवन्ति ।

शीताभिरद्भिश्चनरोमहर्षोविषाभिभूतंपरिवर्जयेत्तम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जिसको विषका अमल चढ़गया हो, उसके शस्त्रके घाव करनेसे रुधिर निकले नहीं, अथवा चाबुक मारनेसे अंगमें उपडे नहीं, अथवा शीतल पानी अंग-पर डालनेसे रोमांच नहीं, ऐसे मनुष्यका जहर उतारनेका उद्योग न करे ।

दूसरे असाध्य लक्षण

जिह्वामुखंयस्यचकेशशातोनासावसादश्चसंकंठभंगः ।

रक्तःसकृष्णश्चयथुश्चदंशोहन्वोःस्थिरत्वंचविवर्जनीयः ॥ २० ॥

अर्थ—जिसका मुख टेढ़ा और स्तब्ध होजाय, केस (बाल) स्पर्शकरनेसे टूट टूट कर गिर पड़ें, नाककी हड्डी टेढ़ी होजाय, नार नीचेको झुकी पड़े, ऊंची न होय, और काटनेकी जगह सूजन होय, तथा वो दंश लाल अथवा काला होय, तथा स्थिर होय, उस रोगीको सागदेय ।

तथा असाध्य लक्षण

वर्तिर्धनायस्यनिरतिवक्त्राद्रक्तंस्त्रवेदूर्ध्वमधश्चयस्य । दंष्ट्राभि-

घाताश्चतुरस्ययस्यतंचापिवैद्यःपरिवर्जयेत्तु ॥ २१ ॥ उन्मत्त-

मत्यर्थमुपद्रुतंवाहीनस्वरंचाप्यथवाविवर्णम् । सारिष्टमत्य-

र्थमवेगिनंचजहान्नरंतत्रनकर्मकुर्यात् ॥ २२ ॥

अर्थ—जिसके मुखसे गाढी लारकी बची गिरे, और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकले, और जिसके चार दांत लगे होंय उसको त्याग देय अत्यंत उन्मत्त होगया हो, अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवोंकरके पीडित हो, बोलनेमें असमर्थ हो, जिसके देहका वर्ण काला होगया हो, नासाभंगादि अरिष्टयुक्त, जिसका वेग (लहर) आवे नहीं, ऐसा अथवा विप्रा सूत्रादि वेगरहित ऐसे विपवाले पुरुषको त्याग देय अर्थात् उसका उपचार चिकित्सा न करे ।

दूषितविषके लक्षण

जीर्णविषघ्नौपधिभिर्हतंवादावाग्निवात्तातपशोषितंवा ।

स्वभावतोवागुणविप्रहीनंविषंहिदूषीविषतामुपैति ॥ २३ ॥

अर्थ—जो विष पुराना होगया हो अथवा विषकी नाशक औषधीसे हतवीर्य होनेसे, अथवा सरदी, गरमी, अग्नि इनसे सूखी हुई अथवा जे स्वभावसे गुण-रहित हैं, ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होते हैं ।

दूषीविषके लक्षण

वीर्याल्पभावान्ननिपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि । तेना-
र्दितोभिन्नपुरीषवर्णोविगंधिवैरस्ययुतःपिपासी ॥ २४ ॥ मू-
र्छाभ्रमंगद्वदवाग्वमित्वंविचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ।

अर्थ—वे दूषीविष अल्पवीर्य होनेसे मारक नहीं होते, किंतु कफसंबंध हो-
नेसे उष्णादि गुण मंद होकर बहुत वर्षपर्यंत गर (विष) रूप होकर रहतेहैं उस
विषसे पीडित हुए पुरुषके दस्त होते हैं, उसका वर्ण पलट जाय, उसके मुखसे
बुरी दुर्गंध निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहै, प्यास लगे, मूर्च्छा आवै,
भ्रम होय, वो बोलते समय अक्षर चवावे, वमन करे, विरुद्ध चेष्टा करे और उ-
सको चैन नहीं पड़े ।

स्थानभेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण

आमाशयस्थेकफवातरोगीपक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।

भवेत्समुद्धस्तशिरोरुहांगोविलूनपक्षस्तुयथाविहंगः ॥ २५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विष आमाशयमें स्थित होनेसे कफवातजन्य रोग होय, और
पक्वाशयमें आनेसे वातपित्तजन्यविकार होय, तथा उस रोगीके मस्तकके और
सब देहके बाल उडकर पंखरहित पक्षी (पत्खेरे) के समान हो जाय ।

निद्रागुरुत्वंचविजृम्भणंचविश्लेषहर्षावथवांगमर्दः । ततःक-
रोत्यन्नमदाविपाकावरोचकंमण्डलकोठजन्म ॥ २७ ॥ मांस-
क्षयंपादकरप्रशोथंमूर्च्छीतथाछर्दिमथातिसारम् । दूषीविषं
श्वासतृषौचकुर्याज्ज्वरप्रवृद्धिंजठरस्यचापि ॥ २८ ॥ उन्मा-
दमन्यज्जनयेत्तथान्यदाहंतथान्यत्क्षपयेच्चशुक्रम् । गाद्वदम-
न्यंजनयेच्चकुष्ठंतांस्तान्विकारांश्चबहुप्रकारान् ॥ २९ ॥

अर्थ—दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग शिथिल, रोमांच,

अंगोंका दूटना, ये प्रथम होकर तदनंतर भोजनके उपरांत हर्ष होना, अन्न पचे नहीं, अरुचि, देहमें चकत्ते तथा गांठ उठे, मांसक्षय, हाथ पैरोंमें सूजन, मूर्छा, वमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग, ये विकार होंय तथा अनेक प्रकारके रोग होय, सो इस प्रकार किसीसे उन्माद रोग होय, और किसीसे दाह होय, कोई नपुंसकत्व करे, और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे, और विसर्प विस्फोट आदि अनेक प्रकारके रोग होंय ।

दूषीविषकी निरुक्तिके लक्षण.

दूषितदेशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।

यस्मात्संदूषयेद्घातूंस्तस्माद्दूषीविषंस्मृतम् ॥ ३० ॥

अर्थ—देशकाल, और अन्न, और दिवा निद्रा, इनसे बारंवार दूषित हुए विष धातुओंको दुष्ट करें, इसीसे उसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष दो प्रकारका है एक कृत्रिम, और दूसरा गरसंज्ञक, जो विष पदार्थोंसे बनाया जाय वो कृत्रिम । और निर्विष द्रव्योंके संयोगसे होय उसको गर कहते हैं । सो वृद्धकाश्यपने और चरकमें लिखाभी है ।

इन दोनोंविषोंको लक्षण

सौभाग्यार्थस्त्रियःस्वेदरजोनानांगजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च

गरान्प्रयच्छत्यन्नमिश्रितान् ॥ ३१ ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशो-

ऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रथमनाध्मानंहस्तयोःशो-

थलक्षणम् ॥ ३२ ॥ जाठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः ।

एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिंगानि निर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—धरका अधिकार स्वाधीन करनेको, दुष्ट जनोंके कहनेसे, पतिको वशीकरण करनेके निमित्त, स्त्री अपने पतिको पसीना, आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंका मैल, अन्नमें मिलाकर खुलाती हैं । अथवा शत्रुकृत गर विषका प्रयोग, अर्थात् वैरी विष अथवा गरको अन्न तथा जलमें मिलाकर खवाय देय, इससे मनुष्य पीला और कृश होय, उसकी अग्नि मंद होय, सब मर्मांमें पीडा, पेट फूलजाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग,

१ वृद्धकाश्यपः—संयोगजं तु द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते । गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं यतः ॥ १ ॥

चरकः—दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ॥ इति ॥

राजयक्ष्मा, शुल्म, क्षय, ज्वर, इन रोगोंके तथा इसी प्रकारके रोगोंके लक्षण होते हैं ।

दूषीविपके असाध्यादि लक्षण

साध्यमात्मवतःसद्योयाप्यंसंवत्सरोषितम् ।

दूषीविपमसाध्यंतुक्षीणस्याहितसेविनः ॥ ३४ ॥

अर्थ—दूषीविप पेटमें जानेसे तत्काल उपाय करनेसे और रोगी पथ्यमें रहनेसे साध्य है । और वर्ष दिन व्यतीत हो जाय तो याप्य जानना । और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवालेके असाध्य होंय ।

लूताविपकी उत्पत्तिके लक्षण

यस्माद्भूनंतृणंप्राप्तामुनेःप्रस्वेदबिंदवः ।

तस्माद्भूताःप्रभाष्यन्तेसंख्ययातास्तुषोडश ॥ ३५ ॥

अर्थ—विश्वामित्रराजा वसिष्ठकी कामधेनु जबर्दस्ती लेकर चला, उस समय वसिष्ठजीको क्रोध आया, उससे ललाटमें पसीनाका बिंदु निकला, सो समीप जो कंठे तृण गौके चरनेके अर्थ पड़े थे उनपर वो बिंदु पड़े, इसीसे लूता (मकड़ी) प्रगट हुई इन मकड़ियोंकी सोलह जाति हैं इन सोलहोंकेभी दो भेद हैं एक कुच्छसाध्य, दूसरी असाध्य ।

उनके काटनेके सामान्य लक्षण

ताभिर्दंष्ट्रेदंशकोथप्रवृत्तिःक्षतजस्यच । ज्वरोदाहोऽतिसारश्च

गदाःस्युश्चत्रिदोषजाः ॥ ३६ ॥ पिडिकाविविधाकारामण्ड-

लानिमहान्तिच । शोथामहान्तोमृदवोरक्तश्यावाश्चलास्तथा

॥ ३७ ॥ सामान्यंसर्वलूतानामेतदंशस्यलक्षणम् ।

अर्थ—उन मकड़ियोंके काटनेसे वो स्थान सड़े, और उसमेंसे रुधिर बहे, ज्वर, दाह, अतिसार, और त्रिदोषज, तथा अनेक प्रकारके फोड़ा बड़े बड़े चकत्ते, नरम लाल काली नीली और चंचल ऐसी सूजन होय, इत्यादि लक्षण होते हैं इस प्रकार सर्व लूताओंके सामान्य लक्षण जानने ।

दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण

दंशमध्येतुयत्कृष्णंश्यावंवाजालकावृतम् ॥ ३८ ॥ ऊर्ध्वाकृ-

तिभृशंपाकंक्लेदकोथज्वरान्वितम् । दूषीविषाभिर्लूताभिस्तं

दष्टमितिनिर्दिशेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ—जिस दंशका मध्यभाग काला, अथवा पीला, अथवा हरा, तथा जालके सहजा ऊँचा होकर शीघ्र पके, तथा उसमेंसे दुर्गन्धिभुक्त लस बहे, उसमें ज्वर होय, उसको दूषीविष अथवा लूताका काटा हुआ जानना ।

प्राणहरलूताके लक्षण

सर्पाणामेवविण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः । दूषीविषाःप्राणहरा
इतिसंक्षेपतोमताः ॥ ४१ ॥ शोथाःश्वेताऽसितारक्ताःपीताः
सपिटिकाज्वराः । प्राणान्तिकाभिर्जायन्तेदाहहिक्काशिरो-
ग्रहाः ॥ ४२ ॥

अर्थ—सर्पोंके मलमूत्रसे अथवा मरे हुए सर्पके सड़जानेसे जो दूषीविषके कीड़ा उत्पन्न होय, वे प्राण हरनेवाले होते हैं उनका काटा हुआ स्थान सूज आवे, तथा वो सफेद काला लाल पीला होय, और फूँसी होजाय, और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय, हिचकी आवें, मस्तकमें शूल होय ।

दूषीविषासुलक्षण

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।

लोमहर्षश्च दाहश्चाप्यासु दूषीविषादिते ॥ ४३ ॥

अर्थ—विषेलआसु (मूसा)के काटनेसे पीला रुधिर निकले, देहमें गोल चकते उठें, ज्वर होय, अरुचि होय, रोमांच और दाह होय, ये मूसेके काटनेके विषपीडित मनुष्यके लक्षण हैं ।

प्राणहरमूपकविषलक्षण

मूर्च्छां गशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिज्वरः ।

शिरो गुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूपकैः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, मूसेके आकार सूजन, देहमें विवर्णता, क्लेद, मंद सुनाई दे, ज्वर, मस्तक भारी, लार और रुधिर इनकी रह होय, ये लक्षण प्राणहर्ता मूसेके असाध्य हैं ।

कृकलास (नोला)के काटेके लक्षण

काष्ण्यं श्यावत्वमथ वानानावर्णत्वमेव च ।

व्यामोहो वर्चसोभेदोदप्रेस्यात्कृकलासकैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—नोलाके काटनेसे देहका वर्ण काला, अथवा नीला, हरा, तथा अनेक प्रकारका होय, तथा उस रोगीके भ्रांति, और अतिसार होय ।

वृश्चिकविषलक्षण

दहत्यग्निरिवादौतुभिन्नीवोर्ध्वमाशुवै ।

वृश्चिकस्यविषंयातिपश्चादंशोऽवतिष्ठति ॥ ४५ ॥

अर्थ—विच्छूके काटनेसे उस स्थानमें प्रथम आगसी जले, पीछे ऊपरको चढ़े, पीछे उस काटनेकी जगह फटनेकीसी पीड़ा होय ।

अब कहते हैं कि वीछू मन्दविष, मध्यविष, महाविषके भेदसे तीन प्रकारका है । तिनमें जो गौके गोबरसे प्रगट होय वो मंदविष है, और काठ ईंट इनसे प्रगट होय वो मध्यविष है, और जो सर्पकी सड़ी देहसे प्रगट होय वो अथवा अन्य विषवाली वस्तुओंसे प्रगट होय वो विच्छू महाविषवाला होता है, मंदविषवाले विच्छू बारह प्रकारके हैं । और मध्यविषवाले तीन प्रकारके हैं । और महाविषवाले पंद्रह प्रकारके हैं ऐसे सब मिलकर तीस प्रकारके विच्छू हैं कोई आचार्य २७ प्रकारके कहता है, कृष्ण, श्याव, कर्तुर (विचित्रवर्ण) पीत, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, श्वेत, लाल, रोमश, शाद्वलाभ, रक्त, ये बारह मंदवीर्य हैं इनके काटनेसे पीड़ा, कंप, देहका स्तंभ, काले रुधिरका निकलना, इत्यादि रोग होते हैं ।

रक्तोदर, पिचोदर, कपिलोदर, ये तीन मध्यविषवाले विच्छू हैं इनके काटनेसे जीभमें सूजन, भोजनका न होना, घोर मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ।

श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीत, रक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक्र, रक्तवधु, एकपञ्चा, उपपञ्चा, ये घोर विषवाले १५ विच्छू हैं । इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होय, फोड़ोंकी उत्पत्ति होय, भ्रांति, दाह, ज्वर, नाक, कान, आदि छिद्रोंसे काला रुधिर निकले, इसीसे शीघ्र प्राणत्याग होवे ।

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण

दष्टोऽसाध्यस्तुहृद्भ्राणरसनोपहतोनरः ।

मांसैःपतद्भिरत्यर्थवेदनार्तोऽजहात्यसून ॥ ४६ ॥

अर्थ—हृदय, नाक, जीभ, इनमें विच्छूके काटनेसे मांस गल असन्त वेदना होकर मनुष्य मरे ।

कणभदष्टके लक्षण

विसर्पःश्वयथुःशूलज्वरश्छर्दिरथापिवा ।

लक्षणंकणभेदंष्ट्रेदंशश्चैवविशीर्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ—कणभ एक जातिका कीड़ा होता है । उसके काटनेसे विसर्प, सूजन,

शूल, ज्वर, वमन, ये लक्षण होते हैं और वो काटनेका स्थान गल जाय, अब कहते हैं कि त्रिकटक, कुणी, हस्तीकक्ष, उपराजित, ये कणभ कीडाके चार भेद, हैं। इनके काटनेसे पूर्वोक्त रोग होंय, और अंगोंका दूटना, देहमें भारीपन, और काटनेकी ठौर काली हो जाय, ये लक्षण विशेष होंय।

उच्चिर्दिग्ग (झींगर) विषके लक्षण

हृष्टरोमोच्चिर्दिगेनस्तब्धलिङ्गोभृशार्तिमान् ।

दष्टःशीतोदकेनेवसिक्तान्यङ्गानिमन्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—उच्चिर्दिगनामक विच्छूके काटनेसे देहमें रोमांच होंय, लिङ्ग जिकड़ जाय, घोर पीडा होय, और सब देह परिशीतल जल मानो डाल दिया है, उच्चिर्दिगको सुश्रुतवाला झींगर कहता है और कोई उल्लूधूम कहते हैं परन्तु आतंकदर्पण टीकाकारने विच्छूका भेद माना है।

मंडूक(मेंढक)विषके लक्षण

एकदंष्ट्रादितःशूनःसरुजःपीतकःसतृट् ।

छादिर्निद्राचसविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ४९ ॥

अर्थ—विषैल मेंढकके काटनेसे उसका एक दांत लगे, उस ठिकाने पीली सूजन होय, दूखे, प्यास, वमन, और निद्रा ये लक्षण होंय अब कहते हैं कि कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भृकुटी, कोटिक, इन भेदोंसे मेंढक आठ प्रकारका है इनके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होंय, और खुजली मुखमें पीले झाग आना, इन आठमेंभी भृकुटी और कोटिक इन दोनों मेंढकोंके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होंय, और दाह, सूच्छा, अत्यन्त होंय ये विशेष लक्षण होते हैं।

विषैलमत्स्य(मछली)के विषके लक्षण

मत्स्यास्तुसविषाःकुर्युर्दाहंशोथंरुजंतथा ।

अर्थ—विषैल मछलीके काटनेसे दाह, सूजन, और शूल, ये होंय, विषैल मछलीके सर्चाइस भेद हैं। उनके नाम नहीं लिखे इसलिये कि मिले नहीं।

सविषजलौका (जोंक)के विषके लक्षण

कण्डूशोथंज्वरंमूर्च्छांसविषास्तुजलौकसः ।

अर्थ—विषैल जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर, और मूर्च्छा, ये लक्षण होते हैं विषैल जोंक काली विचित्रवर्णकी, अलगर्दा, इंद्रायुध, सामुद्रिका, गोचन्दना, इन भेदोंसे छः प्रकारकी है।

इनमेंभी अंजन चूर्णवर्णा, और पृथुशिराके भेदसे काली जोंक दो प्रकारकी है, वार्म्म मल्लकी समान लंबी छिन्नोन्नत कुक्षिके भेदसे विचित्रवर्णकी जोंक दो प्रकारकी है, रोमशा, महापार्श्वा, कृष्णमुखी, इन भेदोंसे अलगर्दा जोंक तीन प्रकारकी है इन्द्रधनुषके समान ऊपरसे विचित्र होय, वो इन्द्रायुषा जोंक है कुछ सफेद और पीली तथा विचित्रपुष्पके समान चित्रित, ये दो भेद सामुद्रिका जोंकके हैं और बैलके अंडकोशके समान नीचेसे दो भाग होवें उसको गोचन्दना कहते हैं ।

गृहगोधिका(छिपकली)के विषके लक्षण

विदाहंश्वयथुंतोदंस्वेदं च गृहगोधिका ।

अर्थ—छिपकलीके विषसे दाह होय, सूजन, नोचनेकीसी पीडा, और पसीना आवे, कोई गृहगोधिकाको भाषामें विषखपरा कहते हैं ।

शतपदी (खानखजूरा)के विषके लक्षण

दंशेस्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदी विषम् ।

अर्थ—खानखजूराके काटनेसे काटनेके स्थानमें पसीना आवे, शूल होय, और दाह होय, अब जानना चाहिये कि परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिलिका, पिप्पिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा, ये शतपदीके आठ भेद हैं । इनमेंसे छः तो पूर्वोक्त लक्षण करती हैं, और श्वेता तथा अग्निप्रभा, दो जातिकी शतपदीके काटनेसे दाह, और मूर्च्छा, अधिक होय, ये विशेष लक्षण जानना ।

मशक(मच्छर वा डांस)के विषके लक्षण

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।

अर्थ—मच्छर अथवा डांसके काटनेसे जो किंचित् सूजन होय, उसमें खुजली चले, तथा थोड़ी पीडा होय, सामुद्र, परिमंडल, हस्तिमस्तक, कृष्ण, पार्वतीय, ये पांच भेद मच्छरोंके हैं ।

असाध्य मशकक्षतके लक्षण

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—पर्वतके ऊपर रहनेवाले मच्छर, अथवा डांसके काटनेसे क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है । असाध्य कीटके विषके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं सो जान लेने ।

सविषमक्षिका(मक्खी)दंशके लक्षण

सद्यः प्रस्त्राविणी स्याद्वादाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।

पिडिकामक्षिकादंशेतासांतुस्थविकाऽसुहृत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—विषैलमक्खीके काटनेके ठिकाने काली कुंसी प्रगट होय, वो तत्क्षण वहनेलगे, उस ठिकाने दाह होय, और मूच्छा, ज्वर होय, इनमें स्थविका नाम मक्खी प्राणहर्चा जानना ।

मक्खीके छः भेद हैं जैसे कान्तारिका, कृष्णा, पिंगलिका, मधूलिका, काषायी, और स्थविका, इनमें काषायी और स्थविका दो असाध्य हैं ।

चतुष्पादादिकोंके विषके साधारण लक्षण

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वानखदन्तविषंचयत् ।

भूयतेपच्यतेचापिस्रवतिज्वरयत्यपि ॥ ५४ ॥

अर्थ—व्याघ्र आदि चतुष्पाद, और वनमनुष्यादि वानरादि द्विपाद इनका नख दांतोका विष सूज आवे, पकजावे, वहे तथा इसके योगसे ज्वर आवे अव कहते हैं कि श्रीमाधवाचार्यने विश्वंभरा, अहिंङ्का, कंडूमाका, शूकटन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका, और सर्षपिका, इनके विषका निदान नहीं लिखा परंतु इनका निदान सुश्रुतमें कहा है सो ग्रंथकी समाप्तिमें लिखेंगे ।

विष उत्तरगयाहो उसके लक्षण

प्रसन्नदोषंप्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षंसममूत्रविट्कम् ।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टवैद्योऽवगच्छेदविषमनुष्यम् ॥ ५५ ॥

इति विषनिदानम्

अर्थ—जिस पुरुषके वातादि दोष निर्मल होंय, रस रक्तादि धातु निरोग अवस्थामें जैसे होते हैं वैसेही होंय, अन्न खानेकी इच्छा होय मलमूत्र जैसे होतेहैं वैसे होंय शरीरका वर्ण, इन्द्री, मन और व्यापार (देहकी चेष्टा)ये जिसके शुद्ध होंय, उसका विष उत्तरगया ऐसे वैद्य जाने ।

इति श्रीमाधुरकुलकमलप्रकाशकश्रीमत्कन्हैयालालपाठकतनयदत्तरामनिर्मितमाध-

वभावाथर्वबोधिनीमाधुरीभाषाटीकायां विपरोगनिदानम् ।

इति माधवनिदानं समाप्तम् ।

परिशिष्ट (ग्रंथशेष)

विदित हो कि माधवाचार्य्य भिषकशिरोमणिने बहुतसे रोगोंके निदान स्वग्रंथमें नहीं लिखे, परन्तु उन रोगोंके निदानोंसे बहुधा वैद्योंको काम पड़ता है, इसी कारण उन निदानोंको अन्य ग्रंथोंसे संग्रहकरके इस जगह लिखते हैं। प्रथम क्लीव (नपुंसक)का निदान चरकसे लिखते हैं।

रेतोदोषोद्भवकैव्यं यस्मात् शुद्धयैव सिद्ध्यति । अतो वक्ष्यामि ते
संम्यग्निवेशयथा तथम् ॥ १ ॥ बीजध्वजोपघाताभ्यां जरया

शुक्रसंक्षयात् । वैकृत्यसम्भवस्तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—कैव्य (नपुंसक) होना केवल वीर्यके दोषसे होता है, वीर्य शुद्ध होनेसे ही उसकी शुद्धी है, इसी कारण हे अग्निवेश ! मैं तेरे आगे क्लीवका लक्षण कहता हूँ नपुंसक चार प्रकारका होता है उनको कहते हैं १ बीजके उपघातसे, २ ध्वजोपघातसे, ३ बुढ़ापेसे, ४ और शुक्र (वीर्य)के क्षय होनेसे, जो नपुंसकता प्राप्त होती है उसके सामान्य लक्षणको तू सुन।

कैव्यके सामान्य लक्षण

संकल्पप्रवणो नित्यं प्रियावश्यमथापि वा । नयाति लिंगं शैथिल्यात् कदाचिद्वाति वा पुमान् ॥ ३ ॥ इवासा र्त्तस्विन्नगात्रां सो मोघसंकल्पचेष्टितः । म्लानशिशुश्च निर्वीजः स्यादेतत् कैव्यलक्षणम् ॥

अर्थ—आपको प्रिय और वशीभूत स्त्रीको भी प्राप्त होकर जो पुरुष नित्य विषय न करे, और कदाचित् करे तो जब कभी करे, वो पुरुष भ्राससे व्याकुल हो देहमें पसीना होय, निष्फल मनोरथ, और चेष्टा (विषयादि) होय, लिंग जिसका ढीला, और बीजरहित होय, ये नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं।

बीजोपघात क्लीवके लक्षण

सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते । शीतरुक्षाम्लसंक्लिष्ट-
विरुद्धाजीर्णभोजनात् ॥ ५ ॥ शोकचिन्ताभयत्रासात् स्त्रीणां
चात्यर्थसेवनात् । अभिचाराद्विस्त्रम्भाद्रसादीनां च संक्षया-

तु ॥ ६ ॥ वातादीनामोजसश्चतथैवानशनाच्छ्रमात् । ना-
रीणामनभिज्ञत्वात्पंचकर्मापिचारतः ॥७॥ बीजोपघातोभवति
पाण्डुवर्णःसुदुर्बलः । अल्पप्रजोपहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः ॥ ८॥
हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः । बीजोपघातजंक्लैव्य-

अर्थ—प्रथम जो कहे वो नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं अब उनको विस्तारसे कहता हूँ । शीतल, रूक्ष, थोडा मिला हुआ, तथा विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) कच्चा अन्न, इत्यादि पदार्थोंके भोजन करनेसे आदिशब्दसे खट्टा चरपरा, कसेला, पदार्थ खानेसे शोक (सोच) चिंता, भय, और त्रास, तथा अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे किसी शत्रुका अभिचार (जादूटोना)से, तथा किसीका विश्वास न करनेसे, रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंके बढ़नेसे, उसी प्रकार उपवास (व्रतादि) और श्रम करनेसे, स्त्री सुखके न जाननेसे पंचकर्म (वमनविरेचनादि)के अपचारसे, बीजोपघात (अर्थात् बीजमें किसी प्रकारका विकार होना) होता है इसके होनेसे बीजका वर्ण पीला होता है, तथा देह दुर्बल हो जाय, उस पुरुषके संतान थोड़ी हो, तथा स्त्रीगमनमें इच्छा न होना हृदयवेग और पांडुरोग होय, तमक श्वास, कामला, अनायास, श्रम, इनसे पीडित होय ये लक्षण बीजोपघात क्लीबके हैं ।

ध्वजभंगक्लीबकी उत्पत्ति

ध्वजभंगकृतंगृणु ॥ ९ ॥ अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्ण-
भोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १० ॥
दधिक्शीरानूपमांससेवनादतिकर्पणात् । कन्यानांचैवगमना-
दयोनिगमनादपि ॥ ११ ॥ दीर्घरोम्नीचिरोत्सृष्टान्तथैवचरज-
स्वलाम् । दुर्गंधादुष्टयोर्निचतथैवचपरिक्षुताम् ॥ १२ ॥
नरस्यप्रमदांमोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः । चतुष्पदाभिगमना-
च्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १३ ॥ अधावनाद्वामेदस्यशस्त्रदन्त-
नखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिशोपशूकानांचातितसेवनात् ॥ १४ ॥
रेतसश्चप्रतीघाताद्ध्वजभंगःप्रवर्तते ।

अर्थ—अत्यंत खट्टा, नोनका, खार, विरुद्ध, (क्षीरमत्स्यादि) अपक्व अन्न भोजन करनेसे तथा बहुत जल पीनेसे, विषमान्न और मारी ऐसे पदार्थके खानेसे,

दही दूध जलसमीप रहनेवाले पक्षीका मांस खानेसे, व्याधिकरके कुश होनेसे, कन्याके साथ गमन करनेसे, जिसके योनि नहीं ऐसी स्त्रीके साथ गमन करनेसे, अथवा अयोनि कहिये गुदाभंजन करनेसे, तथा जिसकी योनिपर बड़े बड़े बाल हों और जिस स्त्रीने बहुत दिनोंसे मैथुन करना छोड़दिया हो तथा रजस्वला और जिसकी योनिमें दुर्गंधि अति हों तथा दुष्टयोनि और जिसकी सोमादिरोगोंसे योनि चुचाती हो ऐसी स्त्रियोंसे मैथुन करनेसे तथा उन्मत्त होकर गमन करनेसे और अति हर्षसे गमन करनेसे, तथा चतुष्पाद(बकरी कुतियाआदि)से गमन करनेसे, तथा लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, तथा लिंगके न धोनेसे, तथा शस्त्र दांत नख इनकरके घाव होनेसे, लकड़ी आदिकी चोट लगनेसे, लिंगके पिसजानेसे, तथा लिंगके मोटे करनेके निमित्त शूकादि प्रयोग करनेसे, अर्थात् इन्का अत्यंत सेवन करनेसे, तथा वीर्यके विगडनेसे, मनुष्यके ध्वजभंग (अर्थात् लिंग खड़ा होकर तुरंत मुरझाजाय) यह रोग होता है इसके लक्षण आगे कहते हैं ।

ध्वजभंगके लक्षण

श्वयथुर्वेदनामेद्वे रोगश्चैवोपलक्ष्यते ॥ १५ ॥ स्फोटाश्चतीव्रा
जायन्तेलिंगपाकोभवत्यपि । मांसवृद्धिर्भवेच्चापिब्रणाःक्षि-
प्रभवत्यपि ॥ १६ ॥ पुलापोदकसंकाशःस्त्रावःश्यावारुणप्र-
भः । वलयीकुरुतेचापिकठिनचपरिग्रहम् ॥ १७ ॥ ज्वरस्तृ-
ष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योपजायते । रक्तंरुष्णंस्त्रवेच्चापिनी-
लमाविल्लोहितम् ॥ १८ ॥ अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रोदाहः
सवेदनः । वस्तौवृषणयोर्वाऽपिसीवन्यावंक्षणेपुच ॥ १९ ॥
कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्त्रावश्चजायते । श्वयथुश्चभवे-
न्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्त्रवः ॥ २० ॥ चिरात्सपाकं ब्रजतिशी-
घ्रंवाथप्रपद्यते । जायन्तेरुमयश्चापिक्लिद्यतेपूतिगंधिच ॥ २१ ॥
प्रशीर्यतेमणिश्चास्यमेद्रंमुष्कावथापिच । ध्वजभंगकृतंक्षैव्य-
मित्येतत्समुदाहृतम् ॥ २२ ॥ एवंपंचविधकेचिद्ध्वजभंगव-
दंत्यपि ।

अर्थ—ध्वजभंगवाले मनुष्यके लिंगपर सूजन हो, और लिंगमें पीड़ा हो,

तथा लाल हो, उसके ऊपर घोर फोड़ा होतेहैं, तथा लिंग पकजावै, और मांसकी दृढ़ी होय, तथा लिंगमें फोड़ा होंय, उसमें चावलके मांडके समान और काला लाल स्राव होय, कंकणके समान गोल लपेटा होय, और उसकी जड़ कठिन होय, तथा उस पुरुषके ज्वर, प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, वमन ये रोग हों तथा लिंगमेंसे काला नीला लोहित और दुष्ट रुधिर निकले, उसका लिंग अग्निसे दग्धके समान होजाय, मूत्राशय अंडकोश ऊरुकी संधियोंमें घोर दाह और पीड़ा होय, कभी कभी गाढ़ा और पीला स्राव होय, और स्रुजन मंद और गीली होय, तथा थोड़ा स्राव होय, और देरमें पके, अथवा शीघ्रही पकजावे, उसके लिंगमें कीड़ा पड़जाय, क्लेदयुक्त और दुर्गंध आवै, लिंगके ऊपरकी सुपारी गलजाय, तथा लिंग और अंडकोश दोनों गलकर गिरजाय, यह ध्वजभंगकृत नपुंसकके लक्षण कहे हैं कोई मृश्रुतादिक आचारी इस ध्वजभंग नपुंसकके ईर्ष्यक, सौगंधिक, कुंभिक, आसेक्य, और महापंड इन भेदोंसे पांच प्रकारका बतलाते है उनकोभी प्रसंगवससे इस जगह मृश्रुतसे लिखते हैं तहां प्रथम ।

[आसेक्यनपुंसकके लक्षण

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यःपुरुषोभवेत् ।

सशुक्रंप्राशयलभतेध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ १ ॥

अर्थ—मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वो पुरुष आसेक्यनाम नपुंसक होताहै वो पुरुष अन्य पुरुषसे अपने सुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खाजाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतरहो) तब स्त्रीसे मैथुन करै इसका दूसरा नाम मुखयोनि है ।

सौगंधिकनपुंसकके लक्षण

यःपूतियोनौजायेतससौगंधिकसंज्ञितः।

सयोनिशोफसोर्गधमाघ्रायलभतेबलम् ॥ २ ॥

अर्थ—जो पुरुष दुष्टयोनिसे उत्पन्न होय, उसको योनि तथा लिंगके सूंधनेसे चैतन्यता प्राप्ति होय, उसको सौगंधिक कहते हैं इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम नासायोनि है ।

कुम्भिकनपुंसकके लक्षण

स्वयुदेऽब्रह्मचर्याद्यःस्त्रीपुपुंवत्प्रतते ।

कुम्भिकःसतुविज्ञेयः

अर्थ—जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावै तब उसको चैतन्यता प्राप्त होय, तब स्त्रीके विषै पुरुषके समान प्रवृत्त होय, उसको कुम्भिकनपुंसक कहते हैं कोई आचार्य इसका और प्रकारसे अर्थ करतेहैं अर्थात् जो पुरुष लौंडे-बाजी करते हैं वो प्रथम स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदाभंजन करे, इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्ति होतीहै तब मैथुन करै, उसका नाम कुम्भिक कहते हैं और गुदायोनि यह इसका पर्यायवाचक नाम है इसकी उपपत्ति काश्यपने इस प्रकार लिखी है कि ऋतुकालमें अल्प रजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवारे पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शान्ति नहो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुम्भिकनाम नपुंसक होता है ।

ईर्ष्यकनपुंसकके लक्षण

ईर्ष्यकं गृणुचापरम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवायेयः प्रवर्तते । ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो हृग्यो निरयमीर्ष्यकः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक-नपुंसक कहते हैं इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम हृग्योनि है । कोई (हृग्यो-निरयमीर्ष्यकः) इस जगह (षण्डकं गृणुपंचमम्) ऐसा पाठ कहतेहैं अर्थात् षण्डक जो पंचमनपुंसक हैं उसके लक्षण सुन ।

महाखण्डनपुंसकके लक्षण

यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते ।

ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते खण्डसंज्ञितः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होय, अर्थात् आप नीचेसे सीधा हो ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे, उससे जो गर्भ रहे वो पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे, और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा (आप स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावै)

नारीखण्डनपुंसकके लक्षण

ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तते अंगनायदि ।

तत्र कन्यायदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥

अर्थ—ऋतुसमय यदि स्त्री पुरुषके सदृश प्रवर्त होय, अर्थात् पुरुषको नीचे मुलाय उसके ऊपर चढ पुरुषके समान मैथुन करे, उस मैथुनसे जो कन्या प्रगट हो वो

पुरुषकेसे आकारवान होय, और पुरुषकीसी चेष्टा करे (अर्थात् स्वयं स्त्रीरूपभी होकर दूसरी स्त्रीके ऊपर पुरुषके समान उसकी योनिसे अपनी योनि घर्षण करे) ये पंडनपुंसकके दोनों भेद हैं इससे पांच प्रकारकेही ध्वजभंगनपुंसक जानने परंतु चरकके मतसे नपुंसक स्त्री पुरुषके भेदसे दो प्रकारका है और जितने पुरुषके नपुंसक भेद हैं उतनेही स्त्रीके जानने ।

उक्तश्लोकोंका संग्रह

आसेक्यश्रसुगंधीचकुम्भिकश्चेर्ष्यकस्तथा ।

सरेतसस्त्वमीज्ञेयाशुक्रःषण्डसंज्ञितः ॥ ७ ॥

अर्थ—आसेक्य, सुगंधी, कुम्भिक, और ईर्ष्यक, ये चारों प्रकारके नपुंसक शुक्रवीर्यसहित जानने, और षण्डसंज्ञक नपुंसकके वीर्य नहीं होता है वो वीर्यरहित जानना । कोई शंका करे कि जब वीर्यसहित है तब आप उसको नपुंसक कैसे कहतेहो इस वास्ते कहते हैं ।

अनयाविप्रकृत्यातुतेषांशुक्रवहाःशिराः ।

हर्षात्स्फुटत्वमायान्तिध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इन्की विरुद्ध चेष्टाके करनेसे उनके शुक्रके वहनेवाली जो नाडी हैं सो हर्ष (आनंद)से फूलती हैं, इससे उनको चैतन्यता (लिंगसत्तर होना) होता है, वीर्यके प्रभावसे नहीं होता, ये ध्वजभंगनपुंसकके पांच भेद हैं अब जरासंभव नपुंसकके लक्षण कहते हैं ।]

जरासम्भवनपुंसकके लक्षण

क्लैब्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु । जघन्यमध्यप्रवरंव-

यस्त्रिविधमुच्यते ॥ २३ ॥ अथचप्रवरेशुक्रंप्रायशःक्षीयते

नृणाम् । रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृण्यसेवनात् ॥ २४ ॥

बलवर्णेन्द्रियाणांचक्रमेणैवपरिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चा-

प्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ २५ ॥ जरासम्भवजक्लैब्यमि-

त्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् ।

अर्थ—अब मैं जरा (बुढ़ापे)में नपुंसक होनेके लक्षण कहता हूं उनको सुन । अवस्था तीन हैं, जघन्य (अर्थात् छोटी) और मध्यम, तथा प्रवर (बड़ी) इन तीनोंमें प्रवर अर्थात् बृद्ध अवस्थामें बहुधा करके शुक्र (वीर्य) क्षीण होता है,

उसके हेतु यह हैं रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, तथा वृष्य (वीर्य कर्ता) औषधिके न खानेसे, वल वर्ण इन्द्री इनके क्रमसे क्षीण होनेसे, आयु (अवस्था) के घटनेसे, श्रुता रहनेसे, (श्रम महनत) के करनेसे, इन कारणोंसे जरासम्भव न-पुंसक होता है ।

जरासम्भवनपुंसकके लक्षण

जायते तेन सोत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ २६ ॥ विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्रुते । एतज्जरासम्भवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ २७ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त जरासम्भवल्लीवके होनेसे मनुष्य धातुक्षीण, दुर्बल देहका, हीनवर्ण, विह्वल, दीन, ऐसा होजाय और वो शीघ्रही व्याधि (रोग) को प्राप्ति होय, यह जरासम्भवके लक्षण कहे अब चतुर्थ क्षयजल्लीवके लक्षण सुनो ।

क्षयजल्लीवके लक्षण

अतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात्क्रोधाद्भयादपि । ईर्ष्यात्कण्ठात्तथोद्वेगात्समाविंशतिकोनरः ॥ २८ ॥ कृशो वासे वते रूक्षमन्नपानमथोषधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि ॥ २९ ॥ अथाल्पभोजनाच्चापि हृदये यो व्यवस्थितः । रसः प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशुनरस्ततः ॥ ३० ॥

अर्थ—अत्यंत चिन्ता, अतिशोक, अतिक्रोध, अतिभय, ईर्ष्या, उत्कंठा, उद्वेग, और जो पुरुष बीस वरसका होय, तथा जो पुरुष कृश होकर अन्नपानकी वस्तु तथा रुखी औषधियोंका सेवन करे, और दुर्बल प्रकृति होकर निराहार रहे, अथवा थोड़ा भोजन करे वोभी हृदयमें ही स्थित रहे, इन कारणोंसे रस है प्रधान जिनमें ऐसी जो धातु सो क्षीण होय, इसी कारणसे वो मनुष्य क्षीण होता जाय ।

रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः । शुक्रावसानास्तेभ्यो हि शुक्रंधाम परमं ततः ॥ ३१ ॥ चेतसो वातिहर्षेण व्यवायंसेवते तु यः । शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति संक्षयम् ॥ ३२ ॥ यो रां व्याधिमवाप्नोति मरणं वासमृच्छति । शुक्रं तस्माद्दिशे-

परक्ष्यमारोग्यमिच्छता ॥ ३३ ॥ एतन्निदानलिंगाभ्यामुक्तं
क्लैव्यंचतुर्विधम् ।

अर्थ—उस पुरुषके रक्तादि धातु क्षीण होय उन धातुओंकी शुक्र अवसान (मर्यादा) है, क्योंकि सबका शुक्र ही धाम (ठिकाना) है, चित्तके हर्षसे जो मैथुन करै, तब उसका शुक्र क्षीण होय, तदनंतर संक्षयको प्राप्त होय, जब मनुष्यका शुक्र क्षीण होजाता है, तब घोर व्याधि इस मनुष्यको प्राप्त होतीहै और मरण होता है. अत एव आरोग्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शुक्र (वीर्य)की जरूर रक्षा करे, यह निदान और चिन्होंसे नपुंसक चार प्रकारका कहा है ।

केचित्क्लैव्येत्वसाध्येद्वेध्वजभंगक्षयोद्भवे ॥ ३४ ॥

वदन्तिशोफसद्वेदादृपणोत्पाटनेनवा ।

अर्थ—कोई आचार्य लिंग और अंडकोशोंके गिर पडनेसे ध्वजभंग, और क्षयज, इन दोनों नपुंसकोंको असाध्य कहते हैं ।

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चकृतात्मनः ॥ ३५ ॥ गर्भस्थस्य

यदादोषाःप्राप्यरेतोवहाःशिराः । शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेत-

श्चाप्युपहन्यते ॥ ३६ ॥ तत्रसंपूर्णसर्वांगःसभवत्यपुमान्पुमा-

न् । एतेत्वसाध्याव्याख्याताःसन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ ३७ ॥

अर्थ—गर्भमें नपुंसक कौन कारणसे होता है ऐसे कोई प्रश्न करे उसके निमित्त कहते हैं । मातापिताके बीजदोषसे, पूर्वजन्मके पापोंसे, गर्भमें रेत (वीर्य) के बहनेवाली नाडियोंमें दोष प्राप्त होकर उन नाडियोंको सुखाय देवे, जब रेतके बहनेवाली नाडी सूख जावें तब वीर्यका क्षय हो, इससे बालक जो प्रगट होय उसके सब अंग यथार्थ होय परंतु लिंग नहीं होवे, सन्निपातके बढनेसे ये असाध्य रोग कहा हैं ।

शुक्रार्तवदोषनिदान

शुक्रंपौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु । यथाहिवीजं काला-

लाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ॥ १ ॥ न विरोहति सन्दुष्टं तथा

शुक्रं शरीरिणाम् । अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानां च से-

वनात् ॥ २ ॥ अकाले चाप्ययोनौ वामैथुनं न च गच्छतः । रू-

पित्तदूषित शुक्रके लक्षण

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगंधिच ।

दाहलिंगविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला, अत्यंत गरम होता है । उसमें बुरी वास आवै, और जब निकले तब लिंगमें दाह होवे ।

कफदूषित शुक्रके लक्षण

श्लेष्मणाबद्धमार्गन्तुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ।

अर्थ—कफसे शुक्र शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे, अत्यंत गाढ़ा हो जाता है ।

स्त्रियमत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि ।

शुक्रंप्रवर्ततेजन्तोःप्रायेणरुधिरान्वयम् ॥ १० ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करनेसे, चोट लगनेसे, मनुष्यके रुधिरसंयुक्त वीर्य निकलता है ।

कृच्छ्रेणयातिग्रथितमवसादितथाष्टमम् ।

इतिदोषाःसमाख्याताःशुक्रस्याष्टौसलक्षणाः ॥ ११ ॥

अर्थ—अष्टम जो अवसादि शुक्र हैं सो बड़ी कठिनतासे गांठके समान निकलतेहैं, ये शुक्रके आठ दोष कहेहैं ।

शुद्धशुक्रके लक्षण

स्निग्धघनंपिच्छिलंचमधुरंचविदाहिच ।

रेतोदोषान्विजानीयात्स्निग्धंस्फटिकसन्निभम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सचिकण, गाढ़ा, पिच्छिल (मलाईके समान) मीठा, दाहरहित, और जो स्निग्ध, स्फटिक मणिके समान होय, ये शुद्धवीर्यके लक्षण हैं ।

शुक्रदोषनिदान

सुश्रुतसे

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रंथि । पूतिपूयक्षीण-
रेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः ॥१३॥ तत्रवातवर्णवेदनं । वाते-
नपीतवर्णवेदनं । पित्तेनश्लेष्मवर्णवेदनं । श्लेष्मणाशोणित-

वर्णपित्तवेदनरक्तेनकुणपगंध्यनल्पचरक्तेनपित्तेनच ग्रंथिभू-
तंश्लेष्मवाताभ्यांपूतिपूयनिभंपित्तवाताभ्यांक्षीणशुक्रप्रागुक्तं
पित्तवाताभ्यांमूत्रपुरीषगंधि सर्ववर्णवेदनंसन्निपातेनेति ।
तेषुकुणपग्रंथिपूयक्षीणरेतसःकृच्छ्रसाध्याःमूत्रपुरीषरेतसःअ-
साध्याः ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ, रुधिर, इनसे दूषित हुआ, श्वगंधि और बहुत दु-
र्गंधियुक्त, तथा राधके समान ऐसा जिस पुरुषका रेत (वीर्य) होय उसके
संतान नहीं होय । जिसका वीर्य वादीसे दुष्ट होय उसका वर्ण काला, लाल,
ऐसा होय । तथा उसमें तोदादिक पीडा होय, पित्तसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण
पीला, नीला, इत्यादि वर्णोंका होय । तथा उसमें चोषादि पीडा होय । कफसे
दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण श्वेत होय, तथा उसमें मन्द पीडा होय, रुधिरसे दुष्ट हुए
शुक्रका वर्ण लाल होवे, उसमें चोषादि (चूसनेकीसी पीडा होवे) तथा रुधिरसे
शुक्रमें मुर्दाकीसी वास आवै । और विशेष ऐसा हो कफसे दूषित हुआ शुक्र
गांठदार होय, पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवै, पित्तवादिसे
शुक्र क्षीण होता है । सन्निपातसे दूषित भये शुक्रमें पूर्वोक्त सब वर्णन होय, और
पीडा होय, तथा उसमें मूत्र और विष्टाकीसी वास आवै, इनमें कुणप, ग्रंथी,
पूय, क्षीणरेत, ये चार कृच्छ्रसाध्य हैं । और मूत्र पुरीष (विष्टा) रेतस असाध्य,
और बाकीके सब साध्य हैं ।

आर्तवदोषके लक्षण

आर्तवमपित्रिभिर्दोषैःशोणितचतुर्थैः पृथक्द्वैःसमस्तैश्चो-
पसृष्टमबीजंभवति ॥ तदपिदोषवर्णवेदनाभिज्ञेयम् । तेषुकु-
णपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं ॥

अर्थ—आर्तव अर्थात् स्त्रियोंका रज वातादि पृथक् दोष, रक्त, द्रव्य, और
सन्निपात, इनकरके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होय । तिन दोषोंकरके
वर्ण और वेदना जाननी चाहिये । तिनमें कुणप, पूतिपूय, क्षीण, मलमूत्रके स-
मान जो होय सो असाध्य है बाकीके साध्य जानने ।]

विष्टम्भगर्भके लक्षण

गर्भिणीके कुसमय भोजन करनेसे अथवा रूक्षादि पदार्थ खानेसे, वायुसे को-
पित होकर गर्भ शुक्र शुष्क कर अर्थात् गर्भको सुखाय देवे, इसीमे उस गर्भका
५५

हलना चलना बढना बंद होय, और समय पाकर उसका वादीकी पीडा होकर स्राव होय ।

उपविष्टगर्भके लक्षण

गर्भिणी स्त्रीके अनन्त दाहकर्त्ता पदार्थ खानेसे रुधिरका स्राव बहुत होय, इसीसे वो गर्भ पीछे बढता न दीखे, उसका हलना चलना मात्र होय, ऐसे गर्भको उपविष्ट कहते हैं । ये विष्टगर्भकाही भेद है ।

मंथरकज्वर (मोतीज्वर) के लक्षण

योगरत्नसे

ज्वरोदाहोभ्रमोमोहोह्यतीसारोवमिस्तृषा ।

अनिद्रामुखशोषश्चतालुजिह्वाचशुष्यति ॥ १ ॥

ग्रीवायांपरिदृश्यन्तेस्फोटकाःसर्षपोपमाः ।

घृताशानात्स्वेदरोधान्मंथरोजायतेनृणाम् ॥ २ ॥

अर्थ—अधिक घृत खानेसे, अथवा पसीना रोकनेसे, मनुष्यको मंथरज्वर (मोतीज्वर) आता है । इसके लक्षण कहते हैं ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अतीसार, वमन, प्यास, निद्रानाश, मुख तालु और जीभ इनका सूखना, कंठमें सरसोंके समान सफेद मोतीके आकार फोडा होय, इस ज्वरको माधवने पित्तज्वरके अंतरगत अर्थात् ये पित्तज्वरके अंतरगत माना हैं इसीसे इसको पृथक् नहीं कहा, परंतु व्यवहारमें इसको पृथक् मानते हैं तथा बहुतसे ग्रंथकारोंने इसका नाम जुदा कहकर चिकित्साभी पृथक् कही है ।

अलर्क (कुत्ता) विषनिदान

वाग्भट्टसे

शुनःश्लेष्मोल्बणादोषाःसंज्ञासंज्ञावहाश्रिताः । मुष्णन्तःकुर्वन्ते

क्षोभंघातूनामतिदारुणम् ॥ १ ॥ लालावानंधवधिरःसर्व-

तःसोऽभिधावति । स्वस्तपुच्छहनुस्कंधःशिरोदुःखीनताननः॥२॥

अर्थ—कुत्ताके कफाधिक दोष संज्ञाके बहानेवाले स्रोतों (छिद्रों) में प्रवेश करके संज्ञानाशके सदृश करे और उसकी घातूका क्षोभ करे । इस योगसे उस कुत्ताके मुखसे लार बहे, तथा वो अंधा बहरा होकर इधर उधर दौड़ने लगे, उसकी पूंछ सीधी होजाय, और ठोड़ी कंधा ढीले होजाय, इसको वाचला-कुत्ता कहते हैं ।

उसके काटनेके लक्षण

दंशस्तेनविदष्टस्यसुप्तःकृष्णक्षरत्यसृक् ।

हृच्छिरोरुज्वरःस्तम्भस्तृष्णामूर्च्छाद्भवोनच ॥ ३ ॥

अर्थ—उस बातले कुत्ताके काटनेसे काटनेकी जगह शून्य होजाय, उसमेंसे काला रुधिर बहे, तथा उस मनुष्यका हृदय और मस्तक सूखे, ज्वर होय, देह जकड़जाय, प्यास लगे, तथा मूर्च्छा आवै ।

अनेनान्येपिबोद्धव्याव्यालादंघ्राप्रहारिणः ।

सृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याघ्रवृकादयः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसप्रकार ढाढा प्रहार करनेवाले सर्प, सार, खिचर, घोडा, रीछ, चीता, बाघ, भेडिआ, आदिशब्दसे सिंह, बानर, आदि इनके लक्षणभी कुत्तेके समान जानने ।

सविष निर्विषदंशके लक्षण

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिकेदज्वरभ्रमाः । विदाहरागरूपपाक-

शोफग्रंथिविकुंचनम् ॥ ५ ॥ दंशावदरणंस्फोटाःकर्णिकाम-

ण्डलानिच । सर्वत्रसविषेलिंगंविपरीतन्तुनिर्विषे ॥ ६ ॥

अर्थ—खुजली, नोचनेकीसी पीडा, वर्णका बदलना, शून्यता, छेद, ज्वर, भ्रम, दाह, छाली, दर्द, पकना, सूजन, गाँठ, चोटनी, काटनेकी जगह चीरा पड़ें, फोडा, कर्णिका मंडल, ये लक्षण सविष दांतके होते हैं । इससे विपरीत लक्षण निर्विषके जानने ।

असाध्य लक्षण

दष्टोयेनतुतच्चेष्टारुतंकुर्वन्विनश्यति ।

पश्यंस्तमेवचाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस प्राणीका काटा हुआ मनुष्य उसी प्राणीका सर्व चेष्टा करे, और रुदन करे, तथा आदर्श (शीसा) पानी आदि पदार्थोंमें उसी प्राणीका प्रतिबिम्ब देखे वो रोगी मरजाय ।

जलसंत्रासनामाके लक्षण

योऽब्रह्मस्येददृष्टोपिज्ञाब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।

जलसंत्रासनामानंदघृतमपिवर्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो पुरुष पानीके शब्द, स्पर्श, और अवलोकन (देखने)से डरपे उसको जलसंत्रासनामा कहते हैं। उसकोभी वैद्य त्याग देवे, कोई शंका करे कि जलविना कैसे मनुष्य डरता है इसवास्ते कहते हैं।

अदृष्टस्यापिजन्तोर्हिजलत्रासोभवेद्यदि । तस्यारिष्टंहिविष-
जंद्भवतेविषचिन्तकाः ॥ ९ ॥ जलंविनाजलत्रासोजायतेश्ले-
ष्मसंचयात् ।

अर्थ—जिस मनुष्यको जलके विना देखेभी भय लगे, उसको विषह वैद्य विषज रोग कहते हैं। यह जलविना जलसे त्रास कफके संचयसे होता है सो लिखते हैं।

बुद्धिस्थानंयदाश्लेष्माकेवलंप्रतिपद्यते ॥ १० ॥ तदाबुद्धौ
निरुद्धायांश्लेष्मणाधिष्ठितोनरः । जाग्रत्सुप्तोथवात्मानंमज्ज-
न्तमिवमन्यते ॥ ११ ॥ सलिलात्रासदातंद्राजलत्रासंतु
तंविदुः ।

अर्थ—जिस समय केवल कफ बुद्धिके स्थानमें जाकर प्राप्त होताहै तब इस पुरुषकी बुद्धि कफकरके आच्छादित होनेसे जागते सोते अपने आपको जलमें डूबा हुआ जाने। इसी कारण वो मनुष्य जलसे डरताहै इसीसे इसको जल-त्रास जानना।

अब विषनिदानमें कह आये हैं कि विश्वंभरा, अहिंहुका, कंड़मका, शूकट-
न्तादि, पिपीलिका, गोधेरका, और सर्पपिका इनका निदान ग्रंथके अंतमें लि-
खेगे सो यहां सुश्रुतसे लिखतेहैं।

गोधेरकदंशके लक्षण

प्रतिसूर्यःपिंगभासोबहुवर्णोमहाशिराः ॥ १२ ॥ तथानिरू-
पमश्चापिपंचगौधेरकाःस्मृताः । तैर्भवन्तीहदृष्टानांविगज्ञा-
नानिसर्पवत् ॥ १३ ॥ रुजश्चविविधाकाराग्रंथयश्चसुदारुणाः ।

अर्थ—प्रतिसूर्य, पिंगभास, बहुवर्ण, महाशिरा, निरूपम, ये पांच प्रकारके गोधेरक (गोह) होते हैं। इनके काटनेसे वेग आर ज्ञान सर्पके समान जानना। और अनेक प्रकारके रोग तथा दारुण गांठ प्रगट होय। गोधेरककी उत्पत्ति ग्रं-
थान्तरोमें लिखी है।

(१) कृष्णसर्पेण गोधायां भवेज्जन्तुश्चतुष्पदः। सर्पो गोधेरको नाम तेन दृष्टो न जीवति ।

सर्षपिकादंशके लक्षण

गलगोलीश्चेतकृष्णारक्तराजीतुमण्डला ॥ १४ ॥ सर्वश्वेता
सर्षपिकेत्येवंषट्ताभिर्दष्टेसर्षपिकावर्ज्यन्दाहशोफक्लेदांभव-
न्तिसर्षपिकयाहृदयपीडातिसारश्च ॥ १५ ॥

अर्थ—गल गोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमंडला, सर्वश्वेता, सर्षपिका,
इस प्रकार सर्षपिकाके छः भेद हैं । इनमें सर्षपिकाको छोड़कर बाकी गलगोली
आदिके काटनेसे दाह, सूजन, और छेद होय, और सर्षपिकाके काटनेसे पू-
र्वोक्त लक्षण होवें और हृदयमें पीडा तथा अतिसार होय ।

विश्वम्भराके लक्षण

विश्वम्भराभिर्दष्टेदंशःसर्षपिकाकाराभिःपिड-

काभिश्चीयतेशीतज्वरार्चश्चपुरुषोभवति ॥ १६ ॥

अर्थ—विश्वम्भराके काटनेकी ठौर सरसोंके समान फुन्सियोंसे व्याप्त हो, और
शीतज्वरकरके रोगी व्याकुल होय ।

अहिङ्गुकाके लक्षण

अहिण्डुकाभिर्दष्टेतोददाहकण्डुश्चयथवोमोहश्च ।

अर्थ—अहिङ्गुकाके काटनेसे नोचनेकीसी पीडा होय, दाह, खुजली, सूजन,
और मोह होय ।

कंङ्कमकादष्टके लक्षण

कण्डूमकाभिर्दष्टेपीतांगश्छर्द्यतीसारज्वरादिभिर्हन्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—कंङ्कमकादि कीड़ाओंके काटनेसे देह पीली होजाय, वमन, अतिसार
और ज्वरादिरोगोंसे मनुष्य पीडित होय ।

शूकवृन्तादिदष्टलक्षण

शूकवृन्तादिभिर्दष्टेकण्डूकोटाःप्रवर्द्धन्तेशूकश्चात्रलक्ष्यते ।

अर्थ—शूकवृन्तादि कीड़ोंके काटनेसे खुजली, चकत्ता और शूकरोग हो ।

पिपीलिकादंशलक्षण

पिपीलिकास्थूलशीर्षासम्बाहिकाम्राह्मणिका ॥ १८ ॥ गुलि-

काकपिलिकाचित्रवर्णैतिषट्ताभिर्दष्टेदंशश्चयथुरग्निसर्पव-
दाहशोफौभवतः ॥ १९ ॥

अर्थ—स्थूलशीर्षा, सम्बाहिका, ब्राह्मणिका, अंशुलिका, चित्रवर्णा, ये छः प्रकारकी पिपीलिका (चेंटी) हैं इनके काटनेकी जगह सूजन, अग्निस्पर्शके समान दाह और चकचे होंवें ।

स्नायुके निदान

शाखासुकुपितोदोषःशोथंकृत्वाविसर्पवत् । भिनचितक्षतेत-
त्रसोष्मामांसंविशोष्यच ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभंजीवंवृत्तंसित-
द्युतिंवहिः । शनैःशनैःक्षताद्यातिछेदात्कोपमुपैतिच ॥ २ ॥
तत्पाताच्छोफशान्तिःस्यात्पुनःस्थानांतरेभवेत् । सस्नायुके-
तिविख्यातःक्रियोक्तातुविसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्योर्ध्वदिप्रमादे-
नजंघयोस्तुद्यतेकचित् । संकोचंस्वंजतांचैवछिन्नोजन्तुःकरो-
त्यसौ ॥ ४ ॥

अर्थ—हाथपैरोंमें दोष कुपित होकर विसर्पके सदृश सूजन होय वो सूजन फूटकर घाव पड़जावै, और उसमें आगसीबले, तथा मांस शुष्क होकर सूतके समान गोल सफेद जीव डोरेके सदृश बाहर निकल आवे, वो धीरे धीरे घावसे बाहर निकलतेसमय टूट जावे तो बहुत दुःख देता है, यदि वो समग्र बाहर निकल आवै तो सूजन जातीरहै और उसमेंसे कुछ टुकड़ा बाकी रहजावै तो वह फिर दूसरे स्थानपर निकले उस रोगको स्नायुक (नहरुआ) कहते हैं इसपर चिकित्सा विसर्परोगकीसी कही है कदाचित् हाथ वा पैरोंमें नहरुआ होकर टूट जावे तो हाथ पैरसे टोंटा अथवा लूला होजाय ।

ध्वजभंगके संगृहीतश्लोक

यौवनेऽनंगवेगेनशिथुनाकेलिमाचरेत् ।

गुह्यदोषेणतल्लिङ्गैशैथिल्यमुपजायते ॥

स्वगुदोत्पाटनंवाल्पेपरैःकारयतिस्वयम् ।

कुरुतेतेनदोषेणध्वजभंगोभिजायते ॥

अथवायोभवेन्मर्त्यःकरमैथुनलम्पटः ।

तस्यनूनंप्रजायेतध्वजभंगंसुदुर्जयम् ॥

(करमैथुन) हथरस इति प्रसिद्धः

रोगानुक्रमणिका

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी अंशोऽजीर्णो विषूचिका । अलसश्च विलम्बी च कर्मिरूपं ण्डुकामली ॥ १ ॥ हली मेकरकैपित्तराजयक्ष्मा उरःक्षतम् । कौसो हि कौसहर्षासः स्वरभेदस्त्वरोचकम् ॥ २ ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छाद्यौ रोगाः पानात्ययादयः । दोहोन्मोदावपेक्षारः कथितोऽथाऽनिलर्मयः ॥ ३ ॥ वातरक्तमुरुस्तम्भार्मवातोथशूलैरुक् । पित्तजं शूलमानाहं उदावन्तोथगुल्मैरुक् ॥ ४ ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्रार्धातस्तथाश्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकोश्च प्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेदस्तथोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः । गण्डमालाऽप्यंघ्रिग्रंथिरुद्वेक्षोपदंतथा ॥ ६ ॥ विद्वेधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्नौ नडिके । भग्नदोषे दंशौ च शूलकदोषस्त्वंगामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्तमुद्वेदश्च कोष्ठश्चैवाऽम्ले पित्तकम् । विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्योर्मसूरिकाः ॥ ८ ॥ क्षुद्राऽऽस्यकैर्णसाऽक्षिर्गिरः स्त्रीबालकैर्ग्रहाः । विषचेत्ययमुद्देशोरुग्विनिश्चयसंग्रहे ॥ ९ ॥

अर्थ—अर्श (ववासीर) छर्दि रह मूर्च्छाद्या (मूर्च्छा भ्रम तन्द्रा निद्रा संन्यास) पानात्यय (मदासय) अपस्मार (मृगी) अनिलामय (वातव्याधि) आनाह (अफरा) गुल्म (गोलेका रोग) अश्मरी (पथरी) वृद्धि (अंडवृद्धि) ग्रंथि (गांठ) त्वंगामय (कोढरोग) आस्य (मुखरोग) ग्रह (पूतनादिवालग्रह) ये हमने कठिन शब्दोंके अर्थ लिखदिये हैं ।

रोगानुक्रमणिका लिखनेका यह प्रयोजन है कि इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं इससे विशेष रोग प्रसिद्ध जानने इस रोगानुक्रमणिकाके रोगोंके ऊपर हमने १-२-३ ऐसे अंक करदीने हैं । सो बुद्धिवान समझलेंगे ।

टीकाकर्त्ता की वंशावली

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुराणांकुलेधासीरामइति
प्रथामधिगतोजातः सतामोदकृत् ॥ श्रीचन्द्रः किलरामचन्द्र-

विबुधोजातोहरिश्चन्द्रकःपुत्रास्त्रीणित्रयीवधर्मनिपुणाःसर्वेनृ-
पैःपूजिताः ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीमान्माधुरमण्डल द्विजकुलः श्रीमाधुर (चोवे) के कुलमें श्रीघासी-
राम इस नामसे प्रसिद्ध सज्जन मनुष्योंके आनन्दकर्त्ता प्रगट भये, उनके श्रीचंद्र
और परम बुद्धिवान रामचंद्र, और हरिश्चंद्र, ये तीन पुत्र वेदत्रयी (ऋक् साम
यजु) के समान और और सर्व राजमान्य प्रगट भये ।

तेषांहरिश्चंद्रसमानकीर्त्तिर्जातोहरिश्चंद्रगुणाभिरामः ।

बभूवतस्मात्किलकृष्णलालोसंगीतशास्त्रार्थविचारदक्षः ॥ २ ॥

अर्थ—तिन घासीरामके तीन पुत्रोंमें हरिश्चंद्रके समान कीर्त्ति जिनकी ऐसे ह-
रिश्चंद्र भये तिनके संगीतशास्त्र (गानविद्या) के अर्थ विचारमें कुशल कन्हैयालाल
प्रगट होत भये ।

तस्यपुत्रअहंजज्ञेदत्तरामोविमूढधीः ।

भाषार्यामाधवस्यार्थोयथामतिनिरूपितः ॥

अर्थ—तिन कन्हैयालालका पुत्र में तुच्छ बुद्धिवाला दत्तराम प्रगट हुआ, मैने
अपनी बुद्धिके अनुसार माधवनिदानका अर्थ भाषामें निरूपण किया ।

समाप्तोऽर्थग्रंथः

